

## भूमिका

✓ यथा भूमि समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।  
तथा भक्ति समाश्रित्य सर्वकार्याणि साधयेत् ॥

‘नारद पुराण’ का यह श्लोक उसके सिद्धान्त और विशेषताओं पर अच्छी तरह प्रकाश डालता है। वह विष्णु भक्ति प्रधान रचना है। उसमें आदि से अन्त तक विविध कथाओं द्वारा यही प्रतिपादित किया है कि मत्सार में सबसे अधिक महिमा भक्ति की है और उसका अवलम्बन करने वाला सदैव लोक और परलोक में कल्याण का भागी होता है। भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता में तो कोई सन्देह नहीं। ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग पर तो अध्ययन और मननशील विद्वान्, बुद्धिमान व्यक्ति ही पज़ी प्रकार चल सकते हैं। सामान्य स्तर का जो जन समुदाय अधिक सख्या में पाया जाता है, वह न तो उन सिद्धान्तों के वास्तविक मर्म को समझ सकता है और न व्यावहारिक रूप में उनका पालन कर सकता है। परमात्मा के अशरीरी क्रियाकलाप उसकी समझ में नहीं आ सकते। वह यह कल्पना कर खनने में भी अममन रहता है कि निराकार परमेश्वर किस प्रकार करोड़ों पदार्थों और जीव जन्तुओं में भरे दम मत्सार की रचना कर देता है ?

इसका कारण यही कि उसकी मोटी बुद्धि सूक्ष्म पदार्थों का रहस्य समझने में असमर्थ रहती है। आत्म शक्ति, सकल्प-शक्ति, विचारों की शक्ति जैसे अति सूक्ष्म विषयों को समझने की बात तो दूर, वह विद्युत-शक्ति और एतदशक्ति जैसी प्रत्यक्ष प्राकृतिक सूक्ष्म शक्तियों की

कार्य-प्रणाली के रहस्य को भी नहीं जान पाता । ऐसे व्यक्तियों को यह समझाना कि यह समस्त ससार भगवान का ही स्वरूप है और इसमें जो करोड़ों पदार्थ और कार्य दिखाई पड़ते हैं वे सब "माया" अथवा हमारी बुद्धि और नेत्रों के भ्रम हैं, एक असम्भव सी बात है । इसलिए उनको परमात्मा, उसकी सृष्टि और मनुष्य के कर्तव्य-कर्म के सम्बन्ध में जो कुछ बताया जा सकता है, उसका आधार स्थूल ही होना आवश्यक है । इसीलिये हमारे देश के प्राचीन मनीषियों ने भगवान की मूर्ति बनाकर उसके माध्यम से ध्यान और उपासना का विधान बनाया । जब तक मूर्तियों की कल्पना और निर्माण नहीं हुआ तब तक नेत्रों से दिखाई पड़ने वाली यज्ञाग्नि को ही उपासना और पूजा का माध्यम माना जाता था । कारण यही था कि ऐसे किसी प्रत्यक्ष उपकरण को सामने देखकर ही सामान्य बुद्धि का व्यक्ति उससे प्रति अपनी मानसिक भावना को प्रेरित कर सकता है और उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करके उसे अपना भक्तिभाजन बना सकता है ।

### भक्ति का स्वरूप और उसकी महिमा—

यही कारण है कि जहाँ शैव-पुराणों में विशेष रूप से योग तथा तंत्र साधना को विशेष महत्व दिया गया है, वहाँ वैष्णव पुराणों—जैसे भागवत, विष्णु, नारद आदि में भक्ति को ही सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । इसके मुख्य अङ्ग पूजा, उपासना, नाम-स्मरण, भजन, कीर्तन आदि माने गये हैं । निम्न स्तर के सकाम भावना वाले व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिये सामान्य व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, मन्दिर निर्माण या जीर्णोद्धार आदि बातों का महत्व बहुत बड़ा-चड़ा कर बनाया गया है । ऐसी बातों पर आजकल के नवशिक्षित व्यक्ति विश्वास करने को तैयार नहीं हाय । हम भी उनको अक्षरशः मान लेने का अग्रह नहीं करते । पर जिस प्रकार बालकों को मुनाई जाने वाली काल्पनिक और - भव

कहानियों से भी लाभकारी शिक्षाये प्राप्त हो सकती हैं, उसी प्रकार पौराणिक कथाओं में मनुष्यों को अनेक सत्कर्मों की प्रेरणा मिलती है। पुराणकारों ने भी यह नहीं कहा है कि मनुष्य भक्ति करने के साथ दुष्ट कर्म भी करता रहे, फिर भी उसका कल्याण ही होगा। उन्होंने प्रायः यही उपदेश दिया है कि भगवान की भक्ति करने से दुष्ट प्रवृत्तियाँ स्वयमेव छूट जायेंगी और मनुष्य में माधुर्य के गुण उत्पन्न हो जायेंगे। “नारद पुराण” के आरम्भ में ही यह कहा दिया गया है कि “भगवान की प्रसन्नता के लिए वेद शास्त्रों द्वारा बतलाये सद्-अनुष्ठानों को करना आवश्यक है। मनुष्य निष्काम हो या सकाम उसे विधिपूर्वक कर्म अवश्य करने चाहिये। सदाचार परायण ब्राह्मण अपने ब्रह्म तैज के साथ वृद्धि को प्राप्त होता है। यदि वह भगवान के चरणों में भक्ति रखता है तो उस पर विष्णु भगवान बहुत प्रसन्न होते हैं।” इससे आगे चल कर भक्ति की जो महिमा और प्रशंसा बतलाई है उससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है—

हरिभक्तिः परानृणा कामधेनूवमा स्मृता।

तस्या सत्या पितृन्तजाः ससारं गच्छन्त्यहो॥

“भगवान की भक्ति मनुष्यों के लिये कामधेनु के समान कल्याणकारी मानी गई है। पर कितने आश्चर्य की बात है कि अज्ञानी जन उसे त्याग कर सासारिक मोहकामी विष को ग्रहण करते हैं।” मनुष्य को सत्कर्मों का अनुष्ठान सदैव श्रद्धा और भक्ति की भावना में ही करना चाहिये जैसे सूर्य का प्रकाश समस्त जीवों को कर्मरत करने में कारण बन होता है, उसी प्रकार समस्त सिद्धियों का आधार भक्ति ही होती है। जैसे जन मन्मूर्ख लोगों का जीवन कहा गया है जैसे समस्त महान लाभ भक्ति के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। जैसे सब जीव-जगत् पृथ्वी वा आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार भक्ति वा सहारा लेकर सब प्राणियों का साधन करना चाहिये। खड्गालु पुरुष को धर्म वा

नाम होता है, थढ़ालु ही बन पाता है, थढ़ा से ही कामनाओं की सिद्धि होती है, तथा थढ़ालु पुरुष ही मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। दान, तपस्या अथवा बहुत दक्षिणा वाले यज्ञ भी यदि भक्ति से रहित हों, तो उनके द्वारा भगवान् सन्तुष्ट नहीं होते। मेरु पर्वत के द्वारावर सुवर्ण की करोड़ों सहस्र राशियों का दान भी यदि बिना थढ़ा-भक्ति के किया तो वह निष्फल होता है। बिना भक्ति के जो तपस्या की जाती है, वह केवल शरीर को सुखाना मात्र है। बिना भक्ति जो हविष्य हवन किया जाता है, वह राख में डाली हुई आहुति के समान है। थढ़ाभक्ति के साथ मनुष्य जो कुछ थोड़ा सा भी मत्कर्म करता है, वह उसे अनन्त बाल तक अक्षय सुख देने वाला होता है।”

इस प्रकार पुराणों ने भक्ति को जो महत्व दिया है वह दिखा-बटी पूजा-उपासना अथवा दान-पुण्य के आधार पर प्राप्त नहीं हो सकता। उसका नारतत्त्व हादिक थढ़ा और निष्काम परोपकार की भावना ही होता है। पौराणिक उपाध्यायों और रामायण आदि में बड़े-बड़े पापियों के अन्त समय में राम कह लेने से मुक्ति प्राप्त होने की बात लिखी है। पर साथ ही यह भी सिखा है—

जन्म-जन्म मुनि जतन कराही ।

अन्त राम कहि आवत नाही ॥

इसका आशय यही है कि उन “पापी” कहे जाने वाले व्यक्तियों को सभी सद्गति प्राप्त होती है जब अन्त समय में ही किसी घटनावश उनकी जीवनधारा बदल जाती है और उनके भीतर छिपा भक्ति का शरणा फूट उठता है।

कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि भक्ति मार्ग लोभ और परलोक के माधनी के लिये सरल और प्रभावशाली है। विशेष रूप में जो लोग ज्ञान मार्ग के गहन तथ्य को समझ सकने में असमर्थ हैं और कर्मपाठों के लिये विनये प्राप्त पर्याप्त साधन नहीं हैं, उनका सर्वश्रेष्ठ



सम्बन्धित ही है। यह वास्तव में ऐसी कामधेनु है जिसमें मनुष्य अल्प-साधनों और अल्प प्रयत्न द्वारा ही बहुत बड़ी सिद्धियाँ पा सकता है। पर इसके लिये हृदय की सचाई और शुद्धता अनिवार्य है। जैसे छोटा शिशु माता पर पूर्ण रूप से भरोसा रखता है और उसके लिये किसी प्रकार का अविश्वास का भाव कभी उसके हृदय में अ' ही नहीं सकता, इसी प्रकार जो लोग अन्तःकरण में भगवान को अपना सच्चा सहायक और रक्षक समझ लेते हैं और उसके आदेशानुसार सदाचार के मार्ग पर चलते हैं, वे ही सच्चे भक्त माने जा सकते हैं और भगवत्-शक्ति उन्हीं की भव सकटों में रक्षा करती है।

पर यह मार्ग उनके लिये नहीं है जो इसे केवल दलीलों तकों से जानना और प्राप्त करना चाहते हैं। उनके लिये ऋषियों ने ज्ञान-मार्ग बतल दिया है, जिसकी पहुँच आधुनिक विज्ञान से भी ऊँची है। रह गये आधुनिक शिक्षा का गुमान रखने वाले आलोचक उनके लिये तो प्राचीन ज्ञान की सभी बातें और सिद्धांत "निकम्मे" जान पड़ते हैं और सभी "भागों" में दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। ऐसे सज्जन महात्मा गाँधी के कथनानुसार उस "गटर-इन्स्पेक्टर" के समान हैं जिनका कार्य सर्वत्र गन्दगी ढूँढना ही है। हम कभी इस बात से इनकार नहीं करते कि पुराणों में "कथा-व्यासनों" ने सैकड़ों भले बुरे कथानक, उपाख्यान समय-समय पर जोड़ दिये हैं, जिनमें से कुछ वास्तव में 'प्रष्ट' भी कहे जा सकते हैं। पर माय ही पुराणों में सैकड़ों उपयोगी, यथार्थ लाभकारी बातें भी हैं, उनकी ओर से आँखें बन्द कर लेना कोई बुद्धिमानों अथवा प्रशंसा की बात नहीं। हम अपनी 'पुराण-सौगीज' का सम्पादन इसी दृष्टि कोण में कर रहे हैं और सन्तोष का विषय है कि पाठकों ने इसे पूरी तरह अपनाया है।

### समन्वय की प्रवृत्ति—

पर भक्ति-मार्ग का अनुयायी होने पर भी "नारदपुराण"

की नीति समन्वयवादी है और इसमें अध्यात्म-योग तथा ज्ञान-योग की भी महिमा भली प्रकार बतलाई गई है। मुक्ति प्राप्त करने के सम्बन्ध में कहा है।

“योग में स्थित होने पर साधक ब्रह्म में लीन होकर फिर अपने स्वरूप से व्युत्त नहीं होता। मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयो में आसक्त होने पर वह बन्धन का कारण होता है और विषयो से दूर हट कर वही मोक्ष का द्वार बन जाता है। इसलिये ज्ञानी वही कहा जायगा जो मन को विषयो से हटा कर परमेश्वर का चिन्तन करे। जैसे चुम्बक अपनी शक्ति से लोहे को खींचकर अपने में संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्म चिन्तन करने वाले साधक के चित्त को परमात्मा अपने स्वरूप में लीन कर लेता है। आत्मज्ञान के उपायभूत जो यम-नियम आदि साधन हैं, उनकी अपेक्षा रखने वाली मन की विशिष्ट शक्ति को ही ‘योग’ कहा जाता है। जिसका योग इस प्रकार की विशेषता वाले धर्म से युक्त होता है वह योगी “मुमुक्षु” कहलाता है। पहले पहल योग का अभ्यास करने वाला योगी ‘युञ्जा’ कहलाता है। जब उसे परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है तब वह ‘विनिष्पन्न-समाधि’ (युक्त) कहा जाता है। ऐसा “विनिष्पन्न समाधि” योगी अपनी योगाग्नि से समस्त कर्म राशियों को भस्म कर डालता है। योगी को चित्त से ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तय तथा अवरिग्रह का निष्काम भाव से सेवन करना चाहिये। इनके साथ ही शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा परमात्मा में सलग्नता का पालन करे। इनका पूर्ण रूप से सेवन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

—इसी प्रकार जडभरत द्वारा मोवीर नरेश को ज्ञान योग का उपदेश कराने हुए कहा है—“राजन् ! शिर और हाथ-पंर आदि लक्षणों वाला यह शरीर आत्मा से पृथक् ही है, इसलिये ‘अह’ ( मैं ) शब्द का प्रयोग इसके लिये बंसा किया जा सकता है ? यदि मुझसे भिन्न

कोई और भी सजातीय आत्मा हो तोभी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहना उचित हो सकता था। पर जब सब शरीरो में एक ही आत्मा विराजमान है तब 'आप कौन हैं और मैं कौन हूँ' इत्यादि प्रश्न-वाक्य व्यर्थ ही है। महाराज। 'तुम राजा हो, यह पालकी है, ये सामने पालकी डोने वाले खड़े हैं और यह समस्त देश आपके अधिकार में है'—ऐसा जो कहा जाता है, वह वास्तव में यथार्थ नहीं है। वृक्ष से लकड़ी उत्पन्न हुई और उससे यह पालकी बनी, जिस पर तुम बैठते हो। यदि इसे 'पालकी' ही कहा जाय तो इसका 'वृक्ष' नाम अथवा 'लकड़ी' नाम कहा चला गया? यह तुम्हारे भवकगण ऐसा नहीं कहते कि महाराज पेड़ पर चढ़े हैं अथवा 'लकड़ी' पर सवार हैं, सब कोई पालकी में बैठे हुआ ही कहते हैं। किन्तु पालकी क्या है—लकड़ियों का समुदाय। अगर इसमें से लकड़ियों के समुदाय को अलग कर दें तो फिर खोजो तुम्हारी पालकी कहाँ है? ८

यही न्याय (तिष्ठान्त) तुम्हारे और मेरे ऊपर भी लागू होता है। पुरुष, स्त्री, गाय, बकरी, घोड़ा हाथी, पक्षी और वृक्ष आदि लौकिक नाम कर्मजनित विभिन्न शरीरो के लिये ही रखे गये हैं। पर यह आत्मा न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष ही है। ये सब काल्पनिक है। जो वस्तु परिणाम आदि के कारण होने वाली किसी नई सजा को कालान्तर में भी प्राप्त नहीं होती, वही वस्तु पारमाधिक है। विचार करो यह क्या है? तुम सबके लिए राजा हा, अपने पिता के लिए पुत्र हो, शत्रु के लिए शत्रु हा, पत्नी के लिए पति और पुत्र के लिये पिता हो। अब मैं तुम्हें क्या समझूँ। इस प्रकार आत्म-तत्त्व सब से पृथक् होकर ही स्थित है और उसे 'अह' इस नाम से नहीं बताया जा सकता। ८

इसी प्रकार आगे चल कर धर्म और परमार्थ की व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि "जो मनुष्य देवत्व की आराधना करके धन-

सम्पत्ति चाहता है, पुत्र अथवा राज्य की अभिलाषा करता है, उसके लिये ये सब वस्तु 'श्रेय' हैं, इन्हें परमार्थ नहीं कहा जायगा। स्वर्ग-लोक रूप फल देने वाला जो यज्ञ आदि कर्म किया जाता है, वह भी श्रेय है। इन सबसे बढ़ कर श्रेय योग साधन द्वारा परमात्मा से संयोग प्राप्त करना है। इस प्रकार के श्रेय-कर्म अनेको है, पर इनमें से किसी को परमार्थ नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ यदि धन परमार्थ होता तो धर्म के लिये उसका त्याग क्यों किया जाता? यज्ञों में जिस समिधा, घृत, कुशा का प्रयोग किया जाता है वे सब विनाशशील हैं, इसलिये उनके द्वारा जो क्रिया की गई वह भी कभी अविनाशी नहीं हो सकती। इसलिये परमार्थ केवल उस आत्म-ज्ञान को ही कहा जा सकता है जब मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है कि आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है, उसमें जन्म और वृद्धि आदि विकार नहीं हैं, वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है, वह अपने और दूसरे शरीरों में विद्यमान रहते हुए भी एक ही है, तभी उसे परमार्थ-ज्ञानी कहा जा सकता है, जो इस अद्वैत तत्त्व को जान लेता है और वैसा ही आचरण करता है वही परमार्थी है।"

इस प्रकार "नारद-पुराण" में भक्ति को सर्वसाधारण के लिये श्रेष्ठ और सुलभ बतलाते हुए भी योग और अद्वैत-ज्ञान जैसे साधनों की उपेक्षा नहीं की है। उसकी मान्यता यही है कि ऐसा अद्वैत ज्ञान सर्वोच्च है पर उस तक करोड़ों में से कोई एक बिरले ही पहुँच सकते हैं। मत्सर के समस्त सम्बन्धों तथा भेद-बुरे, छोटे-बड़े के भेदों को भूल कर जीवन-यापन कर सकना सर्व साधारण के लिये कभी सम्भव नहीं, पर धर्म की, श्रेय की आवश्यकता उनको भी है। इसलिये पुराण-कार ने "भक्ति" को सर्वोत्तम मार्ग समझा है जिसमें मनुष्य सब सासारिक बाधों को यथाशक्ति करता हुआ उन्हें भगवदापण करता रहता है, इससे उसकी स्वाध्याय बद्धि बढ़ती रहती है और वह सब को एष ही

भगवान की सन्तान समझकर सेवा और परोपकार के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता रहता है। इस मार्ग में जब उसकी अधिक वृद्धि हो जाती है, तब वह भी उभी लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है जिसे योगी और ज्ञानी अपना अभिप्रेत मानते हैं। इस प्रकार पुराणकार ने जिस समन्वय की भावना का प्रतिपादन किया है, वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है।

### शैवागम का परिचय—

“नारद पुराण” पूर्ण रूप से वैष्णव पुराण है, फिर भी उसमें “शैवागम” का परिचय और भगवान शिव की महिमा का वर्णन इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचयक है। हमने कितने ही पुराणों में ऐसे भी वर्णन देखे हैं जिनमें अपने इष्ट देव के अतिरिक्त अन्य देवों को हीन सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। ऐसी ही मनोवृत्ति के कारण लोगों में प्रतिस्पर्धा और अन्त में द्वेष बुद्धि उत्पन्न होती है, जिसका परिणाम धार्मिक क्षेत्र में आक्षेप और निन्दा, कुत्सा की गन्दगी फैलने के सिवाय और कुछ नहीं निकलता। पर “नारदपुराण” में ऐसी भावना का चिह्न भी नहीं है। जिस प्रकार मोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचन्द्रजी को अपना प्रमुख इष्टदेव मानते हुये भी शिवजी के प्रति आन्तरिक भक्तिभाव प्रकट किया है और रामचन्द्रजी के मुख से ही यह कहलाया है कि “जो शिवजी से विरोध रखता है और मेरे प्रति भक्ति रखता है ऐसा मनुष्य गुप्ते स्वर्ग में भी स्वीकार नहीं हो सकता।” उसी प्रकार “नारदपुराण” में भी काशी-क्षेत्र तथा शिव पूजा का वर्णन करते हुए कहा है—

“काशीपुरी तीर्थों में उत्तम तीर्थ और क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है। समस्त देवता उसका सेवन करते हैं। काशी के गुणों के विषय में यहाँ बहुत कहने से क्या लाभ, जो काशी का नाम भी लेते हैं, उनसे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—ये चारो पुरुषार्थ दूर नहीं रहते। शिवलिङ्ग

सम्पत्ति चाहता है, पुनः अथवा राज्य की अभिलाषा करता है, उसके लिये ये सब वस्तु 'श्रेय' हैं, इन्हें परमार्थ नहीं कहा जायगा। स्वर्ग-लोक रूप फल देने वाला जो यज्ञ आदि कर्म किया जाता है, वह भी श्रेय है। इन सबसे बढ़ कर श्रेय योग साधन द्वारा परमात्मा से संयोग प्राप्त करना है। इस प्रकार के श्रेय-कर्म अनेको हैं, पर इनमें से किसी को परमार्थ नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ यदि धन परमार्थ होता तो धर्म के लिये उसका त्याग क्यों किया जाता? यज्ञों में जिस समिधा, घृत, कुशा का प्रयोग किया जाता है वे सब विनाशशील हैं, इसलिये उनके द्वारा जो क्रिया की गई वह भी कभी अविनाशी नहीं हो सकती। इसलिये परमार्थ केवल उस आत्म ज्ञान को ही कहा जा सकता है जब मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है कि आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है, उसमें जन्म और वृद्धि आदि विकार नहीं हैं, वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है, वह अपने और दूसरे शरीरों में विद्यमान रहते हुए भी एक ही है, तभी उसे परमात्म-ज्ञानी कहा जा सकता है, जो इस अद्वैत तत्त्व को जान लेता है और वैसे ही आचरण करता है वही परमार्थी है।"

इस प्रकार "नारद-पुराण" में भक्ति को सर्वसाधारण के लिये श्रेष्ठ और सुलभ बतलाते हुए भी योग और अद्वैत-ज्ञान जैसे साधनों की उपेक्षा नहीं की है। उसकी मान्यता यही है कि ऐसा अद्वैत ज्ञान सर्वोच्च है पर उस तक बरौडों में से कोई एक विरले ही पहुँच सकते हैं। समार के समस्त सम्बन्धों तथा भले बुरे, छोटे-बड़े के भेदों को भूल कर जीवन-यापन कर सकना सर्व साधारण के लिये कभी संभव नहीं, पर धर्म की, श्रेय की आवश्यकता उनका भी है। इसलिये पुराण-कार ने "भक्ति" का सर्वोत्तम मार्ग समझा है जिसमें मनुष्य सब सासारिक बाधों को यथाशक्ति करता हुआ उन्हें भगवदापण करता रहता है, इससे उसकी स्वार्थ बुद्धि दबी रहती है और वह सब को एक ही

यद्यपि सम्स्कृत भाषा के पुराणों में भी अनेक स्थलों पर ऐमे वर्णन पाये जाते हैं, पर इस सम्बन्ध में हम सब से अधिक श्रेय गो० तुलसी-दाम जी का ही मानते हैं जिन्होंने रामायण में आदि से अन्त तक भगवान शिव को परमोच्च पदवी प्रदान की है और भगवान विष्णु का सर्वाधिक प्रिय उन्हीं को माना है। हमें यह कहने में भी कुछ सकोच नहीं कि इस विषय में वैष्णव पुराणों में अधिक उदारता दिखलाई है। शैव पुराणों में “स्कन्द पुराण” इस क्षेत्र में अग्रगण्य है जिसने अपने विशाल कलेवर में एक स्वयम्भू “वैष्णव खण्ड” का समावेश किया है और जगन्नाथ, अयोध्या, मथुरा आदि वैष्णव क्षेत्रों का सविस्तार वर्णन किया है। “कूर्म पुराण” को भी शैव माना जाता है, पर उसमें वही विष्णु के प्रति उपेक्षा अवज्ञा का भाव प्रकट नहीं किया गया है। इस प्रकार की सम्प्रदायिक सहिष्णुता का परिणाम हमेशा हितकारी ही होता है और उससे धर्म की वृद्धि तथा समाज का कल्याण निश्चित रूप से होता है।

गंगा और गायत्री के प्रति भी पुराणकार ने आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है। गंगा की महिमा विश्वव्यापी है और गायत्री को भी सभी ज्ञानी जनो ने मन्त्रराज स्वीकार किया है। इसी लिये गंगा, गायत्री, सीता और गौ को हिन्दू धर्म तथा सस्कृति की आधार शिला कहा गया है। गंगा की महिमा कहने-कहने का पुराणकार थकते ही नहीं। अन्त में यह कह दिया है—

नास्ति गंगा सम तीर्थं नास्ति मानूसमो गुरु ।  
नास्ति विष्णु सम देवम् नास्ति तत्त्व गुरो परम्॥

गंगा से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है, क्योंकि वह लोगों को परलोक के मुधारन का ही विश्वास नहीं दिलाती वरन् इस लोक में भी मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करके बितना ही का कष्टो

साक्षात् श्री हरि रूप है और श्री हरि साक्षात् शिवलिङ्ग रूप है । इन दोनों में थोड़ा भी अन्तर नहीं है । जो यह भेद करता है उसकी बुद्धि खोटी है । अज्ञान के समुद्र में डूबे हुए पापी मनुष्य ही भगवान् विष्णु और शिव में भेद करते हैं । जो सम्पूर्ण जगत के स्वामी और कारणों के भी कारण, वे भगवान् विष्णु ही प्रलय-काल में रुद्र रूप धारण कर लेते हैं । इसी प्रकार भगवान् रुद्र ही विष्णु रूप से सम्पूर्ण जगत का पालन करते हैं । वे ही ब्रह्माजी के रूप में ससार की सृष्टि करते हैं, तथा अन्त में हर रूप से वे ही तीनों लोकों का सहारा करते हैं । जो मनुष्य भगवान् विष्णु, शिव तथा ब्रह्माजी में भेद बुद्धि करता है वह अत्यन्त भयकर नरक में जाता है ।”

यद्यपि वर्तमान समय में हमको इन बातों में कोई विशेष महत्त्व प्रतीत नहीं होता, पर अबसे हजार-डेढ़ हजार वर्ष पूर्व देश की धर्मनीति ही नहीं बरन् समाजनीति और राजनीति का निर्णय भी इन्हीं भावनाओं पर आधारित था । शैव और वैष्णव अपने-अपने सम्प्रदायों के नाम पर एक दूसरे पर शान्दिक आक्षेप—गाली-गलीज ही नहीं करते थे, बरन् वे प्रायः आपस में भिड़ भी जाते थे, जिसमें सैकड़ों व्यक्तियों की प्राणहानि होती थी और अनेक निर्दोष व्यक्ति भी कष्ट पाते थे । यह सद्यः इससे भी प्राचीन समय में उपस्थित हो गया था जिसकी स्मृति दक्ष प्रजापति और शिवजी के पुत्रे युद्ध के रूप में वर्णन में मौजूद है । बाद में यह मनोवृत्ति कुम्भ जैमे धार्मिक मेलों में प्रकट होने लगी जिनमें शैवों और वैरागियों के सैनिक संगठन आपस में लड़ जाते थे । इस प्रकार यह साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना सैकड़ों-हजारों वर्षों से हिन्दू-समाज को छिन्न-भिन्न और कमजोर करती चली आती थी । अन्त में जब अनुभव होने पर विद्वानों ने इस द्रुष्टि की समझा तो उन्होंने विष्णु और शिव में सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया ।



यद्यपि संस्कृत भाषा के पुराणों में भी अनेक स्थलों पर ऐसे वर्णन पाये जाते हैं, पर इस सम्बन्ध में हम सत्र से अधिक श्रेय गो० तुलसीदास जी का ही मानते हैं जिन्होंने रामायण में आदि से अन्त तक भगवान् शिव को परमोच्च पदवी प्रदान की है और भगवान् विष्णु का सर्वाधिक प्रिय उन्हीं को माना है। हमें यह बहने में भी कुछ सकोच नहीं कि इस विषय में वैष्णव पुराणों ने अधिक उदारता दिखलाई है। शैव-पुराणों में “स्वन्द पुराण” इस क्षेत्र में अग्रगण्य है जिसने अपने विशाल कलेवर में एक स्वतन्त्र “वैष्णव खण्ड” का समावेश किया है और जगन्नाथ, अयोध्या, मथुरा आदि वैष्णव क्षेत्रों का सविस्तार वर्णन किया है। “कूर्म पुराण” को भी शैव माना जाता है, पर उत्तम कही विष्णु के प्रति उपेक्षा अवज्ञा का भाव प्रकट नहीं किया गया है। इस प्रकार की साम्प्रदायिक सहिष्णुता का परिणाम हमेशा हितकारी ही होता है और उससे धर्म की वृद्धि तथा समाज का कल्याण निश्चित रूप से होता है।

गंगा और गायत्री के प्रति भी पुराणकार ने आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है। गंगा की महिमा विश्वव्यापी है और गायत्री को भी सभी ज्ञानी जनो ने मन्त्रराज स्वीकार किया है। इसी लिये गंगा, गायत्री, गीता और गौ को हिन्दू धर्म तथा सस्कृति की आधार शिला कहा गया है। गंगा की महिमा कहते-कहते तो पुराणकार पकते ही नहीं। अन्त में यह कह दिया है—

नास्ति गंगा सम तीर्थ नास्ति मातृसमो गुरुः ।

नास्ति विष्णु सम देवम् नास्ति तत्त्व गुरो परम्॥

गंगा से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है, क्योंकि वह लोगों को परलोक के सुधारने का ही विश्वास नहीं दिलाती बल्कि इस लोक में भी मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करके बित्तो ही का कष्टो

से उद्धार करती है। गायत्री वेदमाता है, जिसकी साधना करने से मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो फल प्राप्त होते हैं। विद्वानो के मतानुसार गायत्री की उपासना करने वाले भी 'वैष्णव' ही कहे जा सकते हैं क्योंकि चारो वेदो का लक्ष्य भी विष्णु स्वरूप परब्रह्म ही होता है।

## सामान्य धर्म का पालन--

पर इस प्रकार की देवोपासना और साम्प्रदायिक क्रिया-कर्म से बढ़ कर वे कर्तव्य और व्यवहार हैं जो मनुष्य को प्रतिदिन अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर करने पड़ते हैं। यदि कोई व्यक्ति मन्दिर में बैठकर घटा-भाघ घटा पूजा पाठ करता है, पर लोगों के सज्जनता के कार्यों में सहयोग नहीं देता, विपत्तिग्रस्त भाइयों की सेवा सहायता को तैयार नहीं होता तो उसकी उपासना-पूजा व्यर्थ ही समझनी चाहिये। भगवान की पूजा और आराधना का वास्तविक उद्देश्य यही है कि मनुष्य के हृदय में श्रेष्ठ और सज्जनता के भाव उत्पन्न हो और वह अपने दैनिक व्यवहारों में इस बात का ध्यान रखे कि उससे अन्य लोगों को प्रसन्नता हो। इस बात को 'नारदपुराण' में बहुत स्पष्ट रूप से कहा गया है—

सर्वलोक हितैषित्वं भगवत् प्रियवादिता ।

अनायासो मनोहर्षस्तितक्षा नातिमानिता ।

सामान्य सर्व वर्णाणां मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥

“सब लोगों का हित चाहना, भगवत् सङ्गन साधन करना, प्रिय वचन बोलना, किसी को कष्ट न पहुँचाना, मन का प्रसन्न रहना, सहन-शील होना, व्यर्थ का घमण्ड न करना—यही ऋषियों ने सब मनुष्यों या सामान्य धर्म बतनाया है।” इनका पालन करने प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्ण का हो मुनियों के समान माननीय हो जाता है।

इसके विपरीत आचरण करने वाला नागरिकता के भी अयोग्य माना जाना चाहिए। प्राचीन समय में समाज का संगठन वर्ण-धर्म के आधार पर किया गया था और प्रत्येक व्यक्ति को समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। जो इसमें ढीस करता था अथवा ऐसा व्यवहार करता था जिससे अन्य लोगों का अकल्याण हो, समाज की शान्ति भंग हो, उसमें विमृष्टलता उत्पन्न हो, तो ऐसे व्यक्ति को दंडित किया जाता था, या उसे समाज से बाहर समझा जाना था। प्राचीन समय में गाँवों और कस्बों तक का नागरिक जीवन ऐसा संगठित और अनुशासन युक्त था कि उसमें रहकर कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकता था। इसमें उसको समाज हितकारी मार्ग पर ही चलना पड़ता था।

वर्तमान समय को यद्यपि हम उन्नतिशील मानते हैं और उद्योग धंधों की वृद्धि तथा वैज्ञानिक उपकरणों के व्यवहार के आधार पर यह कहने लगत हैं कि अब मनुष्यों का जीवन पहले की अपेक्षा बहुत सुख-सुविधापूर्ण हो गया है, पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। इस समय समाज की व्यवस्था नियम तथा कर्तव्य पालन के बजाय धन तथा सम्पत्ति पर आधारित हो गयी है। जो जितना ही अधिक धन सम्पन्न होगा वह उनका ही समाज की परवाह किये बिना स्वेच्छापूर्वक रह सकेगा। सर्व साधारण में ऐसी कहावतें प्रसिद्ध हो गयी हैं कि 'पैसा हो तो शेरनी का दूध भी मिल सकता है' अथवा "सर्वेणुण कचन माश्रयन्ति" (सब प्रकार के गुण सुवर्ण द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं) हम नहीं समझत कि जय सदाचार और विद्या के बजाय धन को मनुष्य की उत्कृष्टता की कसौटी बना दिया गया तो मानव सभ्यता और संस्कृति की उन्नति कैसे मानी जा सकती है। धन तो मनुष्य भले बुरे बंध में भी उपाया में प्राप्त कर सकता है अथवा वह उसे जुआ, लाटरी वही पडा हुआ आदि के रूप में भी मिल सकता है। पर इसमें उसमें

सद्गुणों की वृद्धि कैसे होगी ? हम तो प्रायः यही देखते हैं कि इस प्रकार अनायास धन पाजाने वाले प्रायः तरह-तरह के दुर्व्यसनों में फँस जाते हैं और अनेक प्रकार के कुकर्म करने लगते हैं । इसलिये प्राचीन ज्ञानी जनो ने “धर्म” अथवा मानव कर्तव्य के जितने भी लक्षण बतलाये हैं उनमें धन की अधिकता को कही स्थान नहीं दिया गया है । “श्रीमद्-भागवत्” में धर्म के निम्न तीस लक्षण लिखे हैं—

सत्य दया तप शौच तितिक्षा शमो दमः ।  
 अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागा स्वाध्याय आर्जवम् ॥  
 सतोष समदृक् सेवा ग्राम्येहो परम शनैः ।  
 नृणा विपर्यये हेक्षा मौनमात्म विमर्शनम् ॥  
 अन्नाद्यदि सविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।  
 तैष्वात्म देवता बुद्धि मुक्तरा नृपु पाडव ॥  
 श्रवण कीर्तन चास्य स्मरण महताम् गतेः ।  
 सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥  
 नृणामय परो धर्म सर्वेषा समृदाहतः ।  
 त्रिशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा ये न तुष्यति ॥

“सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित अनुभव का विचार, मन का सयम, इन्द्रियो का सयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरसता, सन्तोष, समदर्शी महात्माओं की सेवा, धीरे-धीरे सासारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, मनुष्य के अभिमान, पूर्ण प्रयत्नों का फल उलटा ही होता है—ऐसा विचार, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियों को अन्न आदि का यथायोग्य विभाजन, सब जीवों में आत्मा तथा अपने इष्टदेव का भाव, भगवान का श्रवण, कीर्तन, सेवा, पूजा, नमस्कार, दास्यभाव, सख्य-भाव और आत्म समर्पण । ये सभी मनुष्यों के परम धर्म हैं । इनके पालन से सर्वात्मा भगवान प्रसन्न होते हैं ।”

पाठक देखेंगे कि इन तीस लक्षणों में वही भी धन का उल्लेख

नहीं है और भगवान की भक्ति का नाम भी अन्त में आया है। वास्तव में जिसने आरम्भ ही में एक सज्जन व्यक्ति के सामान्य गुणों—सत्य, दया, क्षमा, सहनशीलता, सयम, सन्तोष, परोपकार आदि का अभ्यास नहीं किया वह भगवान् की भक्ति क्या करेगा ? और भगवान भी ऐसे मनुष्य को क्या अपनारहेगा ? फिर जो व्यक्ति उपर्युक्त सब धर्मों का यथोचित रीति से पालन करेगा उसे जीवन निर्वाह के लायक साधन स्वयम् ही मिल जायेंगे। अगर कम भी मिलें तो वह यह देखकर सतोष रखेगा कि ससार में करोड़ों व्यक्ति ऐसे भी मौजूब हैं जिनको उतना भी प्राप्त नहीं है।

“भगवद् गीता” में भी समस्त वर्णों के धर्मों का वर्णन इसी से मिलता जुलता किया गया है—

शमो दमस्तपः शौच क्षान्तिरार्जवमेव च ।  
 ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ॥  
 शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्य युद्धे चाप्यपलायनम् ।  
 दानमीश्वररभावश्च क्षान्ति कर्म स्वभावजम् ॥  
 कृपि गौरव्य वाणिज्य वैश्य कर्म स्वभावजम् ।

“शम, दम, शौच, क्षमा, सरल, स्वभाव, ज्ञान-विज्ञान ब्राह्मणों के स्वभाविक धर्म हैं। शौर्य, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध से पराभुत्व न होना, दान, सुशासन क्षत्रियों के धर्म नहीं हैं। सेतो, गोपालन, वाणिज्य आदि वैश्यों के धर्म हैं।”

✓ गीता में तो पूजा पाठ का नाम भी नहीं लिया है। इसका आशय यही है कि जो मनुष्य मचाई के साथ अपने उत्तरदायित्व का पालन कर देता है, वही वास्तविक भगवान की पूजा और उपासना है। उसके पुरा करने के बाद अगर समय मिले और रुचि हो तो मन्दिरों के दर्शन, भगवान की स्तुति और भजन भी किये जा सकते हैं। पर अपने पारिवारिक, समाजिक राष्ट्रीय और मानवीय कर्तव्यों को त्याग कर

केवल पूजापाठ में लग रहना और उसी आधार पर अपने को धार्मिक या भगवद्-भक्त समझ लेना एक बहुत बड़ी गलती या आत्म वचना है। इस तथ्य का निरूपण करते हुए लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' में कहा है।

“कुछ लोगों की ऐसी समझ हो गयी है कि सच्चा भगवद् भक्त वही है, जो सासारिक कर्मों को छोड़ कर विरक्त हो, केवल भक्ति में ही निमग्न हो जावे। इस सम्बन्ध में हम यह बतलाना चाहते हैं कि भक्तिमार्ग वालों का 'ब्रह्म' समुण भगवान माना गया है। जब वह सारे ससार का संचालन कर्ता है और समय-समय पर अवतार लेकर साधु-जनो की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने का कार्य किया करता है, तो उसके भक्तों को उसका अनुकरण करके कर्म करते रहना आवश्यक है या नहीं? हनुमानजी श्रीराम के बड़े भक्त थे, पर क्या उन्होंने रावण आदि दुष्टों को नष्ट करने का कर्तव्य-कर्म त्याग दिया था। इसी प्रकार भीष्म पितामह की गणना परम भगवद्-भक्तों में की जाती है, पर क्या वे आज्ञा राज्य-रक्षा का कार्य नहीं करते रहे? यह सच है कि जब भक्ति द्वारा परमेश्वर का ज्ञान हो जाता है, तब भक्त में स्वयं अपने हित के लिये कोई कामना या वासना शेष नहीं रह जाती। परन्तु इससे दया, करुणा कर्तव्यनिष्ठा आदि श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का नाश नहीं हो सकता, बल्कि वे और भी अधिक श्रुद्ध हो जाती हैं। ऐसी दशा में यह प्रश्न तो उठता ही नहीं कि कर्म करे या नहीं। वरन् भगवान का यथार्थ भक्त तो वही है जिसके मन में ऐमा अभेद भाव उत्पन्न हो जाय—

“जिसका कोई न हो हृदय से उमे लगावे,  
प्राणिमात्र के लिये प्रेम की ज्योति जगावे।  
सबमें विभु को व्याप्त जान गयको अपनावे,  
हे वस ऐसा वही भक्त की पदवी पावे ॥”

## सच्चे दान का स्वरूप—

दान की प्रणाली पुराणों में बहुत अधिक पाई जाती है। पर्वों, व्रतों और सस्कार आदि के अवसरों पर तो दान देना आवश्यक माना ही जाता है, पर अन्य समय भी जब कोई याचक सामने आजाय तो उसको विमुख लौटाना बड़ा हीमता का कार्य समझा जाता है। पुराणों में अपनी हड्डियों का दान करने वाले द्यूचि, सम्पूर्ण राज्य का दान करने वाले कर्ण और पुत्र को सिंह के भक्षणार्थ दे दानने वाले मारुध्वज का अत्यन्त भावपूर्ण झेली में वर्णन किया गया है। यहाँ दान की महिमा इतनी अधिक बढ़ाई गई है कि उसके फल से जोष-परलोष की सब विभूतियाँ अनायास प्राप्त हो जाती हैं। पर साथ ही यह भी शर्त है कि सत्पात्र को दिया गया दान ही उत्कृष्ट परिणाम उत्पन्न करता है, कुपात्र और अपात्र को दिया गया दान निरर्थक ही जाता है। कभी तो दान का ऐसा दुरुपयोग होता है कि उसके कारण दाता को और भी अधोगति का भागीदार बनना पड़ता है। 'नारद पुराण' में अनुचित दान के सम्बन्ध में चेतावनी देते हुये लिखा है—

"सदानारी ब्राह्मण दान का श्रेष्ठ पात्र है। पर जो ब्राह्मण क्राधी, दम्भाचार परायण, तथा अपने कर्म का त्याग करने वाला हो, उसको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो परायी स्त्री में आसक्त, पराये धन का लोभी तथा ज्योतिष का धन्धा करने वाला हो वह भी दान का पात्र नहीं होता। जिसके मन में दूसरों के दोष देखने का दुर्गुण भरा है, जो हिंसक, दुष्ट और रस का विक्रय करने वाला है, उसको दिया दान व्यर्थ होता है। जो गीत गान और जीविना चलाता है, जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी है, जो दूसरा को बध्न दम वाला है, जो स्याही से निर्वाह करता है, जो दब पुत्रों की नौकरी करता है, समूचे गांव का पुरोहित है, धावन (हरवार) का काम करता है रसोदये का काम

करता है, कविता द्वारा लोगों की झूठी प्रशंसा करता है, निकृत्ता का पेशा करता है, अन्नक्ष भक्षण करता है उसको दिया दान व्यर्थ होता है। जो भगवान के नाम-जप को बेचता है, सध्या-कर्म को त्यागने वाला है, दूषित दान ग्रहण करता है, दिन में मैथुन करता है, जो अत्यन्त दुष्ट है, शराबी, मासखोर, स्त्री लम्पट, अत्यन्त लोभी, चोर और घुगली खाने वाला है, उसको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो कोई भी पाप परादण हो, सज्जन पुरुषों द्वारा सदा निन्दित हो, उनसे न तो दान लेना चाहिये और न उन्हें देना ही चाहिये।"

यदि इन नियमों का मिलान वर्तमान स्थिति से किया जाय तो सब बातें उल्टी ही दिखाने लगती हैं। आजकल जो साधु-सन्यासी, पंडा पुजारी, ब्राह्मण और पंडित दान ले रहे हैं वे प्रायः सुलका, गज्जा, तम्बाकू, भाग आदि का नज़ा करने वाले ही होते हैं। उनमें लोभी, कामी लोभी, दम्भी व्यक्तियों की ही संख्या अधिक होती है। कपट, ठगी, झूठ, घुगलखोरी आदि के दुर्गुण भी उनमें कम नहीं होते। फिर ऐसे लोगों को दान देने से दाता का क्या भला हो सनता है? इसलिये दान वही कल्याणकारी कहा जा सकता है जो सत्पात्र को, सत्कर्म के लिये, सद्भावना से दिया जाय। दान लेने वाला यदि सत्पात्र भी मिल जाय, पर दान दाता की मनोभावना शुद्ध न हो तब भी उसकी गणना उत्तम दान में नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में पुराणकार ने कहा है—

"जो ब्राह्मण सत्कर्म में लगा हो उसे स्वयम् प्रयत्न करके दान देना चाहिए। जो दान श्रद्धापूर्वक तथा भगवान को समर्पण पूर्वक दिया गया हो एवम् जो उत्तम पात्र के याचना करने पर दिया गया वह सर्वोत्तम है। इहलोक तथा परलोक के लाभ का उद्देश्य रखकर जो दान गुप्तान को दिया जाता है वह मध्यम माना गया है। जो दम्भ से, दूसरों की हिना के लिये, अविधिपूर्वक, क्रोध से, श्रद्धा से



धीर संपन्न को दिया जाता है, वह दान वधम माना गया है।" "भगवद् गीता" में भी दान के विषय में ऐसी ही मान्यता भगवद् की गई है—

यज्ञं दानं तप कर्म न त्याज्य कायमेव तत् ।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।

कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चिन मत्पुत्रमम् ॥

अथ द्रव्या हुतं दत्ता तपस्तप्त कृतं च यत् ।

अगदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेक्ष्य नो ब्रह्म ॥

अर्थात्—“यज्ञ, दान, तप और कर्म का त्याग न करना चाहिए क्योंकि ये सब बातें श्रेष्ठ पुरुषों के लिये भी कल्याणकारी हैं। पर इन कर्मों को भी बिना आसक्ति रखे, फलांशा का त्याग करने, कर्त्तव्य भावना में करते रहना चाहिये। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि जो यज्ञ, दान अथवा तप अथवा पूर्वक किया जाता है, वह ‘असत्’ है और लोक अथवा परलोक में वही भी कल्याणकारी नहीं होता।”

दान, सत्कर्म अवश्य है, और उसमें समाज का हित होता है, पर उसी दशा में जब उसे अस्वतन्त्रता का बिना किसी स्वार्थ या लाभ की भावना के दिया जाता है। हम इससे केवल आत्म-कल्याण का हेतु ही नहीं मानते बल्कि अग्रतः रूप में इसके द्वारा समाज में सम्पत्ति का अनुचन भी बना रहता है। धन का केन्द्रीकरण होने समाज के लिये कभी हितकर नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसमें बहुमध्यक लोगो में कष्ट और अनन्तोप की वृद्धि होती है और उसमें धन में समाज की शक्ति भङ्ग होती है। इसलिये जिस प्रकार आजकल कानून द्वारा अग्रिम सम्पत्ति वाला पर तग-नरह के टेकम लदा कर उनकी सम्पत्ति को मार्बजनिव हित के कारणों में व्यय किया जाता है, उसी प्रकार प्राचीन समाज विज्ञान के ज्ञानियों ने दान

की प्रेरणा ही थी, जिससे घन एक जगह एकत्रित न होकर समाज में वितरित होता रहे। हम हिन्दू और बौद्ध शास्त्रों में ऐसे संकडों धनी व्यक्तियों का वर्णन पढ़ते हैं जिन्होंने अपनी लाखों अथवा करोड़ों की सम्पत्ति लोक कल्याण अथवा धर्म-कर्म के लिये दे दी। यहाँ हमें जैसे राजा भी हो चुके हैं जो अपनी आय में से बचें धन को प्रति वर्ग दान के रूप में अभावग्रस्त लोगों में बाँट देते थे। वर्तमान समय में जब कि लोगों को कानून द्वारा अपना धन देने को बाध्य किया जाता है तब वे तरह-तरह की चालाकियाँ करके कम से कम देने का प्रयत्न करते हैं। पर प्राचीन समय में जब उनको दान की प्रेरणा दी जाती थी तब वे स्वेच्छा से अपना धन देने थे जिससे सर्वे साधारण में भी वैईमानी और धूर्तता के बजाय उदारता और त्याग की भावना बढ़ती थी। इस दृष्टि से उचित रीति से किये दान को आत्मों को शुद्ध बनाने के अतिरिक्त समाज में सामञ्जस्य और मतुलन का साधन भी माना जा सकता है।

### गृहस्थ धर्म के विशेष नियम

यद्यपि देश-काल में परिवर्तन हो जाने से अब गृहस्थ जनो के रहन-सहन और व्यवहार में बहुत अन्तर पड़ गया है, तो भी 'नारद पुराण' में इस सम्बन्ध में जो नियम बतलाये हैं उनमें से कितने ही अब भी उपयोगी हैं। उदाहरण के लिये उन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि पूर्ण करके गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने वाले व्यक्ति के लिये 'वत्सम कुल में उत्पन्न, रूप, लावण्य से युक्त, सद्गुणवती, सुशीला तथा धर्म परायण कन्या' के साथ विवाह करने की, सम्मति दी है जो उचित ही है। साथ ही उन्होंने विवाह-सम्बन्ध करने के लिये अयोग्य कन्याओं के जो कितने ही लक्षण बतलाये हैं वे विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं—

‘जो कन्या रोगिणी हो अथवा किसी विशेष रोग से युक्त कुल में उत्पन्न हुई हो, जिसके केश बहुत अधिक हो या बहुत कम हो, जो

सर्वथा वेश रहित हो, जो बहुत बोलने वाली हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे । जो बहुत क्रोध करने वाली, बहुत नादो या बहुत बड़े शरीर वाली, अनि कुरूप, किसी अङ्ग से हीन या अधिक अङ्ग वाली, उन्मादितो और चुगली करने वाली हो अथवा जो कुबडो हो, उससे भी विवाह न करे । जो सदा दूसरों के घर में रहती हो, हाग-डालू हो, मति-भ्रान्त हो, निष्ठुर स्वभाव वाली हो, बहुत खाने वाली हो, जिसके दाँत ओर भोठ मोटे हो, जिसकी नाक से घुंघुंराहट की आवाज आती हो और जो घूत हो, विद्वान् पुरुष उससे भी विवाह न करे । जो छत्र कण्ठ करने वाली हो, जो बहुत चमडी और बगुला-चूँत्ति वाली ( ऊपर से साधु और भीतर से दुष्ट ) हो उससे भी विवाह करना उचित नहीं है ।

पुराणकार ने जिस प्रकार की लड़कियों को विवाह के लिये अनुपयुक्त बतलाया है अब भी जानबूझ कर और सुविधा रहने पर उनसे विवाह करने को कोई तैयार नहीं होता । पर एक अन्तर अवश्य है कि जहाँ नारद पुराण में स्वभावगत दोषों पर ज्यादा जोर दिया है वहाँ आजकल बाहरी रूप रङ्ग और बनाव चुनाव की दृष्टि से ही अधिक छानबीन की जाती है । इस समय क्या पुरुषों में और क्या स्त्रियों में चरित्र की शुद्धता, पवित्रता, नैतिकता आदि की ज्यादा फँसल, सजाबट बातूनीपन और ज्ञान शीकल को ही अधिक महत्व दिया जाने लगा है । इससे गृहस्थी के मुख और स्थिरता में ही कमी नहीं आई है बल्कि सामाजिक मुश्किलें, सहयोग और सङ्गठन में भी कमी पड़ती जाती है । क्योंकि ऊपर लिखी प्रवृत्तियाँ मनुष्य के व्यक्तिगत लाभ और आराम की मनोवृत्ति का बढ़ावा देती हैं और जब अधिक जनसंख्या इन बातों को अपना लेती है तो उनमें हानि-पारण प्रतिस्पर्धा और अनैतिक साधनों से अपने लक्ष्य को पूरा करने की भावना जड़ पकड़ लेती है । ऐसा समाज जिसने सदस्य अपने-

अपने स्वार्थ को समष्टि की सुख-सुविधा की अपेक्षा प्रधानता है उन्नत और सुखी नहीं बन सकता ।

आगे चलकर सामान्य नागरिकों के लिये खाने, पीने, पहिने और शिष्टाचार के जो नियम बनलाये हैं, उनमें से बहुत सी बातें अब भी अशिक्षित वर्ग के बहुसंख्यक लोगों में पाई जाती हैं, पर नवीन शिक्षा प्राप्त लोगों को वे अजीब ही लगेंगी । कहा गया है कि 'गृहस्थ व्यक्ति दो यज्ञोपवीत, दुपट्टा ( बड़ा अँगोछा ), सोने के कुण्डल और धोती जोड़ा रखे । उबटना, चन्दन, तेल लगाता रहे । केश, नाखून आदि कटाता हुआ पवित्र रहे और छड़ी लाठी तथा जल-पात्र रखे । स्वच्छ पगड़ी, छाता और जूता पहिने, पृथ्वीमाला धारण करे, सुगन्धित वस्तु का व्यवहार करे । ऐसा वेश रखे जो सबको भला जान पड़े । सदा स्वाध्याय करता रहे, अपने धर्म के अनुसार आचरण करता रहे, दूसरों का अन्न खाने और दूसरों की निन्दा करने से बचे । पैर पर पैर न रखे, झूठे पदार्थों को न लाधे, दोनों हाथों से शिर को न छुजावे । द्विज और देवालय के बायीं ओर होकर चले । देव पूजन, आचमन, स्नान, व्रत, श्राद्ध आदि में सुले केश अथवा छोटी न रखे । एक ही वस्त्र न पहिने रहे, गधा आदि घराब सवारी पर न चढ़े और निरयंक वाद-विवाद न करे । अग्निचार और चुगली से बचे और गी, पीपल, अग्नि और पर्वत इनका बायीं ओर लेता चले ।

'अमूया, मत्सरता और दिन का सोना त्याग दे । दूसरे के पापों का वर्णन न करे अपने पुण्य को किसी से न बहे । अपने नाम, नक्षत्र तथा घन बल आदि का जिक्र किसी के सामने न करे । दुष्टों के साथ निवास न करे, शास्त्र के विरुद्ध चर्चा न मुने तथा मद्य, जुआ और गाने-बजाने में आसक्ति न रखे । गीली हड्डी, जूटी वस्तु, पाँता, मुर्दा और कुत्ते को छूकर वस्त्र सहित स्नान करे । चिता, चिता को नकड़ी, यूप ( पशुओं को मारने का स्तम्भ )

चाटाल का स्पर्श कर लेने पर वस्त्र भहित स्नान करे । दीपक, छाट और शरीर की छाया, नेश, वस्त्र और चटाई का जल, तथा बकरी, बिन्नी तथा झाड़ू की धूल, इन सबसे बचे क्योंकि ये सब प्रारम्भ का हरण करते हैं । सूप की हवा, शक्-दाह का धुआँ, शूद्रा स्त्री के पति से दूर रहे तथा नाखून तथा बाल का रानो से चबाना, नझाहोकर मोना स्थान दे । तिर में लगाने से बचे तेल को शरीर में न लगावे, अप-वित्र ( बाजार से लाये ) पान को न खाय, दार्यो हाथ अथवा श्वेत मुख स जल न मिए । मुख की छाया पर पैर न रखे, उनकी आज्ञा भी कभी न टांके, योगी, यनी, ज्ञानी पुरुषों की कभी निन्दा न करे । साय, प्रात उपासना, हवन आदि अवश्य करे ।"

प्राचीन समय के लोग दैनिक जीवन में जिन बातों को अनुचित, हानिकारक अथवा सामान्य शिष्टाचार के विपरीत समझते थे उनका यह काफी विस्तृत विवरण है । स्मृतियों में और भी बहुत सी बातें त्याग्य घनलाई हैं । वर्तमान समय में रहने सहने की परिस्थितियों में अन्तर पड़ जाने से इनमें से अनेक बातों का अनावश्यक अथवा बहुम समझा जाता है । इस समय के शिक्षित व्यक्ति छुआछूत की बातों का एक डरोसला मानने लगे हैं और अस्पृश्यता को हटाने के लिये कानून द्वारा भी प्रयत्न किया जाता है । पर इसमें विचारणीय विषय यह है कि जन्म से किसी को शूद्र, अस्पृश्य या चाण्डाल आदि मान लेना तो प्रत्यक्ष में अनुचित है, पर जो व्यक्ति किसी शब्द पड़े का कारण क कारण प्रायः शरीर हालत में रहता है, उनसे दूर रहने के नियम को बुरा नहीं कहा जा सकता । उदाहरण के लिये जो बधिर या बन्ध्या या पशुआ का काटन और उनका मौम बेचन का कार्य करत हैं, अथवा जो मृत्त पशुओं के दान और उनका चमड़ा आदि निरस्त्रने का काम करत हैं, उनसे बम्बो तथा हाथ, पैर आदि में इन पदार्थों का कुछ अंश लगा हो रहता है । उनसे पृथक् रहना स्वच्छता की दृष्टि से आवश्यक मानना चाहिये । इसमें

नोच ऊँच का प्रश्न उठाना ठीक नहीं। इसी प्रकार गौली हड्डी, पणु वध्रके स्तम्भ, मुर्दा जैसी जैसी वस्तुओं के स्पर्श से मन में घृणा उत्पन्न होती है। उस अवसर पर स्नान करके ग्लानि को मिटा देना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

कुछ बातें बहम की तरह लगनी हैं पर विचार करने से उनके पालन में कोई दोष नहीं जान पड़ना। दीपक, खाट और शरीर की छाया अपने ऊपर न पड़ने देना, केश, वस्त्र और चटाई से टपकते जल को अशुद्ध मानना, बकरी, बिल्ली तथा झाड़ू की धूल से बचना चाहे सौभाग्य या दुर्भाग्य का कारण न हो पर स्वास्थ्य और स्वच्छता की निगाह से इनका पालन अनुचित नहीं कहा जा सकता। हाँ इसमें जो 'बुत्तो को छुआर स्नान करने की बात लिखी है, वह रितने ही आधुनिक 'बाबुओं' और "मिस्ट्रो" को अनुचित लग सकती है। क्योंकि वे छाटे बुत्तो को प्रायः गोदमें लेते रहते हैं। पर हमको समझ लेना चाहिये कि पुराणकार का आशय ऐसे विशेष बुत्ता से नहीं है, वरन् रास्ते में धूमने वाले 'गन्दे बुत्तो से है'।

यह भी आवश्यक नहीं कि हम इस प्रकार के समस्त नियमों का पालन अवश्यमय करें। देशकाल की परिस्थितियाँ बदल जाने से बहुत से नियम हमको कोई दूसरा उपाय न होने से स्थागने ही पड़ते हैं। उदाहरणार्थ पहले पैदल अथवा बैलगाड़ी आदि पर यात्रा करने का चलन था। उस समय लोग दोहर या सायङ्काल को किसी बड़ा पर ठहर कर अपना भोजन आप बनात थे। उसके लिये स्वयम् कुएँ से पानी खींच कर भूमि को झाड़ कर तथा जल छिड़र कर शुद्धतापूर्वक भोजन की व्यवस्था की जाती थी। ऐसा भोजन शास्त्रीय विधि के अनुसार शुद्ध तथा स्वास्थ्यदायक हो सनता था। पर आजकल यात्रा का प्रधान साधन रेल या मोटर बसें बन गई हैं। इन सवारियों में बैठने लायक स्थान पाने के लिये भी संघर्ष करना पड़ता है, तब उनमें से उतर कर

भोजन बनाना और खाना सम्भव कैसे हो सकता है ? रेलवे स्टेशन पर तो हमको आँखों से यह देखते हुये कि वहाँ के खाद्य पदार्थ नीचे दर्जे के लोगों द्वारा बनाए और स्वच्छता की दृष्टि से असन्तापजनक हैं, खाचार होकर उन्हीं को उचित से ज्यादा मूल्य देकर खरीदना और काम में खाना पड़ना है ।

शहरों में भी परिस्थितिवश हाटलों और भोजन की दुकानों का प्रचार निरन्तर बढ़ता जाता है और उनमें सभी जातियों और श्रेणियों के लोग काम करते हैं । उनमें भोजन करने खासा के लिये छुआछूत के प्राचीन नियमों का पालन करना किसी प्रकार सम्भव नहीं होता । त्रिस्फुट, उबलरोटी, टास्ट आदि जैसी नई खाद्य वस्तुओं को तो मशीनों द्वारा बड़े-बड़े कारखानों में बनाया जाता है जहाँ सैकड़ों व्यक्ति बिना जाति या धर्म के भेदभाव के नौकर रख लिये जाते हैं । इस लिये अब भोजन करते समय हमेशा खाद्य पदार्थों के भले या बुरे स्रोत अथवा कार्यकर्तियों के श्रेष्ठ अथवा अधः चरित्र का पता चला सकता प्रायः असम्भव है । इस अवस्था में एक मात्र मार्ग यही रह जाता है कि हम स्वयम् तन, मन, धन की दृष्टि से शुद्ध रहे और किसी प्रकार का बुरा काम न करें । आप भला स। जग भला वाली कहावत यहाँ भी चरितार्थ हो सकती है ।

### ज्योतिष और मंत्र विद्या—

ज्योतिष और मंत्र-शास्त्र का विवेचन "नारदपुराण" की एक प्रसिद्ध विशेषता है । इसमें गणित [सिद्धान्त], जातक [होरा] और संहिता तीनों शाखाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है । गणित-ज्योतिष तो सर्वमान्य है और पश्चिमीय वैज्ञानिक भी उसी के द्वारा सूर्य, चन्द्र, मंगल, शुक आदि ग्रहों की गति का ठीक ठीक हिसाब लगाकर उन तक अपने अन्तरिक्ष-यानों को पहुँचाने में सफल हो सके हैं । चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, सूर्योदय और सूर्यास्त का समय आदि का निर्णय भी गणित ज्योतिष द्वारा किया जाता है जो विल्कुल ठीक निकलता है ।

“जातक-शाखा” का सम्बन्ध व्यक्तियों की भाग्य गणना और उनके जीवन में घटित होने वाले भावी परिवर्तनों तथा विशेष घटनाओं से माना गया है। सर्व साधारण को ज्योतिष की इसी शाखा का विशेष परिचय है और बाजार में बैठ कर लोगो का राशिफल और भाग्य-फल बतलाने वाले ‘ज्योतिषी’ इसी के आधार पर हिसाब लगाया करते हैं। हमारे देश में इसको “फलित ज्योतिष” भी कहते हैं। तीसरी शाखा “सहिता” में देशव्यापी घटनाओं, वर्षफल, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त आदि के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। पंचांगों की रचना इसी के आधार पर की जाती है और भारतीय-समाज में प्रचलित पौडण-संस्कारों के समय का निर्णय इसी के द्वारा किया जाता है।

ज्योतिष-शास्त्र एक बहुत प्राचीन विद्या है। वैदिक काल में यज्ञों के कालनिर्णय में उसका प्रयोग किया जाता था और राज्य तथा राष्ट्र सम्बन्धी सभी कार्य उसी के द्वारा उत्तम मुहूर्त का निश्चय करके किये जाते थे। इस कार्य के लिये केवल भारतीय राजा ही ज्योतिषियों को अपने दरबारों में नहीं रखते थे, बरन मिस्र, यूनान और रोम जैसे पश्चिमीय देशों के बादशाह और राष्ट्रपति भी इस विद्या पर पूरा विश्वास रखते थे और युद्ध, विग्रह, मधि, मैन्य-संचालन का काल निर्णय ज्योतिषियों के मतानुसार ही किया जाता था। ‘बाइबिल’ में अनेक स्थानों पर भविष्य बचनाओं का जिक्र आता है। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस विज्ञान युग में भी, जो दूसरा विश्व युद्ध १९३९ से १९४५ तक वायुयानों और एटम बमों में लड़ा गया, मैन्य-संचालन में ज्योतिषियों की सलाह ली जाती थी। जर्मनी के मुख्य पत्रा-पत्रा हिटलर को, जो योगों की बदीलत भिपारी में अधि-नायक (डिक्टेटर) बन गया था, ज्योतिष पर विश्वास था। वह युद्ध-संचालन सम्बन्धी अपने सभी निर्णय ज्योतिष विभाग की सलाह से करता



था। इस विभाग में पाच ज्योतिषी काम करते थे जिनका प्रधान विलियम क्राफ्ट था जो हिटलर का बड़ा विश्वासपात्र था।

जब अपने गुप्तचरों द्वारा इस रहस्य का पता इङ्गलैण्ड के अधिकारियों को लगा तो वहाँ के प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल ने सोचा कि चाहे यह एक नई धान है और शायद मजाक ही हो पर इसमें कायदा क्यों न उठाया जाय। बस इ वसैण्ड के सेना विभाग ने भी अपने देश में सुई डी० व्होल नामक ज्योतिषी कां खोज निकाली जो वास्तव में हगरी का निवसी था, पर अब कई वर्षों से सन्दन में जाकर रहने लग गया था। उसने कुछ समय तक जर्मनी में रह कर हिटलर के ज्योतिषी विलियम क्राफ्ट के साथ काम किया था और वह उसकी ज्योतिष विधियों की बच्छी तरह जानता था। डी० व्होल को अंगरेजी सेना विभाग में भर्ती करके कप्तान का पद दे दिया गया और उसने लगातार कई वर्षों तक हिटलर के युद्ध सम्बन्धी निर्णयों का भेद अंगरेज सेनापतियों का बतलाकर जर्मनी की पराजय में पर्याप्त सहयोग दिया। ✓

ज्योतिष विद्या में कहीं तक सच्चाई है और ज्योतिषी लोग जो भाग्यफल या भविष्यफल बताया करते हैं वे कितने अंशों में सत्य अथवा असत्य सिद्ध होते हैं, इस विषय में अधिक विवेचना करना यहाँ अप्रासङ्गिक होगा। हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारे देश में ही नहीं विदेशों में भी अभी बहुसंख्यक लोगों का ज्योतिष विद्या पर विश्वास है और अच्छे समझदार और शिक्षित व्यक्ति भी किसी ज्योतिषी या हस्तरेखाज्ञाता का सामने देखकर अपना भविष्य फल पूछने का लोभ सम्बरण नहीं कर पाते। इस दृष्टि से "तारक पुराण" का यह "त्रिस्कन्ध ज्योतिष वर्णन" वाला प्रकरण विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें गणित ज्योतिष के वर्णन में विभिन्न प्रकार के अकर्मणित, रेखा-गणित, क्षेत्र गणित आदि का जो सूक्ष्म रहस्य बतलाया गया है उसने लेखक की विद्वत्ता प्रमाणित होती है। जातक और महिमा विभाग में बतलाई गई विधियाँ भी स्पष्ट और सरल हैं जिनमें सभी श्रेणी के कम या अधिक ऐसे निष्पेक्ष व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं।

मन्त्र-शास्त्र का तो हमारे देश में अब भी बहुत अधिक प्रचार है और बड़े-बड़े विद्वान् भी उसकी सचाई में विश्वास करते हैं। यहाँ हजारों ऐसे व्यक्ति मिल सकते हैं जिनकी सफलता का मुख्य आधार किसी मन्त्र का जप करना बतलाया जाता है। विद्या-प्राप्ति, धन लाभ, विवाह और सन्तान प्राप्ति, मुकदमा आदि में विजय इत्यादि सब कार्यों के लिये मन्त्रों का प्रयोग बतलाया गया है और लोग उसे बड़ी श्रद्धा और उत्साह से करते भी हैं, "नारदपुराण" में "मन्त्र" शब्द के 'म' का अर्थ मनन अथवा सर्वज्ञता तथा 'त्र' का नाण [रक्षा] बतलाया गया है। तदनुसार मन्त्र वह शक्ति है जिससे मनुष्य विविध प्रकार की सासारिक सफलतायें प्राप्त कर सकता है और अपनी रक्षा में भी समर्थ हो सकता है। वैसे वर्तमान समय में प्रचलित अधिकांश मन्त्र शाक्त और तान्त्रिक मत के देखने में आते हैं, पर 'नारदपुराण' वैष्णव आम्नाय का है, इसलिये इसका सभी मन्त्र विष्णु, राम-सीता, कृष्ण, हनुमान से सम्बन्धित हैं। ये मन्त्र सवाम हैं, जिनका अनुष्ठान किसी भौतिक लाभ की इच्छा में किया जाता है। संभव है कि जै, व्यक्ति हठ श्रद्धा और एकाग्रनिष्ठा से इनका विधिवत् अनुष्ठान करते हैं उनमें वैसा लाभ होता हो, फिर भी आध्यात्मिक विषयों में निष्काम भावना रखना ही सर्वोत्तम है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान का निम्न कथन विचारणीय है—

"जो पुरुष किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा से भगवान को भजता है, उसका ध्येय वह वस्तु है, भगवान नहीं है। वह वस्तु साध्य है, और भगवान तथा उनकी भक्ति साधन है। यदि किसी कारणवश उसने अभीष्ट की प्राप्ति में देर होगी तो वह भगवान की भक्ति छोड़ सकता है। अतएव सवाम भाव से की हुई उपासना एक प्रकार से वाच्य वस्तु की ही उपासना है, भगवान की नहीं। इस बात का समझ कर भगवान की उपासना निष्काम प्रेम भव से, यथैव भगवान की प्रमत्तता के नियमों को ध्यान में रखकर करनी चाहिए।

'इसमें अनिश्चितता यह बात भी है कि सवाम अनुष्ठान का फल

प्रतिबन्धक की प्रवृत्तता अथवा सरलता के अनुसार विलम्ब से या शीघ्र होता है। एक आदमी को किसी विशेष वस्तु या स्थिति की आवश्यकता है। वह उसके लिये सकाम उपासना करता है। यदि उस वस्तु या स्थिति की प्राप्ति में बाधक पूर्व जन्म का कर्म बहुत अधिक प्रबल होता है, तो एक ही अनुष्ठान से अभीष्ट फल नहीं मिलता, बार-बार अनुष्ठान करने पड़ते हैं। आजकल के स्वामी पुरपा में इतना धैर्य हो सकता, अतएव वे देवता में ही अविश्वास कर बैठते हैं, तथा उसकी अवज्ञा करने लगते हैं, जिससे लाभ वे बढ़ते उलटी हा न हो जाती है।”

वास्तव में भक्ति के सम्बन्ध में कुछ मन्त्रदाय वालों ने बहुत भ्रांति उत्पन्न कर दी है। वे लोगो को यही बतलाते हैं कि भगवान का वर्णन करने, तीर्थों में स्नान करने और एकादशी आदि के व्रत करने से सद्गति मिलना अवश्यम्भावी है। चाहे अपन कैंसे भी पाप क्यों न किये हों इसमें पुराणकारों का दोष भी कम नहीं है। उन्होंने अपनी वृक्षाओं का प्रभाव जमाने के लिये जगह-जगह लिखा है कि अमुक व्यक्ति जन्म भर पाप करता रहा, पर अन्त समय किसी प्रकार व्रत या तीर्थ स्नान कर लेने से ही उसे उत्कृष्ट गति प्राप्त हो गई। “वाराह पुराण” में कृब्जा-अक्र तथा कोकामुख आदि तीर्थ-क्षेत्रों में मगने से ही सपिणी, पीला, गृद्ध, गूगल आदि जीवों को राजा और घनवानों की यानि में सद्गति प्राप्ति होने की बात बतलाई गई है।

इसी तरह के अतिशयोक्तिपूर्ण कथनों के कारण अनेक लोगो को पुराणों पर भका और अश्रद्धा हा जाती है। पर जैसा हम बराबर कहते आये हैं वे पुराणों की उपदेशात्मक धर्म कथाओं बंधवा उपास्यानों के रूप में पड़ तो ऐसी कोई समस्या उत्पन्न होने की आशंका नहीं रहती। हमने पुराणा में स ऐसे वर्णना को कम करने की यथाशक्ति चेष्टा की है, जिससे उनकी उपयोगिता बढ़ी है और प्रचार भी होने लगा है। यदि पाठक ऐसा बुद्धिमद्भूत भाव रखकर पुराणों को पढ़ गता उनसे बहुत से कल्याणकारी उपदेश मिल सकेंगे। —श्रीराम शर्मा, आचार्य

# विषय-सूची

भूमिका	...	...	३
१ सूत-ऋषि सवाद वर्णन	...	...	३३
२ सनक-नारद सवाद और विष्णु स्तुति	...	...	४६
३ भूगोल वर्णन और भारतवर्ष की श्रेष्ठता	...	...	६१
४ मृकण्डु मुनि को भगवान का वर देना	...	...	७७
५ मारकण्डेय की कथा और वर प्राप्ति	...	...	८६
६. प्रयाग और गङ्गाजी माहात्म्य वर्णन	...	...	११२
७ राजा बाहु का चरित्र	...	...	१२६
८ भगीरथ द्वारा गङ्गाजी का लाया जाना	...	...	१४१
९ सौदास चरित्र	...	...	१६६
१०. दैत्यो का अग्नि प्रकट कर भस्म होना	...	...	१६४-
११ वामनावतार चरित्र	...	...	२०५
१२ इष्टापूर्त फल एवं वीरभद्र नृप चरित्र	...	...	२४२
१३ नाना प्रकार दान-निरूपण	...	...	२६१
१४ द्विज धर्म निरूपण	...	...	२८६
१५ पापियो को नरक दण्ड वर्णन	...	...	३०५
१६. भगीरथ द्वारा गङ्गाजी का लाना	...	...	३३५
१७ शुक्ला द्वादशी व्रत का उद्यापन	...	...	३५७
१८ पूर्णिमा व्रत का उद्यापन	...	...	३७६
१९ छवजारोपण व्रत	...	...	३८५
२० भूमति-विभाण्डव सम्वाद	...	...	३९४
२१. हरि पञ्चरात्र व्रत	...	...	४१०
२२ मासोपमास व्रत	...	...	४१५
२३. एकादशी व्रत—भद्रशील उपाख्यान	...	...	४२०
२४ चारों वर्ण तथा स्त्रियो के सदाचार का वर्णन	...	...	४४०
२५ स्मार्त-धर्म वर्णन	...	...	४४७
२६ वेशधूपनादि वर्णन	...	...	४५६
२७ गृहस्थ धानप्रस्थ और गन्यामी के धर्म	...	...	४६८
२८ श्राद्ध-कृत्य विवरण	...	...	४८६



करना चाहिए । भगवान् वेद व्यास देव के लिये प्रणाम है । अपने ललित केलि के स्थल वृन्दावन में विराजमान, श्री लक्ष्मीदेवी को आनन्द प्रदान करने के मन्दिर स्वरूप, इन्द्रदेव के अनुज ( उपेन्द्र नाम वाले ) वामन अवतार धारण करने वाले, अत्यधिक करुणा के केन्द्र, परमाधिक आनन्द के स्वरूप एव पर से भी पर सर्वोत्तम एव सर्व शिरोमणि भगवान् विष्णु की वन्दना करते हैं ॥१॥ जिस परम ब्रह्मा की प्रभा का सृजन करने के ही कारण से 'ब्रह्मा' यह नाम हो गया है, प्रजा का पूर्ण परिपालन करने के कारण से 'विष्णु' यह नाम पड़ गया है तथा सृष्टि का सहार बनने के कारण से 'शिव' यह नाम हो गया है । इस सम्पूर्ण लोक के साधन करने के वास्ते जिसके अश से इन्द्र वरुण आदि प्रतिष्ठित हुए हैं उन्हीं आदिदेव परम विशुद्ध चित्स्वरूप भगवान् का मैं भजन करता हूँ ॥२॥ ब्रह्मा के विषय में वाद करने वाले शौनक आदि महान् आत्मा वाले ऋषि वृन्द मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा से नैमिष अरण्य में तपश्चर्या किया करते थे ॥३॥ वे लोग अपनी इन्द्रियो को विषयो की ओर न जाने देकर भोजन पर भी विजय प्राप्त कर सत्यस्वरूप पराक्रम से सुसम्पन्न होकर अत्यधिक भक्ति की भावना से आदि देव श्री सनातन विष्णु भगवान् की अर्चना कर रहे थे ॥४॥ वे लोग परम गन्धी थे और निसो से डाह नहीं किया करते थे । धर्म के दश प्रकार के धृति, धामा आदि समस्त धर्मों को अच्छी तरह से जानते थे । ससार में जो भी अधिकारी योग्य प्राणी थे उन पर सर्वदा अनुग्रह करने के लिये तत्पर रहता करते थे । उनकी ममता किसी भी वस्तु पर नहीं थी और न वे ममत्व को जताते ही थे । उनके हृदय में अहङ्कार तो नाम मात्र को, भी नहीं था और सदा उनका हृदय परब्रह्मा में ही रमण किया करता था ॥५॥ सभी प्रकार के सङ्कल्पों का उन्होंने परित्याग कर दिया था । वे लोग पूर्णतया पापों से रहित और शम, दम आदि सद्गुणों से भूषित थे । उनके मस्तक पर जटाएं थी और वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले कृष्ण मृग के चर्म को धारण किया

करते थे ॥६॥ सम्पूर्ण लोक के चक्षु मूर्ध के समान तेजस्वी निरन्तर वेदा का स्वाध्याय करते हुए धर्मशास्त्र के तत्व का भर्म जानने वाले वे मुनिगण उस नैमिषारण्य में तपस्या कर रहे थे ॥७॥

यज्ञैर्यज्ञपति केचिज्ज्ञानंज्ञानात्मक परे ।

केचिच्च परया भक्त्या नारायणमपूजयन् ॥८॥

एकदा ते महात्मान समाज चक्रुस्तथा ।

धर्मायंकाममोक्षाणामुपायाञ्ज्ञातुमिच्छन् ॥९॥

पड्विंशतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरतसाम् ।

तेषां शिष्यप्रशिष्याणां सख्या वक्तुं न शक्यते ॥१०॥

मुनयो भावितात्मानो मिलितास्ते महौजस ।

लोकानुग्रहकर्तारो वीतरागा विमत्सरा ॥११॥

कानि क्षेत्राणि पुण्यानि कानि तीर्थानि भूतले ।

कथं वा प्राप्यते मुक्तिर्नृणां तापार्तचेतसाम् ॥१२॥

कथं हरौ मनुष्याणां भक्तिरव्यभिचारिणी ।

केन सिद्ध्यते च फल कर्मणास्त्रिविधात्मन ॥१३॥

इत्येव प्रष्टुमात्मानमुद्यतान् प्रेक्ष्य शौनक ।

प्राञ्जलिर्वाक्चमाहेद विनयावनत सुधी ॥१४॥

कतिपय मुनिगण यज्ञ के यजन करने के द्वारा यज्ञ के स्वामी भगवान् श्रीविष्णु का पूजन किया करते थे उनमें कुछ ऐसे थे जो ज्ञान शास्त्र की शर्चा के ज्ञान स्वरूप वाले ईश्वर की उपासना किया करते थे और मुद्दह भक्ति की भावना से श्री नारायणदेव की पूजा किया करते थे ॥८॥ एक बार उन सब महानुभावा ने मिलकर एक परमोत्तम सम्मेलन किया था । उस सम्मेलन में धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के निय उपायों का जानना की इच्छा रखने वाले छब्बीस सहस्र ऊर्ध्वरता मुनिगण सम्मिलित हुए थे । उस सम्मेलन में इन मुनियों के शिष्य प्रशिष्य भी सब आय ध जिनकी सख्या अगणित

धी । ६॥ ससार के प्राणियो पर अनुकम्पा करने की इच्छा वाले—  
 राम द्वेप और मात्सर्य जैसे सब अवगुणो से रहित पवित्र हृदय वाले,  
 अत्यन्त ओजस्वी सम्मेलन मे सम्मिलित हुए मुनिवृन्दो को इस भूतल  
 मे कौन कौन क्षेत्र एवं तीर्थ पवित्र है तथा आधिभौतिक, आध्यात्मिक  
 और आधिदैविक तापो के कारण होने वाले सन्तापो से सन्तप्त चित्त  
 वाले प्राणियो को मुक्ति किस रीति से प्राप्त हो सकती है एवं मनुष्यो  
 की श्री विष्णु भगवान् के चरणो मे अनन्य भक्ति किस विधि से हो  
 सकती है तथा नित्य और नैमित्तिक काम्य कर्मों का फल कैसे प्राप्त  
 हो सकता है—इत्यादि अनेक प्रश्नों को पूछकर अपनी जिज्ञासा शान्त  
 करने के लिए समुद्यत देखकर परम विनयशील और महान् बुद्धिमान  
 श्री शौनकजी हाथ जोड़ कर कहने लगे थे ॥११—१४॥

आस्ते सिद्धाधमे पुण्ये सूत पौराणिकोत्तम ।

यजन्मखैबंहुविधैर्विश्वरूप जनार्दनम् ॥१५

स एतदखिल वेत्ति व्यासशिष्यो महामुनि ।

पुराणसहितावक्ता शान्तो वै रोमहर्षणि ॥१६

युगे युगेऽल्पकान् धर्मात् निरीक्ष्य मधुसूदन ।

वेदव्यासस्वरूपेण वेदभाग करोति हि ॥१७

वेदव्यासमुनि साक्षान्नारायण इति द्विजा ।

बुध्म सवंशास्त्रेषु सूतस्तु व्यासशासित ॥१८

तेन सशासित सूतो वेदव्यासेन धीमता ।

पुराणानि स वेत्येव नान्यो लोके तत पर ॥१९

स पुराणार्थविल्लोके स सर्वज्ञ स बुद्धिमान् ।

स शान्तो मोक्षधर्मज्ञ कर्मभक्तिकलापवित् ॥२०

वेदवेदाङ्गशास्त्राणां सारभूत मुनीश्वरा ।

जगद्धितार्थं तत्सर्वं पुराणेपूक्तवान् मुनि ॥२१

ज्ञानार्णवो व सूतस्तत्सर्वं त्वायंकोविद ।

तस्मात्तमेव पृच्छाम इत्यूचे शौनको मुनीन् ॥२२



महा महर्षि प्रवर श्री शौनकजी ने कहा—पुराणों के प्रवक्ताओं में परम श्रेष्ठ श्री मृतजी सिद्धाधम में रहते हैं । वहाँ पर वे सत्सार में व्यापक भगवान् जनादेन का विविध भाँति के यज्ञों के द्वारा यजन किया करते हैं ॥१५॥ समस्त पुराणों के प्रवक्ता महर्षि लोमहर्षण के आत्मज अत्यधिक शान्ति से सम्पन्न श्री कृष्ण द्विपायन वेदव्यास जी के प्रिय शिष्य महामुनि ने इन सभी बातों को भली भाँति पूर्णतया जानते हैं ॥१६॥ स्वयं श्रीविष्णु भगवान् ही युग २ में धार्मिक तत्त्वों का अधिक हास देखकर वेदव्यासजी के स्वरूप में आकर वेदों की संहिताओं का विभाग किया करते हैं ॥१७॥ हे द्विजगणों ! समस्त शास्त्रों में हमने यही श्रवण किया है कि श्री वेदव्यास मुनि साक्षात् भगवान् नारायण के ही अवतार हैं । “ द्विवाहुरपरो हरि ” अर्थात् यह दो भुजाओं वाले दूसरे हरि भगवान् ही हैं और मृतजी उन्हीं व्यासदेव जी के प्रमुख शिष्य हैं ॥१८॥ हमलिये अपने गुरु श्री व्यासदेवजी से शिक्षा प्राप्त करते हुए मृतजी जिस प्रकार का उत्तम ज्ञान पुराणों का रखते हैं वैसा या उनसे अधिक पुराणों का महान् ज्ञाता इस सत्सार में अन्य कोई भी नहीं हो सकता है ॥१९॥ वे मृतजी इस समार में इस समय पुराणों के मधार्थ अभिप्राय को समझते हैं और वे पुराणों की समस्त बातों के मर्मज्ञ मनीषी हैं तथा परम बुद्धिमान, अत्यधिक शान्त, मोक्ष-धर्म के समुचित जानकार एवं कर्मकाण्ड और भक्ति-मार्ग को पूर्णतया जानने वाले भी हैं ॥२०॥ हे मुनिगण ! मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग स्वरूप वेद, ज्यातिग, मीमांसा, न्याय आदि वेद के अङ्गों का सम्पूर्ण सार सत्सार के हित को सिद्ध करने के लिये महामहर्षि श्री व्यासदेव जी ने पुराणों में ही सब कुछ बह बर बना दिया है । ज्ञान के जननिधि श्री मृतजी उन समस्त तत्त्वों के अर्थ एवं अभिप्राय को समझने में बहुत ही कुशल हैं । इसलिए अब उन मृतजी में यही सब बातें दृष्टना उचित है । इस प्रकार से शौनकजी ने उन समुपस्थित सभस्त मुनियों से यही कहा था ॥२१॥२२॥

ततस्ते मुनयः सर्वे शौनक वाग्विदा वरम् ।  
 समाश्लिष्य सुसम्प्रीता साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥२३॥  
 अथ ते मुनयो जग्मुः पुण्यसिद्धाश्रमवने ।  
 मृगव्रजसमाकीर्णं मुनिभिः परिशोभितम् ॥२४॥  
 मनोजम्बूहलताफलपुष्पविभूषितम् ।  
 युक्तं सरोभिरच्छोदैरतिथ्यातिथ्यसकुलम् ॥२५॥  
 ते तु नारायणदेवमनन्तमपराजितम् ।  
 यजन्तमग्निष्टोमेन ददृशूरोमहर्षणिम् ॥२६॥  
 यथाहंमर्चितास्तेन सूनेन प्रथितौजसः ।  
 तस्यावभृथमीक्षन्तस्तत्र तस्युर्मखालये ॥२७॥  
 अधरावभृथस्नातसूतपौराणिकोत्तमम् ।  
 यप्रच्छुस्ते सुखासीननैमिषारण्यवासिनः ॥२८॥

उस समय समस्त मुनिगण परम प्रसन्न होगये थे और वक्ताओं में श्रीष्ठ शिरोमणि श्री शौनकजी से आतिज्ञान कर कहने लगे 'साधु-साधु' ॥२३॥ इसके पश्चात् वे सब मुनिवृन्द वन में स्थित पवित्र सिद्धो के आश्रम की ओर चल दिये थे । वह सिद्धो का आश्रम हिरनो के समूहों से गच्छा हुआ था । उसमें मुनिगण के विराजमान होने से परम शोभा हो रही थी । अति सुन्दर लता और वृक्ष, फल और पुष्प आदि से वह परम शोभा से सम्पन्न दिखाई देता था । वहाँ स्वच्छ एव परिपूर्ण सरोवर विद्यमान थे और वहाँ की कुटियों ने अतिथियों का स्वागत मत्सर मदा होता रहा करता था ॥२४॥ २५॥ वहाँ पर मुनिगण ने श्रीसूतजी का दर्शन प्राप्त किया था । आग्निष्टोम यज्ञ के यजन के द्वारा अनन्त, अपराजित भगवान् नारायण की अर्चना में व्यस्त हो रहे थे ॥२६॥ श्रीसूतजी ने उन समागत आज्ञस्वी मुनिगणों का समुचित स्वागत-सत्कार किया था । वे सब मुनिगण यज्ञ के अ-भृथ अर्थात् यज्ञान्तर्ग स्नान की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ विराजमान

हो गये थे ॥२७॥ ने अवश्य स्नान करने के पश्चात् पौरा-  
णिकों में परम श्रेष्ठ श्री सृजनी से मुख पूर्वक उपविष्ट होजाने पर उन  
मुनिशे से वात्सल्य का आरम्भ किया था ॥२८॥

वय त्वत्तिथय प्राप्ता आतिथेयास्तु सुव्रत ।  
ज्ञानदानोपचारेण पूजयास्मान् यथाविधि ॥२६॥  
दिबोकसो हि जीवन्ति पीत्वा चन्द्रकनामृतम् ।  
ज्ञानामृत भूमुरास्तु मुने त्वन्मुखनि मृतम् ॥३०॥  
येनेदमखिल जात यदाधार यदात्मकम् ।  
यस्मिन्प्रतिष्ठित तात यस्मिन् वा लयमेष्यति ॥३१॥  
केन विष्णु प्रसन्न स्यात् स कथं पूज्यते नरैः ।  
कथं वणाश्रमाचारश्चातिथे पूजनं कथम् ॥३२॥  
सफल रपाद्यथा कर्मा मोक्षोपाय कथं नृणाम् ।  
भक्त्या किं प्राप्यते पुंभिस्तथा भक्तिश्च कीदृशी ॥३३॥  
वद सूत मुनिश्रेष्ठ सर्वमेतदमशयम् ।  
कस्य नो जायते श्रद्धा श्रोतु त्वद्वचनामृतम् ॥३४॥  
शृणुध्वमृषय सर्वे यदिष्ट वो वदामि तत् ।  
गीतं सनकमुद्यस्तु नारदाय महात्मने ॥३५॥  
पुराणं नारदोपाख्यमेतद्वेदायसम्मितम् ।  
सर्वपापप्रशमनं दुष्टग्रहनिवारणम् ॥३६॥

श्रुतिशे ने कहा—ह मुवत । हम लोग अतिथि सत्कार की  
प्राप्त करने के पाद्य अतिथि आपकी गवा में उपस्थित हुए हैं । अब  
आप हम लोगों का आतिथ्य ज्ञान के प्रदान स्वरूप भेट के द्वारा ही  
पूजा कर करिए ॥२६॥ दक्षिण ता चन्द्र की जलाभा में क्षरण करते  
हुए अमृत का पान करके सदा जीवित रहा करते हैं । ह मुनिवर ।  
हम तो ब्राह्मण हैं मा आने मुख से टपकने वाली ज्ञान पीमूष का ही  
पान करते जीवित रहने की आशा लेकर यहाँ प्राप्त हुए हैं ॥३०॥

आप यह बताइये कि जिनसे यह ससार उत्पन्न हुआ है, जिनका अव-  
लम्ब ग्रहण कर यह सम्पूर्ण ससार टिका है, जो इसमें आत्मा रूप से  
व्याप्त है और यह सम्पूर्ण विश्व जिनमें प्रतिष्ठित है । हे तात ! यह  
सब विश्व अन्त में जिसमें आकर लीन हुआ करता है वह भगवान्  
विष्णु किस रीति से प्रसन्न हुआ करते हैं और मनुष्यों वा उनका सम-  
चर्च किस विधि में करना चाहिए ? वर्णों और आश्रमों का वास्तविक  
स्वरूप कैसा होता है तथा स्वनिवास भूमि पर समागत अतिथियों वा  
स्वागत-सत्कार किस प्रकार से करना चाहिए ॥२१-३२॥ मानवों द्वारा  
किया हुआ कार्य कैसे सफल हुआ करता है और मानवों को मोक्ष की  
प्राप्ति करने का उपाय किस तरह से करना चाहिए । भगवान् की  
भक्ति से क्या प्राप्त हुआ करता है ? उस भक्ति का स्वरूप कैसा होता  
है ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ सूतजी ! आपसे यही प्रार्थना है कि इन हमारे  
द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर इस रीति से समझाते हुए प्रदान  
कीजिए कि फिर हमारे हृदय में कोई भी सन्देह शेष न रहे । ऐसा  
कौन सा जीवात्मा होगा जो आपके वचनामृत वा पान करने में अद्वालु  
न होवे ? अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं है ॥३४॥ श्री सूतजी ने उत्तर  
दिया—हे समस्त ऋषिगण ! आपके मन में जो भी कुछ बातें हैं उनको  
मैं बतलाऊँगा उसका आप लोग श्रवण करे । एक बार सनकादि महा-  
पुरुषों ने श्री देवर्षि नारद जी से वेद सम्मत नारदोपाख्यान नाम वाले  
पुराण को कहा था । यह पुराण सभी प्रकार के पापों का विनाश करने  
वाला और दुष्टग्रहों के कुफलों को दूर भगा देने वाला है ॥३५-३६॥

दुःस्वप्ननाशन धर्म्य भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।

नारायणवयोपेत सर्वकल्याणकारणम् ॥३७

धर्मार्थकाममोक्षाणा हेतुभूत महाफलम् ।

अपूर्वपुण्यफलद शृणुष्व सुसमाहिता ॥३८

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्नुयपातकं ।  
 श्रुत्वेतदार्घ्यं दिव्यं च पुराणं शुद्धिमाप्नुयात् ॥३६॥  
 यस्यैकाध्यायपठनाद् वाजिमेघफलं लभेत् ।  
 अध्यायद्वयपाठेन राजसूयफलं तथा ॥३७॥  
 श्येष्ठमासे पूर्णिमायां मूलर्क्षे प्रयतो नरः ।  
 स्नात्वा च यनुनातोये मथुरायामृषोपितः ॥३८॥  
 अभ्यर्च्य विधिवत् कृष्णं यत्फलं लभते द्विजाः ।  
 तत्फलं समवाप्नोति अध्यायत्रयपाठतः ॥३९॥

इस पुराण की महिमा कहा तक चतलाई जावे । यह बुम्बलन के, फल को दूर कर देने वाला है । यह धर्म प्रदायक और मोक्ष रूपी फल का प्रदाता है एवं भगवान् नारायण की कथा से पूर्ण यह सभी प्रकार के कल्याणों का देने वाला है ॥३७॥ यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टय के हेतु रूप है । परमोत्तम फल के देने वाला और पुण्य का अपूर्व फल प्रदायक है । अब आप सब लोग इसका ही परम समाहित होकर श्रवण करिए ॥३८॥ जो पुरुष ब्रह्म हरया, मदिरापान, गुरुनलागमन आदि महान् पातकों से दूषित है तथा सहमन का भक्षण और शराब पीने वाली स्त्री से समागम आदि अनेक उग्र पातकों से भ्रष्ट हो गया है वह भी इस ऋषि प्रणीत पुराण का श्रवण कर परम पवित्र एवं शुद्ध हो जाया करता है ॥३९॥ इस प्रमुख पुराण की भेदम एक अध्याय का पाठ करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हुआ करता है तथा दो अध्यायों के पाठ से राजसूय यज्ञ का फल मिला करता है । अभिप्राय यही है कि इस ग्रन्थ में बड़े हुए धर्मों का समाचरण करने से समस्त पातकों-महापातकों और उपपातकों से शुद्धि के साथ साथ अश्वमेध और राजसूय यज्ञों के यजन करने के बराबर फल भी प्राप्त हो जाता है ॥४०॥ जो पुरुष मूल नक्षत्र से सम्बन्धित श्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन परम सावधानी के साथ

मथुरा में श्री यमुना में स्नान करके तथा व्रत करके सविधि श्रीकृष्ण का अर्चन करने पर जो फल प्राप्त करता है । हे द्विजगण ! वही फल इस पुराण के तीन अध्यायों के पठन या श्रवण से प्राप्त हो जाया करता है ॥४१॥४२॥

तत्प्रवक्ष्यामि व सम्यक् शृणुध्व गदतो मम ।

जन्मायुस्तार्जितं पापैर्मुक्तं कोटिकुलान्वित ॥४३॥

ब्रह्मण पदमासाद्य तत्रैव प्रतितिष्ठति ।

श्रुत्वास्य तु दशाध्यायान् भक्तिभावेन मानव ॥४४॥

निर्वाणमुक्तिं लभते नात्र कार्या विचारणा ।

श्रेयसा परम श्रेय पवित्राणामनुत्तमम् ॥४५॥

दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं श्रोतव्यं यत्नतो द्विजा ।

श्रद्धया सहितो मर्त्यं श्लोक श्लोकार्धमेव वा ॥४६॥

पठित्वा मुच्यते सद्यो महापातकराशिभिः ।

सतामेव प्रवक्तव्यं गुह्याद् गुह्यतरं यत ॥४७॥

हे द्विजश्रेष्ठा ! मैं अब इसी परम पावन पुराण का वर्णन आप लोगों के समक्ष में करता हूँ आप लोग सावधान होकर भली भाँति मुझ से श्रवण करें । भक्ति भावना से इस पुराण के दश अध्यायों के पाठ से दश सहस्रों जन्मों में किये हुए पापों में मुक्ति पाकर अपने कोटिश पुलों के साथ मुक्त होकर ब्रह्माजी के लोक में सीधा चला जाया करता है और वह वहीं पर निवास किया करता है ॥४३-४४॥ इस पुराण के श्रवण करने वालों को निर्वाण मुक्ति प्राप्त होती है । इसमें कुछ भी विचार या गणन की बात नहीं है । यह परम श्रेयस्कर, अत्यधिक पवित्र तथा दुःस्वप्नों का निवाश करने वाला पुराण है । हे द्विजगण ! इस पुराण को बहुत यत्न के साथ सुनना चाहिए । जो कोई मनुष्य श्रद्धा के साथ यदि हमारे एक या आधे श्लोक का भी पाठ कर लेता है तो वह इसमें वर्णन किये जाने वाले सब धर्मों का पावन कर लेता

है और सुवर्ण आदि की चोरी प्रभृति महा पातकों के समुदाय से विमुक्त होजाया करता है । यह पुराण परम गोपनीय वस्तु है । अतएव इसका श्रवण भी सज्जन पुरुषों को ही करना चाहिए ॥४५॥ ॥४६॥४७॥

वाचयेत् पुरतो विष्णो पुण्यक्षेत्रे द्विजान्तिके ।  
ब्रह्मद्रोहपराणा च दम्भाचार्युतात्मनाम् ॥४८॥  
जनाना वकवृत्तीना न ब्रूयादिदमुत्तमम् ।  
त्यक्तकामादिदोषाणा विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ॥४९॥  
सदाचारपराणा च वक्तव्य मोक्षसाधनम् ।  
सर्वदेवमयो विष्णु स्मरतामातिनाशन ॥५०॥  
सद्भक्तिवत्सलो विप्रा भक्त्या तुष्यति नान्यथा ।  
अश्रद्धयापि यन्नाग्नि कीर्तितेऽथ स्मृतेऽपि वा ॥५१॥  
विमुक्त पातकैर्मर्त्यो लभते पदमव्ययम् ।  
ससारघोरकान्तारदावाग्निर्मधुसूदन ॥५२॥  
स्मरता सर्वपापानि नाशयत्याशु सत्तमा ।  
तदयं द्योतकमिद पुराणा श्राव्यमुत्तमम् ॥५३॥  
श्रवणात् पठनाद्वापि सर्वपापविनाशकृत् ।  
यस्यास्य श्रवणे बुद्धिर्जायते भक्तिसंयुता ॥५४॥  
स एव कृतकृत्यस्तु सर्वशास्त्रार्थकोविद ।  
यदाजित तप पुण्य तन्मन्ये सफल द्विज ॥५५॥  
यदस्य श्रवणे भक्तिरन्यथा न हि जायते ।  
सत्कथासु अवर्तन्ते सज्जना ये जगद्विदा ॥५६॥

विसौ भगवान् विष्णु के मन्दिर में, पवित्र तीर्थ स्थल में विसौ विद्वान् सुवक्ता ब्राह्मण से इसकी कथा कहवान्नी चाहिए । जो ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले हों, वे वैष्णव प्रदर्शन कर कोष दिखाने के लिये ही धर्म का आचरण करें, वगुला भगत हो अर्थात् ऊपर से कुछ और—

और मन में कुछ अन्य ही विचार रखने वाले धूर्त हो उनके सामने ऐसे उत्तम पुराण का वर्णन कभी नहीं करना चाहिए । यह तो मोक्ष का साधन पुराण है । इसे तो जो सदाचारी और कायादि दोषों से रहित विष्णु भक्त पुरुष हो उन्हीं को इसका श्रवण कराना चाहिये । भगवान् विष्णु तो सदा भक्ति करने ही से प्रसन्न हुआ करते हैं । वे सद्भक्ति पर स्नेह करने वाले हैं इसलिये अन्य किन्हीं बातों या साधनों से ऐसे परम प्रसन्न नहीं होते हैं मनुष्य के हृदय में भले ही श्रद्धा न भी हो तो भी भगवान् विष्णु के नामों का कीर्तन या उनके गुण एवं लीलाओं का स्मरण करने मात्र से समस्त पातकों से बच कर वह अव्यय पद का प्राप्त कर लिया करता है । मधु नामक दैत्य का वध करने वाले प्रभु इस सत्सार रूपी ( पाप पूर्ण ) भयङ्कर जङ्गल के लिये दावाग्नि के ही तुल्य हैं ॥४८—५२॥ हे परम श्रेष्ठ पुरुष ! ये भगवान् स्मरण करने वाले मनुष्यों के समस्त पापों का नाश कर दिया करते हैं । उन भगवान् श्री विष्णु की अनुकम्पा का लाभ जिस प्रकार से हो उन्हीं उपायों को यह नारद पुराण बताता है । इसीलिये यह परमोत्तम पुराण है और सब के श्रवण करने तथा कराने के योग्य है ॥५३॥ इस श्रेष्ठ पुराण के अध्ययन करने तथा इसको पढ़ाने एवं सुनने-सुनाने से सभी पापों का विनाश हो जाता है । जिसकी बुद्धि में भक्ति की भावना से इससे श्रवण करने की बात बँट जाती है वह सभी शास्त्रों का तात्पर्याय समझने में अनुरूप कृतकृत्य ही हो जाता है । हे द्विज-गण ! उमने जो कुछ भी तपश्चर्या और पुण्य किया है उमने में सफल हुआ ही समझता है ॥५४—५५॥ कारण यही है कि इस पुराण की सुनने की श्रद्धा-भक्ति बँट करभी भी हो ही नहीं सकती है । जो मनुष्य इस गगार के हिम के सम्पादन करने की इच्छा करते हैं । ऐसे सज्जन मनुष्यों की ही गत्वयाओं की आर प्रवृत्ति हुआ करती है ।

निन्दाया कलहे वापि ह्यमन्त पापतत्परा ।

पुराणेष्वथैवादेव ये वदन्ति नराधमा. ॥५७॥



- तैरजितानि पुण्यानि क्षय यान्ति द्विजोत्तमाः ।
- समस्तकर्मनिर्मूलसाधनानि नराधमः ॥५८
- पुराणान्यर्थवादेन ब्रुवन्नरकमश्नुते ।
- अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नरः ॥५९
- पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः ।
- अनायासेन यः पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥६०
- श्रोतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः ।
- पुराणश्रवणे बुद्धिर्यस्य पुनः प्रजायते ॥६१
- पुराजितानि पापानि तस्य नश्यत्यसंशयम् ।
- परागे वर्तमानेऽपि पापपाप्मेन यन्त्रितः आदरेणा-
- न्यगायामु सक्तबुद्धि पतत्यधाः ॥६२

जो महापापी एवं सज्जनता के सदगुणों से रहित हुआ करते हैं वे सदा निन्दा और कलह में ही फँसे रहा करते हैं । ऐसे जो नराधम हैं कि वे सर्वदा पुराणों में अर्थवाद को ही भरा हुआ बताया करते हैं । तत्परम यह है कि पुराणों को कल्पित कहानियों का मञ्जार यह कर मिथ्या कहते हैं । हे द्विजोत्तमो ! उन लोगों के जो भी कुछ सचित पुण्य हैं वे सब नष्ट हो जामा करते हैं । जो पुराण समस्त कर्मों को निर्मूल कर मोक्ष जैसे परम पुरस्कार के साधन हैं उन पुराणों को जो मिथ्या कहने हैं वे नरकगामी हुआ करते हैं । मनुष्य अन्य कर्मों को तो विधि के साथ मिट्ट कराने में लगे रहा करते हैं किन्तु मोह में घटन बने रहने के कारण हे द्विजगण ! जो कर्म पुराणों में वर्णन किये गये हैं उनको कभी करना ही नहीं चाहते हैं । हे द्विजगण ! बिना किसी श्रम के पुण्यों को प्राप्त करने की इच्छा रखना हो उसे चाहिए कि भक्ति भाव के साथ पुराणों का श्रवण करे । जो मनुष्य पुराणों के श्रवण करने का निश्चय किया करता है उसके पूर्व के सचित सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । पुराणों के विद्यमान रहते हुए भी जो मनुष्य

और मन में कुछ अन्य ही विचार रखने वाले धूर्त हो उनके सामने ऐसे उत्तम पुराण का वर्णन कभी नहीं करना चाहिए । यह तो मोक्ष का साधन पुराण है । इसे तो जो सदाचारी और कायादि दोषों से रहित विष्णु भक्त पुरुष हो उन्हीं को इसका श्रवण कराना चाहिये । भगवान् विष्णु तो सदा भक्ति करने ही से प्रसन्न हुआ करते हैं । वे सदाभक्ति पर स्नेह करने वाले हैं इसलिये अन्य किन्हीं बातों या साधनों से ऐसे परम प्रसन्न नहीं होते हैं मनुष्य के हृदय में भले ही श्रद्धा न भी हो तो भी भगवान् विष्णु के नामों का कीर्तन या उनके गुण एवं लीलाओं का स्मरण करने मात्र से समस्त पातकों से बच कर वह अव्यय पद को प्राप्त कर लिया करता है । मधु नामक दैत्य का वध करने वाले प्रभु इस ससार रूपी ( पाप पूर्ण ) भयङ्कर जङ्गल के लिये दावाग्नि के ही तुल्य हैं ॥४८—५२॥ हे परम श्रेष्ठ पुरुषो ! वे भगवान् स्मरण करने वाले मनुष्यों के समस्त पापों का नाश कर दिया करते हैं । उन भगवान् श्री विष्णु की अनुकम्पा का लाभ जिस प्रकार से हो उन्हीं उपायों को यह नारद पुराण बताता है । इसीलिये यह परमोत्तम पुराण है और सब के श्रवण करने तथा बराने के योग्य है ॥५३॥ इस श्रेष्ठ पुराण के अध्ययन करने तथा इसको पढ़ाने एवं सुनने-सुनाने से सभी पापों का विनाश हो जाया करता है । जिसकी बुद्धि में भक्ति की भावना से इसके श्रवण करने की बात बँठ जाती है वह सभी शास्त्रों का तात्पर्यार्थ समझने में चतुर पुरुष कृतकृत्य ही होजाता है । हे द्विज-गण ! उसने जो कुछ भी तपश्चर्या और पुण्य किया है उसको मैं सफल हुआ ही समझता हूँ ॥५४-५५॥ कारण यही है कि इस पुराण की सुनने की श्रद्धा-भक्ति वैसे कभी भी हो ही नहीं सकती है । जो मनुष्य इस सागर के हित के सम्पादन करने की इच्छा करते हैं । ऐसे सज्जन मनुष्यों की ही सार्वपात्रों की ओर प्रवृत्ति हुआ करती है ।

निन्दाया कलहे वापि ह्यसन्तः पापतत्परा ।

पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः ॥५७

तैरर्जितानि पुण्यानि क्षय यान्ति द्विजोत्तमाः ।  
 समस्तकर्मनिर्मूलसाधनानि नराधमः ॥५८  
 पुराणान्यर्थवादेन ब्रुवन्नरकमश्नुते ।  
 अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नरः ॥५९  
 पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः ।  
 अनायासेन यः पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥६०  
 श्रौतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः ।  
 पुराणश्रवणे बुद्धिर्यस्य पुंसः प्रजायते ॥६१  
 पुराजितानि पापानि तस्य नश्यत्यसंशयम् ।  
 परागे वर्तमानेऽपि पापपाशेन यन्त्रितः आदरेणा-  
 न्यगाथामु सक्तबुद्धिः पतत्यधः ॥६२

जो महापापी एव मज्जनता के सदगुणों से रहित हुआ करते हैं वे सदा निन्दा और बलह में ही फँसे रहा करते हैं । ऐसे जो नराधम हैं कि वे सर्वदा पुराणों में अर्थवाद को ही भरा हुआ बताया करते हैं । साधन यह है कि पुराणों को कल्पित कहानियों का भण्डार कह कर मिथ्या कहते हैं । हे द्विजोत्तमो ! उन लोगो के जो भी कुछ सचित पुण्य है वे मग्न नष्ट हो जाया करते हैं । जो पुराण समस्त कर्मों को निर्मूल कर मोक्ष जैसे परम पुरुषार्थ के साधन है उन पुराणों को जो मिथ्या कहते हैं वे नरकगामी हुआ करते हैं । मनुष्य धर्म कर्मों को तो विधि के साथ निष्ठ करने में लगे रहा करते हैं किन्तु मोह में प्रसक्त बने रहने के कारण हे द्विजगण ! जो कर्म पुराणों में वर्णन किये गये हैं उनको कभी करना ही नहीं चाहते हैं । हे द्विजगण ! बिना किसी अनाद के पुण्यों को प्राप्त करने की इच्छा रखता हो उसे चाहिए कि सति भाव के साथ पुण्यों का ध्यान करे । जो मनुष्य पुराणों के ध्यान करने का निश्चय किया करता है उसके पूर्व के गश्चिन्त सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । पुराणों के विद्यमान रहने हुए भी जो मनुष्य

पापो के जाल में बँधे रहा करते हैं और व्यर्थ की अन्य बातों में बुद्धि लगाये रहते हैं उनका निश्चय ही अधःपतन हुआ करता है ॥५७—६२॥

सत्सङ्गदेवार्चनसत्कथासु हितोपदेशे निरतो मनुष्य ।  
 प्रयातिविष्णो परम पद यद्देहावसानेऽच्युततुल्यतेजा ॥६३॥  
 तस्मादिदं नारदनामधेय पुण्य पुराण शृणुत द्विजेन्द्रा ।  
 यस्मिञ्छ्रुते जन्मजरादिहीनो नरो भवेदच्युतनिष्ठचेता ॥६४॥  
 वर वरेण्य वरद पुराण निजप्रभाभावितसर्वलोकम् ।  
 सकल्पितार्थप्रदमादिदेव स्मृत्वा ब्रजेन्मुक्तिपद मनुष्य ॥६५॥  
 ब्रह्मेशविष्ण्वादिशरीरभेदैर्विश्व सृज्यति च पाति विप्रा ।  
 तमादिदेव परम परेशमाधाय चेतस्युपयाति मुक्तिम् ॥६६॥  
 यो नाम जास्यादिविकल्पहीन पर पराणा परम परस्माद् ।  
 वेदान्तवेद्य स्वजनप्रवाण समीढ्यते सर्वपुराणवेदै ॥६७॥  
 तन्मात्तमीश जगता विमुक्तिमुपासनायात्मज मुरारिम् ।  
 पर रहस्य पुरुषार्थहेतु स्मृत्वा नरो याति भवाब्धिपारम् ॥६८॥

जो लोग साधुओं की सङ्गति, देवों का यजन और परम श्रेष्ठ कथा तथा हितकारी उपदेश देने में सतन् रहता है वह मनुष्य इस पार्थिव शरीर के पात हो जाने पर अच्युत भगवान् के महान् तेज सम्पन्न होकर सीधा श्री विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त किया करता है ॥६३॥ इसलिये हे द्विजवरों ! आप सब लोग परम पावन इस नारद पुराण का श्रवण करिए । इसके गुणन का ऐसा प्रभाव है कि इसका श्राव्य भगवान् अच्युत में अपना चित्त लगा दिया करता है और फिर इस चित्त की भगवत्स्मरण में गलनाता के कारण से जन्म-मरण और बाधक्य के चारम्यार आवृत्ति हान के सम्पूर्ण क्षात ग मुक्त हो जाता है ॥६४॥ यह परम श्रेष्ठ पुराण है और यह वरण करने के योग्य साधन वरदान देने योग्य है । इस पुराण की प्रदीप्त प्रमत्त

सम्पूर्ण लोका भक्ति रह्य करते हैं । मनोवाछित ( धर्म, काम, मोक्ष आदि ) प्रयोजनों को पूर्ण कर देने वाले आदिदेव विष्णु भगवान् का भजन करने से मनुष्य छुटकारा पा जाता है और उसकी मुक्ति होजाया करती है ॥६५॥ हे विप्रवरों ! जो सर्व शक्तिमान् भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के स्वरूपों में भिन्न २ शरीरों से इस समस्त विश्व का उद्भव, पालन और सहार किया करते हैं । उस परमेश्वर आदि देवगणों को अपने हृदय में स्थापित कर लेने से निश्चय ही मनुष्य की मुक्ति हो जाती है ॥६६॥ जो भगवान् नाम, जाति, रूप आदि के विकल्प से रहित है, जो सूक्ष्मात्तिमूढम एव परमाधिक सूक्ष्म है जो श्रेष्ठ शिरोमणियों से भी परम श्रेष्ठतम है, जिनका ज्ञान वेदान्त के ग्रन्थों के परिशीलन से प्राप्त होता है जो परम प्रिय भक्तों के हित-सम्पादन के लिए बारम्बार प्रकट हुआ करते हैं और जिनका समस्त वेद और पुराण पूजन किया करता है ॥६७॥ उन जन्म से रहित भगवान् मुरारि जगदीश्वर की ही सद्गुणसना मुक्ति के लिये पर्याप्त साधन है । इन धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टय के हतुभूत, परम रहस्य एव अत्यधिक ग्राह्य भगवान् का स्मरण करने से प्राणी इस महान् घोर सागर की सागर से पार हो जाया करता है ॥६८॥

वक्तव्य धार्मिकेभ्यस्तु भद्रवानेभ्य एव च ।

मुमुक्षुभ्यो वतिभ्यश्च बीतरागेभ्य एव च ॥६९॥

वक्त्रे पुण्यदेशे च समाया देवतागृहे ।

पुण्यक्षेत्रे पुण्यतीर्थे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥७०॥

उच्छिष्टदेशे वक्त्रार आख्यानमिदमुत्तमम् ।

पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसप्तवम् ॥७१॥

मृषा शृणाति यो मूढो दम्भो भक्तिविवर्जित ।

सोऽपि तद्वन्महाघोरे नरके पच्यतेऽक्षये ॥७२॥

नरो म सत्त्वयामध्ये सम्भाषा वृत्तेऽन्यत ।

स याति नरकं घोरं तदेवाग्रमना भवेत् ॥७३॥

श्राता वक्ता च विप्रेन्द्रा एष धर्मः सनातन ।  
 असमाहितचित्तस्तु न जानाति सि किञ्चन ॥७४॥  
 तत एकमना भूत्वा पिवेद्वरिकथामृतम् ।  
 कथं स भ्रान्तचित्तस्य कथास्वादः प्रजायते ॥७५॥

इस गोपनीय पुराण के सुनने के अधिकारी भी परम धार्मिक-  
 श्रद्धालु-मुमुक्षु-संन्यासी और रागादि रहित पुरुष ही होते हैं । अतएव  
 ऐसी योग्यता के पात्र उनको ही यह पुराण सुनना चाहिए अर्थात्  
 इनके अतिरिक्त इनके सुनने के अधिकारी नहीं हैं । इस पुराण की  
 कथा ऐसे ही किसी परमोत्तम स्थल में कहनी चाहिये जो या तो  
 देवालय हो, या सभामण्डप हो, या पवित्र क्षेत्र एवं तीर्थ हो । इसकी  
 कथा देवों और ब्राह्मणों के समक्ष में कहना चाहिए ॥६६॥७०॥ जो  
 कोई कथा वाचक अनुप्य इस परम श्रेष्ठ पुराण की कथा किसी अप-  
 वित्र स्थान में कहते हैं वे वहाँ प्रलय काल तक घोर नरक में कष्ट  
 भोगा करते हैं ॥ ७१ ॥ जो हस्त में भर कर महामूढ भक्ति के भाव  
 से शून्य हो और बिना भाव के व्यर्थ ही इस पुराण की सुनता है वह  
 भी अक्षय महान् घोर नरक में निवास कर पीडित होता है ॥७२॥  
 जो कोई श्रोता कथा के बीच में अन्य चर्चाओं किया करते हैं वे भी  
 घोर नरक में गिरते हैं, अतएव कथा का श्रवण चित्त की एकाग्रता से  
 ही करना चाहिए ॥७२॥ हे विप्र शिरोमणियो ! यह धर्म सनातन है  
 चाहे कोई श्रोता है या प्रवक्ता हो यदि उनका हृदय समाहित नहीं  
 होता है तो उसका कुछ भी ज्ञान नहीं बढ़ता है और श्रवण जो  
 अगाधघानी में किया है पनजून्य ही होजाता है ॥७४॥ अतएव सदा  
 अपने मन का एकाग्र करने ही हरि की कथारूपी पीयूष का पान  
 करना चाहिए । जिसरा चित्त व्यस्तिर और चलावमान है उनकी  
 कथा के सुग्म का कुछ भी म्याद नहीं जाता है ॥७५॥

किं सुखं प्राप्यते लोके पुंसां सम्भ्रातचेतसा ।  
 तस्मात् सर्वं परित्यज्य कामं दुःखस्य साधनम् ॥७६॥  
 समाहित मना भूत्वा कुर्यादभ्युत्तचिन्तनम् ।  
 येन केनाप्युपायेन स्मृतो नारायणोव्ययः ॥७७॥  
 अपि पातकयुक्तस्य प्रसन्नः स्यान्न सशयः ।  
 यस्य नारायणे भक्तिर्विभौ विश्वेश्वरेऽव्यये ।  
 तस्य स्यात्सफल जन्म मुक्तिश्चैव करे स्थिता ॥७८॥  
 धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्था द्विजोत्तमाः ।  
 हरिभक्तिपराणा वै सम्पद्यन्ते न सशयः ॥७९॥

क्या सर्वदा अस्थिर चित्त वाले पुरुष को कभी कोई सुख प्राप्त होता है ? अर्थात् कभी भी नहीं मिलता है इसीलिये सब प्रकार की इच्छाओं को और सकल्पों को त्यागकर इस दुःखदाता चित्त को ही भगवच्चरणों में यत्नपूर्वक लगा देना चाहिये ॥७६॥ परम सावधान हृदय से भगवान् विष्णुदेव का ध्यान करे । चाहे किसी भी प्रकार से उस अविनाशी नारायण की आराधना की जावे वे ऐसे दयालु हैं कि पातकी पुरुष पर प्रसन्न ही होते हैं ॥७७॥ जिस पुरुष की उस अविनाशी व्यापक विश्वेश्वर भगवान् विष्णुदेव में सुदृढ भक्ति होती है उसका जन्म धारण करना ही सफल हो जाता करता है और मुक्ति तो फिर अपने ही मुट्ठी में आ जाती है ॥७८॥ हे श्रेष्ठतम विप्रो ! श्री हरि की भक्ति में तत्पर पुरुषों को धर्मार्थकाम मोक्ष पुरुषार्थ श्रु-  
 ष्ट्यप्राप्त हो ही जाता है ॥७९॥

## ॥ सनक-नारद संवाद और विष्णु स्तुति ॥

वथ सनत्कुमारस्तु नारदाय महात्मने ।

प्रोक्तवान् सकलान् धर्मान् कथं तौ मिलितानुभौ ॥१॥

कस्मिन् स्थाने स्थितौ सूत तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।

हृग्गिगीनसमुद्गाने चक्रतुस्तद्वदस्व न ॥२॥

सनकाद्या महात्मानो ब्रह्मणो मानसा सुता ।

निर्गमा निरहङ्कारा सर्वे ते ह्यध्वरेतसः ॥३॥

तेषां नामानि वक्ष्यामि सनकश्च सनन्दन ।

सनत्कुमारश्च विभु सनातन इति स्मृतः ॥४॥

विष्णुभवता महात्मानो ब्रह्मध्यानपरायणा ।

सहस्रसूर्यसंवाशा सत्यसन्धा मुमुक्षवः ॥५॥

एकदा मेरुशृङ्गं ते प्रस्थिता ब्रह्मण सभाम् ।

दृष्ट्वा मार्गस्थं ददृशुः गंगा विष्णुपदी द्विजाः ॥६॥

ता निरीक्ष्य समुद्युक्ता स्नातुं सीताजलेऽभवन् ।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवर्षिर्नारदो मुनिः ॥७॥

आजगाम द्विजश्रेष्ठा दृष्ट्वा भ्रातृन् स्वकाश्रजान् ।

तान् दृष्ट्वा स्नातुमुद्युक्तान् नमस्कृत्य कृतान्जलिः ॥८॥

श्रुतिगणा न ब्रह्मा—सनत्कुमारजी ने महात्मा देवर्षि श्री नारद जी से इन सब घमों का वणन किस तरह से किया था और इन दोनों का सम्मिलन कहा किस कारण से हुआ था ? ॥१॥ हे सूत जी ! आप यह भी बतनाइय कि इन दोनों ब्रह्मवादियों ने जो भगवत् चर्चा की थी वह विष्णुदेव के गुणा का गान किस स्थान पर विराजमान होकर किया था ? ॥२॥ श्री सूतजी न ब्रह्मा—श्री सनकादि महापुरुष श्री ब्रह्माजी का मानस पुत्र हैं । डाँप न तो किसी प्रकार का भगवत् है और न यह बुद्धि ही है । य सब ऊँचरता महापुरुष हैं ॥३॥ अब हम दो तारों का परम गुण नामा की भी आपका बतनात है—  
साक—सान दा—सन कुमार और विभु सनातन ये चारों के पार नाम हैं । ये चारों ही भगवान् का परम भक्त महान् आत्माना होते थे तथा सबदा ब्रह्म ने ध्यात ॥ निरत रहा परत



ये ये सहस्रो सूर्य के सह शम्भुजानान्धकार के नाशक, सत्य प्रतिज्ञ और मुमुक्षु हैं ॥ ५ ॥ हे द्विजगण ! एक मम की घटना है वे ब्रह्माजी की सभा में गमन करने के वास्ते अपने इच्छित मेघ शृङ्ग की ओर चल दिये थे । मार्ग में उन्होंने श्री विष्णुदेव के चरण कमल से प्रकट हुई भागीरथी गङ्गा का दर्शन करके उस घाट पर इनकी पद्धति के गुण वहन करने वाली गङ्गा में अवगाहन के लिये प्रस्तुत हुए थे । हे द्विजवरों ! उसी समय में वहाँ पर देवपि नारदजी आगये थे । उन्होंने अपने ज्येष्ठ भाइयों को स्नान करने को उद्यत हुए देखा तो उनको हाथ जोड़ कर प्रणाम किया था ॥७॥८॥

गृणन् नामानि सप्रेमभक्तियुक्तो मधुद्विप ।

नारायणच्युतानन्त वासुदेव जनार्दन ॥६

यज्ञेश यज्ञपुरुष कृष्ण विष्णो नमोऽस्तु ते ।

पद्माक्ष कमलाकान्त गङ्गाजनक केशव ।

क्षारोदशायिन् देवेश दामोदर नमोऽस्तु ते ॥१०

✓ श्रीराम विष्णो नरसिंह वामन ब्रह्मन् सकर्षण वासुदेव ।

अजानिरुद्धामलरुद्धं मुरारे त्व पाहि न सर्वभयादजसम् ॥११

इत्युच्चरन् हरेर्नाम नत्वा तान् स्वाग्रजाम् मुनीन् ।

उपासीनश्च तै सार्धं मस्तौ प्रीतिसमन्वित ॥१२

तै चापि तु सीताया जले लोकमलापहे ।

स्नात्वा सन्तप्य देवपिपितृन् विगतकल्मषा ॥१३

उत्तीर्य सन्ध्योपास्त्यादि कृत्वाचार स्वक द्विजा ।

कथा प्रचक्रु विविधा नारायेणगुणाश्रिता ॥१४

इसके अनन्तर बहुत ही भक्तिभाव के साथ मधुदेव के वध करने वाले उसके शत्रु भगवान् के निम्नलिखित नामों का उच्चारण करने लग । उन्होंने कहा—हे नारायण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! आपने (जमाया) प्रणाम है । हे यज्ञ पुरुष ! हे योगी !

हे कृष्ण । हे विष्णो । आपको ( हम सबका ) प्रणाम है ॥६॥१०॥  
 हे कमल पत्राक्ष । हे लक्ष्मीकान्त । हे गङ्गाजनक । हे केशव ।  
 हे क्षीरोदि शायिन् । हे देवेश । हे दामोदर । आपकी सेवा में  
 हमारा सबका प्रणाम समर्पित है । हे श्रीराम । हे प्रद्युम्न । हे  
 सङ्कर्षण । हे वासुदेव । विष्णो । नरसिंह । वामन । अज । अनिरुद्ध ।  
 निर्मल काम्नि सम्पन्न । आप ही विश्व के पदार्थ जगत में व्याप्त हैं  
 ऐसे आप हमारी सभी तरह के भयों से रक्षा करें ॥११॥ इस रीति  
 से देवर्षि नारदजी ने श्री हरि भगवान् के नामों का उच्चारण करके अपने  
 ज्येष्ठ भाई मुनियों को प्रणाम किया था और फिर उन्हीं के साथ  
 अवगाहन करके वही पर बैठ गये थे ॥१२॥ हे द्विजगणो ! सनकादि  
 भी साप्ताहिक मल को धो डालने वाले भागीरथी के जल मस्नान करके  
 देवर्षि पितृगण का तर्पण करने लग और फिर जल से बाहिर आकर  
 उस पापरहित मुनिगण ने अपना सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म सम्पा-  
 दित करके नारायण के गुणों से पूरित अनेक कथाओं कहना आरम्भ  
 कर दिया था ॥१३॥१४॥

कृतक्रियेषु मुनिषु गङ्गातीरे मनोरमे ।

चकार नारद प्रश्न नानाध्यानव्यान्तरे ॥१५॥

सर्वज्ञा स्य मुनिश्रेष्ठा भगवद्भक्तितत्परा ।

यूय सर्वे जगन्नाथा भगवन्त सनातना ॥१६॥

साकोटारपराम् युष्मान् दीनेषु कृतसौहृदान् ।

पृच्छे ततो वदत म भगवत्पक्षग बुधा ॥१७॥

यादमघिल जात जगत् स्थावरजङ्गमम् ।

गङ्गा पादोदर यम्य स नय जायते हरि ॥१८॥

यद्य च त्रिविध सपन जायते नृणाम् ।

ज्ञानस्य सक्षण ग्रूत तपसश्चापि मानद ॥१९॥

अतिथे पूजन वापि येन विष्णु प्रसादनि ।

एवमादीनि गुह्यानि हस्तितुष्टिकराणि च ।

अनुगृह्य च मा नाथा तत्त्वतो वक्तुमर्हथ ॥२०॥

नम पराय देवाय परस्मात् परमाय च ।

परावरनिवासाय सगुणायागुणाय च ॥२१॥

इसी समय में जब कि वे लोग नित्य कर्म की पूर्ण करके विविध श्री हरि कथाओं का प्रवचन कर रहे थे श्री नारद ने प्रश्न किया था ॥१५॥ इत्थं न पूछा वा— हे परम श्रेष्ठ भुविजनो ! यह तो परम निश्चित है कि आप सभी सर्वाज्ञ हैं और सर्वदा भगवद्भक्ति में सलग्न रहा करते हैं । सम्पूर्ण ऐश्वर्य—वीर्य—यश—श्री—ज्ञान—वैराग्य इन छै ( षडैश्वर्य अर्थात् भग ) से सम्पन्न है और भगवान् हैं । षडैश्वर्य स्वरूप भग से युक्त हैं । आप सनातन और जगन्नाथ हैं ॥१६॥ हे विद्वज्जनो ! आप तो सर्वदा सासारिक प्राणियों के उद्धार में लगे रहने वाले हैं । आप सदा दीना पर मृदु भाव रखता करते हैं । आप ऐसे एक परम महान् विशिष्ट महापुरुष हैं आप मेरे प्रश्नका समाधान करते हुये भगवान् के लक्षण का वर्णन कारये ॥१७॥ जिनसे यह चराचर सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न हुआ है । गङ्गा जिनके पावन चरणों का जल है वे श्री हरि का ध्यान किस प्रकार से होता है ॥१८॥ इस सगर में मनुष्यों के जो नित्य, वैयक्तिक और काम्य इन तीनों प्रकार के कर्म किस विधि से सफल हुआ करते हैं । हे मानद ! आप कृपा मुझको ज्ञान और तप का वास्तविक स्वरूप समझाइये ॥१९॥ अतिथि के अर्चन का क्या विधान होता है ? यह बतलाइये क्योंकि इसके करने से श्रीहरि बहुत प्रसन्न हो जाते हैं । इसी प्रकार श्री हरि के प्रसन्न कर देने वाली परम गुप्त बातें मुझ पर अनुग्रह करके ठीक ठीक समझाइये ॥२०॥ इस पर श्री जौनकजी ने कहा— प्रवृत्ति से परे, श्रेष्ठ से भी परम श्रेष्ठ देव । उत्कृष्ट एव निकृष्ट

साधको मे आत्मा रूप से निवास करने वाले सगुण एवं निर्गुण भगवान् के लिये प्रणाम है ॥२१॥

अमायायात्मसञ्जाय मायिने विश्वरूपिणे ।  
 योगीश्वराय योगाय योगगम्याय विष्णवे ॥२२॥  
 ज्ञानाय ज्ञानगम्याय सर्वज्ञानैकहेतवे ।  
 ज्ञानेश्वराय ज्ञेयाय ज्ञात्रे विज्ञानसम्पदे ॥२३॥  
 ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यातृपापहराय च ।  
 ध्यानेश्वराय सुधिये ध्येयध्यातृस्वरूपिणे ॥२४॥

आदित्यचन्द्राग्निविघातृदेवाः सिद्धाश्च यक्षामुरनागसन्धाः ।  
 यच्छक्तियुक्तास्तमज पुराण सत्यं स्तुतींश्च सततं नतोऽमि ॥२५॥  
 यो ब्रह्मरूपी जगता विघाता स एव पाता द्विजविष्णुरूपी ।  
 कल्पान्तराब्धयतनुः स देवः शेतेऽङ्घ्रिपानस्तमज भजामि ॥२६॥  
 यन्नामसङ्कीर्तनतो गजेन्द्रो ग्राहोऽग्रवन्धान्मुमुचे स देव ।  
 विराजमानः स्वपदे पराङ्घ्ये तं विष्णुमाद्य शरणं प्रपद्ये ॥२७॥  
 शिवस्वरूपी शिवभक्तिभाजा यो विष्णुरूपी हरिर्भावितानासु ।  
 सङ्कल्पपूर्वात्मकदेहेतुस्तमेव नित्यं शरणं प्रपद्ये ॥२८॥

माया के प्रलेप रहित ( ब्रह्म ) आत्मा नाम वाले मायोपा-  
 धिधारी ईश्वर विश्व के स्वरूप मे वर्तमान-योगीश्वर-योगात्मक और  
 योग के द्वारा ही प्राप्त होने वाले भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है  
 ॥२२॥ स्वयं ज्ञान के स्वरूप वाले, ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होने  
 वाले, सम्पूर्ण ज्ञान के अनन्य कारणस्वरूप, जानने के योग्य, ज्ञाता,  
 विज्ञान के सम्पत्ति स्वरूप भगवान् के लिए प्रणाम है ॥२३॥ ध्याना-  
 त्मक, ध्याता, ध्यान से प्राप्त होने वाले ध्यात्री के पापको दूर भगा  
 देने वाले, ध्यान के ईश्वर, सद्बुद्धि ध्येय सर्व ब्रह्ममय जगत् भगवान्  
 के लिए प्रणाम है ॥२४॥ चन्द्र, सूर्य, अग्नि और विघाता, मिद्ध,  
 अगुर, यज्ञ तथा नागों के समुदाय जितनी भक्ति से सम्पन्न होने के

कारण ही अपना कार्य पूर्ण कर सकत है । उन जन्म रहित पुराण पुरुष, सत्य स्वरूप, स्तुतियों के स्वामी, सनातन भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥ जो ब्रह्मस्वरूप में इस ससार के विधाता हैं वे ही द्विज विष्णु के रूप से इस ससार का पालन किया करते हैं और वे ही कल्प के अन्त में रत्न का स्वरूप बनाकर इसका महार करत हैं । उन चरणामुष्ठ का पपाल कर शयन करते हुए पान करने वाले उत्पत्ति से रहित भगवान् का मैं भजन करता हूँ ॥२६॥ गङ्गा राज जिनके पवित्र नाम का कीर्ति करन से प्राण परम भयकर बन्धन ॥ मुक्त हो गया था उन परम पद पर विराजमान आदि देव भगवान् विष्णु की शरण मैं ग्रहण करता हूँ ॥२७॥ जो शिव के स्वरूप की भक्ति करने वाला के लिए शिव स्वरूप में विद्यमान है और हरि का ध्यान करने वाले पुरपा के लिए विष्णु के स्वरूप में वतमान हैं । अपने भक्तों की भावना के तुल्य सकल्प के कारण से ही जो इस प्रकार के शरीर धारण किया करते हैं उन नित्य परमात्मा की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥२८॥

यः केशिहन्ता नरयान्तकश्च बालो धुजाग्रेण दधार गोघ्नम् ।  
 देव च भूभारविनोदशील त वासुदेव सतत नतोऽस्मि ॥२९॥  
 लेभेऽग्रतीर्थोऽग्रनृसिंहरूपी यो दैत्यवक्ष कठिन शिलावत् ।  
 विदार्य सारक्षितवान् स्वभक्त प्रह्लादभीश तमज नमामि ॥३०॥  
 व्योमादिभिर्भूषितमात्मसज्ज निरञ्जन नित्यमयेयतत्पम् ।  
 जगद्विधातारमवमक च पर पुराण पुरण नतोऽस्मि ॥३१॥  
 ✓ ग्रहोन्द्ररत्नानि नयामत्यगन्धर्वयक्षासुरदेवार्थं ।  
 स्वभूतिभेदै स्थित एव ईशान्त-मादिमात्मानमहं भजामि ॥३२॥  
 यातो भिन्नामिद सर्वं समुद्भूत स्थित च वै ।  
 यस्मिन्नेष्यति पश्चान्च तमस्मि शरणं गत ॥३३॥  
 यः स्थितो विश्वरूपेण सत्त्वोवाय प्रतीयत ।

असङ्गी परिपूर्णश्च तमस्मि शरणं गतः ॥३४॥  
 हृदि स्थितोऽपि यो देवो मायया मोहितात्मनाम् ।  
 न ज्ञायेत परः शुद्धस्तमस्मि शरणं गतः ॥३५॥

जो केशो नामक दैत्य का बध करने वाले हैं जो महान् अत्याचारी नरकासुर का सहार करने वाले हैं, और भक्तों की रक्षा हेतु जिनने वचपन में ही अपने हाथ की छोटी-सी अंगुली पर ही गोवर्धन पर्वत को उठा लिया था और जो भूमिदल के भार को हटाने के लिए विनोदपूर्ण स्वभाव वाले हैं, उन्हीं वसुदेवजी और देवकी के पुत्र भगवान् की मैं शरण लेता हूँ ॥२६॥ जिन प्रभु ने परम भयकर नृसिंह रूप में प्रकट होकर पापाण के तुल्य कठोर हिरण्यकश्यपु दैत्य का हृदय अपने नखों से विदीर्ण करके अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी उन उत्पत्ति से रहित भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२७॥ आकाश आदि की अनेक उपमाओं से विभूषित आत्मा की सजा वाले, नित्य निरजन, अप्रमेय तत्त्व से युक्त, जगत् के विधाता, कर्मों के फलादि बन्धन से शून्य-परम प्राचीन पुरुष भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥ ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि वामु, मनुष्य, यक्ष, असुर, देव-वृन्द आदि अपनी ही मूर्ति के भेदों से जो एक आदि आत्मा ईश्वर विराजमान हैं उनका मैं सेवन करता हूँ ॥३२॥ यह सम्पूर्ण विश्व की रचना का प्रयत्न जिनसे पृथक् है और समस्त प्रपञ्च जिनसे ही प्रकट हुआ है—जिनमें स्थित है और पीछे जिनमें ही मीन हो जाया करता है उन्हीं भगवान् की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥३३॥ जो इस विशाल विश्व के स्वरूप में विराजमान होने के कारण से लिप्त से प्राणित होने हैं किन्तु वास्तविकता से वह सदा निर्लेप और परिपूर्ण हैं उन्हीं परम प्रभु भगवान् की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥३४॥ जो परम विशुद्ध परमात्मा समस्त प्राणीमात्रों के अन्तःकरण में वर्तमान रहते हैं तथापि चित्त की माया से मोहित होने के कारण से

ही लिये पत्थर के तुल्य परम कठोर हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को विदीर्ण कर दिया था उन नृसिंह भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३६॥  
 जिनने अपने दो ही पदों से इस समस्त भूमण्डल को नापकर विरोचन के पुत्र महाबली दैत्यराज बलि से छीन कर ब्रह्मलोक का सम्पूर्ण राज्य देवगण को दे दिया था । उस अजित दामन भगवान् की मैं शरण लेता हूँ ॥४०॥ जिन्होंने हैहय वश वाले कात्तवीर्य अर्जुन के अपराध करने पर द्वाव्वीस बार क्षत्रियों का सहार किया था, उन जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४१॥ जिन्होंने त्रेता में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन चार स्वरूपों में प्रकट होकर बानरो की सेना बना कर राक्षसों की सेना का सहार किया था उन श्री राघवेन्द्र प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४२॥

भूतिद्वय समाश्रित्य भूभारमपहृत्य च ।

सजहार कुल स्वयस्त श्रोक्वणमह भजे ॥४३॥

भूम्यादिलोकत्रितय सतृप्तात्मानमात्मनि ।

पश्यन्ति निर्मल तमीशान भजाम्यहम् ॥४४॥

युगान्ते पापिनोऽशुद्धान् भित्त्वा तीक्ष्णसुधारया ।

स्थापयामास यो धर्मं कृतादौ त नमाम्यहम् ॥४५॥

एवमादीन्य कानि यस्य रूपाणि भूसुरा ।

न शक्यं परिसंख्यातु षोडशब्दरपि त भजे ॥४६॥

महिमानं तु यन्नान्न पर गन्तु मुनीश्वर ।

देवासुराश्च मनव कथं त दुल्लको भजे ॥४७॥

यन्ना श्रवणेनापि महापातकिनो नरा ।

पवित्रतां प्रपद्यन्ते तं कथं स्तौमि चात्पथी ॥४८॥

यथाकथञ्चिद्यन्नाग्नि कीर्तिते वा श्रुतेऽपि वा ।

पापिनस्तु विशुद्धा स्युः शुद्धा मोक्षमवाप्नुयुः ॥४९॥

जिन प्रभु ने कृष्ण और वलराम दो स्वरूपों को ध्याण करके पृथ्वी का भार उतारा था और अन्त में आपने यादव कुलका भी सहार करा दिया था उन भगवान् श्री कृष्ण की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥४३॥ जिनको भूलोक आदि तीनों भुवत निर्मल विशुद्ध अपने स्वरूप में तृप्त देखा करते हैं उन प्रभु का ही मैं भजन करता हूँ ॥४४॥ जो इस घोरतम कलियुग के अन्त में दुष्ट पापियों का तीक्ष्ण धार वाली तलवार से सहार करके सत्ययुग के आरम्भ काल में धर्म की स्थापना किया करते हैं उन्हीं भगवान् को सेवा में मैं अपना प्रणाम समर्पित करता हूँ ॥४५॥ हे विप्रो भगवान् के इस तरह मैं अनेकों ही स्वरूप हैं जिनकी गणना करोड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती है ऐसे भगवान् का मैं भजन किया करता हूँ ॥४६॥ बड़े से बड़े देवगण और महर्षि मनु भी जिनके नाम की महिमा का पार नहीं पा सकते हैं उनका मुझ जैसे क्षुद्र जीव क्या भजन स्मरण कर सकता है ॥४७॥ जिनके शुभ परम पावन नाम का श्रवण मात्र करने ही से महा पातकी मनुष्य भी अशुचिता का त्याग कर पवित्र हो आया करते हैं उन प्रभु की मैं अल्प बुद्धि वाला क्या स्तुति कर सकता हूँ ॥४८॥ जिन भगवान् के नाम का जैसे-तैसे भी कीर्तन करके या श्रवण करके महान् पापी एक दम विशुद्ध हो जाया करते हैं और शुद्ध होकर वे मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥४९॥

आत्मन्यात्मानमाधाय योगिनो गतकल्मषा ।

पश्यन्ति य ज्ञानरूप तमस्मि शरण गत ॥५०॥

साध्या सर्वेषु पश्यन्ति परिपूर्णत्मक हरिम् ।

समादिदेवमजर ज्ञानरूप भजाम्यहम् ॥५१॥

सर्वसत्त्वमय शान्त सर्वद्रष्टारमीश्वरम् ।

सहस्रशीर्षक देव वन्दे भावात्मक हरिम् ॥५२॥

यद्भूत यच्च वै भाव्य स्याच्चर जङ्गम जगत् ।



✓दशागुल योज्यतिष्ठत्तमीशमजर भजे ॥५३॥

अणोरणीयासमज महतश्च महत्तरम् ।

गुह्याद्गुह्यतम देव प्रणमामि पुन पुन ॥५४॥

ध्यात स्मृत पूजितो वा श्रुत प्रणमितोऽपि वा ।

स्वपद यो ददातीशस्त वन्दे पुरुषोत्तमम् ॥५५॥

इति स्तुवन्त परम परेश हर्षाम्बुसरुद्धविलोचनास्ते ।

मुनीश्वरा नारदसयुतास्तु सनन्दनाद्या प्रमुद प्रजग्मु ॥५६॥

य इव प्रातरुत्थाय पठेद्वै पौरुष स्तवम् ।

सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोक स गच्छति ॥५७॥

निष्पाप योगीजन अपने चित्त को आत्मा में समाग्न करके जिस ज्ञानस्वरूप ईश्वर का साक्षात्कार किया करते हैं उसी ईश्वर की मैं शरण को ग्रहण करता हूँ ॥५०॥ साख्यवादी लोग हरि को सबसे परिपूर्ण देखा करते हैं उन्ही आदि देव, अजर, अमर और ज्ञानस्वरूप ईश्वर की शरण मैं ग्रहण करता हूँ ॥५१॥ सर्व सत्त्वमय, शांत-स्वरूप, सबसे दृष्टा, सहस्रो शिर वाले भावात्मक श्रीहरि की मैं वन्दना करता हूँ ॥५२॥ जो भूत और भविष्यत् काल के स्वरूप वाले हैं, जो स्थावर ( धर ) और जङ्गम ( चर ) सम्पूर्ण जगत् में दश अगुल प्रमाण भूति में विद्यमान रहा करते हैं उन जरा रहित भगवान् विष्णु का मैं भजन करता हूँ ॥५३॥ जो सबत्र व्यापक होने के कारण से अणु से भी अणु है तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं और महान् से भी महान् हैं तथा गुह्य से भी परम गुह्य हैं । उन देव को मैं बारम्बार सादर प्रणाम समर्पित करता हूँ ॥५४॥ जो दयानु भगवान् केवल ध्यान करने पर, स्मरण करने पर, थढ़ा से यजन करने पर, सुनने और प्रणाम मात्र करने पर अपने लोक का निवास प्रदान कर दिया करते हैं उन्ही परम वारुणिक पुरुषोत्तम भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ ॥५५॥ हे मुनीश्वरो ! देवर्षि श्री नारद जो इस रीति से परश परमात्मा का

आदि की सृष्टि आदि काल में जिस प्रकार की थी उस सृष्टि की रचना का वर्णन आप मेरे समक्ष में कीजिए ॥१॥ श्री महा महर्षि सनकजी ने कहा—भगवान् नारायण अनन्त, अक्षर, निरञ्जन और सर्वव्यापी हैं । यह सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम जगत् उनसे ही व्याप्त है ॥२॥ स्वकीय तेज से ही प्रकाशित होने वाले जगन्मय महाविष्णु देव ने इस सृष्टि के आदि काल में गुणगान के भेद होने के अनुसार तीन मूर्तियों की रचना की थी ॥३॥ हे मुनिवर ! उस देवेश्वर ने अपने दक्षिण अङ्ग से प्रजापति ब्रह्मा जी को प्रकट किया था तथा अपने मध्याङ्ग से इस विश्व का सहार करने वाले ईशान रुद्रदेव को प्रकट किया था ॥४॥ इस सम्पूर्ण विश्व का पालन एवं संरक्षण करने के लिए अपने ही वयि अङ्ग से अविनाशी विष्णु को समुत्पन्न किया था । उन अजर अमर आदिदेव को ही कोई शिव नाम से पुकारते हैं । कोई महाविष्णु और कोई मदा मत्य ( विष्णु ) ब्रह्मा कहा करते हैं । इन्हीं भगवान् विष्णु देव की सर्वश्रेष्ठ शक्ति का ही प्रभाव है कि इस जगत् का उसी से सब कार्य चलता रहता है वही भाव और अभायात्मक दिद्या इस नाम से कही जाती है ॥५॥ जिस समय में यह विश्व विष्णु भगवान् से भिन्न प्रतीत होता है उस समय में वह शक्ति अरिष्टा के रूप में सिद्ध होकर दुःख का कारण हो जाता है ॥६॥

शतृग्नेषाछुपाधिस्ते यदा नश्यति नारत ।

सर्वरुभावना युद्धिः सा विद्येत्यभिधीयते ॥७॥

—एव माया महाविष्णोभिन्ना ससारदायिनी ।

अभेदबुद्ध्या दृष्टा चेत् ससारक्षयकारिणी ॥८॥

विष्णुशक्तिसमुद्भूतमेतत् सर्वं चराचरम् ।

यस्मादिभन्नमिदं सर्वं यच्चेद्भेद्यच्च नेद्भति ॥९॥

उपाधिभिर्यथाकाशो भिन्नत्वेन प्रतीयते ।

अविद्योपाधियोगेन तथेदमपि न जगत् ॥१०॥

यथा हरिर्जगद्व्यापी तस्य शक्तिस्तथा मुने ।

दाहशक्तिर्यथाङ्गारे स्वाश्रय व्याप्य तिष्ठति ॥१२

✓ उमेति केचिदाहुस्ता शक्ति सक्ष्मी तथा परे ।

भारतीत्यपरे चैना गिरिजेत्यम्बिकेति च ॥१३

दुर्गेति भद्रकालीति चण्डी माहेश्वरीत्यपि ।

कौमारी वैष्णवी चेति वाराह्यैन्द्री च शाम्भवी ॥१४

हे नारद । जिस समय मैं जाता और जेय की उपाधि विनष्ट हो जाती है और फिर सब को एक विचारने की बुद्धि उत्पन्न होजाया करती है वही अभेदमयी अवस्था विद्या कही जाती है ॥१॥ इस तरह से माया को विष्णु से भिन्न देखा जावे तो वह इस ससार में डालने वाली होती है और उसी को अभेद बुद्धि, ब्रह्म बुद्धि देया जावे तो वह ममार का क्षय करसे वाली हुआ करती है ॥६॥ यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् भगवान् विष्णु की शक्ति से ही प्रकट हुआ है और यह सम्पूर्ण जड जङ्गम जगत जो भी कुछ है वह सब विष्णु से भिन्न नहीं है ॥१०॥ घर, भवन, मठ आदि अनव उपाधियों से यह आकाश भी मठाकाश प्रभृति भिन्न २ दिखाई देता है ऐसे ही अविद्या रूपी उपाधि के योग से यह सम्पूर्ण जगत् भिन्न दीख पड़ता है किन्तु वास्तव में यह यह सभी पृष्ठ विष्णुमय है ॥११॥ हे मुनिवर । जिस प्रकार से श्रीहरि जगत् में व्यापक हैं उमी भाँति उनकी शक्तियाँ भी जगद व्यापिनी होती हैं । देखने में आता है कि अग्नि की दाह शक्ति के स्वरूप को कोई जड़मी तो कोई उमा एष मरम्बती कहा करते हैं । कोई २ इसी को गिरिजा जगन्ना जगदम्बा भी कहते हैं ॥१३॥ इसी शक्ति को कोई २ दुर्गा, भद्रका जी, माहेश्वरी, चण्डी, कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, वाराही और शाम्भवी कहा करते हैं ॥१४॥

ग्राह्येति विद्याविद्येति मायेति च तथा परे ।

प्रवृत्तिश्च परा चेति वदन्ति परमर्षय ॥१५

शेषशक्ति परा विष्णोर्जगत्सर्गादिकारिणी ।  
 व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण जगद्व्याप्य व्यवस्थिता ॥१६॥  
 प्रकृतिश्च पुमाश्चैव कालश्चेति विधिस्यतिः ।  
 सृष्टिस्थितिविनाशानामेक कारणता गतः ॥१७॥  
 येतदमखिल जात ब्रह्मरूपधरेण वै ।  
 तस्मात् परतरो देवो नित्य इत्यभिधीयते ॥१८॥  
 रक्षा करोति यो देवो नित्य इत्यभिधीयते ॥१९॥  
 रक्षा करोति यो देवो जगता परतः पुमान् ।  
 तस्मात् परतर दत्तदव्यय परम पदम् ॥२०॥  
 अक्षरो निर्गुणः शुद्धः परिपूर्णः सनातनः ।  
 यः परः कालरूपाख्यो योगिध्येयः परात्परः ॥२१॥  
 परमात्मा परामन्दः सर्वोपाधिविवर्जितः ।  
 ज्ञानैकवेद्य परमः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥२२॥

कतिपय लोग इसी शक्ति को ब्राह्मी विद्या और अविद्या माया कहते हैं । कुछ श्रेष्ठ ऋषिगण इस को परा तथा प्रकृति कहा करते हैं ॥१५॥ यह भगवान् विष्णु की परम श्रेष्ठ परा शक्ति ही इस विश्व की रचना आदि का कार्य किया करती है और यह प्रकट एवं अव्यक्त रूप से इस जगत् में व्याप्त होकर स्थित रहा करती है ॥१६॥ एक भगवान् विष्णु ही सविधि जगत् में स्थित होकर प्रकृति-पुरुष और जगत् के रूप से जगत् की सृष्टि, स्थिति और महार के कारण हुआ करते हैं ॥१७॥ कारण यह है कि ब्रह्म के स्वरूप को धारण करने वाले परमात्मा ही से यह सम्पूर्ण विश्व प्रादुर्भूत हुआ है । अतएव यह परम श्रेष्ठ शिरोमणि देव नित्य बहे जाया करते हैं ॥१८॥ यही देव रक्षा किया करते हैं अतएव नित्य बहे जाया करते हैं ॥१९॥ जो देव पर भेद बुद्धि से जगत् की रक्षा किया करते हैं इसी कारण से वे परम श्रेष्ठतम अव्यय परम पद होते हैं ॥२०॥ जो निर्गुण, अक्षर शुद्ध परि-

पूर्ण और सनातन हैं योगीजन काल के स्वरूप से जिस परम श्रेष्ठ का ध्यान किया करते हैं वह परमानन्द स्वरूप परमात्मा समस्त उपाधियों से रहित है और वे एकमान ज्ञान के द्वारा ही जाने जाया करते हैं और वे सच्चिदानन्द विग्रह वाले हैं ॥२१॥२२॥

योऽसौ शुद्धोऽपि परमो ह्यहङ्कारेण संयुतः ।  
 देहीति प्रोच्यते मूढैरहोऽज्ञानविडम्बनम् ॥२३॥  
 स देव परम शुद्ध सत्त्वादिगुणभेदतः ।  
 मूर्तिप्रयः समापन्न सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥२४॥  
 योऽसौ ब्रह्मा जगत्कर्ता यन्नाभिव्यक्तलोदभवः ।  
 स एवानन्दरूपात्मा तस्मान्नास्त्यपरो मुने ॥२५॥  
 अन्तर्यामी जगद्व्यापी सर्वसाक्षी निरञ्जनः ।  
 भिन्नाभिन्नस्वरूपेण स्थितो वै परमेश्वर ॥२६॥  
 यस्य शक्तिर्महामाया जगद्विस्मयप्रधारिणी ।  
 विश्वोत्पत्तेर्निदानत्वात्प्रकृतिः प्रोच्यते बुधैः ॥२७॥  
 आदिसर्गे महाविष्णोर्लोकान्कर्त्ता समुद्यतः ।  
 प्रकृतिं पुरुषश्चेति कालश्चेति त्रिधा भवेत् ॥२८॥

परमात्मा का स्वरूप परम शुद्ध है तथापि अहङ्कार से संयुक्त होने के कारण मूढ़ पुरुष उसको देहधारी समझा करत हैं । यह केवल अज्ञान की ही एक विडम्बना मात्र है ॥२३॥ वे परम शुद्ध भगवान् विष्णुदेव ही सत्त्वादि तीनों गुणों के द्वारा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन स्वरूपा की मूर्तियाँ धारण करने इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और गटार का कारण हुआ करत हैं ॥२४॥ हे मुनिवर ! इस जगत् का सृजना करने वाले ब्रह्माजी जिन भगवान् की नाभि कमल में समुत्पन्न हुए हैं वही परमानन्द स्वरूप विष्णु ही हैं क्या कि उन से श्रेष्ठ अन्य कोई हो ही नहीं सकता है ॥२५॥ वे भगवान् परम ईश्वर, सर्वान्तर्यामी, जगत् व्यापी, सर्व साक्षी तथा निरञ्जन हैं । वे उपाधियों के

भेद होने के कारण सब से भिन्न और निरुपाधि स्वरूप से अभिन्न स्वरूप में स्थित रहते हैं ॥२६॥ उन की महामाया शक्ति से इस जगत् में विश्वास हुआ करता है और इस विश्व की उत्पत्ति का वही मूल कारण है अतएव विद्वान् लोग उसको 'प्रकृति'—इस नाम से कहा करते हैं ॥२७॥ जिस समय में सृष्टि का आदि काल था और महा-विष्णुदेव इस विश्व की रचना करने के लिए उद्यत हुए थे । उस समय में वे ही प्रकृति और पुरुष कारण के स्वरूप से तीन स्वरूप वाले भागों में बँट गये थे ॥२८॥

पश्यन्ति भावितात्मानो य ब्रह्मेत्यभिसंज्ञितम् ।

शुद्ध यत्परमा धाम तद्विष्णो परमा पदम् ॥२९॥

एव शुद्धोऽक्षरोऽनन्त कालरूपी महेश्वर ।

गुणरूपी गुणाधारो जगतामादिकृद्विभु ॥३०॥

प्रकृति क्षोभमापन्ना पुरुषाख्ये जगद्गुरौ ।

महान्प्रादुरभूदबुद्धिस्ततोऽहं समवर्त्तत ॥३१॥

अहङ्काराच्च सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।

तन्मात्रेभ्यो हि जातानि भूतानि जगतः कृते ॥३२॥

आकाशवाय्वग्निजलभूमयोऽङ्गभवात्मज ।

यथाक्रमं कारणनामेकैकस्योपयान्ति च ॥३३॥

ततो ब्रह्मा जगद्धाता तामसानसृजत्प्रभु ।

तिर्यग्योनिगताञ्जन्तून्पशुपक्षिमृगादिकान् ॥३४॥

तमप्यसाधकं भत्वा देवसर्गं सनात्नात् ।

ततो वै मानुषं सर्गं कल्पयामास पदमज ॥३५॥

जिनका अन्तःकरण परम पवित्र है, वे लोग जिसका ब्रह्म के स्वरूप में देखा करते हैं, जो परम विष्णु धाम है वही भगवान् विष्णु-देव वा परम पद होता है । इस रीति से यह समझ लेना चाहिये कि विभु, शुद्ध, अक्षर, अनन्त काल रूपधारी महेश ही गुणों के रूप वाली

एव गुणो वा आश्रय होकर आदि काल में इस जगत् का सृजन किया करते हैं ॥२६-३०॥ जगत् गुरु पुरुष नामधारी में क्षोभ होने पर ही प्रवृत्ति उत्पन्न या प्रादुर्भूत हुआ करती है। उम प्रवृत्ति से महत् उत्पन्न होता है, महत् से बुद्धि और बुद्धि में अहङ्कार की उत्पत्ति हुआ करती है ॥३१॥ इस अहङ्कार से मूढम तन्माश्राये समुत्पन्न हुआ करती है, इन्द्रियां होती है और जगत् के मिये उन तन्माश्राओं से ही भूतो की उत्पत्ति हुआ करती है ॥३२॥ हे ब्रह्मपुत्र ! इन भूतो में भी आकाश, वायु, अग्नि, जल ये सभी क्रमशः एव-एक के कारण अर्थात् उत्पादक हुआ करते हैं और उसी क्रम में ये तीन भी हो जाया करते हैं ॥३३॥ इन आकाशादि पाँच महाभूतों की रचना करने के पीछे इस जगत् के धाता ब्रह्माजी ने तिर्यक् योनियों में रहने वाले पशु पक्षी आदि तमोगुण प्रधान प्राणियों की सृष्टि की थी ॥३४॥ किन्तु जब ब्रह्माजी ने देखा कि इनकी सृष्टि से स्वर्ग के कार्य का साधन सम्पन्न सम्पन्न नहीं हो सकता है तब फिर उन्होंने देवभागों की रचना की थी और सनातन पुरुष से ही मिलने वाली मनुष्यों की सृष्टि की थी ॥३५॥

ततो दक्षादिवान्पुत्रान्मृष्टिसाधनतत्परान् ।

एभिः पुत्रैरिदं व्याप्तं सदेवानुरमानुषम् ॥३६॥

भूर्भुवश्च तथा म्वश्च महश्चैव जनस्तथा ।

तपश्च गत्यमित्येव लोकाः सत्योपरि स्थिताः ॥३७॥

अतदा वितलं चैव मुतलं च तलातलम् ।

महाननं च विप्रेन्द्र ततोऽधश्च रमातलम् ॥३८॥

पातालं चेति मप्तेव पानानानि क्रमादथ ।

एष मर्षेण नोनेन नोरनायाशनं गृष्टमात् ॥३९॥

पुत्राणान्नदीश्चागौ तत्तनोननिवासिनाम् ।

यत्तानानीनि भव्यानि यमायोग्यगन्तव्यम् ॥४०॥

भूताने मध्यगो मेरुः सर्वदेवममाध्वनः ।

लोकालोकश्च भूम्यन्ते तन्मध्ये सप्त सागराः ॥४१॥

द्वीपाश्च सप्त विप्रेन्द्र द्वीपे द्वीपे कुलाचलाः ।

वाह्या नद्यश्च विख्याता जनाश्चामरसन्निभाः ॥४२॥

इसके अनन्तर दक्ष आदि मानस पुत्रों की सृष्टि की थी जो उनकी रचना के कार्य में साधन होकर तत्पर होगये थे । उन्हीं पुत्रों के द्वारा सन्तान-प्रसन्तान के स्वरूप से समस्त देव, असुर और मनुष्यों का समुदाय से यह भगवान् व्याप्त हो रहा है ॥६६॥ इसके पश्चात् फिर ब्रह्माजी ने भू, भुवः, स्वः, मह, जन, तप और सत्य इन सात लोकों की रचना की थी, जो कि सत्य पर प्रतिष्ठित हैं ॥३७॥ हे विप्रेन्द्र ! फिर अतल, वितल, सुतल, महातरा और इसके भी अधोभाग में रसातल तथा उसके भी नीचे पाताल लोक की रचना की थी । ये सभी क्रम से एक के नीचे एक हैं और नीचे होने के कारण सात पाताल कहे जाते हैं । इसके उपरान्त विधाता ने इन सब लोकों के स्वामियों की रचना की थी ॥२७-३६॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा ने कुलाचल नदी तथा प्रत्येक लोक के लायक वर्तन, व्यापार और जीविका आदि की जैसी जहाँ होनी चाहिये उसी के अनुसार रचना की थी ॥४०॥ इस भूमण्डल के मध्य में मेघ पर्वत है इसी पर्वत पर समस्त देवगणों का निवास रहता है । इस भूलोक के अन्त में लोकालोक पर्वत है और इस भूलोक में सात समुद्र हैं ॥४१॥ हे विप्रवर ! इस लोक में सप्त द्वीप हैं और प्रत्येक द्वीप में कुल पर्वत स्थित हैं । इनके बाहिर के भाग में परम प्रसिद्ध नदियाँ भी हैं और यहाँ पर निवास करने वाले मनुष्य देवों के ही सदृश हुआ करते हैं ॥४२॥

जम्बूद्वीपक्षेत्राभिधानी च शात्मलश्च बुधस्तथा ।

क्रीड्यशाखी पुष्करश्च ते सर्वे देवभूमयः ॥४३॥

एते द्वीपा समुद्रान्तु सप्तसप्ताभिगवृताः ।

सवर्णेशुगुरामपिदंघ्रिहीरजस्तं ममम् ॥४४॥



एते द्वीपा समुद्राश्च पूर्वस्मादुत्तरोत्तराः ।

त्रेधा द्विगुणविस्तारा लोकालोकान्च पर्वतात् ॥४५॥

क्षारोदधेरुत्तर यद्विमाद्रेश्चैव दक्षिणाम् ।

त्रेय तद्भारतावर्षं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥४६॥

अत्र कर्माणि कुर्वन्ति विविधानि तु नारद ।

तत्फलं भुज्यते चैव भोगभूमिधनक्रमात् ॥४७॥

✓ भारते तु कृतं कर्म शुभं वाशुभमेव च ।

तत्फलं क्षयि विप्रन्द्र भुज्यतेऽन्यत्र जन्तुभिः ॥४८॥

अद्यापि देवा इच्छन्ति जन्मं भारतभूतले ।

सञ्चितं सुमहत्पुण्यमक्षय्यमलं शुभम् ॥४९॥ ✓

उन सात द्वीपों के नाम जम्बूद्वीप, प्लक्ष द्वीप, शात्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीप हैं । ये सभी द्वीप देवभूमि कहे जाते हैं ॥ ४५॥ ये सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे स्थित हैं । इन सातों समुद्रों के नाम भी क्षार ( लवण ) सागर, इक्षु, सुरा, घृत, दधि और क्षीर ( दूध ) तथा जल के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनमें सुरा आदि ही पृथक् पृथक् भरा हुआ है । ये सब द्वीप और सागर क्रमशः एक दूसरे के आगे २ ही स्थित रहते हैं । इसका विस्तार भी एक दूसरे का क्रम से दुगुना रहा करता है । यह लोकालोक पर्वत तक स्थित है ॥४४-४५॥ लवण समुद्र के उत्तर दिग्भाग में तथा हिमाचल पर्वत के दक्षिण दिग्भाग में भारतवर्ष है । यह भारतवर्ष सब प्रकार के कृत कर्मों का फलदाता वर्ष है ॥४६॥ हे नारद ! इस भारतवर्ष में मनुष्य निर्य-नैमित्तिक और काम्य ( कामना से युक्त ) इन तीनों प्रकार के कर्मों को किया करते हैं क्योंकि यही कर्मक्षेत्र या कर्मों के करने की भूमि है । वे सभी भोग भूमि तथा धन के स्वरूप में उन कर्मों का फल वा भी उपभोग किया करते हैं ॥४७॥ हे विप्र शिरोमणि ! इस भारतवर्ष की भूमि में जो भी शुभाशुभ कर्म सम्पन्न किया जाया करता है उसका

मान् ही होता है और प्राणी उनको स्वर्ग एवं नरक आदि दूसरे जागो में जाकर भोगा करते हैं ॥४८॥ इसी कारण से देवगण आज तक भी इस भारत देश की भूमि में जन्म ग्रहण करने के लिये परम इच्छुक रहते हैं । कारण यही है कि इस भारत में बहुत बड़े अक्षय निमल एवं परम शुभ पुण्य एवं फल का संचय किया जा सकता है ॥४९॥

कदा लभामहे जन्म वर्षभारतभूमिषु ।

कदा पुण्येन महता यास्याम परम पदम् ॥५०॥

दानैर्वा विविधैर्यज्ञैस्तपोभिर्वायवा हरिम् ।

जगदीश समेप्यामो नित्यानन्दमनामयम् ॥५१॥

यो भारतभुव प्राप्य विष्णुपूजापरो भवेत् ।

न तस्य सदृशोऽप्योऽस्ति त्रिषु लोकेषु नारद ॥५२॥

हरिकीर्तनशीलो वा तदभक्ताना प्रियोऽपि वा ।

शुश्रूजुर्वापि महत स वेद्यो दिग्विजैरपि ॥५३॥

हरिपूजारतो नित्य भक्त पूजारतोऽपि वा ।

भक्तोच्छिष्टान्सेवी च याति विष्णो पर पदम् ॥५४॥

नारायणेति कृष्णेति वासुदेवेति यो वदेत् ।

अहिंसादिपर शान्त सोऽपि बन्ध सरोत्तमै ॥५५॥

शिवेति नीलकण्ठेति शङ्करेति च य स्मरेत् ।

सर्वभूतहितो नित्य सोऽभ्यर्च्यो दिविजै स्मृत ॥५६॥

इसी कारण से देवगण यही सोच करते हैं कि कौन सा ऐसा सुसमय होगा कि हम लोग भारत में जन्म ग्रहण करेंगे और वही परम पुण्यमय कर्मों का करके परम पद प्राप्ति का लाभ लेंगे ॥५०॥ देवगणों का सदा यही चिन्तन बना रहा करता है कि जब हम अनेक प्रकार के दान, यज्ञ और तपश्चर्या भारत में करके फिर नित्यानन्द स्वरूप—अनामय जगत् का ईश्वर भगवान् विष्णु को प्राप्त करेंगे ।

क्यों कि स्वर्गादि लोक तो केवल भोग भूमि मात्र हैं । कर्मभूमि तो यह भारत देश ही है ॥५१॥ हे नारद ! जो प्राणी इस परम पवित्र भारत की धरातल में जन्म ग्रहण कर भगवान् विष्णु के अर्चन में तत्पर रहता है उसकी समानता रखने वाला वैलोक्य में अन्य कोई भी नहीं हो सकता है ॥५२॥ जो श्री हरि के कीर्तन करने के स्वभाव वाला होता है और जो विष्णु के भक्तों का प्यारा होता है एवं अपने बड़ों की सेवा करने की इच्छा रखता है उस मनुष्य की देवगण भी बन्दना किया करते हैं ॥५३॥ भगवान् विष्णुदेव की अर्चना में परायण होकर विष्णु-भक्त होता हुआ पूजा में तत्पर और भक्त के उच्छिष्ट अन्न अर्थात् शेष का जो सेवन करता है वह विष्णु के पद की प्राप्ति करता है ॥५४॥ जो अहिंसा आदि धर्म के गुणों में सदा तत्पर रहकर शम प्रभृति का पूर्ण-तया परिपालन किया करता है और नारायण, कृष्ण, वासुदेव आदि भगवान् के परम पुनीत नामों का कीर्तन करता है उस की भी देवगण पूजा किया करते हैं ॥५५॥

गुरुभक्त, शिवध्यानी स्वाश्रमाचारतत्परः ।

अतसूयुः शुचिर्दक्षो यः सोऽप्यर्च्यः सुरेश्वरैः ॥५७॥

ब्राह्मणानां हितकरः श्रद्धावान्वर्णधर्मयोः ।

वेदवादरतो नित्यं स ज्ञेयः पक्तिपावनः ॥५८॥

अभेददर्शी देवेशे नारायणशिवात्मके ।

सर्वं यो ब्रह्मणा नित्यमस्मदादिषु का कथा ॥५९॥

गोषु क्षान्तो ग्रहाचारी परं निन्दाविवर्जितः ।

अपरिग्रहशीलश्च देवपूज्यः स नारद ॥६०॥

स्तेयादिदोषविमुखः कृतज्ञः सत्यनाक् शुचिः ।

परोपकारनिरतः पूजनीयः सुरासुरैः ॥६१॥

वेदार्थश्रवणे बुद्धिः पुराणश्रवणे तथा ।

सत्समेऽपि च यस्यास्ति सोऽपि बन्धुः सुरोत्तमैः ॥६२॥

एतमादीन्यनेकानि कर्माणि श्रद्धयान्वित ।

करोति भारते वर्षे सम्बन्धीऽस्माभिरेव च ॥६३॥

जो मनुष्य अपने बड़ों का परम भक्त होता है, शिवदेव का ध्यान किया करता है जो वर्णाश्रम धर्मों का पूर्णतया परिपालन करने वाला है, जो किसी भी प्राणी से डाह नहीं किया करता है, पवित्र एवं चतुर होता है उस की बेवराज इन्द्रदेव पूजा किया करते हैं ॥५७॥ जो मनुष्य ब्राह्मणों का सदा हित सम्पादन किया करता है—जो वर्णाश्रम के धर्मों में श्रद्धा रखता है जो सर्वदा वैदिक सिद्धान्तों का विचार रखता है उसको पक्ति पावन समझना चाहिये ॥५८॥ जिसकी देवेश्वर नारायण और देवों में महान् थी शिव में अभेद दृष्टि हुआ करती है, जो सब में ब्रह्म की सम्पन्नता को देखा करता है उस मनुष्य की गणना हम लोगो में क्या हो सकती है वह तो हम सब से भी परम श्रेष्ठ होता है ॥५९॥ हे नारद ! गौजो पर सर्वदा दया की भावना रखने वाला, ब्रह्मचर्य का पालक, दूसरों की निन्दा से रहित, दान ग्रहण न करने वाला पुरुष होता है वह देवमणों का भी परम पूज्य होजाया करता है ॥६०॥ चोरी आदि के महान् दोषों से रहित, कृतज्ञ, सत्य भाषण करने वाला, परम पवित्र और सर्वदा परोपकार करने में तत्पर रहने वाला व्यक्ति देशताम्रों के द्वारा भी पूजनीय हुआ करता है तथा हमकी देवमण ही नहीं अमुर भी अर्चना किया करते हैं ॥६१॥ जो वैदिक सिद्धान्तों के श्रवण करने में और उनको समझने के लिए उत्सुकता रखता है और पुराणों के श्रवण में भी उत्कृष्ट रखता है तथा सत्पुरुषों की सद्गति में जिस की लगन लगी रहती है उस पुरुष की बड़े २ देवागण की वन्दना किया करते हैं ॥६२॥ इस रीति से इस भारत भूमि में मनुष्य श्रद्धा के साथ विविध भांति के सत्कर्म कर सकता है और सत्कर्मों के कारण से ही उसका हम देवों से भी गदा सम्बन्ध बना रहा करता है ॥६३॥

एतेष्वन्यतमो विप्र नात्मान तारयेत्तु य ।  
 स एव दुष्कृतिर्मूर्खो नास्त्यन्योऽस्मादचेतन ॥६४॥  
 सप्राप्य भारते जन्म सत्कर्मसु पराङ्मुख ।  
 पीयूष कलश मुक्त्वा विपभाण्डमुपाश्रित ॥६५॥  
 श्रुतिस्मृत्युदितेर्द्धर्मेनत्मान पावयेत्त य ।  
 स एवात्मविधाती स्यात्पापिनामश्रणीर्मुने ॥६६॥  
 कभूमि समासाद्य या न धर्म समाचरेत् ।  
 स च सर्वाधम प्रोक्तो वेदविदिभर्मुनीश्वर ॥६७॥  
 शुभ कर्म समुत्सृज्य दुष्कर्माणि करोति य ।  
 कामधेनु परित्यज्य अर्कक्षोर स मार्गति ॥६८॥  
 एव भारतभूभाग प्रशसन्ति दिवौकस ।  
 ब्रह्माद्या अपि विप्रेन्द्र स्वभोगक्षयभीरव ॥६९॥  
 तस्मात्पुण्यतम ज्ञेय भारत वर्षमुत्तमम् ।  
 देवाना दुर्लभ वापि सर्वकर्मफलप्रदम् ॥७०॥

हे विप्रवर ! जो यहाँ पर जन्म पाकर भी किसी भी एक कर्म का सम्पादन न कर अपनी आत्मा को नास्तारिख बन्धन के भय से विमुक्त नहीं करता है वह महान् दुष्कर्मी एव अत्यन्त ही मूर्ख है । उसके समान अन्य कौन जड़ हो सकता है जिसे यहाँ जन्म पाकर भी आत्म-कल्याण करने का सुयोग न बन सके ॥६४॥ जो इस महा महिमानयी भारत की धरा में जन्म ग्रहण करके भी सत्कर्मों से परागमुखता रहा करता है वह पीयूष से पूर्ण कलश का त्याग कर विपपात्र को ही अपने मुख में डालना चाहता है ॥६५॥ जो वेद और स्मृतियों में बताये हुए धर्म कर्मों से अपनी आत्मा को निर्मल, निष्पाप और पवित्र नहीं करता है वह है मुनिवर । बात्मा का ही घात करन वाला और महा पापिया का सरदार समझना चाहिए ॥६६॥ हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य इस

कर्म भूमि भारतवर्ष में जन्म ग्रहण करके भी वेदविहीन धर्मों का समाचरण नहीं करता है वेद के ज्ञाता मनीषियों ने उसको सबसे निकृष्टतम एवं अधम बताया है ॥६७॥ जो मनुष्य परम शुभ कर्मों का त्याग करके दुष्कर्मों के करने में ही अपनी प्रवृत्ति रखता है उस ऐसा ही समझ लेना चाहिये जैसे कोई प्राप्त हुई कामधेनु को छोड़ कर आक के दूध की खोज कर रहा हो ॥६८॥ हे मुनीन्द्र ! अपने कृत कर्मों के भोग के लक्ष्य होने से भयभीत होने वाले ब्रह्मा प्रभृति देवगण भी इस तरह से इस भारतभूमि की प्रशंसा किया करते हैं ॥६९॥ इत्य-  
लिय इस भारतभूमि को अवश्य ही परम पुण्य पूर्ण समझना चाहिए । यह देवों को भी परम दुर्लभ एवं सभी कर्मों का प्रदान करने वाली भूमि है । अन्य लोक तो केवल भोग करने के ही दोष होने के कारण कुछ भी फल देने में असमर्थ हुआ करते हैं ॥७०॥

अस्मिन्पुण्ये च भूभागे यस्तु सत्कर्मसूद्यत ।  
न तस्य सहस्र कश्चित्त्रिपु लोकेषु विद्यते ॥७१॥  
अस्मिञ्जाती नरो यस्तु स्वकर्मक्षपणोद्यत ।  
नरहृपपरिच्छन्न स हरिर्नास्ति संशय ॥७२॥  
पर लोकफल प्रेप्सु कुर्यात्कर्मण्यतन्द्रित ।  
निवेद्य हरये भक्त्या तत्फल ह्यक्षय स्मृतम् ॥७३॥  
विरागी चेत्कर्मफलेष्वपि किञ्चिन्न कारयेत् ।  
अर्पयत्सुष्ठुत कर्म प्रीयतामिति मे हरि ॥७४॥  
आग्रह्यमुक्ताल्लोका पुनरुत्पत्तिदायवा ।  
पराशृणु कर्मणा तप्राप्नोति परम पदम् ॥७५॥  
वेदादितानि कर्माणि कुर्यादीश्वरतुष्टये ।  
यथाश्रम त्यक्तुकाम प्राप्नोति पदमव्ययम् ॥७६॥  
निष्कामो वा मकामो वा कुर्यात्कर्म यथाविधि ।  
स्वाश्रमाचारशून्यश्च पतित प्राच्यते बुधै ॥७७॥

जो मनुष्य इस महान् पुण्यमय भूमण्डल में आकर सदा सत्कर्म करने के लिये समुद्यत रहा करते हैं उसकी समता रखने वाला प्रेलोवय में भी अन्य कोई भी नहीं होता है ॥ ७१ ॥ जो मनुष्य इस पुण्यमयी भारतवर्ष की भूमि में अपना जन्म पाकर अपने कृतकर्मों को क्षीण करने के लिये उद्यत रहना है उसको मनुष्य के स्वरूप में रहने वाला समावृत साक्षात् श्री हरि ही समझना चाहिये ॥ ७२ ॥ तन्मा और आलस्य से रहित होकर जो परलोक के फल की कामना करते हुये कर्म करता है वह भक्तिभाव से भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिये कार्य करें तो उसका फल अक्षय हुआ करता है ॥ ७३ ॥ जो कर्मों के फल पाने में राग से रहित हो और कर्मों के फल प्राप्त करने की कुछ भी इच्छा न करे और यही भावना रखे कि मेरे इस कर्म से भगवान् प्रसन्न हों ऐसी नजर अपने कर्मको भगवान् के ही चरणों में समर्पित कर देवे ॥ ७४ ॥ ब्रह्म लोक पर्यन्त सभी लोक कर्मों के फल को प्रदान करने वाले एवं पुनर्जन्म देने वाले होते हैं । किन्तु जो मनुष्य अपने कृतकर्मों का फल प्राप्त करना ही नहीं चाहता है उसी को पुनरावर्तन शीलता से रहित परम प्रतिष्ठित पद प्राप्त हुआ करता है ॥ ७५ ॥ भगवान् को परम प्रसन्न करने के लिये कर्मों का सम्पादन करना चाहिये । जो फलाभिलाषा को पूर्णतया परित्याग करके अपने आश्रय के अनुकूल कर्म किया करता है ॥ ७६ ॥ चाहे कोई भी कर्म कामना से रहित हो या सकाम हो उनका सम्पादन मन्त्रा शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ही करना चाहिये । जो अपने आश्रय के नियत आचार का परिपालन पूर्ण रूप से नहीं करता है विद्वान् लोग उसको पतित कहा करते हैं ॥ ७७ ॥

सदाचारपरो विप्रो वदन्ते ब्रह्मतेजसा ।

तस्य विष्णुश्च तुष्टः स्यादभक्तियुक्तस्य नारदः ।

भारते जन्म संप्राप्य नात्मानं तारयेत् यः ।

पच्यते निरये घोरे स त्वाचन्द्रार्कतारकम् ॥ ७८ ॥

वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपर तपः ।

वासुदेवपर ज्ञान वासुदेवपरा गतिः ॥८०॥

वासुदेवात्मक सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।

आब्रह्मास्तम्बपर्यन्त तस्मादन्यन्न विद्यते ॥८१॥

स एव धाता त्रिपुरान्तकश्च स एव देवासुरयज्ञरूपः ।

स एव ब्रह्माण्डमिदं ततोऽन्यन्न किञ्चिदस्ति व्यतिरिक्तरूपम् ८२

यस्मात्पर नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मादणोयान्न तथा महीयान् ।

व्याप्त हि तेनेदमिदं विचित्रं तं देव-देव प्रणमेत्समीड्यम् ॥८३॥

हे नारद ! जो ब्राह्मण सदा आचरण करने वाला है उसका ब्रह्मतेज सर्वदा बढता ही रहा करता है और ऐसे भक्तिमान् पुरुष पर भगवान् श्री विष्णु परम प्रसन्न रहा करते हैं और उनकी प्रसन्नता का होना ही मानव जीवन की परम सार्थकता है ॥७८॥ जो मनुष्य इस देव दुर्लभ परम पावन भारत की भूमि में जन्म ग्रहण करके भी अपनी आत्मा का उद्धार नहीं किया करता है वह इस भूमण्डल में चन्द्र, सूर्य विराजमान रहा करते हैं उस सुदीर्घकाल तक अत्यन्त घोर दुःख प्राप्त करता रहा करता है ॥७९॥ जो धर्म तथा तप-ज्ञान और सज्जति है इन सबका भगवान् विष्णु से ही सम्बन्ध होता है ॥८०॥ यहाँ पर ब्रह्मा जी से आरम्भ करके एक जड़, ठूँट तक सबका स्वरूप चाहे कोई स्थावर हो या जगम हो भगवान् का ही स्वरूप समझना चाहिये क्योंकि उन प्रभु के व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ॥ ८१ ॥ जितने भी ब्रह्मा—शिव आदि देवगण हैं तथा यक्ष और असुर वृन्द हैं और यह समस्त ब्रह्माण्ड जो भी कुछ है उन्ही का विभिन्न स्वरूप में दिखाई देने वाला रूप होता है क्योंकि उनसे भिन्न तो अन्य वही भी कुछ होता ही नहीं है ॥८२॥ जिस भगवान् से न कोई पर है—न अपर ही है । न जिन प्रभु से कोई छोटा है और न बड़ा है—यह अनेक प्रकार का सम्पूर्ण जगत् उनके ही विभिन्न स्वरूपों से



व्याप्त है उन्ही परम पूजा करने के योग्य देव को प्रणाम करना चाहिये ॥८३॥

## मृकण्डु मुनि को भगवान् का वर देना

श्रद्धापूर्वा सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदा ।

श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुप्यते हरि ॥१॥

भक्तिर्भक्त्यैव कर्तव्या तथा कर्माणि भक्तिन ।

कर्मश्रद्धाविहीनानि न सिध्यन्ति द्विजोत्तमा ॥२॥

यथाऽऽलोको हि जन्तूना चेष्टाकारणता गत ।

तथैव सबसिद्धोना भक्ति परमकारणम् ॥३॥

यथा समस्तलोकाना जीवन सलिल स्मृतम् ।

तथा समस्तसिद्धोना जीवन भक्तिरिष्यते ॥४॥

यथा भूमि समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तव ।

तथा भक्ति समाश्रित्य सर्वकार्याणि साधयेत् ॥५॥

श्रद्धावाँल्लभते धर्म श्रद्धावान्मोक्षमाप्नुयात् ।

श्रद्धया साध्यते काम श्रद्धावान्मोक्षमाप्नुयात् ॥६॥

न दानैर्न तपोभिर्वा यज्ञैर्वा बहुदक्षिण ।

भक्तिहीनैर्मुनिश्रेष्ठ तुप्यते भगवान्हरि ॥७॥

महा महर्षि श्री सनकाचार्य ने कहा—यदि सम्पूर्ण धर्म-वृत्त्य यदि परम श्रद्धा के सहित किये जाते हैं तो वे सब मनोरथों का अवश्य ही सफल किया करते हैं । श्रद्धा ही मे सब कुछ सिद्ध हुआ करता है । बिना श्रद्धा के चाहे सभी कुछ किया जावे निष्फल है । श्रद्धा ही ऐसी है जिसके रहने से भगवान् भी प्रसन्न हो जाया करते हैं ॥१॥ भगवान् की भक्ति के सभी कार्य श्रद्धा पूर्वक करे क्योंकि जा कर्म श्रद्धा से रहित हाते हैं उनके करने से कुछ भी मिडि नहीं हुआ करती है ॥२॥ जिस प्रकार मे समस्त प्राणियों की चेष्टा का कारण प्रणय होता है ठीक उसी भाँति भक्ति भी समस्त कर्मों की सिद्धि प्राप्ति करने का परम कारण है । जैसे प्रकाश होने पर सब कर्म

कर्म किये जा सकते हैं वैसे ही भक्तिपूर्वक ही सम्पूर्ण कर्म सिद्धिप्रद होते हैं ॥३॥ जिस तरह से जल सभी लोको का जीवन है उसी तरह से भक्ति भी समस्त शक्तियों का जीवन होती है इसके बिना सभी कर्म निष्प्राण होते हैं ॥४॥ जिस प्रकार से इस पृथ्वी का समर्थन ग्रहण करके ही समस्त प्राणिवृद्ध जीवित रहा करते हैं उसी प्रकार से भक्ति का आश्रय ग्रहण करने पर ही सब कर्मों की सिद्धियाँ प्राप्त हुआ करती है । अतः भक्ति का आश्रय अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ॥५॥ भक्ति और श्रद्धा की महान् महिमा है । श्रद्धा रखने वाला मनुष्य ही धर्म की प्राप्ति किया करता है—श्रद्धा से सब कामनायें सिद्ध होती हैं और जो परम श्रद्धालु होता है उसी को मोक्ष जैसे परम पद की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥ हे मुनीन्द्र ! दान-तपश्चर्या और अनेक प्रकार की अत्यधिक दक्षिणा से समन्वित यज्ञ आदि यदि भक्ति की भावना से रहित होकर किये जाते हैं तो उनसे चाहे वे कितने ही उच्चस्तर पर क्यों न किये जावें भगवान् विष्णु कभी भी प्रमत्त नहीं हुआ करते हैं ॥७॥

मेरुमानसुवर्णानां कोटिकोटिसहस्रशः ।

दत्ता चाप्यर्थनाशाय यतो भक्तिविवर्जितः ॥८॥

अभक्त्या यत्तपस्तप्त केवल कायशोषणम् ।

अभक्त्या यद्धृतं हव्यं भस्मनि न्यस्तहव्यवत् ॥९॥

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म श्रद्धयाऽप्यणुमानकम् ।

तन्नाम जायते पुंसां शाश्वत प्रीति दायकम् ॥१०॥

अश्वमेधसहस्रं वा कर्म वेदोदितं कृतम् ।

तत्सर्वं निष्फलं ब्रह्मन्यदि भक्तिविवर्जितम् ॥११॥

हरिभक्तिं परां नृणां कामधेनूपमां स्मृतां ।

तस्या सत्यां पिवन्त्यज्ञां ससारगरलह्यहो ॥१२॥

असारभूते ससारे सारमेतदजात्मजः ।

भगवद्भक्तसङ्गश्च हरिभक्तिस्तिष्ठति क्षुता ॥१३॥

असूयोपेतमनसा भक्तिदानादिकर्म यत् ।

अवेहि निष्फल ब्रह्म स्तेषा दूरस्तरो हरि ॥१४॥

कोई भी दानशील पुरुष करोड़ों और सहस्रों सुमेरु पर्वत के बराबर भी सुवर्ण का दान करे और उस दान के प्रदान करने में थड़ा का भाव न हो तो वह सब इतना विशाल दान देना भी निरर्थक एवं फल से शून्य ही हुआ करता है ॥८॥ भक्ति भाव से रहित होकर जो तपस्या की जाती है उससे केवल अपने शरीर का कष्ट देना मान ही जाता है किन्तु उसकी फल सिद्धि कुछ भी नहीं होती है इसी प्रकार से भक्ति शून्य होकर अग्नि में हवि डाली जाती है और होम किया जाता है वह केवल भस्म में हवि के डाल देने के ही समान है ॥९॥ थड़ा के साथ थोड़ा-सा भी कोई कर्म किया जाता है तो उससे मनुष्यों को मदा प्रमत्तता हुआ करती है ॥१०॥ हे ब्रह्मन् ! वेदाक्त सहस्रो यज्ञ एवं अश्वमेध भी किया जावे और उनके करने में थड़ा का अभाव हो तो वे समस्त कर्म निष्फल ही हुआ करते हैं ॥११॥ इस ससार में मनुष्यों के कल्याण करने के लिये और सभी मनोवांछित फल प्रदान करने के वास्ते श्री हरि भगवान् की भक्ति को कामधेनु के तुल्य बतलाया गया है । उसके रहत हुए अनजान प्राणी इस ससार-रूपी विष का पान किया करते हैं ॥१२॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! इस सार शून्य ससार में भगवान् के भक्ता की सङ्गति-भगवान् की भक्ति और सहनशीलता यही सार पदार्थ है ॥१३॥ जिसके मन में क्रुद्धन होती है और रात दिन दूसरा को देख कर जलते रहते हैं उनके दान और भक्ति आदि समस्त कर्म निष्फल ही समझने चाहिये । हे ब्रह्मन् ! यह निश्चय ही सम्पूर्ण कि व अन्तर्यामी भगवान् ऐसे प्राणिमार्ग से बहून ही दूर रहा करते हैं ॥१४॥

परश्रियाभितप्ताना दम्भाचाररतात्मनाम् ।

मृषा तु कुर्वता कर्म तेषा दूरस्तरो हरि ॥१५॥

पृच्छता च महाधर्म्मन्विदता वै मृषा च तान् ।  
 धर्मेण्वभक्तिमनसा तेपा दूरतरो हरि ॥१६  
 वेदप्रणिहितो धर्म्मो वेदो नारायण परः ।  
 तनाश्रद्धापरा ये तु तेपा दूरतरो हरि ॥१७  
 यस्य धर्म्मविहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च ।  
 स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥१८  
 धर्मार्यकाममोक्षाख्या पुरुषार्या सनातनाः ।  
 श्रद्धावता हि सिध्यन्ति नान्यथा ब्रह्मनन्दन ॥१९  
 स्वाचारमनतिक्रम्य हरिभक्तिपरो हि यः ।  
 स याति विष्णुभवन यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥२०  
 कुर्वन्वेदोदितान्धर्म्मान्मुनीन्द्र स्वाश्रमोचितान् ।  
 हरिध्यानपरो यस्तु स याति परम पदम् ॥२१

दूसरो की लक्ष्मी के वैभव से अपने हृदय में सन्ताप करने वाले, केवल दम्भ के लिये सदाचार का प्रदर्शन करने वाले मिथ्या-चारियों से भगवान् बहुत दूर ही रहा करते हैं ॥१५॥ जिनके अन्तःकरण में तो धर्म करने की भक्ति विल्कुल ही नहीं होती है और केवल दिखावे के लिये ही धर्म की चर्चा किया करते हैं और जिज्ञासा किया करते हैं और मिथ्या ही धर्म का वर्णन किया करते हैं ऐसे पाण्डित्यों के समीप में भगवान् बर्भी भी फटकते नहीं हैं क्योंकि वे तो उनके असली रूप को स्वयं जानते हैं ॥ १६ ॥ धर्म का प्रसार वेदों से ही होता है क्योंकि वेद के द्वारा धर्म का स्वरूप जाना जाता है या जो समझिये कि वेद ही साक्षात् नारायण हैं । ऐसे वेदों पर जो श्रद्धा नहीं रखते हैं उनसे भी भगवान् बहुत दूर रहा करते हैं ॥१७॥ जो धर्म से रहिन रहकर ही यहाँ जन्म लेता है और हम मसार से चल बसता है उसका जीवन निरर्थक ही रहता है और उसका श्वास लेना भी सुहार की धौकनी के ही समान होता है याकी

वह जीवित रहता हुआ भी भुदों के ही समान होता है ॥१८॥ हे ब्रह्म नन्दन ! जो श्रद्धा वाले मनुष्य होत हैं उन्हीं को धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ सिद्ध होत हैं । श्रद्धा के अभाव में इनकी मिट्टि कभी नहीं हो सकती है ॥१९॥ जो मनुष्य धर्म का उत्तम न करके सदा श्री हरि भक्ति में ही मग्न रहा करता है वह सीधा विष्णु लोक को चला जाया करता है । ज्ञानी पुरुष ही उस लोक में जाते हैं ॥२०॥ हे मुनीन्द्र ! जो अपने आयुष्य के अनुसार विहित वेदोक्त कर्मों को सम्पन्न करके विष्णु भगवान् की भक्ति में परायण रहता है वही परम पद की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥

आचारप्रभवो धर्म धर्मस्य प्रभुरच्युत ।

आश्रमाचारयुक्तेन पूजित सर्वदा हरि ॥२२✓

य स्वाचारपरिभ्रष्ट साङ्गवेदान्तगोऽपि वा ।

स एव पतितो ज्ञेयो यत कर्मवहिष्कृत ॥२३

हरिभक्तिपरो वाऽपि हरिध्यानपरोऽपि वा ।

भ्रष्टो य स्वाश्रमाचारात्पतित सोऽभिधीयते ॥२४

वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे ।

आचारात्पतित भूढ न पुनाति द्विजोत्तम ॥२५

पुण्यक्षेप्राभिगमन पुण्यतीर्थनिषेवणम् ।

यज्ञो वा विविधो ब्रह्म स्त्यक्ताचार न रक्षति ॥२६

आचारात्प्राप्यते स्वर्ग आचारात्प्राप्यते मुणम् ।

आचारान् प्राप्यते मोक्ष आचारात्त्वि न लभ्यते ॥२७

आचाराणां तु सर्वेषां योगानां चैव सततम् ।

हरिभक्तेऽपि तथा निदान भक्तिरिष्यते ॥ २८

सदाचार में ही धर्म प्रकट हुआ जाता है और धर्म के स्थायी साक्षात् भगवान् अधुना ही हैं । जो अपने आश्रम के अनुकूल धर्म का पूर्ण परिपालन किया करता है वह मन्त्रा सदा ही भगवान् या धर्मन सिद्ध करता है ॥२२॥ जो छष्टापरण वाला होता है वह भक्त ही

साग वेदो और वेदान्त ग्रन्थों को पढा हुआ होता है तो भी उसको कर्मों से बहिष्कृत और महान् पतित ही समझना चाहिये ॥२३॥ आश्रम के धर्म का भी बड़ा महत्व है जो आश्रम धर्म से भ्रष्ट हो भले ही विष्णु की भक्ति में सन्मग्न रहता हो और विष्णु के ध्यान में निमग्न हो किन्तु पतित ही कहनाता है ॥२४॥ हे द्विजोत्तम ! वेदो का ज्ञान या परायण, श्री हरि भगवान् की भक्ति अथवा शिव की भक्ति आचार से भ्रष्ट पुद्गल को कभी पवित्र नहीं बना सकती है ॥२५॥ जो आचार से भ्रष्ट मनुष्य होता है उसकी रक्षा पवित्र तीर्थस्थल, पवित्र तीर्थों का सेवन और विविध प्रकार के यज्ञों का यजन भी नहीं कर सकते हैं ॥२६॥ आचार की बहुत बड़ी महिमा है इससे स्वर्ग का निवास प्राप्त होता है । आचार से परम सुख की प्राप्ति भी हुआ करती है । आचार से ही मोक्ष प्राप्त होजाता है । ऐसी कौन सी बात है जो इस सदाचार से प्राप्त नहीं हो सकती है अर्थात् सभी कुछ मिल जाता है ॥२७॥ सम्पूर्ण सदाचारों का तथा योग की समस्त क्रियाओं का एव भगवान् की भक्ति की आदि कारण भक्ति ही होती है ॥२८॥

भक्त्यैव पूज्यते विष्णुर्वाञ्छितार्थफलप्रदः ।

तस्मात्समस्तलोकानां भक्तिर्मतिति गीयते ॥२९॥

जीवन्ति जन्तव सर्वे यथा मातरमाश्रिताः ।

तथा भक्ति समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति धार्मिकाः ॥३०॥

स्वाश्रमाचारयुक्तस्य हरिभक्तियेदा भवेत् ।

न तस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्त्यजनन्दन ॥३१॥

भक्त्या सिध्यन्ति कर्माणि कर्माभिस्तस्यते हरिः ।

तस्मिंस्तुष्टे भवेज्ज्ञान ज्ञानान्मोक्षमवाप्स्यते ॥३२॥

भक्तिस्तु भगवद्भक्तसगेन खलु जायते ।

तत्सङ्गं प्राप्यते पुम्भिः सुकृते पूर्वसंचितौ ॥३३॥

वर्णाश्रमाचाररता भगवद्भक्तित्वात्साः ।

कामादिदोषनिर्मुक्तास्ते सन्ता नोऽशिक्षकाः ॥३४॥

सत्सङ्ग परमो ब्रह्मन् लभ्येताकृतात्मनाम् ।

मदि लभ्येत विज्ञेय पुण्य जन्मान्तराजितम् ॥३५॥

मनोवाञ्छित पुरुषार्थ के फल प्रदान करने वाले भगवान् श्री विष्णु की भक्ति भाव के सहित पूजा की जाया करती है । इसलिये भगवद्भक्ति सब लोकों की जननी बही जाती है ॥२६॥ जिस प्रकार से अपनी माता का आश्रय पाकर सभी प्राणी जीवित रहा करते हैं और अपना जीवन सुख पूर्वक व्यतीत किया करते हैं ठीक उसी भाँति भक्ति का समाश्रय ग्रहण करने पर सब प्राणियों को भी सुख मिलता है ॥३०॥ जो वर्णों और आश्रमों का पालन करने वाले मनुष्य हैं उनमें यदि भगवान् की भक्ति भी हो जाय तो फिर हे ब्रह्म पुत्र ! उनकी समता रखने वाला ऋजोव्य मे भी कोई नहीं हो सकता है ॥३१॥ भक्ति के करने से समस्त कर्मों की सिद्धि हुआ करती है और उन कर्मों के द्वारा भगवान् की जब प्रसन्नता का लाभ हो जाया करता है और ज्ञान मुलभ हो जाता है क्योंकि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हुआ करती है ॥३२॥ भगवान् की भक्ति की प्राप्ति भगवद्भक्तों के सङ्ग से होती है । यह भगवद्भक्तों की सङ्गति पूर्व जन्म मे सञ्चित किया हुए कर्मों की श्रेष्ठता से ही प्राप्त होती है ॥३३॥ वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले तथा भगवान् की भक्ति की प्राप्ति की सामंता वास तथा काम क्रोधादि दोषों से रहित समस्त लोकों के शिक्षण अर्थात् धर्म के उपदेशक हो सकते हैं ॥३४॥ हे ब्रह्मन् ! सत्पुरुषों का सङ्ग परम श्रेष्ठ होता है । यह शब्द हृदय वागों को ही मिनता है जिनका अन्त कारण पवित्र नहीं है उनको यह सभी भी प्राप्त ही नहीं हो सकता है । जिनको यह सत्पुरुषों की गङ्गा का लाभ हो जावे तो इमे पूर्व जन्म के पुण्यों का ही फल समझना चाहिए ॥३५॥

पूर्वाजितानि पापानि नाशनायान्ति यस्य वै ।

सत्सङ्गाभिर्भोगाम्य नान्यथा घटते हि मा ॥३६॥

रविर्हि रश्मिजालेन दिवा हन्ति वहिस्तम ।  
 सन्त सूक्तिमरीच्योर्ध्वश्चान्तर्ध्वान्ति हि सर्वदा ॥३७॥  
 दुर्लभा पुष्पा लोके भगवद्भक्तिलालसा ।  
 तेषा सङ्गो भगवत्स्य तस्य शान्तिर्हि शाश्वती ॥३८॥  
 क्लिप्तक्षणा भागवताह्वते च किं कर्म कुर्वते ।  
 तेषा लोको भगवत्कीदृक्तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वतः ॥३९॥  
 त्वं हि भक्तो रमेशस्य देवदेवस्य चक्रिण ।  
 एतन्निगदितुं शक्तरत्नवत्तो नास्त्यधिकोऽपर ॥४०॥  
 शृणु ब्रह्मन्परं गुह्यं मार्कण्डेयस्य धीमत ।  
 यमुवाच जगन्नाथो योगनिद्राविमोचित ॥४१॥  
 योऽसौ विष्णु परं ज्योतिर्देवदेव सनातन ।  
 जगद्रूपी जगत्कर्त्ता शिवब्रह्मास्वरूपवान् ॥४२॥

जिस व्यक्ति के पूर्व जन्म के पाप नष्ट हो जाया करते हैं उसी को सत्सङ्ग की प्राप्ति हुआ करती है इसका पाना पूर्व जन्म के पुण्यों का ही फल समझना चाहिए अन्यथा सत्पुरुषों की सङ्गति कभी भी प्राप्त नहीं हुआ करती है ॥३६॥ सूर्यदेव तो अपनी किरणों के प्रकाश के द्वारा दिन के समय में केवल बाहिर फैले हुए अन्धकार का ही विनाश किया करते हैं किन्तु सन्त पुरुष तो अपने सद्बुद्धि के द्वारा हृदय के भी अन्धकार को दूर कर दिया करते हैं । सन्तों के वचनरूपी किरणों के प्रकाश का प्रभाव हृदय में व्याप्त अज्ञाना-धकार पूर्ण रूप से नष्ट हुआ करता है ॥३७॥ इस ससार में भगवान् की भक्ति की लालसा रखने वाले पुरुषों का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है । ऐसे भगवान् के भक्ता का सङ्ग सौभाग्य है जिस को भी प्राप्त हो जाता है उसको तबदा क नित्य शान्ति प्राप्त हो जाया करती है ॥३८॥ देवर्षि श्री नारदों ने कहा—“ॐ भगवान् ! कृपया यह वचनादय वि भगवान् ब्रह्मा का क्या स्मरण होना है ? वे भगवद्भक्त क्या काम किया करते



हैं ? उनको किन लोगो की प्राप्ति हुआ करती है ? ये सभी बातें आप स्पष्ट रूप से समझाने की कृपा करे ॥३६॥ आप तो देवों के भी देव सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले रमा के स्वामी भगवान् के परम भक्त हैं इसलिये आपसे अधिक इस का ज्ञाता अन्य कोई भी नहीं है और न इन बातों का वर्णन ही और कोई करने की क्षमता ही रखता है ॥४०॥ नारदजी के इन वचनों को सुनकर श्री सनकदेव ने कहा— हे ब्रह्मन् ! परम बुद्धिमान् श्री मार्कण्डेय ऋषि का एक अत्यन्त गोपनीय वृत्तान्त का श्रवण करो जो भगवान् ने अपनी योगनिद्रा में जागने पर कहा था ॥४१॥ यह जो विष्णुदेव है यह परम पर्याप्त सनातन देवों के देव हैं । यह समस्त जगत् इनका ही एक स्वरूप है । ये इस जगत् के पर्ता हैं, शिव और ब्रह्मा के रूपों में यही हैं ॥४२

युगान्ते रौद्ररूपेण ब्रह्माण्डप्रासवृ हित ।  
जगत्पेकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥४३॥  
भगवानेव शेषात्मा शेते बटच्छेदे हरि ।  
अशक्याताब्जजन्माद्यैराभूषिततनूरुह ॥४४॥  
पादागुष्ठाग्रनिर्मातगङ्गाशीताम्बुपावन ।  
सूदमात्सूक्ष्मतरु देवो ब्रह्माण्डप्रासवृ हित ॥४५॥  
बटच्छेदे शयानोऽभूत्सर्वशक्तिसमन्वित ।  
तस्मिन्स्थाने महाभागो नारायणपरायण ।  
मार्कण्डेय स्थितस्तस्य लीला पश्यन्महेशितु ॥४६॥  
तस्मिन्काले महाघोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।  
हरिरेव स्थित इति भुने पूर्वं हि शुश्रुम ॥४७॥  
जगत्पेकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ।  
सर्वप्रस्तेन हरिणा किमर्थं सोऽज्यशोषित ॥४८॥  
परं वीरूहल ह्यत्र वर्ततेऽजीव मृत न ।  
हरिर्वातिमुधापाने वस्यात्तस्य प्रजायते ॥४९॥

यह प्रलय होने के अवसर पर रुद्र रूप से इस समस्त ब्रह्माण्ड का ग्रास करके बड़ जाया करते हैं और वही भगवान् जिस समय में स्थावर-जङ्गम यह सम्पूर्ण जगत् नाश को प्राप्त होकर एक सागर के रूप वाला रह जाया करता है उस समय में भगवान् विष्णु के स्वरूप में एक बट के पत्र पर शयन किया करते हैं । इन भगवान् के रोम कूपों में अगणित ब्रह्माण्ड सुशोभित रहा करते हैं और इनके चरणों के भङ्गुओं से गङ्गा की धारा निकला करती है । वही उस ब्रह्माण्ड का ग्रास करके वृद्धि को प्राप्त हुए देव सूक्ष्माति सूक्ष्म होकर समस्त शक्तियों से सुसम्पन्न होकर बट पत्र पर शयन किया करते हैं उसी स्थल पर नारायण में परायण महान् भाग वाले मार्कण्डेय जी उन महेश्वर देव की सीसा को देखते हुए विराजमान थे ॥४३-४६॥ ऋषिगणों ने कहा—हे मुनिवर ! हमने ऐसा ही श्रवण किया है कि उस प्रलयकालीन महान् घोर अवसर में जब कि यह चराचर जगत् विनष्ट हो जाता है । एक मात्र श्री हरि ही शेष रहा करते हैं ॥४७॥ जिस समय में यह जगत् एक सागर के स्वरूप में बदल कर बन गया था और स्थावर-जङ्गम स्वरूप सम्पूर्ण विश्व विनष्ट हो गया था उस समय में भगवान् ने सभी का ग्रास कर लिया था तो उन्हीं भगवान् ने इन मार्कण्डेयजी को किस कारण से छोड़ दिया था जो कि वहाँ पर यह विराजमान थे ॥४८॥ हे सूतजी ! इस विषय में हमारे हृदय में बड़ा भारी बुतूहल उत्पन्न हो गया है । भगवान् विष्णुदेव के कथामृत का पान करने के लिये किस को आश्रय हो सकता है ? अतएव इस वषा का सविस्तार वर्णन करने की इच्छा कीजिए ॥४९॥

आसीन्मुनिर्महाभागो मृबुण्डुरिति विद्युतः ।

शालग्रामे महातीर्थे सोऽस्तप्यत महातपाः ॥५०॥

युगानामयुत ब्रह्मन्वृणन्नृणां सनातनम् ।

निराहारः क्षमायुक्तः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥५१॥

आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्विषयानि स्पृहः ।  
 सर्वभूतहितो दान्तस्तताप सुमहत्तपः ॥५२॥  
 तत्तपःशङ्किता सर्वे देवा इन्द्रादयस्तदा ।  
 परेश शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम् ॥५३॥  
 क्षीराब्धेरुत्तर तीरं संप्राप्य त्रिदिवीकसः ।  
 तुष्टुबुद्धेर्देवेश पद्मनाभं जगद्गुरुम् ॥५४॥  
 नारायणाक्षरानन्तं शरणागतपालकम् ।  
 मृकण्डुनपसां प्रस्तान्पाहि न शरणागतान् ॥५५॥  
 जय देवाधिदेवेश जय शङ्खगदाधरम् ।  
 जयो लोकस्वरूपाय जयो ब्रह्माण्ड हेतवे ॥५६॥

श्री सूतजी ने कहा—मृकण्डु नामधारी एक परम प्रसिद्ध मुनि हुए थे । वे महा भगवान् थे और उन महा तपस्वी ने शालग्राम नामक तीर्थ में तप किया था ॥५०॥ हे ब्रह्मन् ! उन्होंने दश सहस्र युगों तक निराहार रह कर ही क्षमा धारण कर, सत्य प्रतिज्ञ बांधे होकर अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में करके सनातन ब्रह्म भगवान् विष्णु का कीर्तन किया था ॥५१॥ उस महर्षि ने सात्त्विक विषयों से विलुप्त ही स्पृहा रहित होकर, समस्त प्राणियों में अपने ही समान देखते हुए और सब जीवधारियों की भलाई में सदा तत्पर रहकर अपनी इन्द्रियों का दमन करते हुए बहुत ही घोर तपश्चर्या की थी ॥५२॥ उनकी इस प्रकार की अत्युग्र तपस्या से शङ्का हृदय में कर के देवराज इन्द्रादि सभ देवगण अनामय भगवान् श्री नारायण की शरण में प्राप्त हुए थे ॥५३॥ वे देवगण क्षीरसागर के उत्तर तीर पर स्थित होकर पद्मनाभ जगत् के गुरु देव देवेश्वर श्री नारायण का स्तवन करने लगे थे ॥५४॥ देवगण ने प्रार्थना की थी हे नारायण देव ! हे अक्षर ! हे अनन्त ! हे शरणागतों के पालन करने वाले ! हम सब लोग इस महर्षि मृकण्डु तपश्चर्या से बहुत ही प्रसन्न हो रहे हैं । अब हम सब आपसे

चरणों की शरण में आकर प्राप्त होगये हैं । आप ही इस समय में हमारी रक्षा करें ॥४५॥ हे देवाधिदेवेश्वर ! आपकी सदा जय हो ! हे भय, चक्र और गदा को धारण करने वाले प्रभो ! आपकी जय हो । यह सम्पूर्ण सत्सार जिनका ही एक स्वरूप है उन परात्पर प्रभु की जय हो, जो इस समस्त ब्रह्मांड का कारण है उन भगवान् की जय हो ॥४६॥

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते लोकपावन ।

नमस्ते लोकनाथाय नमस्ते लोकसाक्षिणे ॥४७॥

नमस्ते ध्यानगम्याय नमस्ते ध्यानहेतवे ।

नमस्ते ध्यानरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥४८॥

केशिहन्त्रे नमस्तुभ्य मधुहन्त्रे परात्मने ।

नमो भूम्यादिरूपाय नमश्चैतन्यरूपिणे ॥४९॥

नमो ज्येष्ठाय शुद्धाय निर्गुणाय गुणात्मने ।

अरूपाय स्वरूपाय बहुरूपाय ते नमः ॥५०॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोवाहणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥५१॥

नमो हिरण्यगर्भाय नमो ब्रह्मादिरूपिणे ।

नम सूर्यादिरूपाय हृष्यकव्यभुजे नमः ॥५२॥

नमो नित्याय वन्द्याय सदानन्दैकरूपिणे ।

नमः स्मृतातिनाशाय भूयो भूयो नमो नमः ॥५३॥

हे दशों के भी देवेश्वर ! आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम है । हे लोको को पावन करने वाले ! आपके लिये प्रणाम है । लोको के स्वामी भगवान् विष्णु के लिये हमारा प्रणाम है—लोको के साक्षी स्वरूप प्रभु की सेवा में हमारा प्रणाम समर्पित है ॥ ५७ ॥ ध्यान के द्वारा ही प्राप्त होने वाले भगवान् के लिये प्रणाम<sup>१</sup> है । जिनके कारण से ही ध्यान किया जाता है उन श्री 'भगवान्' की सेवा में हमारा प्रणाम है—जो ध्यानात्मक हैं और ध्यान के साक्षी हैं

उन प्रभु के लिये प्रणाम है ॥५८॥ हे भगवन् ! आपने मधु और  
केशी नाम वाले दैत्यो का वध कर जमत् का कल्याण किया है ऐसे  
आपके लिये प्रणाम है—चतन्य रूप वाले श्री भगवान् के लिये बार-  
म्बार प्रणाम है ॥५९॥ ज्येष्ठ—शुद्ध—निर्गुण - गुणात्मा—तीरूप  
स्वरूप और अनेक रूपों से समन्वित आप श्री भगवान् की सेवा में  
हमारा प्रणाम है ॥६०॥ ब्रह्मण्य देव ! गौ और ब्राह्मणों का सर्वदा  
हित करने वाले भगवान् के लिये प्रणाम है इस सम्पूर्ण जगत् के हित  
का सम्पादन करने वाले प्रभु के लिये प्रणाम है—परब्रह्म श्रीकृष्ण  
गोविन्द की सेवा में हम सबका बारम्बार प्रणाम है ॥६१॥ हिरण्य-  
गर्भ ब्रह्मा आदि के स्वरूप को धारण करने वाले—सूर्यादि के रूप में  
संस्थित—हव्य-वय्य के भोग करने वाले अग्नि में व्याप्त श्री परमात्मा  
प्रभु के लिये प्रणाम है ॥ ६२ ॥ नित्य ही बन्धना करने के योग्य  
सर्वदा आनन्दमय स्वरूप वाले—स्मरण करने पर सबके महा दु:खों  
का विनाश करने वाले भगवान् के लिये हमारा अनेक बार प्रणाम  
है ॥ ६३ ॥

एव देवस्तुति श्रुत्वा भगवान्कमलापतिः ।  
प्रत्यक्षतामगात्तेषा शयचक्रगदाधरः ॥६४॥  
विकचाम्बुजपत्राक्ष सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ।  
सर्वालङ्कारसयुक्त श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥६५॥  
पीताम्बरधर सीम्य स्वर्णयज्ञोपवीतिनम् ।  
स्तूयमानं मुनिवरं पार्षदप्रवरावृतम् ॥६६॥  
त दृष्ट्वा देवसघास्ते तत्तेजोहृततेजसः ।  
नमश्चक्रं मुदायुक्ता अष्टागैरवनि गतः ॥६७॥  
ततः प्रसन्नो भगवान्मेघगंभीरनिस्वनः ।  
उवाच प्रीणयन् देवान् लतानिन्द्रपुरोगमान् ॥६८॥  
जाने यो मानसं दुःखं शृकश्रुतपसोदगतम् ।

युष्मान्न वाधते देवा स ऋपि सज्जनाग्रणी ॥६६॥

सपदिभ सयुता वापि विपदिभश्चापि सज्जना ।

सर्वथान्य न वाधन्ते स्वप्नेऽपि सुरसत्तमा ॥७०॥

इस प्रकार की देवगण द्वारा की हुई स्तुति का श्रवण कर कमला के स्वामी भगवान् विष्णुदेव शस्त्र चक्र और गदादि अपने अमोघ आयुधों को धारण करके उन देवों के समक्ष में प्रत्यक्ष होकर प्रणम होगये थे ॥६४॥ भगवान् के घुमे हुये नेत्र कमल दल के समान सुन्दर थे और उनको प्रभा करोड़ों सूर्यों के समान थी वे समस्त साधारणों से विभूषित थे और उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था ॥ ६५ ॥ वे पीताम्बर को धारण करने वाले थे और परम सौम्य सुवर्ण का यज्ञोपवीत धारण किये हुये थे । उन प्रभु की परम श्रेष्ठ शिरोमणि मुनिगण स्तुति कर रहे थे तथा पापदोषों में परम प्रधान उनके चारों ओर स्थित थे ॥ ६६॥ उन दयामय प्रभु का दर्शन करके उस समय में समस्त देवगणों के समुदाय का तज फीका पड़ गया था । सब देवों ने धूमि पर गिर कर भगवान् की साष्टांग प्रणाम किया था ॥६७॥ उसी समय में भगवान् प्रसन्न होकर इन्द्रादि सब देवताओं को प्रसन्न करते हुये भेष के समान अतीव गम्भीर वाणी से कहने लगे थे ॥६८॥ हे देवगणों ! आप लोगों के मन में इन मृकुण्ड महर्षि की तपस्या के कारण से जो संताप हो रहा है उसको मैं भली भाँति समझ रहा हूँ । हे देवताओं ! यह ऋषि आपको किसी भी प्रकार की पीड़ा नहीं देगे । ये तो बहुत ही अधिव सम्मान हैं ॥ ६९ ॥ हे श्रेष्ठ देवगणों ! यह नियम है कि जो महानुभाव परम सज्जन हुआ करते हैं वे अपने समीप में सम्पत्ति हा या विपत्ति हा स्वप्न में भी वे किसी दूसरे को पीड़ा नहीं दिया करते हैं ॥७०॥

सततं वाध्यमानोऽपि विपयाख्यैररातिभिः ।

अविद्यायात्मनो रक्षामन्यान्देष्टि वयं सुधी ॥७१॥

तापत्रयामिघानेन वाध्यमानो हि मानव ।

अन्य पीडयितुं शक्तं कथं भवति सत्तम ॥७२॥  
 कमणा मनसा वाचा वाद्यते यः सदा परान् ।  
 नित्यं कामादिभिर्युक्तो मूढधीः प्रोच्यते तु स ॥७३॥  
 यो लोकहितकृन्मर्त्यो गतासूया विमत्सरः ।  
 निःशङ्कः प्रोच्यते सदिभरिहामुत्र च सत्तमा ॥७४॥  
 सशङ्कः सवदा दुःखी निःशङ्कः सुखमाप्नुयात् ।  
 गच्छेच्च स्वालय स्वस्या पीडयिष्यति को न स ॥७५॥  
 भवता रक्षकश्चाहं विहरच्च ययामुखम् ।  
 इति दत्त्वा वरं तेषामतसीकुसुमप्रभम् ॥७६॥  
 पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ।  
 तुष्टात्मानं सुरगणा ययुनाय ययागतम् ॥७७॥

विषयरूपी शत्रुओं में पीडित होता हुआ बुद्धिमान् पुष्प अपनी  
 रक्षा न कर दूसरा का बटु दे सकता है ? ॥७१॥ आध्यात्मिक आधि-  
 दैविक और आधिभौतिक इन तीन प्रकार के तापों से स्वयं पीड़ा को  
 प्राप्त करने वाला सज्जन मनुष्य क्या दूसरा के साथ पीड़ा पहुँचा कर  
 पिलवाड़ कर सकता ? ऐसा कभी भी सम्भव ही नहीं है ॥ ७२ ॥ जो  
 मन-बाणी और वचन के द्वारा सदा दूसरा को पीडित किया करता है  
 और सर्वदा कामादि में पँसा रहा करता है वह मूढ़ बुद्धि वाला बटु  
 लाया करता है ॥७३॥ जो मनुष्य सदा इस भस्तर का हित किया  
 करता है और असूया एवं भस्तरता से रहित होता है उसको सज्जन  
 लोग में और परलोक में निःशङ्क कहा करते हैं ॥७४॥ जो पुष्प शङ्का  
 से युक्त होता है वह सवदा दुःखित रहा करता है । व अथ आप  
 सागो को कोई भी पीड़ा नहीं पहुँचावेगे । अतएव आप साग अपने २  
 निवास स्थानों को चने जाइये ॥७५॥ मैं तो सवदा आप सागो को  
 गुरक्षा करने को तत्पर रहा ही करता हूँ । अतएव आप साग स्वच्छ  
 या मुष न साथ विहार करने रहिये । इस रीति से उन देवों का पर

दान देकर अलसी के पुष्प के समान नीलकान्ति वाले भगवान् वही पर देवगणों के देखते ही अन्तर्हित होगये थे । उस समय में समस्त देव गण परम सन्तुष्ट होकर अपने स्वर्गलोक को वापिस लौट कर चले गये थे ॥७६॥७७

मृकण्डोरपि तुष्टात्मा हरि प्रत्यक्षतामगात् ।

अरूप परम ब्रह्म स्वप्रकाश निरञ्जनम् ॥७८

अतसीपुष्पसकाश पीतवाससमच्युतम् ।

दिव्यायुधधर दृष्ट्वा मृकण्डुर्विस्मितोऽभवत् ॥७९

ध्यानादुन्मील्य नयने अपश्यद्धरिमग्रत ।

प्रसन्नवदन शान्त घातार विश्वतेजसम् ॥८०

रोमाञ्चितशरीरोऽसावानन्दाश्रुविलोचन ।

ननाम दण्डवद्भूमौ देवदेव सनातनम् ॥८१

अश्रुभि क्षालयस्तस्य चरणौ हृपसमवै ।

शिरस्यञ्जलिमाधाय स्तोत्रु समुपचक्रमे ॥८२

नम परेशाय परात्मरूपिणे परात्परस्मात्पत पराय ।

अपारपाराय परानुकर्त्रे नम परेश्य परपारणाय ॥८३

यो नामजात्यादिविकल्पहीन प्रब्दादिदोषव्यतिरेकरूप ।

बहुस्वरूपोऽपि निरञ्जनो यस्तमीशमीड्य परम भजामि ॥८४

इसके उपरान्त भगवान् विष्णु देव तपश्चर्या करने वाले मृकण्डु पर भी अपने चित्त में परम प्रसन्न होकर उनके समक्ष में भी उपस्थित होकर प्रकट होगये थे । रूप से रहित—निरञ्जन—स्वप्रकाश परब्रह्म को अलसी के पुष्प के तुल्य वण वाले—पीताम्बरधारी दिव्य आयुधा से समचित्त अच्युत प्रभु को विष्णु के दिव्य स्वरूप में अवस्थित देखकर मृकण्डु महर्षि को अत्यधिक विस्मय हुआ था ॥७८॥७९॥ उस समय में मृकण्डु महर्षि ने ध्यान से अपने दोनों नेत्रों को खाना तो प्रगट हुए परम शास्त्ररूप वाले—घाता विश्व तेजा भगवान्



विष्णु को अपने समक्ष में स्थित देखा था ॥८०॥ उस समयमें भगवान् के दर्शन प्राप्त कर मृकन्द ऋषि को हर्षातिरेक के कारण रोमांच हो गया था और अमन्दानन्द से उनके दोनों नेत्रों में अश्रु भर आये थे । ऐसी ही दशा में रहते हुये मृकन्द ने भूमि में झुक करके भगवान् विष्णु के लिये हृदयतः प्रणाम किया था ॥८१॥ हर्षातिरेक से बहते हुए आँखों के आसुओं से भगवान् के चरणों को प्रक्षालित कर दिया था । इसके पश्चात् वे अपना मस्तक नीचे की ओर नवाकर हाथों को जोड़ कर भगवान् के स्तवन करने की अपने मन में इच्छा की थी ॥ ८२ ॥ मृकन्द ने कहा—हे परेश्वर । परात्मरूपी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म-श्रेष्ठों से भी परम श्रेष्ठ- जिनका पार नहीं पाया जा सकता है—सर्वदा दूसरी पर अपनी अनुकम्पा करते रहने वाले, भक्तों को शत्रुओं से बचाकर दूसरी पार लगाने वाले भगवान् आपकी सेवा में मेरा शतशः प्रणाम है ॥८३॥ जो नाम जाति आदि के विकल्प से रहित हैं, जो शब्दादि के दोषों से व्यतिरेक स्वरूप हैं, जो अनेक रूप होने पर भी सदा निरञ्जन हैं उन्हीं परम पूजनीय भगवान् का मैं भजन किया करता हूँ ॥८४॥

वेदान्तवेद्य पुरुष पुराण हिरण्यगर्भादिजगत्स्वरूपम् ।  
 अनूपमक्तं भजनानुष्मिण भजामि सर्वेश्वरमादिमीडघम् ॥८५॥  
 पश्यन्ति यः कीतसमस्तदोषा ध्यानेकनिष्ठा विगतस्पृहाश्च ।  
 निवृत्तमोहा परमपवित्र नतोऽस्मि ससारनिवर्त्तिक तम् ॥८६॥  
 स्मृतातिनाशनं विष्णुं शरणागतपालकम् ।  
 जगत्सेव्यं जगद्धाम परेशं करुणाकरम् ॥८७॥  
 एव स्तुतं स भगवान्विष्णुस्तेन महर्षिणा ।  
 अवाप परमां तुष्टिं सत्यचक्रगदाधार ॥८८॥  
 अथालिङ्ग्य मुनिं दवश्चतुर्निर्दीर्घपादुभिः ।  
 उवाच परमप्रीत्या वरवर्यमुग्रतः ॥८९॥

प्रीतोऽस्मि तपसानेन स्तोत्रेण च तवानघ ।

मनसा यदभिप्रेत वर वरय सुव्रत ॥६०॥

देवदेव जगन्नाथ कृतार्थोऽस्मि न सशय ।

त्वद्दर्शनमपुण्याना दुर्लभं च यतः स्मृतम् ॥६१॥

वेदान्त शास्त्र के द्वारा जानने में आने वाले हिरण्यगर्भ, पुराण-पुरुष आदि जगत् के स्वरूप में स्थित-अनुपम-अपने भक्तों पर मही कृपा करने वाले सत्र के स्वामी परम पूजनीय उन आपका ही मैं भजन करता हूँ ॥६५॥ जिनका सभी दोषों से रहित, एक माध ध्यान में ही परायण, स्पृहा से रहित और महा मोह से शून्य पुरुष ही दर्शन प्राप्त कर सकते हैं उन परम पवित्र सत्सार से निवृत्ति कर देने वाले भगवान की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम समर्पित है ॥६६॥ स्मरण करने पर पीछा की तुरन्त ही विनष्ट कर देने वाले, शरण में समागत प्राणियों का परिपालन करने वाले, सम्पूर्ण जगत् जिनकी सेवा में निरत रहा करता है, जगत् के तेज स्वरूप कर्णा के निधान उन परमेश्वर भगवान विष्णुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६७ ॥ जिस समय में उन मृकन्दु महर्षि ने इस रीति से स्तवन किया था उस समय में शङ्ख-चक्र-गदा के धारण करने वाले भगवान विष्णु परम प्रसन्न होगये थे ॥६८॥ उस समय में अपनी लम्बी चारों भुजाओं को फैला कर उन्होंने मृकन्दु मुनि का समाभिज्ञान किया था और अत्यधिक प्रेम के साथ कहने लगे—हे सुव्रत । मैं प्रसन्न हूँ तुम वर की माचना करो ॥६९॥ भगवान् ने कहा—हे निष्ठाप । मैं आपके इस उद्यततास्था में और इस स्तुति से बहुत ही अधिक तुम पर प्रसन्न होगया हूँ इसलिये हे सुव्रत । अब जो भी आपने मनमें अभीष्ट हो वही वरदान मुझमें प्राप्त कर लो ॥७०॥ इस प्रकार से भगवान् के चरण पर मृकन्दु ने कहा—हे जगत् के नाथ । हे देवों के भी देव-श्वर । मैं तो आपके अतीव दुर्लभ दर्शन प्राप्त करने ही श्राप ही

गया है क्योंकि जो पुण्यहीन होते हैं उनको आपका यह साक्षात् दर्शन प्राप्त करना ही बहुत दुर्लभ होता है ॥६१॥

ब्रह्माद्या य न पश्यन्ति योगिनः संशितव्रताः ।

धर्मिष्ठा दीक्षिताश्चापि वीतरागा विमत्सराः ॥६२॥

तं पश्यामि पर धाम किमतोऽन्यं वरं वृजे ।

एतेनैव कृतार्थोऽस्मि जनार्दन जगद्गुरो ॥६३॥

यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपि ये ।

तत्पद परम यान्ति तं दृष्ट्वा किमुताच्युत ॥६४॥

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन्प्रीतोऽस्मि तव पण्डित ।

मद्दर्शनं हि विफलं न कदा चिद्भविष्यति ॥६५॥

विष्णुर्भक्तकुटुम्बोति वदन्ति विबुधाः सदा ।

तदेव पालयिष्यामि भगवन्तो नानृत वदेत् ॥६६॥

तस्मात्त्वत्तपसा तुष्टो यास्यामि तव पुत्रताम् ।

समस्तगुणसमुक्तो दीर्घजीवी स्वल्पवान् ॥६७॥

मम जन्म कुले यस्य तत्कुलं मोक्षयामि वै ।

मयि तुष्टे मुनिश्रेष्ठ किमसाध्यं जगत्त्रये ॥६८॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशो मुनेस्तस्य समीपतः ।

अन्तर्दधे भृङ्गद्वयं च तपसं सन्यवर्तत ॥६९॥

जिस भगवान् का दर्शन ब्रह्मा आदि देवगण, योगी, प्रशस्तनीय प्रत धारण करने वाले परम धार्मिक, दीक्षित, रागद्वेष से नृन्म भीर मात्सर्य से रहित जन भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं या बहुत ही कठिनता से प्राप्त कर पाते हैं ॥६२॥ उन परम धाम भगवान् का दर्शन मैं इस समय में प्राप्त कर रहा हूँ । इसमें अघिष मैं बीन सा वरदान आप से गाँव ? हे इस जगत् के गुरुदेव ! हे जनार्दन प्रभो ! मैं तो इतने से ही परम कृतार्थ हो गया हूँ ॥६३॥ इस जगत् में महान् पातकी भी जिनके नाम का स्मरण करके परम पद को प्राप्त कर लिया करने

है, तो हे अच्युत देव ! उनको साक्षात् प्राप्त कर लेने पर अन्य क्या शेष रह जाता है जिसे मैं माँगूँ ॥६४॥ उस समय मे भगवान ने कहा-- हे ब्रह्मन् ! आप ने इस समय मे जो भी कुछ कहा है वह बिल्कुल सत्य है । हे महापण्डित ! मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि मेरा यह दर्शन कभी निष्फल नहीं हुआ करता है ॥६५॥ अन्य देवगण कहा करते हैं कि विष्णु भगवान भक्तों के सदा कुटुम्ब वाले होते हैं । मैं भी उसी के अनुसार पालन करूँगा क्योंकि कि मेरे भक्तगण कभी मिथ्या भाषण नहीं किया करते हैं ॥६६॥ इसीलिये मैं आपके इस तप से सन्तुष्ट होकर परम स्वरूपवान्, दीर्घजीवी, सर्व-गुण सम्पन्न आपका पुत्र बनूँगा ॥६७॥ यह समझ लो कि जिस कुल मे मेरा जन्म होता है वह पूर्ण कृपण मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है । हे मुनि श्रेष्ठ ! मेरी सन्तुष्टता हो जाने पर इस त्रिनोकी कोई भी वस्तु असम्भव नहीं रहा करती है । ॥६८॥ इस प्रकार से उन देवेश्वर भगवान के कहने पर ब्रह्मा देवेश्वर उन महर्षि के समक्ष से अन्तर्धान हो गये थे और फिर मृगण्डु महर्षि भी अपनी तपश्चर्या से निवृत्त हो गये थे ॥६९॥



## ॥ मार्कण्डेय की कथा और वर प्राप्ति ॥

ब्रह्मन्वय स भगवान्मृकण्डो पुत्रता गत ।  
 कि चकार च तद् ब्रूहि हरिर्भार्गववशज ॥१॥  
 श्रूयते च पुराणेषु मार्कण्डेयो महामुनि ।  
 अपश्यद्वैष्णवी माया चिरञ्जीव्यस्य सप्तवे ॥२॥  
 शृणु नारद वक्ष्यामि यथोमेता सनातनीम् ।  
 विष्णुमक्तिसमायुक्ता मार्कण्डेयमुनि प्रति ॥३॥  
 तपसाऽन्ते मृगण्डुस्तु भार्यामुद्वाह्य सत्तम ।

गार्हस्थ्यमकरोद्धृष्ट शान्तो दान्त कृतार्थक ॥४॥  
 तस्य भार्या शुचिर्दक्षा नित्य पतिपरायणा ।  
 मनसा वचसा चापि देहेन च पतिव्रता ॥५॥  
 काले दधार सा गर्भं हरितेजोशसभवम् ।  
 सुपुत्रे दशमासान्ते पुत्र तेजस्विन परम् ॥६॥  
 स ऋषि परमप्रीतो हृष्ट्वा पुत्र सुलक्षणम् ।  
 जातक कारयामास भङ्गल विधिपूर्वकम् ॥७॥

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भगवान् मृकण्डु महर्षि  
 के पुत्र किस प्रकार से बन गये थे ? और विष्णुदेव ने भृगु के  
 वंश में जन्म ग्रहण करके क्या-क्या चरित करके दिखाये थे ? आप उन  
 सबका वर्णन इस समय में हमारे सामने करने की कृपा कीजिए ॥१॥  
 पुराणों में ऐसी कथाएँ हैं और उनमें सुना जाता है कि माकण्डेय  
 महामुनि चिरजीवी हैं और उन्होंने महाप्रलय में भी भगवान् की इस  
 वैष्णवी माया के साक्षात् दर्शन किये थे ॥२॥ सनकजी ने कहा—ह  
 नाथ ! मैं विष्णु की भक्ति से परिपूर्ण मार्कण्डेयजी की इस परम  
 प्राचीन कथा को आपको बतलाता हूँ ॥३॥ तपस्या के पश्चात् परम  
 श्रेष्ठ - शान्त - दान्त मृकण्डु मुनि ने अतिशय कृतार्थ होकर अपनी पत्नी  
 से विवाह किया था और परम प्रसन्नता से गार्हस्थ्य धर्म को चलाने  
 लगे थे ॥४॥ मृकण्डु महर्षि की भार्या परम पवित्र और चतुर थी ।  
 वह सदा पति सेवा में तत्पर रहा करती थी और मन बाणी तथा देह  
 से पूर्णतया पतिव्रता पत्नी थी ॥५॥ समय के सम्प्राप्त होने पर उस  
 भार्या ने श्री हरि के तेज के अंश से समन्वित गर्भ को धारण किया  
 था । फिर दश मासों के समाप्त होने पर परम पूर्ण तेज से युक्त पुत्र  
 का प्रसव किया था ॥६॥ उस महर्षि ने परम सुलक्षणों से युक्त उस  
 अपने पुत्र को देखकर अधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी और शास्त्रोक्त  
 विधि के साथ उसका जातकम सकार कराया था ॥७॥

स बालो ववृधे तत्र शुक्लपक्ष इवोडुपः ।  
 ततस्तु पञ्चमे वर्षे उपनीय मुदान्वितः ॥८॥  
 शिक्षा चकार विप्रेन्द्र वैदिकी धर्मसहिताम् ।  
 नमस्कार्या द्विजा, पुत्र सदा दृष्ट्वा विधानतः ॥९॥  
 त्रिकालं सूर्यमभ्यर्च्य सलिलाञ्जलिदानतः ।  
 वैदिक कर्म कर्त्तव्य वेदाध्ययनपूर्वकम् ॥१०॥  
 ब्रह्मचर्येण तपसा पूजनीयो हरिः सदा ।  
 निषिद्धं व्रजनीय स्याद् धूमंभाषणादिकम् ॥११॥  
 साधुभिः सह वस्तव्य विष्णुभक्तिपरैः सदा ।  
 न द्वेषः कस्यचित्कार्यः सर्वेषां सितमाचरेत् ॥१२॥  
 इज्याध्ययनदानानि सदा कार्याणि ते सुत ।  
 एव पित्रा समादिष्टो मार्कण्डेयो मुनीश्वरः ॥१३॥  
 चचार धर्मं सतत सदा सचिन्तयन्ह्रिम् ।  
 मार्कण्डेया महाभागो दयावान्धर्मवित्सलः ॥१४॥

वह्म होनहार बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान ही वृद्धि  
 प्राप्त करने लगा था । फिर जब पाँचवें वर्ष में प्रवेश करने लगा तो  
 मृशष्णु महर्षि ने उस बालक का उपनयन संस्कार करा दिया था ।  
 हे विप्रेन्द्र ! उपनीत होजाने पर उसको वैदिक कर्म सहिता की  
 शिक्षा का आरम्भ कर दिया था । ऋषि ने अपने उस पुत्र से कहा—हे  
 पुत्र ! ब्राह्मणों को जब भी देखो उसी समय में उनको समादर पूर्वक  
 प्रणाम अवश्य ही करनी चाहिये ॥८॥ तीनों कालों में भी सूर्य को अर्घ्य  
 वेदों के अध्ययन आदि के वैदिक कर्मों को करना चाहिये ॥१०॥ ब्रह्मचर्य  
 व्रत को धारण कर तपश्चर्या के द्वारा सर्वदा विष्णु का पूजन करना  
 परमावश्यक है । दुष्ट पुरुषों के साथ सम्भाषण करने आदि निषिद्ध  
 कर्मों का परित्याग करना चाहिये ॥११॥ भगवान् विष्णुदेव के जो

भक्त सायुज न हो सदा उनके ही साथ मे रहकर सत्सङ्ग करे—विभी  
से भी द्वेष भाव न रखे और सदा सब जानियों के हित का सम्पादन  
करना चाहिये ॥१२॥ मृकण्डु ऋषि ने कहा—हे पुत्र । शद, वेदों का  
पाठ—यज्ञों का यजन और दान करत रहना चाहिये । अपने पूज्य  
पिताजी की इस प्रकार मे आज्ञा प्राप्त करके मुनीश्वर मार्कण्डेयजी ने  
सर्वादा भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुये धर्म का पूर्ण आचरण करना  
आरम्भ कर दिया था । वह मार्कण्डेय महा भाग्यवान् और दयावान्  
तथा धर्म वत्सल हुये थे ॥१३॥१४॥

आरमघान्मत्यसन्धश्च मार्तण्डसदृशप्रभ ।

वशी शान्तो महाजानी सर्वतत्त्वार्थकोविद ॥१५॥

तपश्चचार परममच्युतप्रीतिकारणम् ।

आराधितो जगन्नाथो मार्कण्डेयेन धीमता ॥१६॥

पुराणतहिता कर्तुं दत्तवान्वरमच्युत ।

मार्कण्डेयो मुनिस्तस्मान्नागायण इति स्मृत ॥१७॥

चिरजीवी महाभक्तो देवदेवस्य चक्रिण ।

जगत्तेकार्णवीभूते स्वप्रभाव जनार्दन ॥१८॥

तस्य दर्शयितुं विप्रास्त न महतवान्हुरि ।

मृकण्डुतनयो धीमान्विष्णुभक्तिसमन्वित ॥१९॥

तस्मिञ्जले महाधोरे स्थितवान्छीर्णपत्रवत् ।

मार्कण्डेय स्थितस्तान्नावच्छेते हरि स्वयम् ॥२०॥

तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि कालस्य वदत शृणु ।

दशभिः पञ्चभिश्चैव निर्मैषं परिकीर्तिता ॥२१॥

काष्ठा तत्त्रिंशतो ज्ञेया कला पद्मजनन्दन ।

तत्त्रिंशतो क्षणो ज्ञेयस्तैः पट्टिर्धटिका स्मृता ॥२२॥

वह मार्कण्डेय मुनि बट ही आत्मज्ञानी सत्यप्रतिज्ञा कर-  
वाले मृत्यु के तुरन्त कालि मे सम्पन्न वशी और इन्द्रियों की जीतने वाले—  
महान् ज्ञानी और समस्त तत्त्वा को समझ लेने मे परम चतुर हुये थे

॥१५॥ इसके पश्चात् परम मेधावी उस महा मुनि मार्कण्डेयजी ने  
 अगवान् अच्युत देव को प्रसन्न करने के लिये तपश्चर्या करके जगत् के  
 स्वामी भगवान् विष्णु की समाराधना प्रारम्भ करदी थी ॥१६॥ उस  
 समय मे भगवान् ने उनको प्रसन्न होकर एक पुराण की संहिता की  
 रचना करने का वरदान प्रदान किया था । इसी कारण से यह महा-  
 मुनि मार्कण्डेय नारायण नाम से कहे जाते हैं ॥१७॥ यह विरञ्जीवी  
 हैं और देवों के भी देव भगवान् विष्णुदेव के परम भक्त हैं । हे विप्रो !  
 इस समस्त विश्व के महा प्रलय के काल मे सागरस्वरूप मे केवल  
 जलाकार हो जाने पर भी जनार्दन श्री हरि भगवान् ने उनको अपना  
 प्रभाव दिखा देने की इच्छा से सघूत नहीं किया था अर्थात् अन्य  
 सबके समान अपने मे लीन नहीं किया था । बुद्धि सम्पन्न विष्णु के  
 भक्त मृकडु के पुत्र उस महा पौर जस मे एक दूटे दूपे पत्र के ही  
 समान रहे थे । जिस समय तक भगवान् श्री हरि वहा पर शेष शय्या  
 पर शयन करते रहे थे तभी पर्यन्त महामुनि मार्कण्डेय भी वहा पर  
 स्थित होकर विद्यमान रहे थे ॥१८॥१९॥२०॥ उस काल का परि-  
 माण मैं आपको बतलाता हूँ । पन्द्रह वार निमिष अर्थात् पलक  
 मारने के समय की एक रात होती है । हे नारद ! तीस पाठाओं की  
 एक कला हुआ करती है और तीस कलाओं का एक क्षण होता है  
 और ॥ क्षणों की एक घड़ी (घटिका) हुआ करती है ॥२१॥२२॥

तद्वयेन मुहूर्त्त स्याद्दिन तत्स्विशत भवेत् ।

त्रिंशद्दिनेभवेन्मास पक्षद्वितीयसयुत ॥२३॥

ऋतुमासिद्वयेन स्यात्तत्त्रयेणायन स्मृतम् ।

तद्वयेन भवेदब्द स देवानां दिन भवेत् ॥२४॥

उत्तर दिवस प्राह्ण रात्रिर्वे दक्षिणायनम् ।

मानुषेर्णव मासेन पितृणां दिनमुच्यते ॥२५॥

तस्मात्सूक्ष्मेन्दुसयोगे ज्ञातव्यं वत्समुत्तमम् ।

दिव्येवंपसहस्रं द्वादशभिर्देवत युगम् ॥२६॥



देवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्म. कल्पो तु तौ नृणाम्

एकसप्ततिसप्त्यार्ते दिव्ये मन्वन्तर युगे. ॥२७॥

चतुर्दशभिरेतैश्च ब्रह्मणो दिवस मुने ।

यावत्प्रमाण दिवस तावद्रात्रि प्रकीर्तिता ॥२८॥

दो षड्विंशो के समय को एक मुहूर्त काल कहा जाता है और तीस मुहूर्तों का एक दिन होता है तथा तीस दिन का एक मास होता है जिस मास में १५-१५ दिन के कृष्ण और शुक्ल दो पक्ष हुआ करते हैं ॥२३॥ दो मास की एक ऋतु हुआ करती है । तीन ऋतुओं का एक अयन होता है तथा दो अयनों का जिसका नाम उत्तरायण और दक्षिणायन है एक वर्ष हुआ करता है । यही वर्ष देवताओं का एक दिन हुआ करता है जिसको दिव्य दिन के नाम से कहा जाता है ॥२४॥ उत्तरायण को देवताओं का दिन कहा जाता है और दक्षिणायन को रात्रि कहा करते हैं । जो मनुष्यों का एक मास होता है वह पितृगण का एक दिन होता है ॥२५॥ इससे उत्तम कल्प वही कहा जाता है जिससे चन्द्र और सूर्य का संयोग अभावस्था को होता है । इस अभावस्था के दिन में श्राद्धतया पिंडों का दान उत्कृष्ट माना जाता है । बारह सहस्र दैव वर्षों का एक दैव युग माना जाया करता है ॥२६॥ दो सहस्र दैव युगों का मनुष्यों का ब्राह्म कल्प हुआ करता है । जिस समय में इहहत्तर दिव्य युग ( मनुष्यों की चतुर्भुंगी ) व्यतीत होजाया करती है तो उस समय में एक मन्वन्तर हुआ करता है ॥२७॥ हे मुनिवर ! ऐसे जब चौदह मन्वन्तर समाप्त होजाते हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है और जितना बड़ा दिन होता है उतनी रात्रि भी हुआ करती है ॥२८॥

नाशमायाति विप्रेन्द्र तस्मिन्काले जगत्त्रयम् ।

मानुषेण सहस्रेण यत्प्रमाण भवेच्छृणु ॥२९॥

चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिवस मुने ।

तद्वन्मासो वत्सरश्च ज्ञेयस्तस्यापि वेधस ॥३०॥  
 पराद्धं द्वयकालस्तु तन्मतेन भवेदिद्वजा ।  
 विष्णोरहस्तु विज्ञेय तावद्भानि प्रकीर्तिता ॥३१॥  
 मृकण्डुतनयस्तावत्स्थित सजीर्णपर्णवत् ।  
 तस्मिन्धोरे जलमये विष्णुशक्त्युपवृत्तित ॥  
 आत्मानं परमं ध्यायन्स्थितवान्हुरिसन्निधौ ॥३२॥  
 अथ काले समायाते योगनिद्राविमोचित ।  
 सृष्टवान्ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम् ॥३३॥  
 सहितं तु जलं वीक्ष्य सृष्टं विश्वं मृकण्डुज ।  
 विस्मितः परमप्रीतो ब्रह्मन्दे चरणौ हरे ॥३४॥  
 सिरसज्जलिमाधाय मार्कण्डेयो महामुनि ।  
 तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः सदानन्दैकविग्रहम् ॥३५॥

हे विप्रेन्द्र ! उसी समय में यह त्रिभुवन विनष्ट हो जाया करता है । अब मनुष्यों के सहस्र के प्रमाण से पूरा वृत्तान्त श्रवण करो ॥२६॥ हे मुनिवर ! जिस प्रकार से एक सहस्र चतुर्विंशो का ब्रह्माजी का एक दिन होता है वैसे ही ब्रह्माजी का मास और वर्ष भी समस्त लेना चाहिये ॥३०॥ हे द्विजगणो ! ऐसे दो परार्ध (५०) की ब्रह्माजी की आयु हुआ करती है । विष्णु भगवान् का यह एक दिन होता है । इतनी बड़ी विष्णु देव की रात्रि नहीं जाती है ॥३१॥ मृकण्डु महर्षि के पुत्र मार्कण्डेयजी भगवान् विष्णु की शक्ति से बलशाली होकर एक जीर्ण पात्र के तुल्य इतने समय तक उस परम धीरे जलमय स्थान में रहे थे और चराचर परमात्मा का ध्यान करते हुये भगवान् विष्णु के ही समीप में मामन विराजमान रहे थे ॥३२॥ फिर जब भगवान् विष्णुदेव समय के समाप्त होने पर अपनी उस योग निद्रा से समुत्थित हुये तो उग समय में उान ही ब्रह्मा का स्वरूप धारण किया और इस चराचर सत्ता की रक्षा की थी ॥३३॥ उस समय में उस महान्

विस्तृत जल को सहृत हुआ और इस सम्पूर्ण विश्व को रचा हुआ देख कर मृकण्डु महर्षि के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि ने देखा तो इनको बहुत विस्मय उत्पन्न हो गया था और प्रसन्न होकर इनने श्री हरि के चरणों की वन्दना की थी ॥३४॥ मुनि श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी ने अपना मस्तक झुकाकर और हाथ जोड़कर उस सच्चिदानन्द भगवान् विष्णुदेव का परम अभीष्ट वचनों के द्वारा स्तवन करने लगे थे ॥३५॥

सहस्रशिरसं देव नारायणमनामयम् ।

वासुदेवमनाधारं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३६

अमेयमजर नित्य सदानन्दैकविग्रहम् ।

अप्रतर्क्यमनिर्देश्य प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३७

अक्षर परम नित्य विश्वास्त विश्वसम्भवम् ।

सर्वतत्त्वमय शान्त प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३८

पुराण पुरुष सिद्ध सर्वज्ञानैकभाजनम् ।

परात्परतर रूप प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३९

पर ज्योतिः पर धाम पवित्र परम पदम् ।

सर्वैकरूपं परम प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४०

त सदानन्दचिन्मात्र पराणा परम पदम् ।

सर्व सनातन्ध श्रेष्ठ प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ४१

सगुण निर्गुण शान्त मयाज्जीत सुमायिनम् ।

अरूप बहुरूपं त प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४२

यत्र तद्भगवान्विश्व सृजत्यवति हन्ति च ।

तमादिदेवमीशान प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४३

महामुनि मार्कण्डेयजी ने कहा—मैं समस्त ससार में व्यापक होने के कारण सहस्रो शिर वाले अनामय स्वरूप अपने ही आधार पर स्थित भगवान् जनार्दन देव को सादर प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ जो भगवान् जनार्दन अजर-अप्रमेय-नित्य-सर्वदा आनन्द से परिपूर्ण—

तर्क के अविषय और निर्देश करने के अयोग्य है उनकी सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है ॥३७॥ जो भगवान् अच्युत परम नित्य और इस विस्तृत विश्व के आधार हैं और यह सम्पूर्ण विश्व जिससे समुत्पन्न हुआ है उन सर्वतत्त्वों से परिपूर्ण परम शान्तिप्रद भगवान् जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ परम पुराण पुरुष-समस्त ज्ञान के एक मात्र आधार-सिद्धि-उत्कृष्ट से भी परमोत्कृष्ट स्वरूप वाले भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३९॥ परम श्रेष्ठ ज्योतिर्मय स्वरूप वाले, परम धाम वाले, परमोत्कृष्ट पद से समन्वित-सर्वशस्वरूप जनार्दन भगवान् की सेवा में मैं प्रणाम करता हूँ ॥४०॥ सच्चिदानन्द भगवान्, बड़े से भी बड़े, रक्षा करने वाले, सर्वस्वरूप, सनातन श्रेष्ठ भगवान् को मैं सादर प्रणाम करता हूँ ॥४१॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव के स्वरूप में स्थित सगुण ब्रह्म के स्वरूप में त्रिगुण परासीत, ब्रह्म शान्त और मायावान् और रूप रहित तथा अनेक स्वरूपों से युक्त भगवान् जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४३॥

परेश परमानन्द शरणागदवत्सल ।

ब्राहि मा कुरुणासिन्धो मनोतीत नमोज्जु ते ॥४४॥

एव स्तुवन्त विप्रेन्द्र मार्कण्डेय जगद्गुरुम् ।

उवाच परमा प्रीत्या शखचक्रगधारः ॥४५॥

लोके भागवता ये च भगवद्भक्तमानसाः ।

तेषां तुष्टो न सन्देहो रक्षाम्येताश्च सर्वदा ॥४६॥

अहमेव द्विजश्रेष्ठ नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः ।

भगवद्भक्तरूपेण लोकानुक्षामि सर्वदा ॥४७॥

जिज्ञासा भागवता जायन्ते केन कर्मणा ।

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरीयत ॥४८॥

सद्यः भागवातानां शृणुष्व मुनिसत्तम ।

यत् तेषां प्रभाव इति शक्यते नाब्धोक्तिभिः ॥४९॥

जो महान् शक्ति सम्पन्न इस सम्पूर्ण विश्व की रचना किया करते हैं, इसका परिवर्तन एवं रक्षण करते हैं और अन्त में इसका विनाश भी किया करते हैं उन आदि देव सर्वोपरि विराजमान भगवान् विष्णु को प्रणाम करता हूँ ॥४३॥ हे परमात्मन् ! हे परमानन्दमय परमेश्वर ! हे शरण में समागतों पर प्यार करने वाले ! आप मन वाणी के अगोचर हैं । हे करुणा के सागर ! आप मेरी रक्षा करिए— मैं आपकी सेवा में अपना सादर प्रणाम अर्पित करता हूँ ॥४४॥ जिस समय में इस रीति से जगत् के गुरु विप्रेन्द्र मार्कण्डेय जी ने स्तवन किया था उस समय में शत्रु चक्र सदा आयुधों के धारण करने वाले भगवान् उन से अत्यधिक प्रसन्न होकर बहने लगे थे ॥४५॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! इस जगतीतल में भगवान् के चरणों की सेवा में अपना मन रमाते हैं उन पर मैं विशेष प्रसन्न रहा करता हूँ और सर्वदा उनकी रक्षा करने की मुझे चिन्ता रहती है । मैं स्वयं अपने स्वरूप को छिपाकर एक भगवान् के भक्तों के रूप में होकर सदा मनुष्यों की सुरक्षा किया करता हूँ ॥४६-४७॥ श्री मार्कण्डेयजी ने भगवान् से पूछा था कि भगवान् के भक्तों का कैसा स्वरूप होता है और बिन २ कर्मों के द्वारा उनकी पहिचान हुआ करती है ? मुझे हृदय में इस बात का बड़ा भारी कुतूहल है । आप ही के मुखारविन्द से मैं इस विषय की जिज्ञासा को श्रवण कर के शान्त करना चाहता हूँ ॥४८॥ श्री भगवान् ने कहा—हे भुनि सत्तम ! आपकी ऐसी ही अभिलाषा है तो अब आप मुझ से भगवद्भक्तों के लक्षणों को सुनिये । वैसे भगवान् के भक्तों का प्रभाव ऐसा है जो करोड़ों वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥४९॥

ये हिताः सर्वजन्तूना गतासूया अमत्सराः ।

वशिनो निस्पृहाः शान्तारते वै भागवतोत्तमाः ॥५०॥

कर्मणा मनसा वाचा परपीडा न कुर्वते ।

अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवता स्मृता ॥५१॥  
 सत्कथाश्रवणे येषा वर्तते सात्त्विकी मतिः ।  
 तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमा ॥५२॥  
 मातापित्रोश्च शुश्रूषा कुर्वन्ति ये नरोत्तमा ।  
 गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमा ॥५३॥  
 ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका स्मृता ।  
 पूजादृष्ट्वा नुमोदन्ते ते वै भागवतोत्तमा ॥५४॥  
 व्रतिना च यतीना च परिचर्यापराश्च ये ।  
 वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तम ॥५५॥  
 सर्वेषा हितवाक्यानि ये वदन्ति नपोत्तमा ।  
 ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवता स्मृता ॥५६॥

जो भगवद्भक्त होते हैं वे सर्वदा समस्त प्राणियों के हित का कार्य किया करते हैं । उनमें कभी भी असूया और मात्सर्य दोष नाम मात्र को भी नहीं होता है, उनका चित्त सदा उनके वश में रहा करता है । भगवान् के भक्त कभी भी कोई इच्छा नहीं रखता करते हैं और शम परायण हुआ करते हैं । ऐसे ही लोगो का भगवद्भक्तों में परम श्रेष्ठ समझ लेना चाहिए ॥५०॥ जो अपने मन से, वचना से और कर्मों के द्वारा कभी भी दूसरों को पीडा नहीं दिया करते हैं और जो किसी के द्वारा हुए दान को ग्रहण नहीं किया करते हैं वे सच्चे और उत्तम भगवान् के भक्त होते हैं ॥५१॥ जिन लोगो में सत्वगुण वाली बुद्धि होती है और वह सदा परम श्रेष्ठ भगवान् की कथा का श्रवण करने में ही लगी रहा करती है वे विष्णु के चरणों में ही भक्ति किया करते हैं तथा भक्तों का महान् समादर उनके हृदय में सदा रहा करता है ऐसे लोग उत्तम भगवान् के भक्त बड़े व्यापक करते हैं ॥५२॥ जो लोग अपनी भावा की गङ्गा की बुद्धि से और पिता की मदाशिव की बुद्धि से निरन्तर सेवा किया करते हैं वे परम श्रेष्ठ भगवान् के भक्त होते हैं ॥५३॥

जो लोग सदा देव-यजन करने में सलग्न रहा करते हैं और देवार्चन करने की साधना रखते हैं और पूजा का सर्वदा अनुमोदन किया करते हैं उनकी गणना भी परम श्रेष्ठ भक्तों में होती है ॥५४॥ जिनका समय सदा श्रतधारियों एवं सन्वासियों की सेवा में व्यतीत हुआ करता है और भूल कर भी हमरो की निन्दा नहीं किया करते हैं उनको परम श्रेष्ठ भगवान के भक्तों में समझना चाहिए ॥५५॥ जो सदा सब में हित की ही चर्चा किया करते हैं तथा जो प्राणियों का आदर सत्कार करने वाले होकर गुणों का ग्रहण किया करते हैं वे लोग भगवद्भजन कहे जाये करते हैं ॥५६॥

आत्मवत्सर्गभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमा ।

तुल्या शत्रु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमा ॥५७॥

धर्मशास्त्रप्रवक्तार सत्यवाक्यरताश्च ये ।

सत्ता शुश्रूषयो ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥५८॥

व्याकुर्वन्ते पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ।

तद्वक्त्रि च भक्ता ये ते वै भागवतोत्तमा ॥५९॥

ये गोब्राह्मणशुश्रूषा कुर्वन्ते सततं नरा ।

तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६०॥

अन्येषामुदय दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवा ।

हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६१॥

आरामारोपणरतास्तडागपरिरक्षका ।

कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमा ॥६२॥

ये वै तडामकर्तारो देवसदमानि कुर्वन्ते ।

गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६३॥

जो मनुष्य प्राणीमात्र को अपने ही समान समझ कर वैसा ही व्यवहार किया करते हैं तथा शत्रु मित्र भाव उनके हृदय में नहीं होता उनकी दृष्टि में शत्रु ही चाहे मित्र हो एवं समान होते हैं और सभी भी

किसी से राग-द्वेष का भाव नहीं रखते है उनको परम श्रेष्ठ भक्त समझना चाहिए ॥५७॥ जो लोग धर्मशास्त्रों की व्याख्या किया करते हैं, सदा सत्य-भाषण करने वाले और सत्पुरुषों की सेवा में तत्पर रहा करते हैं वे मेरे श्रेष्ठ भक्त कहे जाया करते हैं ॥५८॥ पुराणों की व्याख्या जो स्वयं किया करते हैं तथा श्रवण किया करते हैं तथा पुराणों की कथा का प्रवचन करने वाले में परम श्रद्धा का भाव रखते हैं वे लोग श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥५९॥ जो मनुष्य सर्वदा गौ और विषों की सेवा किया करते हैं और तीर्थों की यात्रा किया करते हैं उनको श्रेष्ठ भगवद्भक्त जानना चाहिए ॥६०॥ जो सदा श्री हरि नाम का कीर्तन करने में सलग्न रहते हैं तथा जिनका मन दूसरों की अभिवृद्धि देखकर परम प्रसन्न हुआ करता है वह परम श्रेष्ठ भगवान् का भक्त होता है ॥६१॥ जो उद्यान तगाया करते हैं तालाब और बागड़ी खुदवा कर उनका निर्माण कराया करते हैं वे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥६२॥ जो सरोवरों का निर्माण कराते हैं तथा देवालयों का निर्माण कराते हैं तथा देवालयों का कराते हैं एवं जो मायत्री देवी की जाप एवं उपासना में परायण रहते हैं वे मेरे परम श्रेष्ठ भक्त हुआ करते हैं ॥६३॥

येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहृषिताः ।

रोमाञ्चितशरीराश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६४॥

तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वन्ते नराः ।

तत्क्याष्ठाद्धितकण्ठा ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥६५॥

तुलसीगन्धमाध्रायसन्तोषं कुर्वन्ते तु ये ।

तन्मूलमृत्तिका ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६६॥

आश्रमाचारनिरतास्तथैवातिथिपूजकाः ।

ये च वेदार्थवत्कारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥६७॥

शिवप्रियाः शिवासक्ताः शिवपादाब्जं रताः ।



त्रिपुण्ड्रधारिणो ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६८॥

व्याहरन्ति च नामानि हरे शम्भोर्महात्मन ।

रुद्राक्षालकृता ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६९॥

ये यजन्ति महादेव क्रतुतुभिर्वहुदक्षिणं ।

हर्षि वा परया भक्त्या ते वै भागवतोत्तमा ॥७०॥

जिनका मन भगव नामो का कीर्तन श्रवण करके उसका अभि-  
नादन किया करते हैं और भगवान के नामोच्चारण करने में तथा नाम  
श्रवण करने में रोमाञ्च हो जाया करते हैं व भगवान के भावुक भक्त  
कहे जाते हैं ॥६४॥ जिनके कण्ठ में सदा तुलसी की कण्ठी या माला  
रहती है और जो तुलसी के वन को देखकर परम प्रसन्नता का अनु-  
भव करते हुए प्रणाम करते हैं उनका यह भगवद्भक्त समझना चाहिये  
॥६५॥ जो तुलसी की सुगन्ध को तथा तुलसी पौधा की जड़ की  
मृत्तिका की गन्ध को सूँघकर परम सन्तोष का लाभ प्राप्त किया करते  
वे मेरे परम श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥६६॥ जो सदा अपन आश्रम के नियमों  
का पूर्णतया परिपालन किया करते हैं जिस भी आश्रम में हो समागत  
अतिथियों का आतिथ्य एवं अर्चन परम प्रसन्न मन में किया करते हैं  
तथा वदार्थ का कथन किया करते हैं वे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥६७॥ जो  
भगवान शिव की भक्ति करते हुए उनके परम प्रिय होते हैं तथा शिव  
के चरणों की पूजा में आसक्त और सदा सलग्न रहते हैं और जो  
त्रिपुण्ड्र धारण किया करते हैं वे मेरे परम भक्त कहे जाते हैं क्योंकि  
शिव की कृपा के बिना भक्ति नहीं हुआ करती है अतः शिवभक्त मेरे  
सच्चे सक्त होते हैं ॥६८॥ जो विष्णु या शिव नामो का कीर्तन किया  
करते हैं और रुद्राक्ष माला धारण किया करते हैं वे मेरे श्रेष्ठ भक्त  
होते हैं ॥६९॥ जो विविध रीति की विपुल दक्षिणा वाले यज्ञ का  
यजन कर श्री शंकर भगवान का अथवा विष्णु का भक्ति भाव से पूजन  
किया करते हैं वे मेरे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥७०॥

विदितानी च शास्त्राणि परार्थं प्रवदन्ति ये ।  
 सर्वत्र गुणभाघो ये ते वै भागवताः स्मृताः ॥७१॥  
 शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि ।  
 समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥७२॥  
 शिवाग्निकार्यनिरताः पञ्चाक्षरजपे रताः ।  
 शिवध्यानरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥७३॥  
 पानीयदाननिरता येऽन्नदानरतास्तथा ।  
 एकादशीप्रतरता ते वै भागवतोत्तमाः ॥७४॥  
 गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ।  
 मदर्थं कर्मकर्त्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥७५॥  
 एते भागवता विप्र केचिदत्र प्रकीर्तिताः ।  
 मयाऽपि गदितुं शक्या नाब्दकोटिशतैरपि ॥७६॥  
 तस्मात्त्वमपि विभ्रेन्द्र सुशीलो भव सर्वदा ।  
 सर्वभूताश्रयो दान्तो मैत्रो धर्मपरायणः ॥७७॥

जो समस्त शास्त्रों के तत्वों को जान कर अन्य लोगों को सम-  
 झाया करते हैं और सर्वत्र गुणों का भेदन करने वाले हैं वे परम भाग-  
 कहे जाया करते हैं ॥७१॥ जो परमेश शिव और परमात्मा विष्णु इन  
 दोनों में कोई भेद बुद्धि न रखकर अभेद भावना से इन दोनों की उपा-  
 सना किया करते हैं वे मेरे सच्चे भक्त होते हैं ॥७२॥ जो "नमः  
 शिवाय" पञ्चाक्षरी मन्त्र के जाप के द्वारा शिव की तुष्टि के  
 लिये हुनन किया करते हैं तथा पञ्चाक्षरी उपयुक्त मन्त्र का जाप किया  
 करते हैं और भगवान् शिव के ध्यान में भग्न एवं सदा सलग्न रहा  
 करते हैं वे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥७३॥ जो सदा अन्न और जल का दान  
 दिया करते हैं तथा एकादशी तिथि का यत्नपूर्वक किया करते हैं वे  
 मेरे परम श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥७४॥ जो गौओं का दान और कन्याओं  
 के दान किया करते हैं तथा ऐसे ही अनेक शुभ कर्म देवस्य भगवान् की

प्रीति के लिये ही किया करते हैं वे भगवान के परम श्रेष्ठ भक्त कहे जाया करते हैं ॥ ७५ ॥ हे विप्र । यहाँ पर हमने संक्षेप में कुछ भगवद्भक्तों के लक्षणों का वर्णन कर दिया है किन्तु वैसे तो भक्तों के लक्षण इतने अधिक हैं कि करोड़ों वर्षों में भी उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥ ७६ ॥ हे विप्रश्रेष्ठ । इसलिये मैं तुम्हें यही उपदेश देता हूँ कि तुम को भी सदा सुशील रहना चाहिए । समस्त प्राणियों का आश्रय दान करो । अपनी इन्द्रियों को कुमार्ग में गमन करने से उनका दमन करते रहो । सब के साथ भ्रंश का भाव एवं व्यवहार रखो तथा सर्वदा धर्म में तत्पर रहना चाहिये ॥ ७७ ॥

पुनर्युगान्तपर्यन्त धर्मं सर्वं समाचरन् ।  
मन्मूर्तिध्याननिरत पर निर्वाणमाप्स्यसि ॥ ७८ ॥  
एष मृकण्डुपुत्रस्य स्वभक्तस्य कृपानिधि ।  
दत्त्वा वर स देवेशस्तत्रैवातरधीयत ॥ ७९ ॥  
मार्कण्डेयो महाभागो हरिभक्तिरत सदा ।  
चचार परम धर्ममीजे च विधिवन्मुखं ॥ ८० ॥  
शालग्रामे महाक्षेत्रे तताप परम तप ।  
ध्यानक्षपतिकर्मा तु पर निर्वाणमाप्तवान् ॥ ८१ ॥  
तस्माज्जन्तुषु सर्गेषु हितकृद्भरिपूजक ।  
ईप्सित मनसा यद्यत्तत्तदाप्नोत्यसशयम् ॥ ८२ ॥  
एतत्सर्वा निगदित त्वया पृष्ट द्विजोत्तम ।  
भगवद्भक्तिमाहात्म्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ८३ ॥

गुहारा कर्तव्य है कि इस महा प्रलय होने के समय तक सभी धर्म धर्म के अनुवृत्त करने के ध्यान में मग्न रहा करो । गुहारा मोक्ष निश्चित रूप से हो जायगा । इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ७८ ॥ इस रीति से देवेश्वर भगवान् मृकण्डु महर्षि के पुत्र मार्कण्डेय को सद्गुपदेश प्रदान करके उसी समय में वही पर अर्हति हा गया थे ॥ ७९ ॥

उसी समय से महान भाग्य वाले मार्कण्डेय ऋषि भी सर्वदा श्रीहरि की भक्ति में लीन होकर परम धर्म कर्म का पालन करते हुए अनेक प्रकार के यज्ञों के द्वारा भगवान का यजन करते रहा करते हैं ॥८०॥ मार्कण्डेय मुनि ने शालग्राम नामक महान तीर्थ में जाकर अत्यन्त उग्र तपश्चर्या की थी और निरन्तर भगवान के ध्यान में मग्न रहते हुए अपने समस्त कर्मों को क्षीण करके वे परम शान्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति करेंगे ॥८१॥ इस कथा से यह सिद्ध हो जाता है कि जो कोई भी भगवान का भक्त भगवान की पूजा किया करता है और समस्त प्राणियों का हित चाहता है वह अपने हृदय में जो भी कुछ मनोरथ करता है उसके वे सभी मनोरथ सिद्ध होजाया करते हैं ॥८२॥ श्री नन्ददेव जी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! आपके प्रश्न करने पर हमने यह पूर्ण भगवान का माहात्म्य वर्णन कर दिया है । अब और आप मुझ । क्या पूछने की इच्छा रखते हैं ॥८३॥



## ॥प्रयाग और गंगाजी माहात्म्य वर्णन॥

भगवद्भक्तिमाहात्म्य श्रुत्वा प्रीतस्तु नारद ।  
 पुनः पप्रच्छ सनक ज्ञानविज्ञानपारगम् ॥१  
 क्षेत्राणामुत्तम क्षेत्र तीर्थानां च तथोत्तमम् ।  
 पराया दयया तथ्य ब्रूहि शास्त्रार्थपारग ॥२  
 शृणु ब्रह्मन्परं गुह्य सर्वोपत्कर परम् ।  
 दुस्त्वप्ननाशनं पुण्यं धर्म्यं पापहरं शुभम् ॥३  
 श्रोतव्यं मुनिभिर्नित्यं दुष्टग्रहनिवारणम् ।  
 सर्वरोगप्रशमनमायुर्वर्द्धनवारणम् ॥४  
 क्षेत्राणामुत्तम क्षेत्र तीर्थानां च तथोत्तमम् ।  
 गङ्गायामुनयोयौगं वदन्ति परमपयं ॥५

रितासितोदक तीर्थं ब्रह्माद्या सर्वदेवता ।

मुनयोमनवश्चैव सेवन्ते पुण्यकाक्षिण ॥६॥

गङ्गा पुण्यनदी ज्ञेया यतो विष्णुपदोदभवा ।

रविजा यमुना ब्रह्म स्तयोर्योग शुभावह ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—भगवान की भक्ति के इस माहात्म्य का श्रवण कर नारदजी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई और फिर ज्ञान तथा विज्ञान के महान् पारगामी विद्वान सनकजी ने उन्होंने पुन प्रश्न किया था । श्री नारदजी ने कहा—हे शास्त्रों के सत्त्वार्थों में पारङ्गत मुनि-वर ! अब आप मुझ पर परमानुग्रह करके यह बताइये कि क्षेत्रों में सर्वोत्तम क्षेत्र कौन सा है ॥१-२॥ श्री सनकजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! अब मैं आपके सामने वही बतलाता हूँ जो क्षेत्रों में और तीर्थों में सर्वोत्तम है । यह परम शुद्ध, सभी प्रकार की सम्पत्तियों का प्रदान करने वाला, दुःस्वप्नों का विनाशक, परम पुण्य पूर्ण, धर्म से मुक्त, पापों का अपहरण करने वाला, अत्यधिक शुभ, दुष्टग्रहों को दूर भगा देने वाला, मुनियों के श्रवण करने के योग्य समस्त व्याधियों को शांत करने वाला, आयु की वृद्धि करने वाला जो परमोत्तम तीर्थ एवं क्षेत्र है उसका सुनिये । परमोत्तम ऋषिगण उसको गङ्गा यमुना का सङ्गम प्रयाग कहा करते हैं ॥३-५॥ यह ऐसा महान् तीर्थ है जहाँ पर गङ्गा का जल तो सफेद है और यमुना का जल आश्रित रूप वाला है । पुण्य की अभिलाषा रखने वाले ब्रह्मा आदि समस्त देववृन्द, मुनिगण और मनुजों का समूदाय सभी लोग सदा इसी क्षेत्र एवं सर्वोत्तम महान् तीर्थ का सेवन किया करते हैं ॥६॥ भागीरथी गङ्गाजी को परम पुण्यमयी सरिता समझनी चाहिए क्यों कि शाखात् गङ्गान् विष्णु के परम पावन चरणों से प्रकट हुई हैं । यमुना श्री सूर्यदेव की पुत्री हैं । इसीलिये इन दोनों नदियों का यहाँ पर सङ्गम जो है वह परम कल्याण करने वाला है ॥७॥

स्मृतातिनाशिनी गङ्गा नदीना प्रवरा मुने ।  
 सर्वापापक्षयकरी सर्वोपद्रवनाशिनी ॥८॥  
 यानि क्षेत्राणि पुण्यानि समुद्रान्ते महातले ।  
 तेषां पुण्यतमं ज्ञेयं प्रयागाख्यं महामुने ॥९॥  
 इयाजं वेधा यज्ञं यत्र देव रमापतिम् ।  
 तथैव मुनयः सर्वे चक्रुश्च विविधान्मखान् ॥१०॥  
 सर्वातीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानि तानि वै ।  
 गङ्गाविन्द्वभिषेकस्य कलां नाहन्ति षोडशीम् ॥११॥  
 गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शते स्थितः  
 सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान् ॥१२॥  
 विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरस्थिता ।  
 ससेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पाभरैर्जनैः ॥१३॥  
 यत्सकलं ललाटे तु ध्रियते मनुजोत्तमैः ।  
 तथैव नेत्रं विज्ञेयं विध्वर्द्धाद्यं समुज्ज्वलत् ॥१४॥

हे मुनिवर ! गङ्गा की ऐसी महिमा है कि यह स्मरण मात्र करने होंगे तो सम्पूर्ण षोडश को शांति कर दिया करती है । यह समस्त नदियों में परम श्रेष्ठ नदी है और सभी प्रकार के महापातको को क्षीण कर दिया करती है तथा सब उपद्रवों को दूर भगा देने वाली है ॥८॥ हे महामुने ! समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर जो भी पुण्य क्षेत्र हैं उन सब में प्रयाग परम पुण्यमय एवं सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र है ॥९॥ यह वह पवित्र तीर्थ स्थल है जहाँ पर ब्रह्माजी ने स्वयं यज्ञों के यज्ञ के द्वारा भगवान् विष्णुदेव का अर्चन किया है और और अन्य सब मुनिगण ने भी इस स्थल में अनेक प्रकार के बहुत-से यज्ञादि का अनुष्ठान किया है ॥१०॥ अन्य जितने भी पवित्र तीर्थों के अभिषेक हैं वे गङ्गा के त्रिन्दुओं के अभिषेक की मालाहवी वत्ता को भी प्राप्त नहीं हो सकते हैं ॥११॥ चार गो बोग नो दूरी पर भी कोई बँटा हुआ 'गङ्गा-गङ्गा'

यह उच्चारण कर इसका स्मरण मात्र कर लेता है यह भी अपने कृत सब पापों से छुटकारा पा जाया करता है फिर यदि वहा पर पहुँच कर गङ्गा में अवगाहन करले तो उसकी महिमा का तो कहना ही क्या है ॥१२॥ यह गङ्गा प्रथम तो भगवान विष्णु के चरणों से उत्पन्न हुई है फिर अखिल विश्व के स्वामी शङ्कर के मस्तक पर आकर स्थित हुई थी उम गङ्गा का बड़े देवगण और मुनिवृन्द भी मेघन कम करने की उत्कट अभिलाषा रखता करते हैं फिर पामर मनुष्यों की तो बात ही क्या है ॥१३॥ मनुजों में श्रेष्ठ तलाट पर जहाँ गङ्गा की रज को लगाया करते वहाँ पर ही अर्ध चन्द्र के नीचे भगवान शिव के अत्युज्ज्वल तीसरे नेत्र को समझना चाहिए ॥१४॥

यन्मज्जन महापुण्य दुर्लभं त्रिदिवौकसाम् ।  
 सारूप्यदायक विष्णोः किमस्मात्कथ्यते परम् ॥१५॥  
 यत्र स्नाताः पापिनोऽपि सर्वपापविवर्जिताः ।  
 महद्विमानम रुढाः प्रयान्ति परम पदम् ॥१६॥  
 यत्र स्नाता महात्मानः पितृमातृकुलानि वै ।  
 सहस्राणि समुद्धृत्य विष्णुलोकं व्रजन्ति वै ॥१७॥  
 स स्नात सर्वतीर्थेषु यो गङ्गा स्मरति द्विज ।  
 पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु स्थितवान्नात्र सशयः ॥१८॥  
 यत्र स्नात नर दृष्ट्वा पापेऽपि स्वर्गभूमिभाक् ।  
 यदङ्गस्पर्शमात्रेण देवानामधिपो भवेत् ॥१९॥  
 तुलसीमूलसंभूता द्विजपादोद्भवा तथा ।  
 गङ्गोद्भवा तु मूल्लोकान्नयम्यनुतरुपताम् ॥२०॥  
 गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला ।  
 अत्यन्तदुर्लभा नृणां भक्तिर्द्वयमप्रवक्तारि ॥२१॥

भागीरथी गङ्गाजी के जल में स्नान करना परम पुण्य का प्रदान करने वाला होता है । यह गङ्गाजल में स्नान करना देवगण को

भी परम दुर्लभ हुआ करता है । गङ्गाजल का स्नान, पान, स्पर्शन और दर्शन साक्षात् भगवान् विष्णु के स्वरूप का प्रदान करने वाला होता है— इससे अधिक इस गङ्गा की महिमा क्या वर्णन की जा सकती है ॥१५॥ इस भागीरथी गङ्गा के जल में स्नान करने का ऐसा अदभुत प्रभाव होता है कि महा पापात्मा प्राणी भी समस्त पापों की वासनाओं से छुटकारा प्राप्त करके बड़े भारी विषय विमान पर समावृत्त होकर परमोत्तम पद की प्राप्ति करा लिया करता है ॥१६॥ महान् आत्माओं वाले पुरुष गङ्गा के जल में अवगाहन करके सहस्रा माता-पिताओं के बुरो का उद्धार करके विष्णु लोक को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥१७॥ हे द्विजवर ! जो गङ्गाजी का स्मरण भी यदि कर लेता है उसने समस्त परम पुण्यमय तीर्थों में स्नान कर लिया है ऐसा समझ लेना चाहिए । वह पुरुष सभी पुण्य क्षेत्रों के गमन करने का फल प्राप्त करलिया करता है । ऐसा पण समस्त पापों की वासनाओं को देने वाले मृदु हृदय त्याग वाले पुत्रों ही प्राप्त हुआ करता है ॥१८॥ यहाँ परस्नान करने वाले पुरुषों का दर्शन मात्र कर लेते पर भी लोग स्वर्ग को प्राप्त कर लिया करते हैं । गङ्गा के जल का स्पर्श करने का ही ऐसा महत्त्व है कि वह मनुष्य देवताओं का भी स्वामी बन जाता करता है ॥१९॥ तुलसी के जटरी मृत्तिना—विप्रा के चरणों से स्पर्श की हुई धूलि वण और गङ्गा मृत्तिवा मनुष्य को साक्षात् विष्णु भगवान् का स्वरूप प्रदान कर दिया करता है अर्थात् स्वरूप मुक्ति दे दिया करते हैं ॥२०॥ बहुत बड़े पुण्य से ही गङ्गातुलसी और श्री हरि की अनन्य भक्ति प्राप्त हुआ करते हैं घम के प्रयत्न करने वाल में भक्ति की भावना भी अत्यन्त दुर्लभ होती है । ये सब को कभी प्राप्त नहीं हो सकता है ॥२१॥

सद्धर्मयक्तु पदसम्भवा मृद गङ्गोद्भवा चैव तथा तुलस्या ।  
मूलोद्भवा भक्तियुतो मनुष्यो वृत्वा शिरस्येति पद च विष्णो २२  
यदा यास्याम्यह गङ्गा यदा पश्यामि तामहम् ।



चाच्छन्यपि च गो ह्येवं सोऽपि विष्णुपद व्रजेत् ॥२३॥  
 गङ्गाया महिमा ब्रह्मन्वक्तु वर्षशतैरपि ।  
 न शक्यते विष्णुनापि किमन्वंदं बहुभाषितं ॥२४॥  
 अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येनदद्भुतम् ।  
 यतो वै नरक यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि ॥२५॥  
 ससारदुःखविच्छेदि गङ्गानाम प्रकीर्तितम् ।  
 तथा तुलस्या भक्तिश्च हरिकीर्तिप्रवक्तारि ॥२६॥  
 सकृदप्युच्चरेद्यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२७॥  
 योजननिनय यस्तु गङ्गायामधिगच्छति ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके समेति हि ॥२८॥

सद् धर्म के प्रवचन करने वाले के चरणों से स्पर्श की हुई रज-  
 गङ्गाजी की मृत्तिका और तुलसी के मूल की मिट्टी मस्तक पर चढ़ाने  
 की ऐसी महान् महिमा है कि वह मनुष्य सीधा विष्णु भगवान् के लोक  
 को प्राप्त हो जाता है । ॥२२॥ जो मनुष्य अपने हृदय में—मैं किस  
 समय में गङ्गाजी पर पहुँचकर रत्नादि करूँगा मैं जब गङ्गादेवी के  
 दर्शन करूँगा । ऐसे विचार उठा करते हैं वह भी अपने इन परम पवित्र  
 विचार धारा के ही परम पुण्य से विष्णु लोक की प्राप्ति कर लिया  
 करता है ॥२३॥ हे ब्रह्मन् ! अधिक क्या वणन किया जावे गङ्गाजी की  
 महिमा इतनी विशाल है कि भगवान् विष्णु भी यदि स्वयं कहना  
 चाहें तो उसे सँकड़ो वर्षों में भी नहीं कह सकते हैं । साधारण मनुष्य  
 भी तो शक्ति ही क्या हा सकता है ॥२४॥ यह भगवान् की माया ऐसी  
 है जो सम्पूर्ण ससार का मोह में डाल दिया करती है क्योंकि गङ्गा जैसी  
 परम पावन नदी बं विद्यमान रहते हुए भी उस ओर मायामग्नता के  
 कारण ध्यान न देने से मनुष्य नरका की यातनाएँ सहन किया करते हैं  
 क्योंकि पाप करने का स्वभाव होता ही है जिनका भुक्त नरक प्राप्ति

हुआ करती है। गङ्गा का नाम स्मरण, तुलसी की भक्ति और धर्म प्रवृत्ता म थ्रद्धाभाव ये ससार के जन्म-मरण के दुख को काट देने वाले हुआ करते हैं ॥२५॥ ॥२६॥ जो एक बार भी अपने जीवन में पापों की वासना को निर्मूल करने के लिये "गङ्गा" ये दो अक्षरों का उच्चारण करता है वह सभी पापों से छूट कर भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥२७॥ जो गङ्गा के क्षेत्र से बारह कोस तक विचरण किया करता है वह भी समस्त प्रकार के पापों से छूट कर सूर्य लोक को प्राप्त किया करता है। १२ कोस की दूरी पर भी गङ्गा का ऐसा प्रभाव होता है ॥२८॥

सेय गङ्गा महापुण्या नदी भक्त्या निपेविता ।  
 मेपतीलिमृगाकंपु पावयत्यखिल जगत् ॥२९॥  
 गोदावरी भीमरथी कृष्णा रेवा सरस्वती ।  
 तुङ्गभद्रा च नावेरी कालिन्दी वाहुदा तथा ॥३०॥  
 वेप्रवती ताम्रपर्णी सरयूश्च द्विजोत्तम ।  
 एवमादिपु तीर्थेषु गङ्गा मुख्यतमा स्मृता ॥३१॥  
 ✓यथा सर्वगतो विष्णुर्जगद्व्याप्य प्रतिष्ठित ।  
 तथेय व्यापिनी गङ्गा सर्वपापप्रणाशिनी ॥३२॥  
 अहो गङ्गा जगद्धात्री स्नानपानादिभिर्जगत् ।  
 पुनाति पावनीत्येषा न कथं सेव्यते नृभिः ॥३३॥  
 तीर्थानामुत्तम तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।  
 वाराणसीति विख्यात सर्वदेवनिपेवितम् ॥३४॥  
 ते एव श्रवणे धन्ये सविदाते बहुश्रुतम् ।  
 इह श्रुतिमता पु सा काशी याम्या श्रुताऽऽमृतम् ॥३५॥

यदि महा पुण्यमयी गङ्गाजी के जल का सेवन मेय, तुला और मरार के ऊपर जल सूर्य सकलमण किया करते हैं उस समय में किया जाये तो यह समस्त जगत् को परम पवित्र बना दिया करता है ॥३६॥

गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, रेवा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, कावेरी, फालिन्दी, बाहुदा, वेन्नवती, ताम्रवर्णी और सरयू इन समस्त तीर्थों में हे द्विजवर ! गङ्गा परम पुण्यमयी बतार्ह गई है ॥३०-३१॥ जिस प्रकार से भगवान् विष्णु समस्त लोको को व्याप्त कण्ठके विराजमान रहा करते हैं वैसे ही व्यापिनी यह गङ्गा भी सब महापापों का नाश कर देने वाली है ॥३२॥ इस ससार में जगत् को पुष्टि प्रदान करने वाली यह गङ्गा नदी स्नान, पान, दर्शन और स्पर्शन आदि के द्वारा जगत् को परम पवित्र बना देने वाली स्थित है तो भी मनुष्य इसका सेवन क्यों नहीं किया करते हैं—कैसी आश्चर्य की बात है ॥३३॥ वाराणसी में सभी देवगण विराजमान रहा करते हैं । यह भी परमोत्तम तीर्थ और श्रेष्ठ क्षेत्र है ॥३४॥ जिन कर्णों से बहुत से शास्त्रों का श्रवण करके उन पुण्य क्षेत्रों का धर्म ज्ञात किया है वे ही कान परम धन्य हैं जिन कानों ने बारम्बार काशी के माहात्म्य का श्रवण किया है ॥३५॥

ये य स्मरन्ति सस्थानमविमुक्त द्विजोत्तमा ।

निर्धूतसर्वपापास्ते शिवलोक व्रजन्ति वै ॥३६॥

योजनानां शतस्योऽपि अविमुक्त स्मरेद्यदि ।

बहुपातकपूर्णाऽपि पद गच्छत्यनामयम् ॥३७॥

प्राणप्रयाणसमये योऽविमुक्त स्मरेद् द्विज ।

सौऽपि पापविनिर्मुक्त शेष पदमवाप्नुयात् ॥३८॥

काशीस्मरणेन पुण्यं भुक्त्वा स्वर्गं तदन्ततः ।

पृथिव्यामेकराट् भूत्वा वाशो प्राप्य च मुक्तिमाप् ॥३९॥

बहुनाम किमुक्तेन वाराणस्या गुणान्प्रति ।

नामापि गृह्णता काश्याश्चतुर्वर्गो न वरत ॥४०॥

गङ्गायमुनयोयोर्गोऽधिक काश्या अपि द्विज ।

यस्य दर्शनमात्रेण नरा यान्ति परा गतिम् ॥४१॥

मकरस्थे रवौ गङ्गा यत्र कुत्रावगाहिता ।

पुनाति स्नानपानार्चनयन्तीन्द्रपुरं जगत् ॥४२॥

हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष अविमुक्त क्षेत्र इस काशी का स्मरण किया करते हैं वे अपने सब कृत पापों को झाड़कर सीधे शिवजी के लोक को चले जाया करते हैं ॥३६॥ कोई मनुष्य चारसी कोस दूर बैठे हुआ भी इस अविमुक्त क्षेत्र काशी का स्मरण भी कर लेता है वह चाहे अनेक प्रकार के पापों से पूर्ण भी क्यों न हो काशी में अपना मन लगाने के कारण से पापों के पुञ्ज से छूट कर अनामय पद की प्राप्ति कर लिया करता है । काशी में अपने चित्त को वृत्ति लगा देने मात्र का ही इतना प्रबल प्रभाव होता है ॥३७॥ अपने प्राणों का परित्याग करने के समय में काशीपुरी का स्मरण कर लेता है भले ही वह कहीं पर भी क्यों न हो, हे द्विजोत्तम ! वह भी सब पापों से विमुक्त होकर शिवलोक की प्राप्ति करने का अधिकारी हो जाता है ॥३८॥ इस काशीपुरी के स्मरण करने से स्वर्ग में सुख भोग कर के अन्त में इस भूमण्डल में आकर राजघर में जन्म ग्रहण किया करता है और फिर काशी निवास पाकर मुक्त हो जाया करता है ॥३९॥ वाराणसी के गुणों की अधिकता का वर्णन करने से क्या लाभ है ? जो काशी का ज्ञान प्रकाश नाम भी लेता है उससे चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहा करते हैं ॥४०॥ हे द्विज-वर ! गङ्गा यमुना का सङ्गम जहाँ पर है वह प्रयाग काशी से भी अधिक है जिसके केवल दर्शन करने ही से परम श्रेष्ठ गति प्राप्त होजाती है ॥४१॥ मकर राशि पर जब सूर्य स्थित हो तब चाहे जिस किसी घाट पर स्नान किया जावे वह स्नान-पान आदि से जगत् को पवित्र करके इन्द्रलोक में भेज दिया करती है ॥४२॥

यो गङ्गा भजते नित्य शङ्करो लोकशङ्करः ।

लिङ्गरूपी कथं तस्या महिमा परित्कीर्यते ॥४३॥

हरिरूपधरं लिङ्गं लिङ्गरूपधरो हरिः ।

ईषदप्यन्तर नास्ति भेदकृच्चानयो कुघी ॥४४  
 अनादिनिधने देवे हरिशङ्करसज्जिते ।  
 अज्ञानसागरे मग्ना भेद कुर्वन्ति पापिन ॥४५✓  
 यो देवो जगतामीश कारणाना च कारणम् ।  
 युगान्ते निगलत्येतद्गुरुरूपधरो हरि ॥४६✓  
 रुद्रो वै विष्णुरूपेण पालयत्यखिल जगत् ।  
 ब्रह्मरूपेण सृजति प्रान्ते ह्येतत्त्रय हर ॥४७  
 हरिशकरयोर्मध्ये ब्रह्मणश्चापि यो नर ।  
 भेद करोति सोऽप्येति नरक भृशदारुणम् ॥४८  
 हर हरि विधातार य पश्यत्येकरूपिणम् ।  
 स याति परमानन्द शास्त्राणामेव निश्चय ॥४९

समस्त जगत् के कल्याण करने वाले भगवान् लिङ्ग रूपधारी  
 शङ्कर भी सर्वदा गङ्गा का सेवन किया करते हैं ता ऐसी भगवती  
 गङ्गा की महिमा किस तरह से वणन की जा सकती है अर्थात् गङ्गा  
 का महत्त्व वणनातीत है ॥४३॥ लिङ्ग स्वरूपधारी शिव भी हरि के  
 रूप धारण करने वाले हैं और विष्णु चतुर्भुजधारी शिव रूप हैं । इन  
 दोनों में तनिक भी कुछ भेद नहीं है । जो मूढ़ मनुष्य इन में भेद राम  
 झता है उसकी बुद्धि वास्तव में ही कुत्सित हो गई है—यह मान लेना  
 चाहिए ॥४४॥ जन्म मरण से रहित भगवान् ब्रह्म तथा विष्णु में भेद  
 अज्ञान सागर में निमग्न महापापी ही समझा करते हैं या समझते हैं  
 ॥४५॥ जो भगवान् विष्णु इस जगत् के स्वामी है । कारणों के कारण  
 स्वरूप हैं वे ही स्वयं प्रदायकाल में भीषण रुद्र का रूप धारण कर  
 इस ससार को लीन कर लिया करते हैं ॥४६॥ रुद्रदेव ही विष्णुदेव  
 के स्वरूप से समस्त विश्व के चराचर का पालन पोषण किया करते  
 हैं और वे ही ब्रह्मा के स्वरूप में अवस्थित होकर विश्व का सृजन  
 किया करते हैं । अतः ये तीनों हर ही हैं ॥४७॥ अतएव ब्रह्मा,

विष्णु और महेश—इनमें जो भेद बुद्धि रखता है वह महान् दारुणतम नरक में जाकर परम घोर यातनाएँ सहता है ॥४८॥ जो प्राणी हरि-हर और ब्रह्मा इन तीनों को एक रूप देखता है वह परमानन्द की प्राप्ति किया करता है—ऐसा शास्त्रों का निश्चित सिद्धान्त है ॥४९॥

योऽसावनादि सर्वज्ञो जगतामादिकृद्भिर्भु ।  
 नित्य सन्निहितस्तस्यै लिंगरूपी जनार्दन ॥५०॥  
 काशीविश्वेश्वर लिंग ज्योतिर्ज्ञा तदुच्यते ।  
 त दृष्ट्वा परम ज्योतिराप्नोति मनुजोत्तम ॥५१॥  
 काशीप्रदक्षिणा येन कृमा गेलोवयपावनी ।  
 सप्तद्वीपा साब्धिशीला भू परिक्रमिमाप्नुना ॥५२॥  
 धातुमृददारुपापाणलेख्याद्या भूतयोऽमला ।  
 शिवस्य वाच्युतस्यापि तासु सन्निहितो हरि ॥५३॥  
 तुलसीकाननं यत्र तत्र पदमवग द्विज ।  
 पुराणपठनं यत्र तत्र सन्निहितो हरि ॥५४॥  
 पुराणसहितावक्ता हरिरित्यभधीयते ।  
 तद्भक्तिं भुवंता नृणा गङ्गास्नानं दिने दिने ॥५५॥  
 पुराणश्रवणे भक्तिगङ्गास्नानसमा द्विज ।  
 तद्वक्तरि च या भक्ति सा प्रयागोपमा स्मृता ॥५६॥

जो अनादि सर्वज्ञ इस विश्व का प्रारम्भ करने वाले भगवान् विष्णु हैं वही स्वयं साक्षात् काशी वाराणसी का विश्वेश्वर लिंग ज्योतिर्ज्ञा कहलाता है । इनका दर्शन प्राप्त करने मनुष्य परम ज्योतिर्मय लोभ को प्राप्त हो जाया करता है ॥५१॥ सम्पूर्ण तीनों भुवनों को परम पावन बना देने वाली वाराणसी पुरी की परिक्रमा जिस मनुष्य ने की है उसको इनका पुण्य होता है जो सात सागर गिरि बानन समन्वित एक सातों द्वीपयुती प्रदक्षिणा से दृढा करता है ॥५२॥ किसी

भी शुद्ध धातु, मृत्तिका, वायु, पापाण और तेज ( चित्ररूपी ) इत्यादि से निर्मित शिव और विष्णु की प्रतिमाये निर्मल होती हैं और उनमें भगवान् सन्निहित रह्य करत हैं ॥५३॥ हे द्विजवर । जिस स्थान में तुलसी का वन होता है या पद्मों का वन हाता है जहां पुराण का पाठ होता है वहां पर श्री हरि सदा विद्यमान रह्य करते हैं ॥५४॥ पुराणों की सहिता का प्रवचन करने वाला ( व्यास ) श्री हरि का ही प्रतिनिधि स्वरूप हुआ करता है । इन वक्ताओं की भक्ति करने वाला को प्रतिदिन गङ्गा के स्नान का फल मिलता है ॥५५॥ हे त्रिजगज । पुराणों के श्रवण करने में भक्ति की भावना का उत्पन्न होना गङ्गा के स्नान के ही समान है । पुराणों के वक्ता व्यास में जो भक्ति होती है उसकी उपमा प्रयाग की दी जाया करती है ॥५६॥

पुराणधर्मिकयनेयं समुद्धरते जगत् ।

ससारसागरे भग्ना स हरि परिकीर्तित ॥५७॥

नास्ति गङ्गासम तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरु ।

नास्ति विष्णुसम देव नास्ति तत्त्व गुरो परम् ॥५८॥

वर्णानां ब्राह्मण श्रेष्ठस्तारकाणां यथा शशी ।

यथा पयोधि सिन्धूना तथा गङ्गा परा स्मृता ॥५९॥

नास्ति शान्ति समो बन्धुर्नास्ति सत्यापर तप ।

नास्ति भोक्तात्परो लाभो नास्ति गङ्गासमा नदी ॥६०॥

गङ्गाया परमा नाम पापारण्यदवानल ।

भवव्याधिहरा गंगा तस्मात्सेव्या प्रयत्नत ॥६१॥

गायत्री जाह्नवी चोभे सर्वपापहरे स्मृते ।

एतयोर्भक्तिहीनो यस्त विद्यात्पतित द्विज ॥६२॥

गायत्री छन्दसा माता भाता लोकस्य जाह्नवी ।

उभे ते सर्वपापाना नाशकारणता गते ॥६३॥

पुराणा में वर्णित तथा पुराणों द्वारा प्रतिपादित धर्मों का वर्णन करके जो समार सागर में डूबते हुए प्राणियों का उद्धार करता है वह

व्यास हरि कहा जाता है ॥५४॥ गङ्गाजी के समान तोर्य नहीं है, माता के तुल्य कोई अन्य गुरु नहीं है, भगवान् विष्णु के सदृश्य अन्य देवता नहीं है और गुरु के समान कोई तत्व नहीं है ॥५५॥ जिस प्रकार नक्षत्रों और तारों में चन्द्र सर्वश्रेष्ठ होता है और चारों वर्णों में ब्राह्मण परम श्रेष्ठ होता है सातों सागरों में क्षीर सागर सर्वोत्तम है उसी प्रकार से समस्त नदियों में गङ्गा सर्वश्रेष्ठ नदी है ॥५६॥ जैसे शांति के तुल्य कोई वस्तु नहीं है—सत्य के समान अन्य कोई भी तप नहीं है—मोक्ष के बराबर अन्य लाभ नहीं है उसी भाँति श्रीगङ्गाजी के समान अन्य कोई नदी नहीं है ॥५७॥ पापारण्य दावानल अर्थात् पापों के बनों को भस्म करने वाला दावाग्नि यह गङ्गाजी का एक श्रेष्ठ अन्य नाम है । गङ्गा समस्त सासारिक व्याधियों का हरण करने वाली परमोत्कृष्ट नदी है । अतएव मनुष्यों का चाहिये गङ्गा का सेवन परम प्रयत्ना के साथ अवश्य ही करे ॥५८॥ गायत्री और गङ्गा ये दोनों सम्पूर्ण पापों का हरण कर मुक्त करा देने वाली हैं । जो देहधारी इन दोनों की भक्ति एवं सेवा से शून्य होता है वह महान् पतित प्राणी है ॥५९॥ गायत्री समस्त छन्दों की जननी है और गङ्गा स्रोकों की माता है । ये दोनों समस्त पापों के नाश करने का कारण हैं ॥६०॥

यस्य प्रसन्ना गायत्री तस्य गंगा प्रसीदति ।

विष्णुशक्तियुते ते द्वे समकामप्रसिद्धे ॥६१॥

धर्मार्थनामरूपाणां फलरूपे निरञ्जने ।

सर्वलोकानुग्रहार्थं प्रवर्तते महोत्तमे ॥६२॥

अतीव दुर्लभा नृणां गायत्री जाह्नवी तथा ।

तथैव तुलसी भक्तिर्हरिभक्तिश्च सात्त्विकी ॥६३॥

अहो गंगा महाभागा स्मृता पाप प्रणाशिनी ।

हरिलोभप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी ।

यग स्नाता नरा विष्णो पदमनुत्तमम् ॥६४॥



नारायणो जगद्धाता वासुदेव सनातन ।

गंगास्नानपुराणा तु वाञ्छितार्यफलप्रद ॥६८॥

गङ्गाजलकणेनापि यः सिक्तो मनुजोत्तम ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमपदम् ॥६९॥

यद्विन्दुसेवनादेव सगरान्वयः सम्भवः ।

विसृज्य राक्षसभावः संप्राप्तः परमपदम् ॥७०॥

जिस प्राणी पर गायत्री देवी परम प्रसन्न होती है उस पर गङ्गा भी प्रसन्न हो जाती है । इन दोनों में भगवान् विष्णु की भक्ति भरी हुई है इसीलिए ये दोनों सब कामनाओं को मिट्ट कर देने में एक सी ही हैं ॥६४॥ ये दोनों ही धर्म अर्थ और काम की सिद्धि स्वरूप वाली हैं निरञ्जन-महोत्तम और सब प्राणियों पर अपना अनुग्रह करने में सतत सलग्न रहती हैं ॥६५॥ इस ससार में मानवों को गायत्री-गङ्गा और तुलसी की भक्ति तथा परम सात्विकी भगवान् विष्णु की भक्ति का प्राप्त होना परम दुर्लभ होता है ॥६६॥ यह गङ्गा पापों का विनाश कर देने वाली महाभागा बतलाई गयी है जो केवल दर्शन करने मात्र से ही वैकुण्ठ लोक का निवास प्रदान किया करती है और इसके जल का पान करने पर भगवान् का साक्ष्य प्रदान किया करती है ॥६७॥ इस जगत् के धाता सनातन नारायण भगवान् वासुदेव प्रभु गङ्गा के स्नान करने वाले मानवों के समस्त मनोरथ पूर्ण किया करते हैं ॥६८॥ वह परम श्रेष्ठ पुरुष है जिसके देह पर गङ्गा जी के जल का एक वण भी गिर जाता है । इसी से ही वह मनुष्य सब प्रकार के महा पातकों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥६९॥ इस गङ्गा देवी के जल की विन्दु पड़ जाने से सगर के वंश में समुत्पन्न सीदास राक्षस भाव की त्याग कर परमोत्तम पद को प्राप्त हो गया था ॥७०॥

## ॥ राजा बाहु का चरित्र ॥

कोऽसौ राक्षसभावाद्वि मोचित सगरान्वये ।  
 सगर को मुनिश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१॥  
 शृणुष्वमुनिशार्दूल गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ।  
 यज्जलस्पर्शमात्रेण पावित सागर कुलम् ।  
 गत विष्णुपद विप्र सर्वलोभोत्तमोत्तमम् ॥२॥  
 आसीद्रविकुले जातो बाहुर्नाम वृकात्मज ।  
 बुभुजे पृथिवी सर्वा धर्मतौ धर्मतत्पर ॥३॥  
 ग्राह्याणा क्षत्रिया वैश्या ब्रूद्राश्चान्ये च जन्तव ।  
 स्थापिता स्वस्वधर्मेषु तेन बाहुर्विशापति ॥४॥  
 अश्वमेधैरियाजासौ समद्वीपेषु सप्तभि ।  
 अतर्प्ययद्भूमिदेवान् गोभूस्वर्णाशुकादिभि ॥५॥  
 अशासन्नीतिशास्त्रेण यथेष्ट परिपन्थिन ।  
 मेने कृतार्थमात्मानमन्यातर्पनिवारणम् ॥६॥  
 चन्दनानि मनोज्ञानि बलि यत्सर्वदा जना ।  
 भूयिता भूयणमिव्यैस्तद्राष्ट्रे सुखिनो मुने ॥७॥

श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ । सगर के वंश में राक्षस  
 भाव की प्राप्ति होने वाला कौन था जो गङ्गा के प्रभाव से मुक्त हो  
 गया था ? यह सगर कौन था ? इसका वर्णन कृपा कर मेरे  
 सामने आप कहिये ॥१॥ श्री सनकदेव ने नारदजी को उत्तर दिया  
 था—हे मुनियो मे शार्दूल । अब आपसी ऐसी ही अभिज्ञापा है, तो  
 गङ्गाजी के उत्तम माहात्म्य या विशेष रूप से श्रवण करिये । हे विप्र-  
 वर । गङ्गाजी जल का स्पर्श होने ही मगर राजा का वंश परम पवित्र  
 होकर सब लोकों में परमात्तम भगवान् विष्णु के लोह की वह प्राप्त  
 । गया था ॥२॥ सूर्यराज में एक वृक नाम होने राजा के पुत्र बाहु

नाम वाले राजा हुये थे । वे परम धर्म परायण थे और उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथिवी का उपभोग किया था ॥३॥ राजा बाहु ने अपने शान्त काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के प्राणियों को अपने अपने धर्मों कर्मों में स्थापित किया था । इसी-लिये बाहु प्रजापति कहनाया था ॥४॥ वह ऐसा धर्म परायण राजा हुआ था कि सातों द्वीपों में सात अश्वमेध यज्ञ आपने किए थे । समस्त ब्राह्मणों को उस राजा ने दक्षिणा के रूप में गौ भूमि, सुवर्ण और वारीक उत्तम वस्त्र आदि देकर पूर्णतया कृप्त किया था ॥५॥ नीति शास्त्र के अनुसार समस्त लुटेरों को समुचित दण्ड देकर किसी अन्य राजा को उस समय में छत्रघाती न देखकर वह अपने आपको परम कृतार्थ मानने लगा था ॥६॥ सुन्दर, सुगन्धित चन्दन लगाकर तथा दिव्याभूषण धारण करके मनुष्यों के शरीर में झुरियाँ पड़ जाया करती थी । हे मुने ! इस तरह से उसके राज्य में सभी लोग परम सुख से सुसम्पन्न और प्रसन्न रहा करते थे ॥७॥

अकृष्टपण्या पृथिवी फलपुष्पसमन्विता ॥८  
 ववर्ष भूमौ देवेन्द्र काले काले मुनीश्वर ।  
 अधर्मनिरतापाये प्रजा धर्मेण रक्षिता ॥९  
 एकदा तस्यभूपस्य सर्वसपत्निनाशकृत् ।  
 अहंकारो महाञ्जज्ञे सासूयो लोपहेतुर्ग ॥१०  
 अहं राजा समस्तान लोकाना पालको बली ।  
 कर्त्ता महाक्रतूना च मत्त पूज्योऽस्ति कोऽपर ॥११  
 अहं विचक्षण श्रीमाञ्जिता सर्वे ममारय ।  
 वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो नीतिशास्त्रविशारद ॥१२  
 अजेयोऽव्याहतंश्वर्यो मत्त कोऽन्योऽधिको भुवि ।  
 अहंकारपरस्यैव जातासूया परेऽपि ॥१३  
 असूयातोऽभवत्कामस्तस्य राज्ञो मुनीश्वर ।

एषु स्थितेषु तु नरो विमाश यात्यसशयम् ॥१४॥

हे मुनिवर ! वह ऐसा धर्मपालक राजा हुआ था कि उसके राज्य में यह पृथ्वी बिना ही जोते हुये ही पूर्ण रूप से पक जाया करती थी और खूब फल पुष्पादि दिया करती थी ॥८॥ हे मुनीश्वर उचित समय पर मेघ आकर वर्षा किया करते थे और भूमि को जल से नृप्त कर देते थे । उस राजा ने प्रजा में जो अधर्म की प्रवृत्ति थी उसका समूल विनष्ट करके उनको धर्म में पूर्णतया प्रवृत्त कर दिया था तथा धर्म की अच्छी तरह से रक्षा की थी ॥९॥ एक समय ऐसा आ गया था कि उस राजा की सम्पूर्ण सम्पत्तियों को विनष्ट करने वाला और सब सदगुणों में दोष लगाने वाला यह विनाश का कारण बड़ा भारी अहङ्कार हो गया था ॥१०॥ उसके मनमें ऐसा धर्म दूषित भाव पैदा हो गया था कि मैं तो सभी लोकों का पालन करने वाला हूँ और महान बलवान राजा हूँ । मैंने बड़े २ विशाल यज्ञों का यजन किया है । इस समय में विश्व में मुझसे अधिक पूजनीय अन्य कोई भी नहीं है ॥११॥ मैं तो श्री सम्पन्न और विचक्षण राजा हूँ मेरे सभी शत्रु परास्त हो गये हैं । मैं तो वेदों और वेदांतों के तत्त्वों को मली भाति जानने वाला हूँ तथा नीति शास्त्र के ज्ञान में भी बहुत कुशल हूँ ॥१२॥ मैं इस समय समार में अजेय हूँ और मेरा यह ऐश्वर्य भी अट्ठाहात है । मुझसे अधिक इस भूमंडल में कोई नहीं है । इस तरह के हृदय में उठने वाले अहङ्कार से भरकर वह राजा दूसरों के गुणों में भी दोषों का आरोपण करने लग गया था ॥१३॥ हे मुनीश्वर ! अगूया के भाव में उस राजा के हृदय में काम वासना की उत्पत्ति होगयी थी । जिसके होजाने में प्रायः मनुष्य का विनाश हाजाया करता है ॥१४॥

{ योयन धननपति प्रभुत्वमविवेकिना ।

{ एतं सम्पन्नर्थाय हि मु यम चतुष्टयम् ॥१५॥

स्यागूयानुमही जाना मोक्षिरोधिनी ।

स्वदेहनाशिनी विप्र सर्वसपट्टिनाशिनी ॥१६  
 असूयाविष्टमनसि यदि सपत्नवर्त्तते ।  
 तुपाग्निं वायुमयोगमिव जानीहि सुव्रत ॥१७  
 असूयोपेतमनसा दम्भाचारवता तथा ।  
 परुषोक्तिरताना च सुखं नेह परत्र च ॥१८  
 असूयाविष्टचित्ताना सदा निष्ठुरभाषिणाम् ।  
 प्रिया वा तनया वापि बान्धवा अप्यरातय ॥१९  
 मनोभिलापं कुरुते यः समीक्ष्य परश्रियम् ।  
 स स्वसपट्टिनाशाय कुठारो नात्र सशयः ॥२०  
 यः स्वश्रेयोविनाशाय कुर्याद्यत्नं नरो मुने ।  
 सर्वेषां श्रेयसं दृष्ट्वा स कुर्यान्मत्सरं कुधी ॥२१

जीवन-धन सम्पत्ति प्रभुता और अविशेषता इन चारों वस्तुओं में यदि एक भी किसी को होजाये तो वह महान् अनर्थ करने वाली होजाया करती है-ऐसा शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है और फिर दुर्भाग्य से यदि ये चारों ही एकत्रित हो जायें तो फिर उस व्यक्ति के विनाश में कुछ भी सन्देह ही नहीं रहता है ॥१५॥ हे विप्रवर ! यह असूया की भावना ही एक ऐसी भयानक होती है जो समस्त सम्पत्तियों का विनाश कर दिया करती है और शरीर को विनष्ट ही कर देती है । ममार में द्रोघ की घृष्टि कर देने वाली बहो असूया उनके हृदय में बहुत ही अधिक मात्रा में समुत्पन्न हो गयी थी ॥१६॥ हे सुव्रत ! जिस प्राणी के हृदय में ईर्ष्या और असूया की भावना सवृद्ध होकर भर जाये उसके पास जितनी अधिक सम्पत्ति क्यों न हो वह वायु के समान जो पावर उस में प्राप्त अग्नि के समान अति शीघ्र ही विनष्ट हो जात यालों समझ लेना चाहिए ॥१७॥ जिसका मनमें असूया की भावना भरी रहा करती है और जो केवल प्रदर्शन मात्र के ही लिए सदाचार का ढोंग किया करता है तथा अपने मुख से बहुर बारें

निकाला करते हैं उनको न तो इस लोक में मुख शान्ति प्राप्त होती है और न परलोक में ही शान्ति मिला करती है ॥१८॥ जो असूया से मुक्त रहा करते हैं और परम निकृष्ट भाषण किया करते हैं उनको अपनी स्त्री बन्धु जन भी शत्रु के समान दिखाई दिया करते हैं ॥१९॥ जो दूसरे के वैभव को देखकर उसे अपहरण करने का विफल मनोरथ अपने चित्त में किया करते हैं उसे समझना चाहिये कि वह अपनी प्राप्त सम्पत्ति को काटने के लिए बुरा ही चलाया करता है ॥२०॥ हे मुनिवर ! जो अपने श्रेय का नाश करने के लिए यत्न करता है वही दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य अन्योके श्रेय को देख कर मनमें डाह किया करता है । जब दूसरो के श्रेय से डाह करने लगे तो समझ लेना चाहिये कि इसके श्रेय का निश्चित ही अब विनाश होने वाला है ॥२१॥

मित्रापत्यगृहक्षेत्रधनधान्यपशुप्वपि ।

हानिमिच्छन्नर. कुर्यादसूया सततं द्विज ॥२२॥

अथ तस्या विनीतस्य ह्यसूयाविष्टचेतसः ।

हैहयास्तालजघाश्च वलिनोऽरातयोऽभवन् ॥२३॥

यस्यानुकूलो तक्षशीश. सौभाग्यं तस्य वर्द्धते ।

स एव विमुखो यस्य सौभाग्यं तस्य हीयते ॥२४॥

तावत्पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्य-गृहादयः ।

यावदोक्षेत लक्ष्मी. कृपापाङ्गुलैर्न नारद ॥२५॥

अपि मूर्खान्धवधिरजडाः शूरा विवेकिनः ।

श्लाघ्या भवन्ति विप्रेन्द्र श्रेक्षिता माधवेन ये ॥२६॥

सौभाग्यं तस्य हीयेत यस्यासूयादिलाञ्छनम् ।

जायते नात्र सदेहो जन्तुद्वेषो विप्रेपतः ॥२७॥

सततं यस्य कस्यापि यो द्वेष कुरते नरः ।

तस्य सर्वाणि नश्यन्ति श्रेयासि मुनिसत्तम ॥२८॥

हे द्विजवर ! जिसके मित्र सन्तान—घर, धेत, धन-धान्य और पशु आदि का विनाश निवृत्त में ही होने वाला होता है वही मनुष्य अमूया का भाव मनमें करने लगता है ॥२२॥ इस प्रकार में उस राजा के हृदय में नम्रता में रहित अमूया की भावना बढ गई तो उस समय में दैत्य और तात्त वक्ष के नृप उमके शत्रु बन गये थे ॥२३॥ यह तो मार्बेदिक निश्चित नियम है कि भगवान् जिसके अनुकूल रहा करने हैं उसी का मोभाग्य इस जगत् में बढ़ा करता है और जिसके दुराचारण ने भगवान् विष्णु अप्रसन्न एवं विमुख हो जाते हैं उसका मोभाग्य चाहे किना भी क्यों न हो सब विनष्ट होजाया करता है । इसीनिये भगवान् की सन्तुष्ट रहने के निये धीरे अपने अनुकूल बनाने के वास्ते सदाचरण एवं गत्वर्गों का महत्त्व होता है ॥२४॥ हे नारद ! जिस समय तक भगवान् कृपापूर्ण अपनी दृष्टि प्राणी पर रखते हैं तभी तक उसके पुत्र, पौत्र, धन-धान्य आदि का वैभव बना रहा करता है ॥२५॥ हे विप्रवर ! भगवान् की गुरुदृष्टि की बड़ी अधिक महिमा है । भगवान् की गुरुदृष्टि होजाने पर महान् मूढ़-अंधे-जड़ और अधिग भी बड़े गूर और विवेकशील एवं प्रजगा के पात्र होजाया करने हैं ॥२६॥ जिसने हृदय में अमूया आदि तात्तन लग जाया करने हैं, उसका सम्पूर्ण मोभाग्य क्षीण होने लगता है वह फिर समस्त प्राणियों में द्वेषभाव रखने लगता है । फिर धीरे धीरे उसके सम्पूर्ण गुण बर्गों का विनाश होने लगता है चाहे वहनि उमके किने हो गुम बर्ग वरी न होके ॥२७॥

अमूया यत्नं ते यम्य तम्य विष्णु पराङ्मुख ।

धन धान्यं मत्तो मन्त्रिणाश्च ततो ध्रुवम् ॥२८॥

विषेक एन्वत्ताम्बुतिरोत्तु जोरिनाम् ।

आनद मभवन्नेरेत्तवत्त स्पष्टेत्तम् ॥२९॥

अन्वत्तरो भवेत्तम् मम्य नानोर्त्तपेत्तम् ।

असूयाविष्टमनसस्तस्य राज्ञ परं सह ॥३१॥  
 आयोधनमद् घोर मासमेक निरन्तरम् ।  
 हैहयैस्तालजड् घैश्च रिपुभिः स पराजितः ॥३२॥  
 वन गतस्ततो बाहुरन्तर्वल्या स्वभार्यया ।  
 अवाप परमा तुष्टिं तत्र दृष्ट्वा महत्सरः ॥३३॥  
 असूयोपेतमनसस्तस्य भाव निरीक्ष्य च ।  
 स रोगतविहङ्गास्ते लीनाश्चित्रमितः महत् ॥३४॥  
 अहो कष्टमहो रूप घोरमत्र समागतम् ।  
 विशन्तस्त्वरया वासमित्यूधुस्ते विहङ्गमाः ॥३५॥

जिस मनुष्य के चित्त में असूया का भाव बढ़ने लगता है उससे भगवान् विष्णु परागमुख होजाया करते हैं और जब भगवान् की विमुखता होने लगती है तो उसकी पृथ्वी धन, धान्य आदि की समस्त सम्पत्ति का विनाश अवश्य होजाया करता है ॥३६॥ यह निश्चित नियम है कि चित्त में जब अहंकार आजाता है तो उसका विवेक बिल्कुल ही नष्ट होजाता है । जब अविवेक और अविचार मन में आ जाते हैं तो उस प्राणी को चारों ओर से अविचार और आपत्तियाँ घेर लिया करती हैं । इसलिये अहंकार बहुत बुरी वस्तु है इसका त्याग ही कर देना चाहिये । यह सर्वनाश का मूल होता है ॥३७॥ जिसके हृदय में अहंकार हो जाता है उसका विनाश बहुत ही वेग से होने लगता है । इस प्रकार अगूया में युक्त उस राजा बाहु का युद्ध निरन्तर एक मास तक होता रहा था और अन्त में हैहय वंश और तालजघ राजाओं ने उसको पराजित कर दिया था ॥३१॥३२॥ वह फिर सब वैभव छाकर अपनी गभवती स्त्री को लेकर वन में चला गया था । वहाँ परम परम विद्वान् मरावर का देश भर उसका अधिक प्रशंसा हुयी थी ॥३३॥ वहाँ पर एक अत्यन्त आश्चर्य की बात यह हुई कि उक्त राजा के ईप्सानु भाव को भापकर उस सरोवर पर रहने वाला



सब पक्षी अपने २ घासलो म प्रविष्ट होगये थे ॥३४॥ जिस समय म उड़ २ कर जाने लगे थे तब यह कहते जा रहे थे कि—अरे ! यह बहुत ही अधिक दुःख की बात है कि बहुत ही धीरे बमों के करने वाला यह प्राणी यहाँ पर आगया है । ऐसा थे सब पक्षी वापस में बातचीत करते हुये अपने २ घासलो म जाकर छिप गये थे कि उसका मृत न दिखाई पड़े ॥३५॥

सोऽवगाह्यसरोभूप पत्नीभ्या सहितो मुदा ।  
पीत्वा जलं च सुखदं वृक्षमूलमुपाश्रित ॥३६॥  
तस्मिन्वाहो वनं याते तेनेव परिरक्षिता ।  
दुर्गुणान्विगणय्यास्य द्विग्विगित्यद्बुधप्रजा ॥३७॥  
{ यो वा को वा गुणी मर्त्यं सर्वश्लाघ्यतरो द्विज ।  
{ सबसपत्समायुक्तोऽप्यगुणो निन्दितो जनै ॥३८॥  
आपकीर्तिसमो मृत्युर्लोकेष्वन्यो न रिद्यते ।  
यदा बाहुर्वनं यातस्तदा तद्राज्यगा जना ।  
सतुष्टिं परमा याता दवयो विगते यथा ॥३९॥  
निन्दितो बहुशो बाहुर्मृतवत्कानने स्थित ।  
निहत्य कम च यशो लोके द्विजवरोत्तम ॥४०॥  
{ नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपु ।  
{ नास्ति निदासम पाप नास्ति मोहसमासव ॥४१॥  
{ नास्त्यमूयासमाकीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनल ।  
{ नास्ति रागसम पाशा नास्ति सङ्गसम विषम् ॥४२॥

उस समय म उस विषय विहीन राजा न अपनी पत्नियों के साथ म उस सरोवर म स्नान करके जनपान किया था और तानन्द मुक्त पूर्वक उसी वृक्ष के मूल म आवर बैठ गया था ॥३६॥ उस राजा बाहु के वन म जाने पर उसकी समस्त रक्षित प्रजा उसका महान दुर्गुण पर विचार करके उसकी धिन्नार देन लगी

यी ॥३७॥ हे द्विजवर । चाहे कोई भी कैसा ही मनुष्य हो यदि वह गुणों से सुसम्पन्न होता है तो सभी उसकी प्रशंसा किया करते हैं, भले उसके पाम कुछ भी न हो और जो गुणहीन एवं दुर्गुणों से युक्त होता है तो भले ही वह कैसा भी शक्तिशाली क्यों न हो उसकी सभी मनुष्य निन्दा किया करते हैं ॥३८॥ इस ससार में अपकीर्ति का होना मृत्यु से भी अधिक कष्टदायक होता है । वह बाहु राजा अपना सभी कुछ विनष्ट करके जब वन में चला गया था तब सभी उसके राज्य में निवास करने वाले भीष्म के ताप के व्यतीत होजाने के ही समान परम सन्तोष का अनुभव करने लग गये थे ॥३९॥ हे द्विजवर । इस भाँति वह बहुत प्रकार की निन्दा का पात्र होता हुआ अपने सुयश और शक्तियों का विनाश करके एक मृत प्राणी के ही तुल्य उस वन में रहने लगा था ॥४०॥ अकीर्ति मृत्यु के ही समान होती है । क्रोध के तुल्य अन्य कोई भी शत्रु नहीं होता है । मनुष्य को क्रोध एक महान् शत्रु के ही समान हुआ करता है । मोह के बराबर मादक वस्तु इस ससार में अन्य कुछ भी नहीं है ॥४१॥ असूया ही सबसे बड़ी अकीर्ति करने वाली होती है । काम के समान अन्य कोई भी अग्नि नहीं है । राग के तुल्य अन्य कोई बन्धन नहीं होता है । कुसंगति के बराबर अन्य कोई वस्तु नहीं है जो विष का सा प्रभाव रखती है ॥४२॥

एव विलप्य बहुधा बाहुरत्यन्तदु खित ।

जीर्णाङ्गो मनसस्तापाद वृद्धभावादभूदसौ ॥४३॥

गते बहुतिथे काले और्वाश्रमसमीपतः ।

सयाहुर्प्राधिना ग्रस्तो ममार मुनिसत्तम ॥४४॥

तस्य भार्या च दु खार्ता वनिष्ठा गभिणी तदा ।

चिर विलप्य बहुधा सह गन्तु मनो दधे ॥४५॥

समानोय च मैघासि चित्ता कृत्वातिदुःखिता ।

समारोप्य तमारुह स्वयं समुपचक्रमे ॥४६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे धोमानोर्वस्तेजोनिधिमुनि ।  
 एतद्विज्ञातवान्सर्वं परमेण समाधिना ॥४७॥  
 भूत भव्य वर्त्तमान त्रिकालज्ञा मुनीश्वरा ।  
 गतामूया महात्मान पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥४८॥  
 तपोभिस्तेजसा राशिरोर्वं पुण्यसमो मुनि ।  
 सप्राप्तस्तत्र साध्वी च यत्र बाहुप्रिया स्थिता ॥४९॥

उस अवस्योक्ति के कारण ही वह बहुत विलाप करता हुआ बहुत अधिक दुःखित हुआ था । इस तरह से बड़े हुए मन का सन्ताप और वृद्धता के भाव के कारण उस बाहु राजा के सभी अङ्ग बहुत जीर्ण होगये थे ॥४६॥ इस प्रकार स वह बाहु राजा ओर्वं ऋषि के आश्रम के समीप में बहुत सा समय व्यतीत करके हे मुनिवर ! वह व्याधिया से प्रस्ता हाकर वही पर मर गया था ॥४७॥ उसका मृत्युगत हा जाने पर उसकी जो छोटी पत्नी थी वह बहुत ही दुःखित हुई थी क्योंकि वह गम्भवती थी । उसने बहुत अधिक विलाप किया था ॥४८॥ उस रानी ने ई धन एकत्रित कर बिना बनाई और अत्यन्त शोकग्रस्त दुःखिनी ने उस पर राजा के शव को रखकर उसी के साथ स्वयं भी चदकर दाह करने का विचार किया था ॥४९॥ उस समय में परमाधिक तेजस्वी ओर्वं मुनि ने समाधि के द्वारा इस वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त करते वहीं पर प्राप्त होगये थे ॥४७॥ मुनीश्वर तो तीना पात्रा की बात की भली प्रकार से जानते ही हैं । वे महात्मा अमूया के भाव से रक्षित होने के कारण ज्ञान की दृष्टि से सभी कुछ का ज्ञान प्राप्त कर लिया करते हैं ॥४८॥ तपश्चर्या के कारण महान तप वाले मूर्तिमान पुण्य के समान के और मुनि भी जहाँ पर यहाँ चिता बनाई गयी थी और बाहु की साध्वी पत्नी गती हाता चाहती थी यहाँ उपस्थित हा गये थे ॥४९॥

चितामारोढुमुद्युक्तातादृष्ट्वा मुनिसत्तम ।  
 प्रोवाच धर्मभूलानि वाक्योनि मुनिसत्तम ॥५०॥  
 राजययंप्रिये साध्वि मा कुर्व्यातिसाहसम् ।  
 तवोदरे चक्रवर्ती शत्रुहन्ता हि तिष्ठति ॥५१॥  
 बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टश्रुतवस्तथा ।  
 रजस्वला राजसुते नायेहति चिता शुभे ॥५२॥  
 ब्रह्महत्यादिपापानां प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमै ।  
 दम्भिनो निदकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः ।  
 नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षाकरस्य च ।  
 विश्वासघातकस्यापि निष्कृतिर्नास्ति सुव्रते ॥५४॥  
 तस्मादेतन्मह पाप कर्तुं नार्हसि शोभने ।  
 यदेतद्दुःखमुत्पन्ना तत्सर्वं शातिमेप्स्यति ॥५५॥  
 इत्युक्ता मुनिना साध्वी विश्वस्य तदनुग्रहम् ।  
 विनलापातिदुःखार्ता सगुह्य ध्रुवपत्न्यौ ॥५६॥

हे मुनिवर ! जिस समय मे औरंग मुनि ने रानी को चिता पर चढ़ाकर दाह करने को प्रस्तुत देखा था तो उस समय मे ये धर्म मे परिपूर्ण यवन कहने लग थे ॥५०॥ और मुनि ने अपने भाषण मे कहा—हे साध्वि ! तुम इस श्रेष्ठ राजा की प्रिया हो किन्तु तुम्हारे उदर मे समस्त शत्रुओं का विनाश कर देने वाला चक्रवर्ती पुत्र विद्यमान है अतएव यह जो परम साहस से पूर्ण सती होने का तुम्हारा विचार है इसको मत करो ॥५१॥ हे गुणे ! शासन का यह मुनिविद्युत सिद्धान्त है कि जिनकी सन्तति बालक एवं अशतमर्ष हाती है—जो गर्भवती हाती है—जिनका रजादहन नहीं हुआ है—जो रजस्वला हैं । हे राजपुत्र ! हे शुभे ! वे चितारोहण करके सती नहीं हुआ करती हैं । उनको धर्मशास्त्र के अनुसार सती होने का अधिकार प्राप्त नहीं है ॥५२॥ श्रेष्ठ महानुभावो ने ब्रह्महत्या प्रभृति

महापाप करने वाले की—दम्भ करने वाले की तथा निन्दक की तो सबकी निष्कृति बतनाई है किन्तु जो गर्भवती होती है उसकी निष्कृति या उद्धार का कहीं पर कोई भी नहीं कहा है ॥५३॥ अतएव ह साध्वि ! ह सुब्रत ! नास्तित्वा, कृतघ्न और धर्म की उपेक्षा करने वाल तथा विश्वासघातक पुरुष का इनना महान् पाप समझा जाता है इसके करने वाले का कोई प्रायश्चित्त ही नहीं बताया गया है ॥५४॥ इसलिये आपनो इस समय में यह महान् पाप का करना उचित नहीं है । हे शाभन ! तुम्हारे ऊपर जा इस समय में यह बहुत भारी कष्ट आया है वह सभी कुछ समय में दूर होजायगा ॥५५॥ और्व मुनि के इस भाति स कथन करने पर यह साध्वी मुनिवर के अनुग्रह पर विश्वास करने अति दुःखित भाव में अपने पतिदेव के चरणा को पकड़ कर विलाप करने लगी थी ॥५६॥

और्वोऽपि ता पुन प्राह सर्वशास्त्राथकोविद ।  
 मा रोदी राजतनये श्रियमग्रया गमप्यसि ॥५७॥  
 मा मुचास्त्र महाभागे प्रेतो दाह्योऽद्य नज्जनै, ।  
 तस्माच्छोक परित्यज्य कुरु कालोचिता क्रियाम् ॥५८॥  
 पण्डिते वापि मूर्खे वा दरिद्रे वा श्रियान्विते ।  
 दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मृत्यो सर्वत्र तुल्यता ॥५९॥  
 नगरे वा तथारण्ये दैवमात्रातिरिच्यते ॥६०॥  
 यद्यत्पुरातन कर्म तत्तदेवेह युज्यते ।  
 कारण दैवमेत्रात्र मृत्ये सोपाधिका जना ॥६१॥  
 गर्भे वा बाल्यभावे वा यौवने वापि वार्द्धके ।  
 मृत्योर्वंश प्रयातव्य जन्तुभि कमलानने ॥६२॥  
 हन्ति पाति च गोविन्दो जन्तून्कर्मवशे स्थितान् ।  
 प्रवाद रोपमन्त्रजा हतुमाशेषु जन्तुषु ॥६३॥

उस समय में सर्वशास्त्रा के महा मनीषी और्व मुनि ॥ उससे

फिर कही—हे राजपुत्र ! तुम विलाप मत करो । तुमको भविष्य में परम श्रेष्ठ लक्ष्मी की प्राप्ति होगी ॥५७॥ हे महाभागे ! तुम अब अधिक अश्रुपात मत करो । आज के दिन विद्वान लोगो ने प्रेत की दाह क्रिया करने की आज्ञा दी है अतएव शोक या त्याग करके सम-योचित दाह की क्रिया को सस्पन्न करो ॥५८॥ यह मृत्यु तो सभी को एक दिन आया ही करती है चाहे कोई पण्डित मूर्ख, दरिद्र, लक्ष्मी-मान्, दुराचारी या सदाचारी क्यों न हो । यह तो सभी को समान भाव से समय पर आती है ॥५९॥ नगर हो या वन हो कहीं पर भी मौत का जब समय प्राप्त हो जाता है तब आ ही जाया करती है, इसका कोई भी प्रतिकार नहीं होता है प्रारब्ध के अनुसार ही मृत्यु सर्वत्र सबको आया करती है ॥६०॥ पूर्व जन्मों के जो सचित्त कर्म होते हैं उनका योग बुरा या भला जैसा भी हो उसको इस ससार में हर एक को भोगना ही पड़ता है । मैं तो इस प्रकार से भोग करने में प्रारब्ध को ही मुख्य कारण मानना हूँ - किसी न किसी उपाधि के वश होकर पूर्व जन्म में किये हुए कर्म के कारण ही गनुष्य इस जगत् में फल भोगा करते हैं ॥६१॥ हे कमल के समान मुख वाली ! भोगों के अनुसार ही प्राणी गर्भ में, शैशवावस्था में यौवन में अथवा वार्धक्य में अवश्य ही मृत्यु के पजे में पड़ते ही हैं ॥६२॥ भगवान् प्रभु कर्मों के वश में पड़े हुए प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार पालन किया करते हैं और मारते हैं । मूढ पुरुष तो जो निमित्त मात्र बने हुये प्राणी हैं उन पर दोषारोपण किया करते हैं ॥६३॥

तस्माद्दुःख परित्यज्य सुखिनी भव सुव्रते ।

कुरु पत्युश्च कर्माणि विवेकेन स्थिरा भव ॥६४॥

एतच्छरीरं दुःखानां व्याधीनामयुतैर्वृतम् ।

सुखाभासं बहुक्लेशं कर्मपाशेन यन्वितम् ॥६५॥

इत्याश्वास्य महाबुद्धिस्तथा कार्याण्यकारयत् ।

त्यक्तशोका च सा तन्वी नता प्राह मुनीश्वरम् ॥६६॥  
 किमत्र चित्रं यत्सन्तः परार्थफलकाक्षिणः ।  
 नहि द्रुमाश्च भोगार्थं फलन्ति जगतीतले ॥६७॥  
 योज्यदुःखानि विज्ञाय साधुवाक्यैः प्रबोधयेत् ।  
 स एव विष्णुस्सत्त्वस्थो यतः परहिते स्थितः ॥६८॥  
 अन्यदुःखेन यो दुःखी योज्य हर्षेण हर्षितः ।  
 स एव जगतामीशो नररूपधरो हरिः ॥६९॥  
 तद्भिन्नं श्रुतानि शास्त्राणि परदुःखविमुक्तये ।  
 सर्वेषां दुःखनाशाय इति सन्तो वदन्ति हि ॥७०॥

अतएव हे मुनते ! अब तुम इस पति-वियोग के दुःख का त्याग करके सुखी बनो और विवेक द्वारा अपनी बुद्धि को स्थिर करो । अब तुमको यही चाहिये कि अपने पति का औदार्य देखि करम को मर्यादा विधि करो । यह शरीर तो अयुक्त ( दस हजारों ) व्याधियों से घिरा हुआ रहा करता है । इसमें सुख का तो केवल आभास मात्र ही होता है अन्यथा इसमें नाना प्रकार के क्लेश ही क्लेश भरे हुये हैं सुख तो वास्तव में ही नहीं । यह शरीर कर्मों के पास में बद्ध है ॥६४॥६५॥ महान् मेधावी उग्र और मुनि ने इस रीति से उसका समाधान करके धीरज प्रदान किया और कर्म पराने की चाह की थी । उस स्त्री ने भी शोक का त्याग कर मुनि को प्रणाम किया और उसने कहा इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है सज्जन पुरुष सदा परोपकाररूपी फल की ही इच्छा किया करते हैं । पृथ्वी पर वृक्ष अपने लिये कभी फल नहीं दिया करते हैं और वे परोपकार करने के लिये ही फलते-फूलते हैं ॥६६॥६७॥ जो पुरुष दूसरे को दुःख में पतित देखकर और उसके दुःख का ज्ञान प्राप्त करके उसके सदुपदेशों के वचनों द्वारा शान्ति प्रदान किया करते हैं उनको सत्त्व गुण में ही विराजमान मम-हन्ता चाहिये क्योंकि वे गर्वदा दूसरों के हित में पराधन रहा करते

ही उस चिता के मध्य से देवराज इन्द्र के समान चमकता हुआ उठा और मुनिराज दीर्घ को प्रणाम करके एक परम श्रेष्ठ विमान में विराजमान होकर परम धाम को चला गया था ॥७३॥ चाहे कोई पापी हो या महापातकों से घिरा हुआ हा महापुरुष की जिस पर कृपा की दृष्टि हो जाती है तो वह निश्चय ही सबसे मुक्त होकर परमधाम को प्राप्त हुआया करता है ॥७४॥ हे सत्तम ! पुण्यात्मा महापुरुष की दृष्टि किसी के शरीर—भस्म, अथवा धूम पर भी पड़ जाया करती है तो वह सभी पापों से छुटकारा पाकर परमोत्तम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥७५॥ हे नारद ! वह रानी अपने पति की क्रिया करके मुनि के ही आश्रम में भक्ति भाव से उनकी सेवा करने में तत्पर हो गयी थी उसकी सपत्नी भी उसी के साथ रहने लगी थी ॥७६॥



## ॥ भगीरथ द्वारा गंगाजी का लाया जाना ॥

एवमौर्वाश्रमे ते द्वे बाहुभार्ये मुनीश्वर ।  
 चक्राते भक्तिभावेन शुश्रूषा प्रतिवासरम् ॥१॥  
 गने वर्षाद्विंश काले ज्येष्ठा राज्ञी तु या द्विज ।  
 तस्या पाप मतिर्जाता सपत्न्या सम्पद प्रति ॥२॥  
 ततस्तया गरो दत्त अनिष्टायै तु पापया ।  
 न स्पृशप्रभाव चक्रे वैगरो मुनिनिषेवया ॥३॥  
 भूनेपनादिभि सम्यग्यत सानुदिन मुने ।  
 चण्डार सेवा तेनासी जोर्णपुण्येन वर्मणा ॥४॥  
 ततो मासत्रयेऽशीते गरेण सहित सुतम् ।  
 गुपान मुमुग्धे काले शुश्रूषानष्टत्रिविधा ॥५॥  
 अहो सत्सङ्गतिर्लोके वि पाप न विनाशयेत् ।  
 न तदातिमुख वि वा नराणा पुण्यवर्मणाम् ॥६॥



हैं ॥६८॥ जो सर्वदा दूसरो के दुखों में स्वयं दुःखित होता है और दूसरो के हर्ष में स्वयं प्रसन्नता का अनुभव किया करता है उस पुरुष को इस जगत् का स्वामी नररूपधारी साक्षात् विष्णुदेव ही समझना चाहिए ॥६९॥ सज्जन पुरुष दूसरो का दुःख निवारण करने के लिये शास्त्रों का गहन अध्ययन किया करते हैं और जब दूसरो को दुःख में मग्न देखते हैं तो अवसर प्राप्त करके उस दुःख का निराकरण करने के लिये शास्त्र का सार उन्हें सुनाया करते हैं ॥७०॥

यत्र सन्तः प्रवर्तन्ते तत्र दुःखं न बाधते ।  
 वर्तन्ते यत्र मातृण्डं कथं तत्र तमो भवेत् ॥७१॥  
 इत्येव वादिनी सा तु स्वपत्युश्चापरा क्रिया ।  
 चकार तत्सरस्तीरे मुनिप्रोक्तविधानतः ॥७२॥  
 स्थिते तत्र मुनी राजा देवराडिव सज्ज्वलन् ।  
 चित्तामध्वाद्विनिष्क्रम्य विमानवरमास्थितः ॥७३॥  
 प्रपेदे परमं धाम नत्वा चोर्वं मुनीश्वरम् ।  
 महापक्युक्ता वा युक्ता वा चोपपातकं ।  
 परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिर्भवलोकितः ॥७४॥  
 कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम् ।  
 यदि पश्यति पुण्यात्मा संप्रयाति परां गतिम् ॥७५॥  
 पर्युः कृतक्रिया सा तु गत्वाश्रमपदं मुनेः ।  
 चकार तस्य मुश्रूपा सपत्न्या सह नारदः ॥७६॥

जिस स्थल पर सज्जन पुरुषों का प्रवेश होता है वहाँ पर दुःख विशेष और नहीं करता है क्योंकि ज्ञान के मूर्खों के सामने अज्ञान से समुत्पन्न दुःख का अन्धकार रहने नहीं पाता है ॥७१॥ उसने इस प्रकार से कहकर मुनि के दर्शन विधान के अनुसार ही अपने पतिदेव की उमी गरीबर के तीर पर अपर काल की ओर देख कर क्रिया सम्पन्न की थी ॥७२॥ उस समय में वह बाटूराजा मुनि के समक्ष में

हो उस चिता के मध्य से देवराज इन्द्र के समान चमकता हुआ उठा और मुनिराज औरों को प्रणाम करके एक परम श्रेष्ठ विमान में विराजमान होकर परम धाम को चला गया था ॥७३॥ चाहे कोई पापी हो या महापातको से घिरा हुआ हो महापुरुषों की जिस पर कृपा की दृष्टि हो जाती है तो वह निश्चय ही सबसे मुक्त होकर परमधाम को प्राप्त होजाया करता है ॥७४॥ हे सत्तम ! पुण्यात्मा महापुरुष की दृष्टि किसी के शरीर—भस्म, अथवा धूम पर भी पड़ जाया करती है तो वह सभी पापों से छुटकारा पाकर परमोत्तम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥७५॥ हे नारद ! वह रानी अपने पति की क्रिया करने मुनि के ही आश्रम में भक्ति भाव से उनकी सेवा करने में तत्पर हो गयी थी उसकी सपत्नी भी उसी के साथ रहने लगी थी ॥७६॥



## ॥ भगीरथ द्वारा गंगाजी का लाया जाना ॥

एवमौर्वाश्रमे ते द्वे बाहुभार्ये मुनीश्वर ।  
चक्राते भक्तिभावेन शुश्रूषा प्रतिवासरम् ॥१॥  
गने वर्षाद्वन्द्वे काले ज्येष्ठा रानी तु या द्विज ।  
तस्या पाप मतिर्जाला सपत्न्या सम्पद प्रति ॥२॥  
ततस्तया शरो दत्त वनिधायै तु पापया ।  
न न्यप्रभाव चक्रे वैशरो मुनिनिषेवया ॥३॥  
भूतेष्वनादिभिः सम्यग्यत सानुदिन मुने ।  
चत्वार मेवा तेनासी जीर्णपुण्येन कर्मणा ॥४॥  
ततो मामत्रयेज्जीते शरेण महिन मुतम् ।  
गुप्तान् शुश्रुभे काले शुश्रूषानष्टरित्वया ॥५॥  
अहो राक्षसङ्गनिर्लोके किं पाप न विनाशयेत् ।  
न तदानिमुष किं वा नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥६॥

ज्ञानाज्ञानकृतं पाप यच्चान्यत्कारित परैः ।

तत्सर्वं नाशयत्याशु परिचर्या महात्मनाम् ॥७॥

श्री मनकजी ने कहा—हे मुनीश्वर ! इस प्रकार से वे दोनों विधवा रानियाँ ओर्ष भुनिके आश्रम में रहती हुई मुनि की शुश्रूषा भक्ति की भावना से किया करती थी ॥१॥ हे द्विज ! जब छै मास व्यतीत हो गये तो बड़ी रानी को अपनी सपत्नी की पुत्र की सम्पत्ति पर पानमय बुद्धि उत्पन्न हो गई थी ॥२॥ उस महा पापिनी ने छोटी रानी को विष दे दिया था । किन्तु महा मुनि की सेवा करने के कारण से उस दिये हुये विष का कुछ भी बुरा प्रभाव नहीं हुआ था ॥ ३ ॥ वह छोटी बाहू की रानी नित्य ही उस आश्रम की भूमि को तीपने आदि की महा मुनि की सेवा किया करती थी । इसलिये जीर्णोद्धार के परम पुण्यमय सत्कर्म के करने के ही कारण से ही उसको सौत के दिये हुए विष का प्रभाव कुछ भी नहीं हुआ था ॥४॥ फिर मुनि की भक्ति पूर्णक सेवा करने से जिसका सब पाप नष्ट हो गया था उस रानी ने तीन मास व्यतीत होजाने पर उस विष के सहित पुन रत्न का प्रसव किया था ॥५॥ ओहो ! इस ससार में सत्पुरुषों की सङ्गति का कैसा अद्भुत प्रभाव है कि इससे सभी पाप नष्ट हो जाया करते हैं । पुण्य-शील पुरुषों के लिये इस सत्सङ्गति के समान और कौन-सा सुख हो सकता है ॥६॥ जो जान बूझकर या अनजाने पाप कर्म बन जाया करता है अथवा दूसरों के द्वारा कराया जाता है उस सबको महान् पुरुषों की सेवा नुरन्त ही नष्ट कर दिश करती है ॥७॥

जडोऽपि याति पूज्यत्व सत्सङ्गाज्जगतीतले ।

कलामात्रोऽपि शोताशुः शम्भुना स्वीकृतो यथा ॥८॥

सत्सङ्गति परामूर्द्धि ददाति हि नृणां सदा ।

इहामुत्र च विप्रेन्द्र सन्तः पूज्यतमास्ततः ॥९॥

अहो महद्गुणान्वक्तुं कः समर्थो मुनीश्वर ।

गर्भं प्राप्तो गरो जीर्णो मासत्रयमहोऽदभुतम् ॥१०॥

गरेण सहित पुत्र दृष्ट्वा तेजोनिधिर्मुनि ।

जातकर्म चकारासौ तन्नाम सगरेति च ॥११॥

पुपोप सगर बाल तन्माता प्रीतिपूर्वकम् ।

चौलोपवीतकर्माणि तथा चक्रे मुनीश्वर ॥१२॥

शास्त्राण्यध्यापयामास राजयोग्यानि मन्त्रवित् ।

समर्थ सगर दृष्ट्वा किञ्चिदुद्भिन्नशैशवम् ॥१३॥

मन्त्रवत्सर्वशास्त्रास्त्र वत्तवान्स मुनीश्वर ।

सगर शिक्षितस्तेन सम्यगोवर्षिणा मुने ॥१४॥

बभूव बलवान्धर्मी कृतज्ञो गुणवान्मुधी ।

धमज्ञ सोऽपि सगरो मुनेरमिततेजस ।

समितकुशाम्बुपुष्पादि प्रत्यह समुपानयत् ॥१५॥

इस जगत् मे जड मनुष्य भी सत्पुरुषों की सगति करने से पूज्य हो जाया करता है । जिस तरह से एक बलामान्न बचे हुये चन्द्रमा को ही जिवन्ती ने अङ्गीकार कर लिया था । इसलिये भगवान् की सङ्गति ने कारण ही उसकी सब पूजा किया करते हैं ॥२॥ यह अदल सिद्धान्त है कि सत्सङ्गति मनुष्या की सदा समृद्धि दिया करती है । हे विप्र ! यही कारण है कि सज्जन लोक यहाँ भू लोक मे और महा परलोक मे परमाधिक पूजनीय हैं ॥३॥ हे मुनिवर ! महापुरुषों के चरित्र ऐसे विशाल हैं कि उनका वर्णन किसके द्वारा किया जा सकता है ? देखिये, क्या प्रभाव है गर्भ मे प्राप्त होने वाला विष तीन मास मे जीण हो गया । यह मन्त्र श्रुत्वा एक अद्भुत पत्र के सिवाय क्या हो सकता है ॥१०॥ तेज के निधान महामुनि और्य ने बालक को विष के साथ उत्पन्न हुआ देख कर उसका नामकरण ही 'सगर' इसने कर दिया गया था फिर जात कर्मादि शास्त्राक्त सत्कार करा दिये थे ॥११॥ उसके पश्चात् उसकी माता उस बालक ( सगर ) का

बड़ी ही प्रीति के साथ पालन पोषण करने लग गई थी, मुनिवर जीर्ण ने यथा समय मण्डन और उपजीत आदि सस्वार भी करा दिये थे ॥१२॥ उस बालक सगर ने अपनी शैशवावस्था में वदार्पण किया उसी समय मन्त्रों के ज्ञाता मुनि न उमको राजाओं के पढ़ने योग्य शास्त्रों को पढ़ाया था ॥१३॥ मुनीश्वर ने केवल अध्ययन ही नहीं कुछ मन्त्रों के सहित अस्त्र शस्त्र भी प्रदान किये थे । इन प्रकार से और्ण महर्षि ने सगर को अच्छी तरह से शिक्षित बनाकर होशियार एवं कुशल बना दिया था । हे मुनिश्रेष्ठ । उसी समय से बलवान, धर्मिष्ठ, वृद्ध, गुणी, दुष्टिमान् सगर भी उन मुनि और्ण के लिये समिधा-जल दर्भ और पुष्प आदि लाकर देने की सेवा में नित्य ही निरत रहने लगा था ॥१४॥१५॥

स वदार्चिद्गुणनिधि प्रणिपत्य स्वमातरम् ।

उवाच प्राञ्जलिभूत्वा सगरो विनयान्वित ॥१६॥

मातरगतं पिता कुत्र किनामा कस्य वशज ।

तत्सर्वं मे समानक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम ॥१७॥

पित्रा विहीना ये लोके जीवतोऽपि मृतोपमा ॥१८॥

दरिद्रोऽपि पिता यस्य ह्यास्ते स धनदोपम ।

यस्य माता पिता नास्ति मूखं तस्य न विद्यते ॥१९॥

धर्महीनो यथा मर्खं परत्रेह च निन्दित ।

मातापितृविहीनस्य अज्ञस्याप्यविवेकिन ।

अपुत्रस्य वृथा जन्म ऋणग्रस्तस्य चैव हि ॥२०॥

{ चन्द्रहीना यथा रात्रि पद्महीन यथा सर ।

{ पतिहीना यथा नारी पितृहीनस्तथा शिशु २१

एक दिन ऐसा अवसर प्राप्त हुआ कि वह गुणसागर अपनी माता से बहुत विनम्र होकर प्रणाम पूजन पूछने लगा ॥१६॥ सगर ने कहा—हे माताजी हमारे पिताजी कहाँ पर हैं ? मैंने कभी उनके दशन तक नहीं किये हैं । पिताजी का शुभ नाम क्या है ? व निद्रा वश मे

उत्पन्न हुए थे ? आप इन सब बातों का सुस्पष्ट उत्तर अभी दे दीजिये—इन सब बातों का ज्ञान पाने के लिए भरे हृदय में बड़ा कुतूहल हो रहा है ॥१७॥ हे माताजी ! इस गसार में जो पितृहीन हैं वे जीवित रहते हुए भी मृत के समान ही हैं ॥१८॥ जिसका पिता अत्यन्त दरिद्र भी है तो भी उसको कुवेर के ही समान समझना चाहिए । जिसके माता और पिता दोनों ही न हों उसको ससार में कभी सुख नहीं मिल सकता है ॥१९॥ सह पुरुष धर्मं विहीन एक मूर्ख के समान इस लोक और परलोक दोनों जगहों में निन्दा ही पाया करता है । इस जगत में माता पिता से हीन का—अज्ञानी का, अवि-  
वेकी का, अपुत्र और ऋण गूण्य का जन्म ही व्यर्थ है ॥२०॥ बिना चन्द्रोदय के रात्रि—वसन्तो के विकास से रहित सरोवर, पतिहीन नारी और पिता से हीन बालक—ये सब एक से ही होते हैं ॥२१

धर्महीनो यथा जनु धर्महीनो यथा गृही ।  
पद्महीनो यथा वंश्यस्तथा पित्रा विनाभक ॥२२॥  
सत्यहीन यथा वाक्य साधुहीना यथा सभा ।  
तपो यथा दयाहीन तथा पित्रा विनाभक ॥२३॥  
शृङ्गहीन यथारण्य जलहीना यथा नदी ।  
वेगहीनो यथा वाजी तथा पित्रा विनाभक ॥२४॥  
यथा लघुतरो लोके मातर्यान्जापरो नर ।  
तथा पित्रा विहीनस्तु बहुदुःखान्वित सुत ॥२५॥  
इतीरित मुतेनैषा श्रुत्वा निश्चस्य दुःखिता ।  
सपृष्ठ तपस्यावृत्त सर्वं तस्मिन् न्यवेदयत् ॥२६॥  
तच्छ्रुत्वा सगर क्रुद्ध कोपसरत्कनोचन ।  
हनिष्यामीत्यरातीन्स प्रतिज्ञामकरोत्तदा ॥२७॥  
प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं जननीं च प्रणम्य स ।  
प्रम्यापित प्रतस्थे च तेनैव मुनिना तदा ॥२८॥

जिस प्रकार से धर्म से हीन प्राणी, कर्म से हीन प्राणी, कर्म हीन गृहस्थ और पशु हीन वैश्य हो उसी प्रकार से पितृहीन बाउक होता है ॥२२॥ जिस रीति से सत्यता से रहित वचन, सत साधुओं से हीन सभा या परिषद्— दया से विहीन तपश्चर्या व्यर्थ है वैसे ही जनकहीन बालक होता है ॥२३॥ जैसे वृद्ध लतादि से शून्य वन, सलिल शून्य नदी, बेग विहीन अश्व केवल नाम मात्र से ही हुआ करते हैं उसी भाँति पिता से रहित बालक हुआ करता है ॥२४॥ जैसे याचना करने वाला मनुष्य इस जगत में बहुत ही तुच्छ एवं ओछा माना जाया करता है उसी तरह से पिता से रहित अनाथ बालक भी बहुत ही तुच्छ समझा जाया करता है और अनेक प्रकार के कष्ट ही भोगा करता है ॥२५॥ पुत्र के इस भाँति से कथन करने पर उसकी माता न दुःखित होकर एक सम्बन्धी उष्ण श्वास लेकर आह भरी और अपने पुत्र के पूछने पर सम्पूर्ण सत्य घटित घटना का वृत्तान्त उसको कहकर सुना दिया था । इस पुर्वृत्तान्त का श्रवण करके सगर को बहुत भारी क्रोध उत्पन्न हो गया था । क्रोधावेश में उसके नेत्र लाल हो गये थे और उसी क्षण में दृढ प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने सर्वस्व का अपहरण करने वाले समस्त शत्रुओं का सहार कर दूँगा ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त उस सगर ने उन महा मुनि के चरणों में और अपनी जननी के पद पङ्कजों में अपना मस्तक झुकाया था और उस महा मुनि के समादेश से प्रस्थान करा देन पर वह वहाँ से चल दिया था ॥२८॥

और्वाश्रमाद्विनिष्क्रान्त सगर सत्यवाक् शुचि ।

वशिष्ठ स्वमुलाचार्यं प्राप्त प्रीतिसमन्वित ॥२६॥

प्रणम्य गुरवे तस्मै वशिष्ठाय महात्मने ।

सर्वं विज्ञापयामास ज्ञानदृष्ट्या विजानते ॥२७॥

एन्द्राम्भ्य वारुण ग्राह्यमाग्नेय सगरो नृप ।

तेनैव मुनिना-वाप यज्ञं वज्रोपम धनु ॥२८॥

ततस्नेनाभ्यनुज्ञातः सगरः सीमनस्यवान् ।  
 अशीभिरन्वितः सद्यः प्रतस्ये प्रणिपत्य तम् ॥३२॥  
 एकेनैव तु चापेन स शूरः परिपन्थिनः ।  
 सपुत्रपौत्रान्सगणानकरोत्स्वर्गवासिनः ॥३३॥  
 तच्चापमुक्तयाणाग्निमन्तप्तास्तदरातयः ।  
 कैचिद्विनष्टा मयस्तास्तथा चान्ये प्रदुद्रुवुः ॥३४॥  
 कैचिद्विष्णीर्णकेशाश्च घल्मीकोपरि मस्थिताः ।  
 तृणान्यमक्षयन्केचिन्नग्नाश्च यिविशुर्जलम् ॥३५॥

परम गत्य भाषण करने वाला और अधिष्ठ पुनीत यह धामक  
 सगर जीवें मुनि के आश्रम से चल कर परम प्राप्ति के साथ अपने कुल  
 के गुरदेव श्री वशिष्ठ मुनि के समीप में प्राप्त हुआ था ॥३२॥ वशिष्ठ  
 जी ज्ञान की दृष्टि से सभी कुछ जानते थे । उस समय में सगर ने वहां  
 पर पहुँच कर श्री वशिष्ठजी को प्रणाम करके सभी वृत्तान्त सुनाई  
 दिया था ॥३३॥ उसी समय में पुलगुप्त वशिष्ठजी ने उस सगर को  
 ऐन्द्रास्त्र, ब्रह्मास्त्र, वरुणास्त्र, अग्नियास्त्र वज्र के समान शङ्ख और  
 धनुष आदि का प्रदान किया था ॥३४॥ इसके उपरान्त वशिष्ठजी के  
 आदेश और अमोघ आशीर्वाद को प्राप्त करने परम प्रसन्न मन से मुक्त  
 करके वहाँ से तुरन्त ही प्रस्थान कर दिया था ॥३२॥ उस सगर ने  
 अपने शत्रु स्वरूप परिपन्थियों से युद्ध आरम्भ कर दिया था । उस  
 महावीर ने सगर ने एक ही धनुष से उन सबको अपने पुत्र-पौत्रादि के  
 गणों के सहित सहार करके स्वर्गवासी बना दिया था ॥३३॥ राजा  
 सगर के धनुष से निकले हुए शरों के प्रहारों से सन्तप्त एवं उसके  
 शत्रु अत्यन्त भयभीत होकर रण में भारे गये थे और गद्दे-गद्दे भाग गये  
 थे ॥३४॥ कुछ के बाल बिखर गये और कुछ खोहों में जाकर छिप  
 गये थे कुछ दाँतों तले तिनके दबाकर रह गये और शेष मग्न होकर  
 डूब मरे थे ॥३५॥



शकाश्च यवनाश्चैव तथा चान्ये महीभृतः ।  
 सत्त्वर शरणं जग्म्वंशिष्ठ प्राणलोलुपाः ॥३६॥  
 जितक्षितिर्वाहुपुत्रो रिपून्गुरुसमीपगान् ।  
 चारैर्विज्ञातवान्सद्यः प्रातश्चाचार्यसन्निधिम् ॥३७॥  
 तमागत बाहुसुतं निशम्य मुनिर्वंशिष्ठ शरणागतांस्तान् ।  
 प्रातु च शिष्याभिहित च कर्तुं विचारयामास तदा क्षणेन ॥३८॥  
 चकार मुण्डाञ्जवरान्यवनान्सम्बभूद जान् ।  
 अन्धाश्चशमथूलान्सर्वान्मुण्डान्वेदवहिष्कृतान् ॥३९॥  
 वसिष्ठमुनिना तेन हतप्रायान्निरीक्ष्य सः ।  
 प्रहसन्प्राह सगर स्वगुरुं तपसो निधिम् ॥४०॥  
 भो भो गुरो दुराचारानेतानक्षसि तान्वृथा ।  
 सर्वंवाह हनिष्यामि भक्तिपुद्गलहारकान् ॥४१॥  
 उपेक्षेत समर्थः सन्धर्मस्य परिपन्थिनः ।  
 स एव सर्वनाशाय हेतुभूतो न सशयः ॥४२॥

वह ऐसा मीपण समय उपस्थित हो गया था कि अपने प्राणी  
 के परिहाराग की इच्छा से शक और यवन आदि सब राजा लोग शीघ्र  
 ही वंशिष्ठ की शरण में जाकर पहुँच गये थे ॥३६॥ स्वर्गीय बाहु के  
 परम बलवान् प्रतापी सगर ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर ती  
 सगर को दूतों के द्वारा ज्ञात हो गया था कि शत्रु समुदाय अपने गुरु-  
 देव की शरण में पहुँच गए हैं । उसी समय वह वसिष्ठजी के समीप में  
 आ गया था ॥३७॥ बाहु के पुत्र सगर को अपने पास में आता हुआ  
 गुनवर वसिष्ठजी ने उन शरण में समागत होने वालों की रक्षा और  
 अपने परम प्रिय शिष्य के हित की चिन्ता में एक दाण के लिए निमान  
 होगए थे ॥३८॥ इसके पश्चात् उन लम्बे-लम्बे बेशो वाले शगर और  
 यवनों के माथे मुँड़वा कर वेद गृहिष्ठ शास्त्ररूपी नेत्रों से अन्धे उनकी  
 मुँछे भी मुँड़वा दी थी ॥३९॥ राजा सगर ने वंशिष्ठ मुनि के द्वारा

उनको भरा हुआ सा देखा था । उस समय मे तपोनिधि अपने गुरु षशिष्ठजी से हँसकर कहा था ॥४०॥ समर ने अपने भाषण में कहा— हे गुरुदेव । आप इन दुष्ट, दुराचरण करने वालों की रक्षा व्यर्थ ही करना चाहते हैं । ये वे ही महा दुष्ट दापी हैं जिन्होंने मेरे पिताजी का देश और वैभवापूर्ण राज्य छीन लिया था । मेरी तो यही इच्छा है कि इन सभी को मार ही डालना चाहिए ॥४१॥ इस धर्म के नाशक सुंदेरी की शक्ति होत हुये भी रक्षा का करना और अपेक्षा करके इनको जीवित बने रहने देना मविष्य में सर्वनाश का हेतु हो सकता है ॥४२

घाघन्ते प्रथम भत्त्वा दुर्जना सकल जगत् ।  
त एव यलहीनारचेद्भजन्तेऽयन्तसाधुताम् ॥४३॥  
अहो मायाकृत कर्म खला कश्मत्तचेतस ।  
तावत्कुर्वन्ति कार्याणि यावत्स्यात्प्रवल वलम् ॥४४॥  
दासभाव च शत्रूणा वारस्त्रीणा च सौहृदम् ।  
साधुभाव च सर्पाणा श्रेयस्कामो न विश्वसेत् ॥४५॥  
प्रहास कुर्वन्ते नित्य यान्दन्तान्दशयन्खला ।  
तानेव दर्शयन्त्याशु स्वसामर्थ्यविपर्यये ॥४६॥  
पिशुना जिह्वया पूर्वं परुष प्रवदन्ति च ।  
अतीव करण वाक्य वदन्त्येव तथावला ॥४७॥  
श्रेयस्कामो भवेद्यस्तु नीतिशास्त्रार्थकोविद ।  
साधुत्व समभाव च यलान नैव विश्वसेत् ॥४८॥  
दुर्जन प्रणति यान्त मित्र कंतवशीलिनम् ।  
दुष्टा भार्या च विश्वस्तो मृत एव न सशय ॥४९॥

मदमत्त य दुष्ट लोग पहिले समस्त जगत् के लोगों को भरसक प्रपीडित किया करते हैं और जब इनकी शक्ति क्षीण हो जाती है तो ये साधुता दिखलाया करते हैं ॥४३॥ ये महापापी दुष्ट चित्तावृत्ति वाले लोग जबतक अपना दल प्रवल नहीं होता है तभी तक माया रचवर

बड़ी साधुता एवं सज्जनता का प्रदर्शन किया करते हैं और अच्छे कर्म दिखलाते हैं जैसे ही इनमें थोड़ी सी भी सबलता प्राप्त हुई कि वे शत्रु बन जाया करते हैं ॥१४१॥ जो मनुष्य अपना वास्तविक कल्याण की कामना रखता है उसे भूलकर भी कभी शत्रुओं के दास भाव का, वैश्याओं की मित्रता का और विपक्षर सपों की साधुवृत्ति का विश्वास नहीं करना चाहिये ॥१४५॥ दुष्ट लोग अपनी शक्ति की सम्पन्नता की दशा में जिन दातों को हँसकर दिखाया करते हैं वे ही शक्ति के क्षीण हो जाने पर उन्हीं दातों को दिखाकर हीनता का भाव प्रकट किया करते हैं ॥१४६॥ चुगली करने वाले लोग जिन अपनी जिह्वा से परम बठोर वचन बोला करते हैं वे क्षीण व निर्बल हो जाते हैं तो उसी जीभ से अत्यन्त वरुणा से परिपूर्ण वचन कहा करते हैं ॥१४७॥ नीति शास्त्र का सिद्धान्त है कि चतुर मनुष्य यदि अपना कल्याण चाहता है तो उसे दुष्ट पुरुषों के माधु भाव और समता के भाव का कभी विचार नहीं करना चाहिये ॥१४८॥ नम्रता दिखाने वाले दुर्जन पुरुष का, जुबारी मित्र का और दुष्ट भायों का विश्वास करने वाला व्यक्ति मरे हुए के ही समान हुआ करता है ॥१४९॥

मा रक्ष तस्मादेतान्यै गोरूपव्याघ्रवर्मिण ।  
 हृत्वेतानखिलान् दुष्टास्त्वत्प्रसादान्महो भजे ॥१५०॥  
 वशिष्ठस्तद्वच श्रुत्वा सुप्रीतो मुनिरात्तम ।  
 वराम्भ्या सगरस्पाङ्ग स्पृशान्निदमुवाच ह ॥१५१॥  
 साधु साधु महाभाग सत्य वदसि सुव्रत ।  
 तथापि मद्वच श्रुत्वा परा शान्तिं लभिष्यसि ॥१५२॥  
 मयिने निहिता पूर्वं त्वत्प्रतिज्ञाविरोधित ।  
 हताना हनने वीरिनि वा समुत्पद्यते वद ॥१५३॥  
 भूमौश जन्तव सर्वे धर्मपाशेन यन्निता ।  
 तथापि पापेनिहता विमर्य हसि सान्पुनः ॥१५४॥

देहस्तु पापजनितः पूर्वमेवैनसाः हतः ।

आत्मा ह्यभेद्यः पूर्णत्वाच्छास्त्राणामपि निश्चयः ॥५५॥

स्वकर्मफलभोगानां हेतुमात्रा हि जन्तवः ।

कर्माणि देवमूलानि देवाधीनमिदं जगत् ॥५६॥

अतएव मेरी तो यही प्रार्थना है कि इन व्याघ्र के समान कर्म करने वाले गोरूपधारी दुष्टों का विश्वास न करे । मैं तो इन समस्त दुष्टों का समूल संहार करके हूँ इस भूमि पर राज्य करने का इच्छुक हूँ ॥५०॥ उस समय में मुनि शिरोमणि वसिष्ठजी ने सगर के मोतिपूर्ण वचनों का ध्वजण करके परम प्रीति के साथ उस सगर के शरीर पर अपना हाथ फिराते हुये उससे कहा—वसिष्ठजी ने कहा था—हे महाभाग ! बहुत ही ठीक है और साधु है ( आप जो भी कुछ कह चुके हैं वह अक्षरशः परम सत्य है तथापि मेरे वचन मुन कर आपको शान्ति प्राप्त होगी ॥५१॥५२॥ जैसे मुझे प्रतिज्ञा की थी उसका विरोध करने वाली मैंने अगती शरण इनको दी है । ये तो शरण माँगकर स्वयं ही मर चुके हैं फिर मह बतलाओ कि इन मृतों के मारने से आपको क्या कीर्ति प्राप्त होगी ? ॥५२॥ हे भूमीश्वर ! इस जगत् में समस्त प्राणी अपने कर्मों के पाश में जकड़े हुये रहा करते हैं । ये अपने पापकर्मों से स्वयं ही मरे हुये रहा करते हैं । जो अपने पापकर्मों से स्वयं ही मरे हुये हैं फिर आप उनको क्यों मारने की इच्छा करते हैं ? इन सबका पापों से समुत्पन्न देह पहिले ही पाप से ही नाश वाला होरहा है । रही आत्मा के सम्बन्ध की बात तो तो सदा ही अगोचर है क्योंकि वह पूर्ण और नित्य है । ऐसा सब शास्त्रों का सत्य सिद्धान्त है ॥५३॥ यह प्राणी अपने कर्मों के फलों को भोगने का हेतु मात्र होता है जो कर्म प्रारब्ध के अधीन होता है । इस प्रकार में यह जगत् प्रारब्ध के ही अधीन रहा करता है ॥५६॥

यस्माद्वै हि साधूना रक्षिता दुष्ट जिज्ञिता ।

ततो नरैस्स्वतन्त्रै किं कार्यं साधयते वद ॥५७॥  
 शरीर पापसंभूत पापेनैव प्रवर्तते ।  
 पापमूलमिदं ज्ञात्वा कथं हन्तुं समुद्यत ॥५८॥  
 आत्मा शुद्धोऽपि देहस्थो देहीति प्रोच्यते बुधैः ।  
 तस्मादिदं वपुर्भूय पापमूलं न सशय ॥५९॥  
 पापमूलवपुर्हन्तुं का कीर्तिस्तव बाहुज ।  
 भविष्यतीति निश्चित्य नैतान्हिसास्ततः सुत ॥६०॥  
 इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं विरराम स कोपत ।  
 स्पृशन्करेण नगरं नन्दनं मनुयस्तदा ॥६१॥  
 अथापर्वनिधिस्तस्य सगरस्य महात्मनः ।  
 राज्याभिषेकं कृतवान्मुनिभिः सह सुव्रतैः ॥६२॥  
 भार्याद्वयं च तस्यासीत्केशिनी सुमतिस्तथा ।  
 काश्यपस्य विदभंस्य तनये मुनिसत्तम ॥६३॥

अतएव यही सिद्धान्त मुद्द है कि देव ही साधु पुरुषों की सुरक्षा करने वाला तथा दुष्टों को दण्ड देने वाला होता है । इसलिये यह बताओ कि जो पराधीन है उनसे क्या काम सिद्ध हो सकता है ॥५७॥ यह शरीर पापों से उत्पन्न हुआ है और पापों से ही बला करता है । इस शरीर का पाप मूल जान कर भी तुम क्यों मारने के लिए प्रस्तुत हुए हो ॥५८॥ आत्मा तो परम शुद्ध होता है किन्तु यह आत्मा देह में स्थित रहा करता है इसीलिए विद्वान् लोग इसको देही कहा करते हैं अतएव हे भूमिपाल ! यह शरीर निश्चय ही पाप मूल होता है । ऐसे इस पाप मूल शरीर का विनाश करने से आपने क्या यश प्राप्त होगा ? इसलिये हे पुत्र ! ऐसा विचार कर अब तुम इनको मत मारो ॥५९—६०॥ अपन गुरुवरण के इन वचनों का श्रवण करके सगर का यह बड़ा दुःख काट जान्त हो गया था । उस समय में समस्त मुनिवृन्द ने आनन्द प्रद सगर के शरीर पर प्रेमपूज हाथ फिरा कर स्पर्श किया था ॥६१॥ इसके आंतर अथर्व वेद के निधि वसिष्ठजी ने तथा अन्य

व्रतघारी मुनिगण ने राजा सगर का राज्याभियन्त्र किया था ॥६२॥  
हे मुनिर्घृष्ट ! फिर विदम्भ देश के राजा काश्यप की केशिनी और  
सुमति नामा वाली दो राजकुमारियों के साथ सगर राजा का विवाह  
हुआ था ॥६३॥

राज्ये प्रतिष्ठित दृष्ट्वा मुनिरौर्वस्तपोनिधि ।  
घनादागत्य राजान सभाप्य स्वाश्रम ययौ ॥६४॥  
कदाचित्तस्य भूपस्य भार्याया प्रार्थितो मुनि ।  
वर ददावपत्याथमौर्वो भागवमन्त्रवित् ॥६५॥  
क्षण ध्यानस्थिता भूत्वा त्रिकालज्ञो मुनिश्चर ।  
केशिनी सुमति चैव इदमाह प्रहृषयन् ॥६६॥  
एका वशधर चैकमन्या पश्युतानि च ।  
अपत्यार्थं महाभाग वृणुता च यथेष्टितम् ॥६७॥  
अथ श्रुत्वा वचस्तस्य मुनरौर्वस्य नारद ।  
केशिन्येकं सुत वयं वशसन्तानकारणम् ॥६८॥  
तथा पष्टिसहस्राणि सुमत्या ह्यभवन्मुता ।  
नाम्नासमजा केशियास्तनयो मुनिसत्तम ॥६९॥  
असमजास्तु कमाणि चकारोन्मत्तचेष्टिन ।  
तं दृष्ट्वासागरा सर्वे ह्यासन्दुर्वृत्तचेतसः ॥७०॥

तपोनिधि महामुनि और राज्यासन पर प्रतिष्ठित सगर को  
देउने के लिये वहाँ पर उपास्थित हुए थे और राजा सगर से वार्तानाप  
करके वापिस वन को लौटकर चल गये थे ॥६४॥ एक समय में राजा  
सगर की दोनों कन्या ने भूगुप्त मन्त्र के जाता और मुनि से सत्तान  
होने का निश्चय प्रायना की थी । उस समय और्य महामुनि ने उनको वर-  
दान दिया था ॥६५॥ त्रिकाल की बातें जानने वाला मुनि ने क्षण भर  
के लिये ध्यान करके केशिनी और सुमति को प्रसन्नाता प्रदान करते हुए  
यह कहा था कि आप दोनों महान् भाग्या वाली हैं । तुम में से एक तो

केशघर पुत्र को प्राप्त कर सकती है और दूसरी रानी साठ सहस्र पुत्रों की प्राप्ति कर सकती है । अतएव तुम दोनों जैसी भी इच्छा हो उसी के अनुसार वरदान माँग लो ॥६७॥ हे नारद ! ओर्वे मुनि के इन वचनों का ध्यान करके केशिनी नाम वाली रानी ने एक ही वंश चलाने वाले पुत्र को प्राप्त करने का वरदान माँगा था और दूसरी सुमति के साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे । हे मुनि सत्तम ! केशिनी के असमञ्जा नाम वाला एक ही पुत्र हुआ था ॥६८-६९॥ असमञ्जा एक उन्मत्त के समान चेष्टा वाला होकर जैसे ही कर्मों का करने वाला था । उसको देखकर सभी सगर पुत्रों का चित्त बिगड़ने लगा था ॥७०॥

तद्बालभाव सदुष्ट ज्ञात्वा बाहुसुतो नृप ।

चिन्तयामास विधिवत्पुत्रकर्म विगर्हितम् ॥७१॥

अहो कष्टनरा लोके दुर्जनानां हि सगतिः ।

कारुकैस्ताड्यते वह्निरयः सयोगमावृतः ॥७२॥

अधुमान्नाम तनयो बभूव ह्यसमजसः ।

शास्त्रज्ञो गुणवान्धर्मो पितामहहिते रतः ॥७३॥

दुर्वृत्ताः सागराः सर्वे लोकोपद्रवकारिणः ।

अनुष्ठानवता नित्यमन्तराया भवन्ति ते ॥७४॥

हृतानी यानि यज्ञेषु हवीषि विधिवद् द्विजैः ।

कुम्भुजिरे हि सर्वाणि निराकृत्य दिवौकसः ॥७५॥

स्वर्गादाहत्य सततं रम्भाद्या देवयोषितः ।

भजन्ति सागरास्ता वै कचग्रहवलात्कुताः ॥७६॥

पारिजातादिवृक्षाणां पुष्पाण्याहृत्य ते खलाः ।

भूषयन्ति स्वदेहानि मत्स्यपानपरायणाः ॥७७॥

राजा सगर ने उसके बालकपन के दूषित कर्मों को देख कर पुत्र के इन परम निन्दित कर्मों पर गहन विचार किया था ॥७१॥ दुष्टों की सद्गति में इस मतार में कष्ट ही मिला करता है । सोहे के सयोग

होन से लुहार लोग अग्नि की भी पीटने लगा करते हैं ॥७२॥ उस  
असमज्जा का अशुमान् नाम वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था । यह शास्त्रों  
का ज्ञाता एवं परम गुणी था, बहुत अधिक धर्मात्मा था और सदा ही  
अपने पितामह सगर के हितप्रद कार्यों में सलग्न रहा करता था ॥७३॥  
अन्य सभी सगर के पुत्र दुराचारी थे तथा ससार में कुछ न कुछ उपद्रव  
मचात रहा करते थे और जो कोई अनुष्ठान किया करते थे उस के कम  
में बिघ्न डाला करते थे ॥७४॥ द्विजगण यज्ञों में सविधि जो हवि का  
होम किया करते थे वे सागर के देवों को हटाकर उस द्रव योग्य  
हवि को स्वयं ही खा जाया करते थे ॥७५॥ स्वयं लोक से रम्भा आदि  
पवाङ्मनाओं को लाकर उनकी चाटी पकड़ कर उनका साथ मलात्कार  
किया करते थे ॥७६॥ ये ऐसे दुष्ट थे कि पारिजात आदि देव वृक्षों के  
पुष्प ग्रहण कर अपने शरीरों का सज्जित किया करते थे और मदिरा  
का पान किया करते थे ॥७७॥

साधुवृत्ती समाजहनु सदाचाराननाशयन् ।  
मिश्रैश्च योद्ध मारब्धा वलिनोऽत्यन्तपापिन ॥७८॥  
एतद् दृष्ट्वातिदु खार्ता देवा इन्द्रपुरोगमा ।  
विचार परम चक्रू रेतोपा नाशहतवे ॥७९॥  
निश्चित्य विबुधा सर्वे पातालान्तरगोचरम् ।  
कपिल देवदेवेश ययु प्रच्छन्नरूपिण ॥८०॥  
ध्यायन्तमात्मनात्मान परानर्दकविग्रहम् ।  
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ तुष्टुमुस्मिदशास्तत ॥८१॥  
नमस्ते योगिने तुभ्य साख्ययोगरताय च ।  
नररूपप्रतिच्छन्नविष्णवे जिष्णवे नम ॥८२॥  
नम परेशभक्ताय सावानुग्रहहेतवे ।  
ससारारण्यदावाग्ने धमपालनसत्तव ॥८३॥  
महते वीतरागाय तुभ्य भूया नमो नम ।



त हति दैवमेवाणु नात्र कार्या विचारणा ॥८७

अल्परहोभिरेवैते नाशमेप्यन्ति सागरा ।

इत्युक्ते मुनिना तेन कपिलेन महात्मना ।

प्रणम्य त यथान्याय गता नाक दिवौकमः ॥८८

अत्रान्तरे तु सगरो वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः ।

भारैर्भे ह्यमेघाख्य यज्ञ कर्त्तुमनुत्तमम् ॥८९

तद्यज्ञे योजित सप्तिमपहत्य सुरेश्वर ।

पाताले स्थापयामास कपिलो यत्र तिष्ठति ॥९०

गूढविग्रहशक्रेण हृतमश्व तु सागरा ।

अन्वेष्टु वध्रमुल्लोकान् भूरादीश्च सुविस्मिता ॥९१

देवगण भी हम बिनती को गुनकर श्री कपिल मुनि ने कहा—  
हे श्रेष्ठ देवताओ । जो अपराध रहित मनुष्यों को पीडा पहुँचाने की  
इच्छा किया करता है उसको सभी लोकों में पापों का कुफल भोगन के  
लिये उन्मुख समझ लेना चाहिए ॥८६॥ जो अपने बलों से ही नहीं  
भय और वशनों के द्वारा भी सर्वदा दूसरे प्राणियों को प्रपीडित किया  
करता है उसको दैव बहुत ही शीघ्र समाप्त कर दिया करता है ।  
इसमें विचारने की कुछ भी बात नहीं है ॥८७॥ इसलिये इस  
प्राकृतिक नियमानुसार के महान् उत्पीडक राजा सगर के पुत्र शीघ्र  
ही बिनष्ट होजायेंगे । समस्त देवगण ने श्री कपिल मुनि के ऐसे  
सान्त्वनामय वचनों का श्रवण करके उनके चरणों में गिरकर दण्डवत्  
प्रणाम किया और फिर वे वापिस अपने स्वयं लोकों चले गये थे  
॥८८॥ इसी अनन्तर में राजा सगर ने श्री वसिष्ठजी आदि महा  
महर्षियों की महात्मना प्राप्त कर परम श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ कर यज्ञन  
करने का आरम्भ कर दिया था ॥८९॥ देवराज इन्द्रजी जो उग  
अश्वमेध यज्ञ का अश्व छाड़ा गया था उसका अग्रहण करने पातान  
तोव में पहुँचा दिया था जहाँ पर श्री कपिल मुनि तपश्चर्मा पर रह

थे । वहाँ उसको बाँध दिया था ॥६६॥ इन्द्रदेव ने अपने शरीर को छिपा कर ही इस अश्व का अपहरण किया था । उस समय मेराबा सगर के ये साठ हजार पुत्र बहुत ही विस्मित हो गए थे और भू आदि समस्त लोकों ने उस अश्व की खोज करने लगे थे ॥६७॥

अट्टप्रसप्तपस्ते च पाताल गन्तुमुद्यता ।

चरन्मुर्महीतल सर्वमेकैको योजन पृथक् ॥६८॥

मृत्तिका खनिता ते चोदधितोरे समाकिरन् ।

तद्द्वारेण गता सर्वे पाताल सगरात्मजा ॥६९॥

विविन्वन्ति ह्य तत्र मदोन्मत्ता विचेतसः ॥७०॥

तत्रापश्यन्महात्मान कोटिसूर्यसमप्रभम् ।

कपिल ध्याननिरत वाजिनं च तदन्निके ॥७१॥

ततः सर्वे तु सरब्धा मुनिं दृष्ट्वाऽतिवेगतः ।

हन्तुमुद्युक्तमनसो विद्रवन्तः समासदन् ॥७२॥

हन्यता हन्यतामेव वध्यता वध्यतामयम् ।

गृह्यता गृह्यतामाशु इत्युच्यते परस्परम् ॥७३॥

हताश्व साधुभावेन वकवद्वचनतत्परम् ।

सन्ति चाहो खला लोके कुर्वन्त्याडम्बर महन् ॥७४॥

अश्वमेध यज्ञ विना इस अश्व की प्राप्ति के अधूरा ही रह गया था । जब अन्यत्र कहीं पर भी वह अश्व नहीं मिला तो वे सब पाताल लोक में गमन करने की उद्यत हुए और एक-एक योजन का एक दस वनः कर इस पृथ्वी के खनन करने का कार्य आरम्भ कर दिया था और खूदी हुई मिट्टी को समुद्र के किनारे पर डालकर उस खूदी हुई मृत्तिका के द्वार से इन्होंने पाताल लोक में प्रवेश प्राप्त कर लिया था ॥६८॥६९॥ व सगर के पुत्र बहुत ही उदास होकर वहाँ पर भी उस अश्व की खोज करने में प्रवृत्त होगये थे । इन मदोन्मत्त सगर पुत्रों ने वहाँ पर करोड़ों मूर्खों के समान कान्ति वाले महारत्न कपिल

मुनि को ध्यान में निमग्न इन्होंने देखा था और यह भी देखा था कि वह घोड़ा उन्हीं के समीप बँधा हुआ है ॥६४॥६५॥ मुनि को देखकर इनको बहुत अधिक क्रोध हुआ था और वे सब उनको मार देने का मनमें विचार कर अत्यन्त क्रोध से उनकी ओर अघटने लगे थे ॥६६॥ उस समय में वे परस्पर में ऐसे वचन कह रहे थे—अरे । इस दुष्ट को मार डालो—मार डालो और शीघ्र ही इसे पकड़ लो ॥ ६७ ॥ यह यज्ञ के अश्व को चुराकर यहाँ ले आया है और अब कैसा बगुले के ही समान ध्यान लगा कर बहुत बड़ा साधु बनकर बँठा हुआ है । ऐसे दुष्ट लोग इस मत्तार में कैसा आहम्बर दिखाया करते हैं ॥६८॥

इत्युच्चरन्तो जहमु कपिल ते मुनीश्वरम् ।

समस्तैर्द्रियमदोह नियम्यात्मानमात्मनि ॥६९॥

आस्थित कपिलस्तेषां तत्कर्म ज्ञात वान्नि हि ॥१००॥

आमन्नमृत्यवन्ते तु विनष्टमतयो मुनिम् ।

पद्मि मताडयामासुर्बाहू च जहृ परे ॥१०१॥

तनस्त्यक्तसमाधिस्तु स मुनिर्विस्मितस्तदा ।

उवाच भावगम्भीर लोकोपद्रवकारिण ॥१०२॥

ऐश्वर्यमदमत्तानां क्षुधितानां च कामिनाम् ।

अहंकारविमूढानां दिवेको नैव जायते ॥१०३॥

निधेराधारमानेण महो ज्वलति सर्वदा ।

तदेव मानवा भुक्त्वा ज्वलतीति किमद्भुतम् ॥१०४॥

किमत्र चित्रं मुजनं वाघन्ते यदि दुर्जना ।

महीरहाश्चानुतटे पातयन्ति नदीरया ॥१०५॥

महा मुनीश्वर कपिल देव के दिपय में इस तरह से कहने लगे थे हैंग रह थे कि इस कपिल मुनि ने अपनी समस्त दन्द्रियों को वश में कर परमात्मा के ध्यान में अपना मन लगा कर रक्खा था । इन्हीं-तिथ उनका मगर के पुरो के इस कर्म का कुछ भी पता नहीं लगा

था ॥६६॥१००॥ किन्तु उन लोगों की भीतें निकट आ पहुँची थी । अतएव उनकी बुद्धि एकदम भ्रष्ट हो गई थी । इसीलिये वे तप में समवस्थित मुनि में ठोकरें मारने लगे थे और कुछ ने उनकी भुजायें पकड़ ली थी ॥१०१॥ उस समय में इस अत्यधिक उत्पन्न होने के कारण उनकी समाधि टुल गयी थी । उस समय में परम विस्मित होकर उन समस्त सत्तार में महान् उपद्रव मचा देने वाली से बड़े ही गम्भीर भाव से पूर्ण यह वचन कहा था—ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त, मूर्ख और कामियों को तथा अहङ्कार के वश में पड़े हुये महा मूर्खों को विवेक नहीं रहा करता ॥१०२॥१०३॥ सम्पूर्ण निधि का आधार होगे से यह पृथ्वी सदा चलती रहा करनी है उसी निधि को उपभोग करने वाले मनुष्य भी जन्मने लगे तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है ॥१०४॥ दुष्ट लोग सज्जनों को बट्ट देते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि दुष्टों का तो स्वभाव ही पीडा पहुँचाना है जैसे नदी का वेग तटस्थ वृक्षों को गिरा ही दिया करता है ॥१०५॥

यः श्रीमोक्षं वापि शरदा वापि तिष्ठति ।

॥ श्रीवृद्धता नित्यं भूर्खत्वं चापि जायते ॥१०६॥

अहो कनकमाहात्म्यमाख्यातुं केन शक्यते ।

नामसाम्यादहो चित्रं घत्तू गोऽपि मदप्रदः ॥१०७॥

भवेद्यदि खलस्य श्रीः सर्व लोहविनाशिनी ।

यथा सखान्ने पवनः पन्नगस्य यथा विषम् ॥१०८॥

अहो धनमदान्धस्तु पश्यन्निपि न पश्यति ।

यदि पश्यत्यात्महितं स पश्यति न सशयः ॥१०९॥

इत्युक्त्वा कपिलः क्रुद्धो नेत्राभ्यां समृजेऽजलम् ।

स बह्निं सागरान्सर्वान्मस्मसादकरोत्क्षणात् ॥११०॥

यन्नेत्रजालं दृष्ट्वा पातालतलवासिनः ।

अकालप्रलयं मत्वा चक्रुः शोकलालसा ॥१११॥

तदग्नि तापिता सर्वे दन्दशूकाश्च राक्षसा ।

सागर विविशुः शीघ्रं सता कोपो हि दुःसह ॥११२॥

जहाँ लक्ष्मी, यौवन और सरस्वती चर्तमान में रहा करती है वहाँ पर इनके साथ ही साथ अलक्ष्मी-वृद्धता और मूर्खता भी अपनी जड़े जमा लिया करती है ॥१०६॥ कनक ( सुवर्ण ) का माहात्म्य किसी से भी कहा नहीं जा सकता है । समान नाम होने के कारण कनक (घतूरा) भी महान मदकारी होता है ( कनक सुवर्ण और घतूरा इन दोनों का नाम होता है ) ॥१०७॥ यदि किसी कुष्ट पुरुष के पास पूर्व पुण्यों के प्रताप से सम्पत्ति हो जाया करती है तो वह उससे ससार के समस्त प्राणियों को कष्ट दिया करता है जिस तरह अग्नि का मित्र वायु वहाँ जाता है तो वह अत्यन्त प्रचण्ड होकर सर्वनाश ही कर दिया करता है और सर्प का विष बढ़ जाता है तो वह जीवों का दशन करके मार दिया करता है ॥१०८॥ अहो ! धन का मद जितना प्रबल होता है कि आँखों से देखता हुआ भी अन्धा हो जाया करता है और उसे कुछ भी सत्य-असत्य दिखनाई नहीं पड़ता है । यदि अपने-हित की बात देख लेवे तो मुख प्राप्त करे किन्तु उसे तो हित-अहित का धन के मद में ज्ञान ही नहीं रहा करता है ॥१०९॥ इस प्रकार से कह कर वपिल मुनि ने क्रुद्ध होकर अपने नेत्रों से अग्नि का प्रक्षेप किया था और उससे एक ही क्षण में वे सगर के पुत्र खाक की ढेरियाँ बन गये थे ॥११०॥ उस समय में उनके नेत्रों की उस अग्नि को देख कर सब पाताल लोक के निवासी महाप्रलय की बालाग्नि समझकर शोक से शीघ्रने सग गये थे ॥१११॥ उस महान् प्रदीप्त अग्नि के ताप से सन्तप्त होकर सर्प और राक्षस समुद्र में कूट गये थे । क्योंकि सज्जनों का कोप परम दुःसह हुआ करता है ॥११२॥

अथ तस्य महीपग्न्य समागम्याध्वर तदा ।

देवदूत उवाचेद सर्वं वृत्तं हि यद्यते ॥११३॥

एतत्समाकर्ण्य वच सगर सर्ववित्प्रभु ।  
 दैवेन शिक्षता दुष्टा इत्युवावातिहुपित ॥११४॥  
 माता वा जम्बो वापि भ्राता वा तनयोऽपि वा ।  
 अधर्मं कुरुते यस्तु स एव शिपुरिष्यते ॥११५॥  
 यस्त्वधर्मेषु निरतः सर्वलोकविरोधकृत् ।  
 न रिपु परम विद्याच्छास्त्राणामपि निर्णतः ॥११६॥  
 सगर पुत्रनाशेऽपि व शुशोच मुनीश्वर ।  
 दुर्वृत्तनिधन यस्मात्सतागुत्साहकरणम् ॥११७॥  
 यज्ञेष्वनधिकारत्वादपुत्राणामिति स्मृते ।  
 पौत्र तमशुभन्त हि पुत्रत्वे कृतवान्प्रभु ॥११८॥  
 असमञ्जस्सुत त तु सुधिय वाग्विदा वरम् ।  
 युयोज सारविद् भूयो ह्यश्वानयनकर्मणि ॥११९॥

इसके अनन्तर एक दूत ने वहाँ उपस्थित होकर समस्त समा-  
 चार राजा सगर को सुना दिया था जहाँ पर वे यज्ञ कर रहे थे  
 ॥११५॥ इस वृत्तान्त का श्रवण कर सर्व ज्ञानी राजा सगर ने यही  
 कहा था कि दैव ने ही दुष्टों को दण्ड दिया है—यह कह कर वह  
 प्रसन्न हुआ था ॥११४॥ राजा सगर ने कहा कि चाहे माता हो  
 या पिता हो, भ्राता हो या पुत्र हो, जो भी कोई हो जो अधर्म और  
 अन्याय किया करता है उसको शत्रु ही समझ लेना चाहिये ॥११५॥  
 जो अधर्म परायण हो और सदा सब लोगों का विरोध ही किया  
 करता हो उसको अपना परम घोर शत्रु ही समझना चाहिये—यही  
 समस्त शास्त्रों का सिद्धान्त है ॥११६॥ हे मुनीश्वर । इसी शास्त्रों के  
 सिद्धान्त के अनुसार राजा सगर ने अपने पुत्रों का विनाश होने पर भी  
 किंचिन्मात्र भी शोक नहीं किया था क्योंकि दुराचरण करने वालों का  
 विनाश मत्पुरुषों के हृदय का ही बड़ाया करता है ॥ ११७ ॥ इसके  
 पश्चात् राजा सगर ने पुत्रहीन को यज्ञ करने का कोई अधिकार नहीं

होता है । शास्त्र के सिद्धान्त का स्मरण करके अपने पौत्र अशुमान को ही पुत्र मान लिया था ॥११८॥ फिर उस परम बुद्धिमान एवं वक्ताओं में परम श्रेष्ठ असमञ्जस के पुत्र अशुमान को ही सारवेत्ता सगर ने अश्व के खाने के कार्य में नियुक्त किया था ॥११९॥

स गतस्तद्विलद्वारे दृष्ट्वा त मुनिपुङ्गवम् ।

कपिल तेजसा राशि साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ॥१२०॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनयेनाग्रत स्थितः ।

प्रान्तमनस देवदेव सनातनम् ॥१२१॥

दौ शील्य यत्कृत ग्रहान्मत्पितृव्यै क्षमस्व तत् ।

परोकाग्निरता क्षमासारा हि साधवः ॥१२२॥

दुर्जनेष्वपि सत्त्वेषु दया कुर्वन्ति साधवः ।

नहि सहस्ते ज्योत्स्ना चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः ॥१२३॥

वाध्यमानोऽपि मुजस सर्वपा सुखकृद्भवेत् ।

ददाति परमा तुष्टिं भक्ष्यमाणोऽमरं शशी ॥१२४॥

दारितरिष्ठन्त एवापि ह्यामोदेनैव चन्दनः ।

सौरभं कुरुते सर्वं तथैव मुजनो जनः ॥१२५॥

क्षान्त्या च तपसाचारैस्तद्गुणज्ञा मुनीश्वराः ।

सजातं शास्त्रितु लोकास्त्वा विदुः पुरुषोत्तमः ॥१२६॥

फिर वह अशुमान उसी पूर्व निमित्त बिल के द्वार से चला ५८ पहुँच गया था जहाँ पर परम तेजस्वी मुनिपुङ्गव श्री कपिल देव के दर्शन करके उनके चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया था ॥१२०॥ फिर वह अशुमान नम्रता के साथ दोनों शाय जोड़ कर उनके समक्ष में गिर पड़ा था और पद्म शास्त्र हृदय वाले सनातन श्री कपिल मुनि से वह निवेदन करने लगा था ॥१२१॥ अशुमान ने कहा—हे शस्त्र ! मेरे पाचार्यों ने जो दुःशीलता का व्यवहार किया था, उस अपराध को क्षमा कर दीजिए क्योंकि

साधु पुरुष सर्वदा परोपकार करने में परायण हो रहा करते हैं और क्षमा भाव हो उनका सार हुआ करता है ॥१२२॥ साधु पुरुष दुर्जंग प्राणियों पर भी उनके वस्त्याव करने के लिए ही दया किया करते हैं । चन्द्रमा चाण्डाल के घर से भी अपनी चाँदनी का प्रकाश हटाता नहीं है और सब पर उसकी चाँदनी का प्रकाश समान स्वरूप से ही फैला रहा करता है ॥१२३॥ साधु पुरुषों को भले ही कोई अपनी दुष्ट वृत्ति से थोड़ा भी देवे तो भी वे सबको सदा सुख ही दिया करते हैं । देवता चन्द्र को खाये जाते हैं फिर भी वह सबको सन्तुष्ट ही रखा करता है ॥१२४॥ फाड़कर और चीरकर प्राप्त किया गया भी चन्दन अपनी सुन्दर सुगन्ध को ही सर्वत्र फैलाया करता है वैसे ही दशा साधु पुरुषों की हुआ करती है ॥१२५॥ हे पुरुषोत्तम ! आपकी क्षमा और तप के आचरणों से गुणज्ञ भूमीश्वर यह समझ लिया करते हैं कि आप मनुष्यों पर शासन करने के लिये ही समुत्पन्न हुये हैं ॥१२६॥

नमो ब्रह्मन्मुने तुभ्य नमस्ते ब्रह्ममूर्त्तये ।  
 नमो ब्रह्मण्यशोलाय ब्रह्मध्यानपराय च ॥१२७॥  
 इति स्तुतो मुनिस्तेन प्रसन्नवदनस्तदा ।  
 वर वरय चेत्याह प्रसानोऽस्मि तवानघ ॥१२८॥  
 एवमुक्ते तु मुनिना ह्य शुमान्प्रणिपत्यतम् ।  
 प्रापयास्मत्पितृन्तन्ब्राह्म लोकमित्यभ्यभाषत ॥१२९॥  
 ततस्तस्यातिसंतुष्टो प्रोवाच मुनिः सादरम् ।  
 गङ्गामानीय पौत्रस्ते नयष्यति पितृ न्दिवम् ॥१३०॥  
 त्वत्पौत्रेण समानीता गङ्गा पुण्यजला नदी ।  
 कृत्वैतान्मृतपापान्वै नयष्यति पर पदम् ॥१३१॥  
 प्रापयन् ह्य वत्स यत स्यात्पूर्णमध्वरम् ।  
 पितामहान्तिक प्राप्य साश्व वृत्त न्यवेदयत् ॥१३२॥  
 सगरस्तेन पशुना त यज्ञ ब्राह्मणेः सह ।



विधाय तपसा विष्णुमाराध्याप पदं हरेः ॥१३३॥

हे ब्रह्मन् ! हे मुनिवर ! आपको मेरा सादर प्रणाम समर्पित है । सदा ब्रह्म के ध्यान में लीन रहने वाले आपको मैं सर्वप्रथम प्रणाम करता हूँ ॥१२७॥ इस प्रकार से मुनि का सस्तवन करने पर कपिल मुनि ने परम प्रसन्न मुख से कहा—हे निष्पाप ! मैं तेरे ऊपर अत्यधिक प्रसन्न हूँ, तुझे जो भी कुछ इच्छा हो उसका वरदान मुझसे माग लें ॥१२८॥ उन महा मुनि के इस तरह से कहने पर अशुमान ने उनको फिर एक बार मबिनय प्रणाम करके निवेदन किया था—हे ब्रह्मन् ! मेरे मृत पितरों को आप ब्रह्मत्वाक भेज देने की कृपा कीजिये ॥१२९॥ उस समय में उन पर परम प्रसन्न होकर महा मुनि कपिल-देव ने आदरपूर्वक कहा—तेरा पीत्र स्वर्गलोक से गङ्गाजी को बहा लाकर इन सबका उद्धार कर स्वर्गलोक में पहुँचावेगा ॥१३०॥ तेरे पीत्र के द्वारा लाई गई परम पवित्र जल वाली गङ्गा इनको निष्पाप करके परम पद को प्राप्त करा देगी ॥१३१॥ हे ब्रह्म ! अब तू इन यज्ञ के अश्व को लेजा जिससे तेरे पितामह का यज्ञ पूर्ण हो जावे । इसके पश्चात् अश्व को लेकर अशुमान ने बहा आकर अपने पितामह राजा सगर से समस्त वृत्तान्त सुना दिया था ॥१३२॥ फिर राजा सगर ने ब्राह्मणों के साथ बैठकर अपने यज्ञअश्वमेध का यजन कर उसे पूर्ण किया था । तपश्चर्या से भगवान् विष्णु की समाराधना करके श्री हरि के परमपद को प्राप्त हो गया था ॥१३३॥

जज्ञं ह्यंशुमतः पुत्रो दिलीप इति विद्युत ।

तस्मादभगीरयो जातो यो गङ्गामानयद्विव. ॥१३४॥

भगीरथस्य तपसा सुष्ठो ब्रह्मा ददौ मुने ।

गङ्गा भगीरथायाथ चितयामाम धारणे ॥१३५॥

ततश्च शिवमाराध्य तद्द्वारा स्वर्णदी भुवम् ।

आनीय तज्जलैः स्मृष्ट्वा पूतान्निन्ये दिव पित्रून् ॥१३६॥

भगीरथान्वये जात सुदासो नाम भूपतिः ।

तस्य पुत्रः मित्रसह सर्वलोकेषु विभ्रुतः ॥१३७॥

वसिष्ठशापात्प्राप्त सौदासो राक्षसी तनुम् ।

गङ्गाविन्दुनिषेकेण पुनर्मुक्तो नृपोऽभवत् ॥१३८॥

फिर उस अश्रुमान का द्वितीय नाम वाला परम प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ था । उस दिलीप के भगीरथ नामक पुत्र हुआ था और उसने ही स्वर्ग लोक से यहाँ पर गङ्गाजी को लाकर विराजमान किया था ॥१३४॥ हे मुने । भगीरथ ने अति उग्र तप किया था जिससे परम प्रसन्न एव सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने भगीरथ को गङ्गाजी दे दी थी । उस समय भगीरथ ने अपने मनमें विचार किया था कि इन गङ्गाजी को यहाँ से जाने पर धारण कौन करेगा ॥१३५॥ गङ्गादेवी के प्रपात करने के लिये फिर राजा भगीरथ ने परम दयालु भगवान् शङ्कर की आराधना की थी और उनके ही द्वारा स्वर्ग से गङ्गाजी को इस भूमण्डल में लेकर भगीरथ नृपति स्वयं पवित्र हुये और पितरो को भी जल का स्पर्श करा कर स्वर्ग लोक में पहुँचा दिया था ॥१३७॥ भगीरथ राजा के वश में एक सुदास नाम वाला राजा हुआ था । उसका पुत्र समस्त लोको में मित्र सह नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१३६॥ वसिष्ठ मुनि के शाप से उस सौदास को राक्षस का शरीर प्राप्त हो गया था वह राजा भी गङ्गाजल के छींटे पड़ने ही से राक्षसी भाव से मुक्त होकर मनुष्य होगया था ॥१३८॥

## ॥ सौदास चरित ॥

शप्त कथं वसिष्ठेन सौदासो नृपसत्तमः ।

गङ्गाविन्दुभिषेकेण पुनः शुद्धोऽभवत्कथम् ॥१॥

सर्वमेतदशेषेण भ्रातर्म वक्तुमर्हसि ।

धृष्यता वदता चैव गङ्गायान शुभावहम् ॥२॥  
 सौदासः सर्वधर्मज्ञः सर्वज्ञो गुणवाञ्छुचि ।  
 बुभुजे पृथिवी सर्वा पितृवद्रज्जयन्प्रजा ॥३॥  
 सगेरण यथा पूर्वं महीय सप्तसागरा ।  
 रक्षिता तद्वदमुना सर्वधर्माविरोधिना ॥४॥  
 पुत्रपौत्रसमायुक्त सर्वेश्वर्यसमन्वित ।  
 त्रिशदष्टसहस्राणि बुभुजे पृथिवी युवा ॥५॥  
 सौदासस्त्वेकदा राजा भृगयाभिरतिर्वनम् ।  
 विवेश सयत्नः सम्यक् शोधितः ह्यात्मन्निमि ॥६॥  
 निपादैः सहितस्तत्र विनिष्कन्मृगसञ्चयम् ।  
 आससाद नदी रेवा धर्मज्ञः स पिपासितः ॥७॥

देवर्षि श्री नारदजी ने पूछा था कि बसिष्ठजी ने राजाओं में  
 परम श्रेष्ठ सौदास को क्यों शाप दिया था और वह गङ्गाजलसे कैसे शुद्ध  
 हुआ ? ॥१॥ हे घात ! आप इन सब बातों का वर्णन मेरे सामने  
 विस्तृत रूप से करने की प्रार्थना कीजिये क्योंकि यह गङ्गा देवी अपनी  
 पत्नी के वक्ता और श्रोता दोनों को ही पवित्र कर दिया करती है  
 ॥२॥ श्री तनूजी ने नारदजी के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा था  
 कि सुदास का पुत्र मित्रमह सभी धर्मों को जानने वाला था । सभी  
 वस्तुओं और गुणों का ज्ञाता तथा परम पवित्र था । वह पिता के ही  
 समान अपनी प्रजा का मनोरंजन करते हुये पृथ्वी के सुखों का भोग  
 किया करता था ॥३॥ पहिले राजा सगर ने जिस तरह ने सातों  
 भागर वाली पृथ्वी का पानन किया था उसी प्रकार ये राजा मित्रमह  
 भी धर्म व किसी भी भाग में विरोध न करता हुआ हम भूमण्डल की  
 रक्षा करता था ॥४॥ उस राजा ने युवावस्था ही में पुत्र-पौत्र और सभी  
 तरह के ऐश्वर्य से परिपूर्ण रहकर अठतीस हजार वर्ष तक इस पृथ्वी  
 का सुख भोगा था ॥५॥ एक समय में राजा मित्रमह मन्त्रियों के

द्वारा सुरक्षित वन में शिकार करने के शौक से अपनी सेना के साथ प्रविष्ट हुआ था ॥६॥ वहाँ पर उसी के साथ में निपाद लोग भी अपनी टोली बना कर मृगों की टोलियों की भार रहे थे। वह धर्मज्ञ राजा प्यास लगने पर रेवा नदी के तट पर पहुँच गया था ॥७॥

सुदासतनयस्तत्र स्नात्वा कृत्वाह्निकं मुने ।

भुक्त्वा च मन्त्रिभिः शाब्दं ता निष्ठा तत्र चावसत् ॥८॥

ततः प्रातः समुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्निकीं क्रियाम् ।

बभ्राम मन्त्रिसहितो नर्मदातीरजे वने ॥९॥

वनाद्वनान्तरं गच्छन्नेक एव महीपतिः ।

आकर्णकृष्टबाणः सत् कृष्णसारं समन्वगात् ॥१०॥

दूरसैन्योऽश्वमारूढः स राजानुव्रजन्मृगम् ।

व्याघ्रद्वयं गुहासंस्थमपश्यत्सुरते रतम् ॥११॥

मृगपृष्ठं परित्यज्य व्याघ्रयोः समुखं ययौ ।

धनुः सहितवागेन तेनासौ शरशास्त्रवित् ॥१२॥

ता व्याघ्री पातयामास तीक्ष्णाग्रनतपर्वणा ।

पतमाना तु सा व्याघ्री यद्गृह्णद्योजनायता ॥१३॥

तद्धित्यद्वोरनिर्घोषा राक्षसी विकृताभवत् ।

पतिता स्वप्रिया वीक्ष्य द्विपन्ता व्याघ्रराक्षसा ॥१४॥

प्रतिक्रियां करिष्यामीत्युक्त्वा चातदंधे तदा ।

राजा तु भयसन्निभो वने सैन्यं समेत्य च ॥१५॥

हे मुनिवर ! वहाँ पर राजा भिनसह ने स्नान तथा आह्निक कृत्य समाप्त करके अपने मन्त्रियों के साथ भोजन किया था और उस रात में वही पर ठहर गया था ॥८॥ इसके उपरान्त दूसरे दिन में प्रातः काल होने पर उठकर पूर्वाह्निकी क्रिया की थी और फिर अपने मन्त्रियों को साथ में लेकर नर्मदा नदी के तीर पर भ्रमण करने लग गया था ॥९॥ एक वन से दूसरे वन में जाने के समय

मे राजा अकेला ही रह गया था और एक कृष्ण सार हिरण के पीछे कान तक बाण खींचकर दौड़ने लग गया था ॥ १० ॥ उस समय मे राजा के सैनिक बहुत दूर पीछे ही रह गये थे । उस अवसर पर घोड़े पर सवार रहते हुये ही राजा ने एक गुफा के अन्दर व्याघ्र दम्पति को मँधुन करते हुए देखा था ॥ ११ ॥ इनको देखकर उस राजा ने हिरण का पीछा करना तो छोड़ दिया और अपने धनुष पर शर चढ़ा कर उस व्याघ्र दम्पति के जोड़े की ओर बढ़ गया था ॥ १२ ॥ उस राजा ने अत्यन्त तीक्ष्ण अग्न भाग वाले तथा जमी हुई गाँठ से युक्त बाण से उस जोड़े में से बाघनी को मार कर गिरा दिया था । उस व्याघ्री ने जब मौत के मुँह में गमन कर रही थी । बिद्युत् से युक्त मेघ के समान बड़ी भारी गर्जना की थी और एकसौ चौबीसीस कोस लम्बी वेडोल भयावह राक्षसी का स्वरूप धारण करके मर गयी थी । उस समय मे अपनी प्रिया को मरी हुई देखकर वह व्याघ्र स्त्री राक्षस बड़ा भारी द्वेष करके राजा से कहने लगा था—मैं तेरे इस अत्याचार का बदला लेकर छोड़ूँगा । इतना कहकर वह अन्तर्धान होगया था । इसके ऐसा कहने पर राजा को बड़ा भय हुआ और अत्यन्त उद्विग्न होकर वह अपने सैनिकों से मिला था ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

तद्वृत्ता कथयन्सर्वान्स्वा पुरी स न्यवर्तत ।

शङ्कमानस्तुतद्रक्ष कृत्याद्राजा सुदासज ॥ १६ ॥

परितत्याज मृगया तत् प्रभृति नारद ।

गते बहुतिथे काले ह्यभेध मख नृप ।

समारेभे प्रसन्नात्मा वशिष्ठाद्यमुनीश्वरैः । १७ ॥

तत्र ब्रह्मादिदेवेभ्यो हविर्दत्त्वा यथाविधि ।

समाप्य यज्ञनिष्क्रातो वशिष्ठ स्नातकोऽपि च ॥ १८ ॥

अनन्तरे राक्षसोऽसौ नृपहिंसितभार्यकः ।

कर्तुं प्रतिक्रिया राज्ञे समायातो रूपान्वितः ॥१६

स राक्षसस्तस्य गुरो प्रयाते वशिष्ठत्रेप तु तदेव धृत्वा ।

राजानमभ्येत्य जगाद भोक्ष्ये मास समिच्छाम्यहमित्युवाच ॥२०

भूय समास्थाय स सूदवेप पक्त्वामिष मानुषमस्य प्रादात् ।

स्थितश्च राजापि हिरण्यपात्रे धृत्वा गुरोरागमन प्रतीक्षन् ॥२१

तन्मास हेमपात्रस्थ सौदासो विनयान्वितः ।

पमागताय गुरवे ददौ तस्मै स सादरम् ॥२२

राजा ने अपने सैनिकों को वह सब वृत्तान्त सुना दिया और वापिस अपनी नगरी को लौट पड़ा सुदास का पुत्र राजा मित्रसह उम राक्षस के कृप्य से सदा शङ्कित रहा करता था । इसलिये उसने उस दिन से मृगया का करना ही एक दम बन्द कर दिया । हे नारद ! बहुत सा समय व्यतीत हो जाने पर उस राजा ने चित्त में प्रसन्नता करके वशिष्ठ आदि ऋषीश्वरों के साथ मिसकर अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का आरम्भ किया था ॥१६॥१७॥ उसमें ब्रह्मा आदि देव मृन्द को हवि देकर और यज्ञ को समिधि समाप्त करके वह राजा और वशिष्ठ महर्षि उस यज्ञ गण्डप से बाहर चले गये थे ॥१८॥ इसी अन्तर में जिसकी भार्या को राजा ने वन में मार कर गिरा दिया था वह राक्षस महान क्रोध से भरकर बदला लेने के लिये राजा के समीप पहुँच गया था ॥१९॥ वह वशिष्ठ मुनि के चले जाने पर वशिष्ठ मुनि का स्वरूप धारण कर राजा के पास पहुँचा और उससे कहने लगा था—‘मैं मास खाऊँगा, फिर उस राक्षस ने पाचक का रूप धारण किया था और राजा की मनुष्य का मास पकाकर दे दिया था । राजा भी उसको एक सुवर्ण के पात्र में रखकर उस मांस को आदर के साथ गुरुजी को अर्पित करने लगा था ॥२०॥२१॥२२

त दृष्ट्वा चिन्तयामास गुरु किमिति विस्मित ।

अपश्यन्मानुष मास परमेण समाधिना ॥२३॥  
 अहोऽस्य राज्ञो दौ शील्यमभक्ष्य दत्तवान्मम ।  
 इति विस्मयमापन्न प्रमन्थुरभवन्मुनि ॥२४॥  
 अभोज्य मद्विधाताय दत्ता हि पृथिवीपते ।  
 तस्मात्तवापि भवतु ह्येभदेव हि भोजनम् ॥२५॥  
 नृमास रक्षसामेव भोज्य दत्ता मम त्वया ।  
 तद्याहि रक्षसत्वं त्वं तदाहारोचितं नृप ॥२६॥  
 इति शापं दमत्यस्मिन्सौदासो भयविह्वलः ।  
 आज्ञप्तो भवतीवेति सकपोऽरमं व्यजिज्ञपत् ॥२७॥  
 भूयश्च चिन्तयामास यशिष्ठस्तेन नोदितः ।  
 रक्षसा वचित भूतं ज्ञातवान् दिव्यछक्षुषा ॥२८॥

इसको देखकर योगी गुरुजी ने परम विस्मित होकर विचार किया था कि—यह क्या है और जब बहुत ध्यान से देखा तो उनको वह मनुष्य का मांस ज्ञात हो गया था ॥२३॥ इससे परम विस्मित हुये मुनि को महान् क्रोध हो गया था । उन्होंने विचार किया ओहो । इस राजा ने वैसा दुष्टता का कार्य किया है इससे मुझे सर्वथा अभक्ष्य नर मांस भक्षण करने को दिया है ॥२४॥ वसिष्ठजी ने कहा—  
 हे राजन् ! तूने मेरी सम्पूर्ण तपश्चर्या का नाश करने के लिये आज यह अभोज्य पदार्थ मेरे अर्पण किया है । अतएव जा, यह तेरा ही भोजन होगा ॥२५॥ अरे दुष्ट राजा, तूने यह राक्षसों का भोजन मुझे दिया है अतएव इसके खाने का उचित पात्र तू आज से राक्षस हाजा ॥२६॥ राजा मित्रसह श्री वसिष्ठजी के इस प्रकार से शाप देन पर भय से बर्चन होगया था और परम कम्पित गात्रों वाला होकर कहने लगा कि आपने ही मुझे आज्ञा प्रदान की थी, मेरा इसमें क्या दोष है ॥२७॥ राजा की इस बात का सुनकर वसिष्ठजी को कुछ प्रेरणा मिली थी और उन्होंने पुनः याग भाग के द्वारा विचार किया

तो दिव्य चक्षु से उन्होंने देखा था कि राक्षस ने ही राजा को बचि  
किया है ॥२८॥

राजापि जलमादाय वशिष्ठ शप्तमुद्यत ॥२९॥  
समुद्यत गुरु शप्ता दृष्ट्वा भूयो रूपान्वितम् ।  
मदयती प्रिया तस्य प्रत्युवाचाय मुव्रता ॥३०॥  
भो भो क्षत्रियदायाद कोप सहतुं महंसि ।  
त्वया यत्कर्म भोक्तव्य तत्प्राप्त नात्र सशय ॥३१॥  
गुरु तु कृत्य हु कृत्य यो वदेन्मूढधीनर ।  
अरण्ये निजले देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षस ॥३२॥  
जितेन्द्रिया जितक्रोधा गुरुशुश्रूपणे रता ।  
प्रयान्ति ब्रह्मसदनमिति शास्त्रेणु निश्चय ॥३३॥  
तयोक्तो भूपति कोप त्यक्त्वा भार्या ननन्द च ।  
जल कुत्र क्षिपामीति चिन्तयामास चात्मना ॥३४॥  
तज्जल यत्र ससिक्त तद्भवेद्भस्म निश्चितम् ।  
इति मत्वा जल तत् पादयोर्न्यक्षिपत्स्वयम् ॥३५॥

उस समय में राजा भी हाथ में जल ग्रहण करके वशिष्ठ मुनि  
को शाप देने के लिये प्रस्तुत हो गया था ॥२९॥ उस अवसर पर  
वशिष्ठजी ने देखा था कि राजा परम क्रुद्ध हो गया है और मुझे शाप  
देने के लिये तैयार हो गया है तो उसकी रानी जो परम सुन्दर व्रत  
वाली थी और जिसका मदयन्ती नाम था राजा से निवेदन करने  
थी ॥३०॥ मदयन्ती ने उस समय में कहा था—हे क्षत्रिय पुत्र ।  
अपने इस क्रोधावेश को राकिये । जो कर्म आपको भोगना था वह  
आपको अब प्राप्त हो गया है ॥३१॥ महान् मूढ पुरुष जो होता है  
वही अपने गुरु से तू या है ऐसा कहकर बोला करता है वह निश्चय  
ही निज निवासान वन में ब्रह्म राक्षस हुआ करता है ॥३२॥ शास्त्रों  
का यह परम निश्चित सिद्धान्त है कि जो अपनी सब इन्द्रियों को



और क्रोध को वश में रखते हुये गुरु की सेवा सुश्रूषा में निरन्तर निरत रहा करते हैं वे ब्रह्म लोक में गमन किया करते हैं ॥ ३३ ॥ अपनी पत्नी के ऐसे समझाने पर राजा ने अपने आपको शान्त किया था और अपनी भार्या को आनन्दित करके स्वयंही अपने मनमें विचार किया था कि अब शाप देने के लिये ग्रहण किये हुये जल को वहाँ छोड़ा जावे ॥ ३४ ॥ वह जल तो शाप देने के विचार से ही ग्रहण किया था अतएव वह जल जिस पर भी गिरेगा वह निश्चय ही मत्सी-भूत हो जायगा । गहराई से यह विचार कर वह जल अपने ही चरणों में डाल दिया था ॥ ३५ ॥

तज्जलस्पर्शमानेण पादो कल्माषता गतो ।  
 कल्माषपाद इत्येव तत प्रभृति विस्तृत ॥ ३६  
 कल्माषपादो मतिगान् प्रिययाश्वासितस्तदा ।  
 मानसा सोऽतिभीतस्तु ववन्दे चरण गुरो ॥ ३७  
 उवाच च प्रपन्नरत प्राञ्जलिर्नयकोविद ।  
 क्षमस्व भगवन्सर्वं योपराध कृतो मया ॥ ३८  
 तच्छ्रुत्वोवचा भूपाल मुनिर्निश्चय दुःखित ।  
 आत्मानं गर्हयामास ह्यविवेकपरायणम् ॥ ३९  
 अविवेको हि सर्वपापमापदा परम पदम् ।  
 विवेकरहितो लोके पशुरेव न सशय ॥ ४०  
 राजा त्वजानता नूनमेतत्कर्मोचितं कृतम् ।  
 विवेकरहितोऽज्ञोऽहं यत पाप समाचरम् ॥ ४१  
 विवेकनियतो याति यो वा को वापि निर्वृतिम् ।  
 विवेकहीनमाप्नोति को वा यो वाप्यनिर्वृतिम् ॥ ४२

उस जल का स्पर्श होते ही उस राजा के पैर चितकबरे से हो गये थे और उम दिन से वह फिर कल्मषपाद नाम से लोक में प्रसिद्ध हो गया था ॥ ३६ ॥ कल्मषपाद बहुत ही बुद्धिमान था, अपनी प्रिया

पत्नी के समाश्वासन देने पर अपने मन में बहुत अधिक डरते २ फिर उसने भृगुजी के चरणों में प्रणाम किया था ॥३७॥ इसके अनन्तर नीतिशास्त्र में परम चतुर उस राजा ने हाथ जोड़ कर अपने गुरुजी के चरणों की शरण में जाकर रहने लग गया था और उसने उनसे विनम्र होकर प्रार्थना की थी । हे भगवन् । मुझ से जो यह महान् अपराध इस समय में बन गया है उसे अब आप क्षमा कर दीजिए ॥३८॥ इस बात का श्रवण कर मुनिवर वसिष्ठ जी बहुत ही दुःखित हुए और उन्होंने एक दुःख भरी श्वास लेकर उस राजा से कहा—मैं बहुत ही विवेकहीन हूँ, मुझे धिक्कार है । यह कार्य और अकार्य का विचार न रहना ही अविवेक है और यही समस्त आपदाओं का मूल होता है । जो विवेक से हीन रहा करता है वह मनुष्य पशु के ही तुल्य हो जाया करता है ॥३९-४०॥ हे राजन् । तुम को इसका शान ही नहीं था अतएव आप भी मुझे शाप दे देते तो बहुत ही उचित होता क्योंकि मूढ़ और विवेक से रहित था । इसी कारण से मुझ से यह पाप बन गया था ॥४१॥ जो प्राणी विवेक बुद्धि के द्वारा अपने मन को वश में रखता है वह भले ही कोई भी हो सदा सुख प्राप्त किया करता है तथा जो विवेक को त्याग देता है उसे हर तरह का दुःख आकर दया दिया करता है ॥४२॥

इत्युक्त्वा चात्मनात्मानं प्रत्युवाच मुनिर्नृपम् ।  
 नात्यन्तिकं भवेदेतद् द्वादशाब्दं भविष्यति ॥४३॥  
 गङ्गाविन्द्वभिपिक्तस्तु त्यक्त्वा वै राक्षसी तनुम् ।  
 पूर्वरूपं त्वमापन्ना भोक्ष्यमे मेदिनीमिमाम् ॥४४॥  
 तद्विदुर्गेवम्भूतज्ञानेन गतमन्मथ ।  
 हरिमेवापगे भूत्व परा शान्तिं गमिष्यसि ॥४५॥  
 इत्युक्त्वाथर्वविद्भूषं तजिष्ठ स्वाश्रमं ययौ ।  
 राजापि दुःशसपन्नो राक्षसी तनुमाश्रितः ॥४६॥

क्षुत्पिपासाविशेषातों नित्यं क्रोधपरायणः ।  
 कृष्णक्षपाद्युतिर्भीमो वभ्राम विजने वने ॥४७॥  
 मृगाश्च विविधांस्तत्र मानुषांश्च सरीसृपान् ।  
 बिहङ्गमान्प्लवङ्गाश्च प्रशस्तास्तानभक्षयत् ॥४८॥  
 अस्थिमिर्यद्बुभिर्भूय, पीतरक्तकलेवरैः ।  
 रक्तान्तप्रेतकेशैश्च चित्रासीद् भूभयंकरी ॥४९॥

इस तरह से स्वयं आप ही अपनी बुराई का काम न कर फिर मुनि उस राजा से कहने लगे थे—यह मेरा शाप निरवान तक नहीं रहेगा । बारह वर्ष के बाद यह शूट जायेगा ॥४३॥ जब तुम्हारे शरीर पर भागीरथी गङ्गाजी के जल से अभिषेक होगा तो इस राक्षस शरीर से तुम्हारी मुक्ति हो जावेगी और पुनः तुम प्रथम स्वरूप को प्राप्त कर इस पृथ्वी का सुख भोगोगे ॥४४॥ गङ्गाजी के जल से अभिषेक होने पर तुमको ज्ञान की प्राप्ति होगी और समस्त तुम्हारे पाप नष्ट हो जायेंगे । फिर तुम भी हरि की सतत सेवा करके परम शान्ति का लाभ करोगे ॥४५॥ अथर्व वेद के पूर्ण शास्त्र महा मुनि वशिष्ठजी उस राजा को इस प्रकार से सान्त्वना देकर अपने आश्रम में वापिस लौटकर चले गये थे और वह राजा राक्षस का शरीर प्राप्त कर महान् कष्ट में पड़ गया था ॥४६॥ राक्षस शरीर को प्राप्त कर वह भूख प्यास से परम व्याकुल रहने लग गया था । सर्वदा ही वह क्रोध में भरा रहता था । कृष्ण पक्ष की रात्रि के समान ही महान् भीषण कान्ति वाला होकर निर्जन वनों में भ्रमण करने लग गया था ॥४७॥ वन में विभिन्न प्रकार के मृग-मनुष्य, पक्षी, सर्प और श्रेष्ठ वानरो का भक्षण किया करता था ॥४८॥ वहाँ की भूमि बहुत सी अस्थियों से तथा रक्त पान कर चूसी हुई लाशों से और रधिर से नित दूध मृत मनुष्यों के केशों से चितववरी और अस्मत्त भयावह हो गई थी ॥४९॥

ऋतुनये स पृथिवी शतयोजनविस्तृताम् ।  
 कृत्वातिदु खिता पश्चाद्वनान्तरमुपागतम् ॥५०॥  
 तत्रापि कृतवान्नित्य नरमासाशन सदा ।  
 जगाम नमंदातीर मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥५१॥  
 विचरन् नमंदातीरे सर्वलोकभयकर ।  
 अपश्यत्कचन मुनिं रमन्त प्रियया सह ॥५२॥  
 क्षुधानलेन सतप्तस्त मुनिं समुपाद्रवत् ।  
 जग्राह चातिवेगेन व्याधो मृग शिशु यथा ॥५३॥  
 ब्राह्मणी स्वर्पति वीक्ष्य निशाचरकरस्थितम् ।  
 शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रोवाच भयविह्वला ॥५४॥  
 भो भो नृपतिशार्दूल नाहि मा भवविह्वलाम् ।  
 प्राणप्रियप्रदानेन कुरु पूर्ण मनोरथम् ॥५५॥  
 नाम्ना मित्रसहस्रस्य हि सूर्यवशसमुद्भव ।  
 न राक्षसस्ततोऽजाया पाहि मा विजने वने ॥५६॥

वह राक्षस शरीर में रहने वाला राजा छ मास पर्यन्त बार  
 सौ कोस की भूमि को प्राणी विहीन एवं दुःखमयी बनाकर फिर वहाँ से  
 दूसरे वन में चला गया था ॥५०॥ वहाँ पर भी नर मांस का भक्षण  
 करता हुआ मुनि और परम मिट्टी के द्वारा रोवित नमंदा नदी के तट  
 पर भटकता हुआ पहुँच गया था ॥ ५१ ॥ सभी प्राणियों को भयभीत  
 करने वाले उस राक्षस ने उम नमंदा नदी के तट पर  
 विचरण करते हुये एक मुनि को अपनी प्रिया पत्नी के साथ  
 रमण करत हुये देखा था ॥५२॥ मृग की उग्र अग्नि से झूलसता हुआ  
 वह राक्षस मुनि के ऊपर क्षपटा था और जिस तरह से व्याघ्र एक  
 मृग के बच्चे को पकड़ लिया करता है उसी भाँति इस राक्षस ने भी  
 उम विप्र को दबाकर लिया था ॥५३॥ वह मुनि पत्नी ब्राह्मणी ने  
 अपने स्वामी को राक्षस के हाथों में पँसा हुआ देखा तो वह भय से  
 अत्यन्त विह्वल होकर हाथ जोड़कर कहने लगी थी ॥५४॥ उम  
 मुनि पत्नी ने कहा— हे राजशार्दूल ! आप मुझे भय से विह्वल सती

रक्षा करिये । मेरे प्राण प्यारे पति को छोड़ दीजिए और मेरा  
 लेख पूर्ण करिए ॥५५॥ आप वास्तव में राक्षस नहीं हैं । आप तो  
 राम पवित्र ऐय प्रख्यात सूर्य वंश में पैदा हुए हैं । अतएव श्रम निर्जन वन  
 मुझ अनाथ की इस समय में आप रक्षा करिए ॥५६॥

या ना भर्तृरहिता जीवत्यपि मृतोपमा ।  
 तथापि बालवैधव्य किं वक्ष्याम्यरिमर्दन ॥५७॥  
 न मातापितरौ जाने नापि बधु च कचन ।  
 पतिरेव परो बधु परम जीवन मम ॥५८॥  
 भवान्वेत्याखिलान्धर्मान्योपिता वर्त्तन यथा ।  
 प्रायस्व बन्धुरहिता बालापत्या जनेश्वर ॥५९॥  
 कथं जीवांम पत्यास्मिन्होना हि विजने वने ।  
 दुहिताह भगवत्स्त्राहि मा पतिदानत ॥६०॥  
 प्राणदानात्पर दान न भूत न भविष्यति ।  
 वदन्तीति महाप्राज्ञा प्राणदानं कुरुष्व मे ॥६१॥  
 इत्युक्त्वा सा पपातास्य राक्षसस्य पदाग्रत ।  
 एव साप्रार्थ्यमानोऽपि ब्राह्मण्या राक्षसो द्विजम् ।  
 अभक्षयत् कृष्णसारं शिशुं व्याघ्रो यथा बलात् ॥६२॥  
 ततो विलप्य बहुधा तस्य पत्नी पतिव्रता ।  
 पूर्वाशापहत भूपमशपत्क्रोधिता पुन ॥६३॥

जिस नारी का पति नहीं रहा करता है वह तो जीवित रहते  
 हुई भी मृत के ही समान हो जाया करती है । हे अरिमर्दन । फिर  
 भी जो बाल विधवा होती है उसने दुःख का तो मैं खपन ही क्या  
 करूँ ॥५७॥ मैं न तो अपनी माता को जानती हूँ और न अपने पिता  
 का ही जानती हूँ । जगत् किसी भी बन्धु का ज्ञान मुझ नहीं है ।  
 मेरे तो यह पतिद्वय ही परम बन्धु हैं और यही मेरे जीवन सर्वस्व हैं  
 ॥५८॥ आप तो सभी धर्मों का भसी भानि जान रखा हैं और मित्रता

के व्यवहार वर्तवि को भी अच्छी तरह से जानते हैं । हे नभेश्वर ! इस समय मे मुझ बन्धु विहीन बालक सन्तति वासी अवला की आप सुरक्षा कीजिये ॥५६॥ मैं अपने स्वामी के बिना इस निर्जन वन मे कैसे जीवित रह सकूँगी । मैं आपकी पुत्री हूँ । आप इसस मय मे मुझे मेर पतिदेव का दान देकर मेरी रक्षा करिये ॥६०॥ परम बुद्धि मानो का कथन है कि प्राणो का दान परम श्रेष्ठ होता है इसकी समता अन्य कोई भी दान नहीं रखता है । ऐसा दान अब तक कोई नहीं हुआ है और न होगा, अतः मेरी रक्षा करिये । मुझे प्राण-दान ही कीजिये ॥६१॥ इस तरह से विनती करके वह मुनि पत्नी उस राक्षस के चरणो मे गिर पड़ी थी । उस ब्राह्मणी की इस प्रार्थना के करने पर भी वह राक्षस जैसे व्याघ्र कृष्ण भृग के बच्चे को पलायन करा जाया करता है । उसी भाँति उस ब्राह्मण को खा गया था ॥६२॥ उस समय उसकी पतिप्रता पत्नी ने बहुत भारी विलाप किया था और प्रथम ही शाप से नष्ट राक्षस को क्रुद्ध होकर फिर शाप दे दिया था ॥६३॥

पति मे सुरतासक्त यस्माद्विसितावान्वलात् ।  
 तस्मात्स्त्रीसङ्गम प्राप्तस्त्वमपि प्राप्स्यसे मृनिम् ॥६४॥  
 शापर्वव ब्राह्मणी क्रुद्धा पुनः शापान्तरं ददौ ।  
 राक्षसत्वं ध्रुव तेऽस्तु मत्पतिर्भक्षितो यतः ॥६५॥  
 सोऽपि शापद्वयं श्रुत्वा तया दत्त निशाचारः ।  
 प्रमन्युः प्राह विमृजन्वोपादङ्गारसचयम् ॥६६॥  
 दुष्टे यस्मात्प्रदत्तं मे वृथा शापद्वयं त्वया ।  
 एकरयंवापराधस्य शापस्त्वेवो समोचितः ॥६७॥  
 यस्मात्पिपासितं दुष्टाग्र्यं मयि शापान्तरं ततः ।  
 पिशाचयोनिमर्त्यं याति पुत्रसमन्विता ॥६८॥  
 तेनैव ब्राह्मणा गता पिशाचत्वं तदा गता ।

क्षुधार्ता सुस्वरं भीमा रुरोदापत्यसंयुता ॥६६॥  
 राक्षसश्च पिशाची च क्रोशन्ती निजने वने ।  
 जग्मतुर्नर्मदातीरो वटं राक्षससेवितम् ॥७०॥

अरे दुष्ट ! तूने मेरी रति मे आसक्त प्रिय पति को बलपूर्वक मार डाला है । इसलिये तू भी जब भी स्त्री का सङ्ग करेगा मृत होजायगा ॥६४॥ इस प्रकार से शाप देकर क्रोध मे भरी हुई ब्राह्मणी ने पुनः शाप दिया था कि अरे दुष्ट तूने मेरे पति का भक्षण कर लिया है अतएव तेरा यह राक्षसत्व बहुत समय तक बटल हो जावेगा ॥६५॥ उस समय मे वह राक्षस उस मुनि पत्नी के दिये हुए इन दो शापो को मुनकर क्रोध से धधकने लग गया था और क्रोध के अङ्गारे से उगलते हुए उतासे बोला—अरी दुष्टे । एक अपराध के लिए तुझे एक ही शाप देना उचित था । तूने व्यर्थ ही मुझे दो शाप दिये हैं ऐसा क्यों किया है ? ॥६७॥ अरी दुष्टे । तूने एक ही अपराध पर दूसरा भी शाप दिया है इसलिये मैं भी तुझे शाप देता हूँ कि तू भी अपने पुत्र के सहित राक्षसी होना ॥६८॥ उस राक्षस के द्वारा इस प्रकार से शाप देते ही वह ब्राह्मणी अपने पुत्र के सहित राक्षसी हो गई थी और अपने बालक के सहित भूखे होकर परम भयकर चीखे मारने लगी थी ॥६९॥ इस तरह से उस विषादान वन मे चीखते व चिल्लाते हुये वे राक्षस और पिशाचिनी उमनर्मदा के तट पर एक राक्षस के निवास स्थान मे बट पर जाकर पहुँच गये थे ॥७०॥

औदासान्य गुरी कृत्वा राक्षसी तनुमाश्रितः ।  
 तत्रास्ते दुःखसततः कश्चिच्छ्लोकविरोधवृत् ॥७१॥  
 राक्षस च पिशाची च दृष्ट्वा स्ववटमागता ।  
 उवाच क्रोधवह्नी वटस्थो ब्रह्मराक्षस ॥७२॥  
 किमर्थमागतौ भीमो युवा मत्स्थानमीप्सितम् ।  
 ईदृशी केन पापेन जातौ मे यद्वृत्ता घृयम् ॥७३॥

सौदासस्तद्वच श्रुत्वा तथा यच्चात्मना कृतम् ।  
 सर्वं निवेदयित्वास्मै पश्चादेतदुवाच ह ॥७४॥  
 कस्त्व वद महाभाग त्वया वै किं कृतं पुरा ।  
 सद्युर्ममातिस्नेहेन तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥७५॥  
 करोति वञ्चन मित्रे यो वा को वापि दुष्टधी ।  
 स हि पापफल भुक्ते यातनास्तु युगायुतम् ॥७६॥  
 जन्तूनां सर्वदुःखानि क्षयन्ते मित्रदर्शनात् ।  
 तस्मान्मित्रेषु मतिमान्न दुर्याद्वचनं कदा ॥७७॥

उस स्थल में भी एक लोको के विरोध करने वाला तथा अपने गुरु से उदासीनता दिखाने वाला होने के कारण से ही राक्षस शरीर पाकर दुःख से अत्यन्त सन्तप्त होकर निवास किया करता था ॥७१॥ वह ब्रह्मराक्षस था और उसने जब यह देखा कि एक राक्षस और एक पिशाचिनी भी उसके बड़ के नीचे आ पहुँचे हैं तो वह क्रोध में भरकर कहने लगा ॥७२॥ उसने कहा—अरे महान् भयङ्कर प्राणियो ! तुम मेरे परम प्रिय इस स्थान पर क्यों आये हो ? और यह भी बताओ कि किस पाप के बरने के कारण तुम्हारी यह गति हुई है ? ॥७३॥ इस यातना श्रवण कर राजा मुदाम के पुत्र मित्रसह ने और उस ब्राह्मणी ने स्वयं ही अपने आप जो कर्म किया था वह सब वह कर सुना दिया था । इसके पश्चात् उस सौदास ने पूछा था—उसने कहा—हे महाभाग ! आपभी अपना पूर्ण परिचय दो कि आप कौन हैं ? और पहिले कौनसा कुत्सित कर्म किया था जिसके कारण आप इस दशा में प्राप्त हुए हैं ? भुजे तो आप अपना ही एक मित्र ही समझ लीजिए तथा बड़े ही स्नेह के साथ अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दीजिये ॥७५॥ जो अपने मित्र के साथ घोषा दिया करता है वह बहुत ही दुष्ट बुद्धि वाला होता है और वह चाहे कोई भी क्यों न हो उस द्विजार गुण तब पाप व फल भी यातना ही भागा करता है ॥७६॥ मित्र के दशाहान



पर प्राची के समस्त दुःख धरे जाया करते हैं । इतिहासे परम पुं  
मान मनुष्य का वर्तक्य है कि वह अपने मित्रों से सभी भी प  
ठितार न करे ॥३३

पन्थागवादेनेहयुक्तो यदृष्ट्यो प्रक्षराक्षमः ।  
उद्यान प्रीतिमापन्नो धर्मवाक्यानि नारद ॥३४  
अहमार्गं पुरा विप्रो मागधो वेदपारगः ।  
सोमदत्त इति ख्यातो नाम्ना धर्मपरायणः ॥३५  
प्रयत्नोऽहं महाभाग विद्यया यदमा धनैः ।  
धौशमीन्य मुने शृत्वा प्राप्तवान्नीदृशो मतिम् ॥३६  
न कभीह्य मुञ्चं विनिज्जिवाहमर्गं नीतुं शितः ।  
मया तु भक्षिता विप्रो नवनोऽहं महत्तमः ॥३७  
क्षुण्णितमात्रो निर्यमन्मन्त्रादेन पीडितः ।  
जगत्प्राग्वहो निर्य मातामनपरायणः ॥३८  
पुण्यं नाम नृप्यानां राक्षस्यप्रदायिनी ।  
मयानुभूतमिदं क्षणः शोमान्न चापरेण ॥३९

आपको वर्णन करके बतलाता हूँ । हे सखे ! अब आप अपने मन  
 को एकाग्र करके उसका श्रवण करिये ॥८५॥ वेदों का अध्यापन कराने  
 वाला—वेदार्थ की श्रुतियों को बताने वाला—शास्त्रों की विशद व्याख्या  
 करने वाला—धर्म का उपदेश देने वाला, नीति शास्त्र को बताने  
 वाला, मन्त्रोपदेश करने वाला तथा मन्त्रों के अर्थ समझाने वाला, वेदों  
 में समुत्पन्न सन्देशों को दूर करने वाला, शत्रु का उपदेश प्रदान  
 करने वाला, भय से बचाने वाला, अग्निदान देने वाला, श्वमुर, मामा,  
 घडा भाई, पिता, उपनयन मस्कार कराने वाला, वह जिसने गर्भा-  
 धानादि समस्त सस्वार कराये हों, ये सब गुरु ही माने जाते हैं । इन  
 सभी का सादर पूजन एवं वन्दना करनी चाहिये ॥८६॥८७॥८८॥८९॥  
 यत्माय पाद ने इस पर उस ब्रह्म राक्षस से कहा—आपने तो बहुत से  
 प्रकार के गुरुओं का वर्णन कर दिया है । इन सब में परम श्रेष्ठ गुरु  
 कौन होता है । अथवा ये सभी समान ही कृपा करते हैं । हे मित्र !  
 यह अब आप ठीक-ठीक बतलाइय ॥९०॥

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्ट तद्वदामि ते ।  
 गुरमाहात्म्यवचन श्रवण चानुमोदनम् ॥९१॥  
 सर्वेषां श्रय आधरो सम्मादृक्ष्यामि साप्रतम् ।  
 एते समानपूजाहर्ता सर्वदा नात्र मशय ॥९२॥  
 तथापि शृणु वक्ष्यामि शान्त्र्याणां सारनिश्चयम् ।  
 अध्यापकाश्च वेदानां मन्त्रव्याख्यातस्तथा ॥९३॥  
 पिता च धर्मवक्ता च विज्ञेयगुरुव स्मृता ।  
 एतेषामपि भूपाल शृणुष्व प्रवर गुरुम् ॥९४॥  
 सर्वज्ञान्त्रायतत्वज्ञेयापनं प्रवदामि ते ।  
 य पुराणानि वदति धर्मयुक्तानि पण्डित ॥९५॥  
 मसारपात्रविच्छेदकरणानि स उत्तम ।  
 देयपूजाहं कर्माणि देवतापूजने फलम् ॥९६॥

ज्ञायते च पुराणेभ्यस्तस्मात्तानीह देवता ।  
 सर्ववेदार्यसाराणि पुराणानीति भूपते ॥६७॥  
 वदन्ति मुनयश्चैव तद्वक्ता परमो गुरु ।  
 यः ससाराणं वं तत्तुमुद्योग कुस्ते नर ॥६८॥  
 शृणुयात्स पुराणानि इति शास्त्रविभागकृत् ।  
 प्रोक्तवान्सर्वधर्माश्च पुराणेषु महीपते ॥६९॥

उस ब्रह्म राक्षस ने कहा—हे महा प्राज्ञ ! बहुत अच्छा प्रश्न है । यह तुम्हारा पूछना बहुत ही अच्छा एवं उचित है । मैं वह भी अभी आपको बतलाता हूँ । क्योंकि गुरु के विषय में उनकी महिमा का वर्णन, श्रवण अथवा गुरु के माहात्म्य का अनुमोदन करना सबको कल्याण करने वाला हुआ करता है । इसीलिए मैं अभी इसका वर्णन करता हूँ । यद्यपि वैसे उपर्युक्त गुरुजन जिनके नाम मैंने अभी आपको बतलाये हैं वे सभी समान ही पूजन के पात्र हुआ करते हैं ॥६९॥६२॥ तथापि जो शास्त्रों का निश्चिन्त सिद्धान्त है वही मैं आपको बतलाये देता हूँ । जो वेदों की शिक्षा दिया करते हैं—जो मन्त्रोपदेश एवं मन्त्रों की व्याख्या किया करते हैं—जो धर्म धारण कराने वाले पिता हैं और जो धर्म के ज्ञाता हैं । ये विशेष पूजा के पात्र गुरु कहे जाये करते हैं । हे भूपाल ! इनमें भी जो परम श्रेष्ठतम गुरु हैं उनको भी अब आप सुनिये ॥६३॥६४॥ सर्व धर्म के जानने वालों का जो मन्त्रार्थ है उसी का मैं वर्णन कर रहा हूँ । जो इस ससार के आवा-गमन के पाश का छेदन कर धर्मपूर्ण पुराणों का वर्णन किया करता है वही सर्वोत्तम गुरु है । देवों की पूजा का कर्म और देवों की अर्चना का फल पुराणों के द्वारा ही ज्ञात हुआ करता है । अतएव हे राजन् ! पुराण सब वेदों के तत्त्वार्थ के सार स्वरूप हुआ करते हैं इस कारण से वे देवता ही होते हैं ॥६५॥६६॥६७॥ मुनिगण यही कहते हैं कि उन पुराणों का वर्णन करने वाला परम श्रेष्ठ गुरु होता है । जो प्राणी

इस ससार रूपी महान सागर को पार करने का उपाय  
उसको पुराणों का श्रवण अवश्य ही करना चाहिये । हे राजन् । कृष्ण  
द्वैपायन व्यासदेव ने सब शास्त्रों का विभाजन कर पुराणों में सभी  
(समस्त) धर्मों का विशद एवं सरल वर्णन किया है ॥६८॥६९॥

तर्कस्तु वादहेतु स्यान्नीतिस्तथैहिकसाधनम् ।  
पुराणानि महानुद्धे इहामुन सुखाय हि ॥१००॥  
य शृणोति पुराणानि सतत भक्तिसयुक्त ।  
तस्य स्यान्निमला बुद्धिर्भूयो धर्मपरायण १०१  
पुराणश्रवणाद्भक्तिर्जायते श्रीपती शुभा ।  
विष्णुभक्तनृणां भूप धर्मं बुद्धिं प्रवर्त्तते ॥१०२॥  
धर्मात्पापानि नश्यन्ति ज्ञान शुद्ध च जायते ।  
धर्मार्थकाममोक्षाणां ये फलान्यभिलिप्सव १०३  
शृणुयुस्ते पुराणानि प्राहुरित्थं पुराविद ।  
अहं तु गौतममुने सर्वज्ञाद् ब्रह्मवादिन ॥१०४॥  
श्रुतवान्सर्वधर्मार्थं गङ्गातीरे मनोरमे ।  
कदाचित्परमेशस्य पूजां कर्त्तुमहं गत ॥१०५॥

हे महान् बुद्धिशाली सौदास । तर्क करना तो एक विवाद का  
कारण होजाया करता है और नीति के अनुसरण करते ही इस लोक  
के सब कार्य सिद्ध हुआ करते हैं । ये पुराण इस लोक और परलोक  
दोनों ही जगहों पर सुख प्रदान किया करते हैं ॥१००॥ इन पुराणों का  
श्रवण करने से श्रीपति भगवान् की परम शुभ भक्ति समुत्पन्न हुआ  
करती है और हे राजन् । जो मनुष्य भगवान् विष्णु के भक्त होते हैं  
उनकी बुद्धि सदा धर्म कर्मों में लगा करती है । जो भक्त भाव के  
सहित सदा श्रवण किया करता है उसकी बुद्धि निर्मल हो जाया करती  
है और वह फिर अधिकाधिक धर्मों का समाचरण किया करता है  
॥१०१॥१०२॥ धर्म का आचरण करने से समस्त पाप नष्ट हो जाया

करते हैं और मन में निर्मलता आया करती है । प्राचीन ज्ञानवान् लोग कहा करते हैं कि 'जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों को यथावत् प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हो और इनका श्रेष्ठतम फल प्राप्त करना चाहते हो उनको सब कुछ त्याग कर पुराणों का ही श्रवण करना चाहिये । मैंने तो परम रमणीय श्री गङ्गा नदी के तीर पर सर्व ज्ञाता महान् ब्रह्मवादी श्री गौतम मुनि के मुख से सम्पूर्ण धर्मों के तात्पर्य का श्रवण किया था । एक समय की घटना है कि मैं भगवान् शंकरजी का अर्चन करने में सलग्न था ॥१०३॥१०४॥१०५॥

उपस्थितायापि तस्मै प्रणाम न ह्यकारिषम् ।  
 स तु शान्तो महानुद्धिर्गौतमस्तेजसा निधिः ॥१०६॥  
 मन्त्रोदितानि कर्माणि करोतीति सुद ययौ ।  
 यस्त्वर्चितो मया देवः शिवः सर्वजगद्गुरुः ॥१०७॥  
 गुर्ववज्ञा कृता येन राक्षसत्वे नियुक्तवान् ।  
 ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि योज्वला कुरुते गुरोः ॥१०८॥  
 तस्मैवाक्षु प्रणमन्ति धीविद्यार्थात्मजक्रियाः ।  
 क्षुधूपा कुरुते यस्तु गुरुणा सादर नरः १०९॥  
 तस्य सपद्भवेद्भूष इति प्राहुर्विपश्चित्तः ।  
 तेन शापेन दग्धोऽहमन्तश्चैव क्षुधाग्निना ॥११०॥  
 मोक्ष कदा प्रयास्यामि न जाने नृपसत्तम ।  
 एव वदति विप्रेन्द्र वटस्थेऽस्मिन्निशाचरे ॥१११॥  
 धर्मशास्त्रप्रसंगेन तयोः पाप क्षय गतम् ।  
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः कश्चिद्विप्रोऽतिधार्मिकः ॥११२॥

इसी बीच मे मेरे गुरुवर नदी पर समागत हो गये थे । मैं पूजन में लगा रहने के कारण से उनके चरणों में उपस्थित होकर उन्हें प्रणाम न कर सका था परन्तु गौतम मुनि महान् मेधावी महा पुरुष थे और उत्तम तेज ने निधि थे इसीलिये वे शान्त रहे थे ॥१०६॥ वे दह

हमारा शिष्य मन्त्रशास्त्र में कहे हुये कर्मों का विधान कर रहा है-यह समझ कर वे बहुत प्रसन्न हुये थे परन्तु उन भगवान् शंकर ने ही जिनके यजनार्चन में लगा हुआ था, गुरु की आज्ञा करने से अपराध के कारण ही मुझे राक्षस बना दिया था । जो भी कोई ज्ञानपूर्वक या अज्ञान से गुरुदेव का अपमान किया करता है उसकी, विद्या, बुद्धि, सम्पत्ति, सन्तति और सत्कर्मानुष्ठान से सभी अत्यन्त शीघ्र ही नष्ट हो जाया करते हैं । जो अपने गुरुदेव की समादर के सहित सेवा, सत्कार किया करते हैं ॥१०७॥१०८॥१०९॥११०॥ हे राजन् । उसको अतुल सम्पदा प्रदान हुआ करनी है । ऐसा विद्वज्जन कहा करते हैं । मैं उन ही भगवान् के शाप से परम दुःखित होकर शूलस रहा हूँ । अन्दर भूख की अग्नि मुझे जला रही है ॥१११॥ मैं नहीं मानता कि इस महान कष्ट से मेरा छुटकारा कब तक होगा । हे विप्रेन्द्र । वह उस बट वृक्ष पर निवास करने वाला ब्रह्म राक्षस इस प्रकार से कह ही रहा था कि धर्म चर्चा के कग्ने से उसका सम्पूर्ण पाप क्षीण हो गया था । उसी समय में एक परम धार्मिक ब्राह्मण वहाँ पर आ पहुँचा था ॥११२॥

कलिङ्गदेशसमूतो नाम्ना गर्ग इति स्मृत ।  
 बह्मङ्गाजल स्कन्धे स्तुवन् विश्वेश्वर प्रभुम् ॥११३॥  
 गायन्नामानि तस्यैव मुदा हृष्टतनून् ह ।  
 तमागत मुनि दृष्ट्वा पिशाचो राक्षसी च ती ॥११४॥  
 प्राप्ता न पारगेत्युक्त्वा प्राद्रवन् नूर्ध्ववाहव ।  
 तेन कीर्तितनामानि श्रुत्वा दूरे व्यवस्थिता ।  
 अशक्तास्त घर्षयितुमिदमूचुश्च राक्षस ॥११५॥  
 अहो विप्र महाभाग नमस्तुभ्य महात्मने ।  
 नामकीर्तनमाहात्म्याद्राक्षसा दूरगा वयम् ॥११६॥  
 अस्माभिर्भक्षिता पूर्वं विप्रा कोटि सहस्रश ।  
 नामप्रावरण विप्र रक्षति त्वा महाभयात् ॥११७॥

नामश्रवणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम् ।

परा शान्तिं समापन्ता महिम्ना ह्यच्युतस्य वै ॥११८८॥

सर्वथा त्व महाभाग रागादिरहितो ह्यसि ।

गङ्गाजलाभिषेकेण पाह्यस्मात्पानृकोञ्चयात् ॥११८९॥

वह ब्राह्मण कलिंग देश में समुत्पन्न हुआ था और उसका नाम गंग था । वह अपने कंधे पर गङ्गाजल लिये हुये विश्वेश्वर प्रभु का स्तवन कर रहा था ॥११८८॥ भगवान् के परम शुभ नामों का कीर्तन कर रहा था । प्रसन्नता के कारण से उसका शरीर पुलकायमान हो रहा था । उस श्रेष्ठ मुनि को समागत हुये देखकर ये राक्षस और पिशाचिनी मनमें विचार करने लगे कि हमारा भोजन प्राप्त हो गया है । ये दोनों अपनी भुजायें उठाकर उसे पकड़ने के लिये दौड़े थे । किन्तु उसके मुख से उच्चरित भगवान् के शुभ नाम कीर्तन को सुन कर कुछ रुक गये थे । उस समय में उस विप्र को धर दबोचने में असमर्थ होकर ये राक्षस इस तरह से बहने लगे थे ॥११८९॥ उन्होंने विनम्रता के साथ उससे कहा—हे महाभाग ( ब्राह्मण ) हम महान् आत्मा वाले आपको सादर प्रणाम करते हैं । ओहो ! भगवान् विष्णु के नाम कीर्तन का कैंसा अद्भुत प्रभाव है कि इस नाम के माहात्म्य के कारण से हम सरीखे राक्षस आपके समीप में फटक भी नहीं सकते हैं । ऐसे महाप्रभु श्री विष्णु भगवान् की सेवा में भी हमारा प्रणाम समर्पित है ॥११९०॥ इससे पूर्व हमने सहस्रों ब्राह्मणों का भक्षण कर डाला था परन्तु यह नामोच्चारणरूपी दुर्ग आपकी रक्षा महान् भय से कर रहा है ॥११९१॥ हम लोग महान् दुष्ट राक्षस हैं तो भी भगवान् के परम पावन एवं शुभ नामों के कीर्तन का श्रवण करने पर इस समय हमको परम शान्ति प्राप्त हो रही है । ओहो ! भगवान् अच्युत की बड़ी भारी महिमा होती है ॥११९२॥ हे महाभाग ! आप तो रागादि दोषों से रहित हैं । ये लोग मुझे खाने को प्रस्तुत हागये

ये गत इत्या उद्धार मे क्यो नह् । इस भावना का परित्याग करके आपने पारा जो यह परम पावनी पतितोद्धारणी गङ्गा का जल है इसमें अभिषिञ्चन करके हमको राक्षस योनि के बड़े भारी पाप से उद्धार कीजिये ॥११६॥

हरिसेवापरो भूत्वा यश्चात्मानं तु तारयेत् ।  
 स तारयेज्जगत्सर्वमिति शसन्ति सूरय ॥१२०॥  
 अपहाय हरेर्नाम घोररसारभेषजम् ।  
 केनोपायेन लभ्येत मुक्तिं सर्वत्र दुर्लभा ॥१२१॥  
 लोहोदुपेन प्रतरन्निमज्जत्युदके यथा ।  
 तथैवाकृतपुण्यास्तु तारयन्ति कथं परान् ॥१२२॥  
 अहो चरितं महता सर्वलोकसुखावहम् ।  
 यथा हि सर्वलाकानामानन्दाय कलानिधि ॥१२३॥  
 पृथिव्या यानि तीर्थानि पवित्राणि द्विजोत्तम ।  
 तानि सर्वाणि गङ्गायाः कणस्यापि समानि न ॥१२४॥  
 तुलसीदलसमिश्रमपि सर्पपमानकम् ।  
 गङ्गाजलं पुनात्येव कुलानामेकविंशतिम् ॥१२५॥  
 तस्माद्विप्र महाभाग सर्वशास्त्रार्थकोविद ।  
 गङ्गाजलप्रदानेन पाह्यस्मान्पापकर्मिण ॥१२६॥

विद्वान् पुरुष कहा करते हैं कि जो निरन्तर भगवान् श्री हरि की सेवा में सलग्न रह कर अपने आपका उद्धार किया करता है वह सम्पूर्ण जगत् का भी उद्धार कर सकता है ॥१२०॥ भगवान् श्री हरि का नाम इस मत्सररूपी महा व्याधि की महोषध है । मुक्ति बहुत ही दुर्लभ वस्तु है । आप यह बताइये कि इस श्री हरि के नामोच्चारण के अतिरिक्त किसी अन्य साधना के द्वारा भी वह प्राप्त हो सकती है ॥१२१॥ जौह की नीका से पानी में तैरने वाला भी डूब जाया करता है । इसी प्रकार में जिसने कभी कोई पुण्य कर्म नहीं किया है वह



दूसरो की कैसे तार सकता है ॥१२२॥ जिस तरह से चन्द्रमा सबको आनन्द प्रदान किया करता है वैसे ही बड़े आदमियो का चरित्र भी सब लोगो को सुख प्रदान किया करता है ॥१२३॥ हे द्विजोत्तम । इस भूमण्डल में जितने भी परम पावत्र तीर्थ हैं वे सभी गङ्गा के किनके की बराबर नहीं हैं ॥१२३॥ तुलसी दलो से युक्त सरसो के शाने के समान भी गङ्गाजल मनुष्य की इक्कीस पीढियो का उद्धार कर दिया करता है ॥१२४॥ अतएव हे समस्त शास्त्रो के महान पण्डित महाभाग ब्राह्मण देव । इस समय में गङ्गाजी का जल प्रदान करके हम सब पापियो की आप रक्षा कीजिये ॥१२५॥

इत्याख्यात राक्षस्तैस्तौर्गङ्गामाहात्म्य मुत्तमम् ।  
 निशम्य विस्मयाविष्टो बभूव द्विजसत्तम ॥१२७॥  
 एषामपीदृशी भक्तिर्गङ्गाया लोकमातरि ।  
 किमु ज्ञातप्रभावाणा नहता पुण्यशालिनाम् ॥१२८॥  
 अथासी मनसा धर्मं विनिश्चित्य द्विजोत्तम ।  
 सर्वाभूतहितो भक्त प्राप्नोतीति पर पदम् ॥१२९॥  
 ततो विप्र कृपाविष्टो गङ्गाजलमनुत्तमम् ।  
 तुलसीदलसमिधं तैषु रक्ष स्वसेचयत् ॥१३०॥  
 राक्षसास्तेन सिक्ताक्तु सर्पपौत्रमविदुना ।  
 विसृज्य राक्षसं भावमभवन्देवतोपमा ॥१३१॥  
 ब्राह्मणी पुत्रसयुक्ता सोमदत्तस्तथैव च ।  
 कोटिसूर्यप्रतीकाशा बभूवुर्विबुधर्षभा ॥१३२॥  
 शखचक्रगदाचिह्ना हरिसारूप्य मागता ।  
 स्तुवन्तो ब्राह्मण सम्यग्ने जग्मुर्हरिमन्दिरम् ॥१३३॥

उन राक्षसों ने जिस समय में गङ्गाजल का इस प्रकार से माहात्म्य का वर्णन किया तो उसका श्रवण करके वह परम श्रेष्ठ ब्राह्मण अत्यधिक प्रसन्न हुआ था ॥१२७॥ उसे प्रसन्नता इसी बात से हुई

थी कि लोक जननी गङ्गा में जब इन महा पतित राक्षसों को ऐसी प्रगाढ भक्ति है जो जन गङ्गाजी की महिमा का भली भाँति ज्ञान रखते हैं उन महान पुण्यात्मा लोगों की श्रद्धा-भक्ति के विषय में क्या कहा जावे ? ॥१२८॥ इसके अनन्तर उस परम श्रेष्ठ शिरोमणि द्विज ने अपने मन में विचार किया कि जो प्राणी जगत् में समस्त प्राणियों का हित-सम्पादित किया करता है वह परम दयालु और परोपकारी भक्त अवश्य ही परम पद की प्राप्ति किया करता है । अतएव इन विचारे दुर्गति दशापन्न जीवों का भी उद्धार करना महान धर्म का कार्य है— इस बात का अपन हृदय में विचार करके उसके अन्त कारण में दया की भावना जाग उठी थी ॥१२९॥ मन में कृष्ण के आ जाने से उस ब्राह्मण ने तुलसी दल से मिश्रित परम पावन गङ्गाजल के छीटे उन राक्षसों पर दिये थे ॥१३०॥ उस ब्राह्मण के द्वारा सरसों के बराबर ही गङ्गाजल की छीटें देते ही वे राक्षस राक्षसी स्वभाव का त्याग करके दबों के तुल्य अति शोघ्रता से होगये थे ॥१३१॥ अपने पुन के सहित वह ब्राह्मणी और सोमदत्त बरोडो सूर्य के समान दमकत हुए परम श्रेष्ठ बन गये थे ॥१३२॥ उस समय में उनका स्वरूप शख, चक्र, गदा धारी भगवान् विष्णु के समान ही होगया था और फिर वे सब उस ब्राह्मण देवता का सस्तवन करते हुए विष्णु लोक को चले गये थे ॥१३३॥

राजा कल्पपादस्तु निजरूप समास्थित ।

जगाम महती चिन्ता दृष्ट्वा तान्मुक्तिगानधान् ॥१३४॥

तस्मिन् राज्ञि सुदु खार्ते गूढम्पा सरस्वर्ता ।

धर्ममूलमहावाक्य वभाषेऽग्राधया गिरा ॥१३५॥

भो भो राजन्महाभाग न दुःख गन्तुमर्हसि ।

राजन्नापि भागान्ते महच्छ्रेयो भविष्यति ॥१३६॥

सत्तर्मेधृतपापा ये हरिभक्ति परायणा ।

प्रयान्ति नात्र सन्देहस्तद्विष्णो परम पदम् ॥१३७

सर्वभूतदयायुक्ता धर्ममार्गप्रवर्तिनः ।

प्रयान्ति परम स्थान गुरुपूजापरायणा ॥१३८

इतीरित समाकर्ण्य भारत्या नृपसत्तमः ।

मनसा निर्वृतिं प्राप्यसन्मार च गुरोर्गच ॥१३९

स्तुवन्गुरु च तं विप्र हरि चैवातिहृषितः ।

पूर्णवृत्तं च विप्राय सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥१४०

किन्तु राजा कल्माषपाद अपने राक्षसी रूप में ही वहाँ पर खड़ा रहा था और उसने उन अन्य पापियों की मुक्ति को आँखों से देखा तो उसको बड़ी चिन्ता हुई थी ॥१३४॥ इस प्रकार से जब अत्यधिक खिन्न हो गया था तो उस समय में सरस्वती देवी ने गुप्त रूप से परम गम्भीर वाणी में कहा था ॥१३५॥ हे महाभाग्यवान् ! हे राजन् ! तुम अपने हृदय में दुःखित मत होओ, जब कर्मों के भोग की समाप्ति हो जायगी तब तुम्हारा भी महान् कल्याण अवश्य ही होगा ॥१३६॥ सत्कर्मों से जिनके पाप पङ्क्त का प्रशासन हो जाया करता है ऐसे श्री हरि के भक्त मनुष्य भगवान् विष्णु के परम पद की प्राप्ति अवश्य ही किया करते हैं इसमें तनिक भी सन्देह का अवसर नहीं है ॥१३७॥ जो समस्त प्राणियों से दयाभाव का व्यवहार किया करते हैं, धर्म के मार्ग पर चलते हैं और अन्यो को चलाया करते हैं, अहर्निश श्री हरि की भक्ति में निमग्न रहा करते हैं, सर्वदा अपने से बड़ों की सेवा किया करते हैं वे निश्चय ही परम पद की प्राप्ति किया करते हैं ॥१३८॥ इस नमोवाणी का श्रवण करके उस राजा के मनमें सुख हुआ और उसे फिर श्री गुरुदेव वसिष्ठ जी के वचनों का स्मरण हो आया ॥१३९॥ तब वह अत्यधिक प्रमन्नता मग्न होकर अपने गुरु देव की, उस ब्राह्मण की और भगवान् श्री हरि की स्तुति करने में प्रवृत्त हो गया था । उसने फिर अपना पूर्व घटित अपना गमस्त वृत्तांत उन देवता को गुना दिया था ॥१४०

ततो नृपस्तु कालिग प्रणम्य विधिवन्भुने ।  
 नामानि व्याहरन्विष्णो सद्यो वाराणसीं ययौ ॥१४१॥  
 पश्मास तत्र गङ्गाया स्नात्वा दृष्ट्वा मदाशिवम् ।  
 ब्राह्मणीदत्तं पातु मुक्तो मित्रसहोऽभवत् ॥१४२॥  
 ततस्तु स्वपुरीं प्राप्तो वशिष्ठेन महात्मना ।  
 अभिषिक्तो मुनिश्रेष्ठ स्वकं राज्यमपालयत् ॥१४३॥  
 पालयित्वा महीं कृत्स्नां भुक्त्वा भोगान्स्त्रियं विना ।  
 वसिष्ठात्प्राप्य सन्तानं गतो मोक्षं नृपोत्तम ॥१४४॥  
 नैतच्चित्रं द्विज्येष्ठं विष्णोर्वाराणसीगुणान् ।  
 शृण्वन्धृषण्वन्स्मरन्गङ्गां पीत्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥१४५॥  
 तस्मान्महिम्नो विप्रेन्द्र गङ्गाया शक्यते नहि ।  
 पारं गन्तुं सुराधीशं ब्रह्मविष्णुशिवं रपि ॥१४६॥  
 यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभिः ।  
 विमुक्तो ब्रह्मसदनं नरो याति न संशयः ॥१४७॥  
 गङ्गां गङ्गेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा ।  
 तदैव पापं निर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयके ॥१४८॥

हे मुनिवर ! उसवे पश्चात् उस राजा ने उन कविज्ज्ञ देशवासियों ब्राह्मण को प्रणाम किया था । फिर सविधि भगवान् विष्णु के शुभ नामों का वीक्षण करता हुआ वह शीघ्र ही भगवान् विश्वनाथ की पुरी वाराणसी को रवाना हो गया था ॥१४१॥ काशीपुरी में उस कल्माषपाद ने छै मास तक निवास कर गङ्गा में स्नान किया था और मदाशिव प्रभु के नित्य दर्शन लिये थे । उस समय में राजा मित्र महा का उस ब्राह्मणी के दिये हुए गाय स मुक्ति हुई थी ॥ १४२ ॥ राक्षसी शरीर से छुटकारा पाकर वह मित्रसह राजा अपनी नगरी में पहुँच गया था । वहाँ पर महामुनि वशिष्ठजी ने उसका अभिषेक किया था । हे श्रेष्ठ ! इस प्रकार से अपनी पाप यानि से छूटकर अपने

राज्य का यथावत् परिपालन करने में प्रवृत्त हो गया था ॥१४३॥  
 उसने राज्य की प्रजा का पालन करते हुए सम्पूर्ण भूमि को भोगा  
 फिर महर्षि वसिष्ठजी की कृपा एवं आशीर्वाद से सन्तान की प्राप्ति  
 करके वह श्रेष्ठ राजा अवसान में मोक्ष पद को प्राप्त होगया था ॥१४४॥  
 हे द्विज श्रेष्ठ ! इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है । भगवान्  
 विष्णुदेव और निश्चनाचपुरी चाराणसी भी ऐसी ही अद्भुत महिमा  
 है । इनमें इसी प्रकार के गुण विद्यमान हैं । जो मनुष्य गङ्गाजी की  
 कथा का प्रवचन किया करता है, श्रवण करता है, अथवा गङ्गाजल का  
 पान किया करता है वह निश्चय ही मुक्त हो जाया करता है ॥१४५॥  
 अतएव हे विम्वेन्द्र ! देवों के स्वामी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी गङ्गाजी  
 की महिमा का पार नहीं पा सकते हैं अन्य लोगों की तो बात ही क्या  
 है ॥१४६॥ भगवती, पतित मावनी गङ्गाजी के नामोच्चारण करने ही  
 से मनुष्य करोड़ों महा पातकों में छुटकारा पाकर अन्त में ब्रह्मलोक की  
 प्राप्ति किया करता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१४७॥ जो  
 'गङ्गा-गङ्गा' यह भगवती का नाम एक बार भी अपने मुख से उच्चा-  
 रण किया करता है उसी समय में मनुष्य अपने कृतकर्मों से अर्थात्  
 पापों से छूट जाया करता है और उसी समय से ब्रह्म लोक में उसकी  
 प्रशंसा होना आरम्भ हो जाया करता है ॥१४८॥

## ॥दैत्यों का अग्नि प्रकट कर भस्म होना॥

विष्णुपादायमभूता या गङ्गेत्यग्निधीयते ।  
 तदुत्पत्तिं वद भ्रातरनुग्राह्योऽग्निं ते यदि ॥१॥  
 शृणु नारद वदयामि गङ्गेत्पत्तिं तवानघ ।  
 वदता शृण्वता चैव पुण्यदा पापनाशिनीम् ॥२॥  
 आसीदिन्द्रादिदेवाना जनकः कश्यपो मुनिः ।

दक्षात्मजे तस्य भार्ये दितिश्चादितिरेव च ॥३॥  
 अदितिर्देवमातारित्वा देत्याना जननी दिति ।  
 ते तयोरात्मजा विप्र परस्परजयैषिण ॥४॥  
 सदा सपूर्वंदेवास्तु यतो दैत्या प्रकीर्तिता ।  
 आदिदैत्यो दिते पुत्रो हिरण्यकशिपुर्वली ॥५॥  
 प्रह्लादस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुमहान्दैत्यसत्तम ।  
 विरोचनस्तस्य सुतो वभूव द्विजभक्तिमान् ॥६॥  
 तस्य पुनोऽस्तितेजस्वी बलिः रासीत्प्रतापवान् ।  
 स एव वाहिनीपालो दैत्यानामभवन्मुने ॥७॥

श्री देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भाई । गङ्गा देवी की उत्पत्ति भगवान् विष्णु के चरण कमल के अग्रभाग में बतायी जाया करती है । इस भगवती गङ्गा उत्पत्ति का वर्णन कृपया आप यदि करना चाहें तो करे ॥१॥ नारदजी के ऐसा कहने पर श्री सनक मुनि ने कहा—हे निष्पाप नारद ! मैं अब आपकी इच्छा के अनुसार गङ्गा देवी की उत्पत्ति की कथा का वर्णन करता हूँ । यह कथा तो ऐसी महिम्नयी है कि यह वक्ता और श्रोता दोनों के पाप का नाश कर उनको महान् पुण्य फल प्रदान किया करती है ॥२॥ कश्यप मुनि इन्द्रादि देवा के पिता थे । दक्ष प्रजापति की २ पुत्रियाँ थी जिनके नाम दिति तथा अदिति थे ये दोनों कश्यप ऋषि की पत्नियाँ थी ॥ ३ ॥ इन दोनों में अदिति देवा की माता थी और दिति दैत्या की माता थी । हे विप्रवर ! इन दोनों के पुत्र परस्पर में एक दल दूसरे दल पर मयदा विजय प्राप्त करने की अभिलाषा रखता करते थे और यन्त्र बराबर युद्ध बन्द हुआ ही करता था ॥४॥ दिन का पुत्र आदि दैत्य हिरण्यकशिपु बड़ा भारी बलशाली हुआ था ॥५॥ हिरण्यकशिपु का पुत्र का नाम प्रह्लाद था जो बहुत श्रेष्ठ दैत्य हुआ था । प्रह्लाद के पुत्र का नाम विरोचन हुआ था । इस विरोचन की आह्वना में परम

भक्ति रहा वरती थी ॥६॥ इस विरोचन का पुत्र बलि दैत्यराज हुआ था । यह बलि अत्यधिक तेजस्वी और महान् प्रतापी राजा था । हे मुनिवर ! यह बलि ही दैत्यो की सेना में सेनापति बना था ॥७

वलेन महता युक्तो बुभुजे मेदिनीमिमाम् ।

विजित्य वसुधा सर्वां स्वर्गं जेतुं मनो दधे ॥८

गजाश्च यस्यायुतकोटिलक्षास्तावन्त एवाश्वरथा मुनीन्द्र ।

गजे गजे पञ्चशती पदाते किं कर्ष्यते तस्य क्षपूवस्तिष्ठ ॥९

अमात्यकोटयग्रसरावमात्यो कुम्भाण्डनामाप्यथ कूपवर्ण ।

पित्रा सम शौर्यं पराक्रमभ्या द्वाणो वले पुत्रशताग्रजोऽभूत् ॥१०

बलि सुराञ्जेतुमना प्रवृत्त संन्येन युक्तो महता प्रतस्थे ।

ध्वजातपत्रैर्गंगनानुराशेस्तरङ्गविद्युत्स्मरण प्रकुर्वन् ॥११

अवाप्य धृत्रारिपुर सुरारी रुरोध दैत्यैर्मृगराजगाढ ।

सुराश्च युद्धाय पुरात्तथैव विनिर्ययुर्वज्रकपादयश्च ॥१२

ततः प्रववृते युद्धं घोरं गीर्वाणदैत्ययो ।

कल्पातमेघनिर्घोषं डिङ्मिध्वनिसन्ध्रमम् ॥१३

मुमुक्षुः शरजालानि दत्वा सुभनसा वले ।

देवाश्च दैत्यसेनासु मग्नमेज्यन्तदारणे ॥१४

इस दैत्यराज बलि के पास बहुत ही विशाल सेना थी । उस बलि ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर अपने ही अधीन कर लिया था और उसको भोगता था । इसके पश्चात् इस राजा बलि ने स्वर्गलोक को भी जीतने का विचार किया था । इसके पास दश पद्म तो हाथी थे और हे मुनीन्द्र ! इतने ही इस बलि के पास अश्वों के रथ थे । प्रत्येक हाथी के साथ पाँच सौ २ पदाति (पैदल) सैनिक थे । इसकी दत्तनी बड़ी हुई महान् विशाल सेना थी कि इसका वर्णन कहा तक किया जा सकता है ॥८॥६॥ इस राजा बलि के मन्त्रियों की सख्या कराडा में थी । इन सब मन्त्रियों में कुम्भाण्ड और कूपवर्ण नाम के दो महा

मन्त्री ये । राजा बलि के सौ पुत्र हुए थे । वाणापुर इन सबमें  
 था और यह भी वीरता एवं बल पराक्रम में अपने ही पिता के स  
 था ॥१०॥ राजा बलि ने देवगणों को जीतने का विचार अपन  
 स्थिर करके अपनी बड़ी भारी सेना को साथ लेकर यह वहाँ से  
 दिया था । इस अपनी सेना के ध्वज और छत्रों को देखकर तप्त  
 समुद्र की लहरक्षपी विजलियों का स्मरण हो गया था ॥११॥ देवों  
 महान् शत्रु दैत्य राज बलि ने वृनासुर के परम शत्रु देवराज इन्द्र  
 स्वर्गपुरी पर आक्रमण कर दिया था । मृगराज से अति गहरी मित्र  
 भी रखने वाले दैत्यों के द्वारा इन्द्र की स्वर्गपुरी को घेर लिया था  
 उस दैत्यों के आक्रमण को देखकर देवगण भी हाथ में बज्र अ  
 ह्मियार ग्रहण कर दैत्यों के साथ युद्ध करने के लिये सुसज्जित हो  
 निकल आये थे ॥१२॥ उस समय में देवों और दैत्यों में महान् भो  
 युद्ध होना प्रारम्भ हो गया था । उस युद्ध में प्रलय काल में होने व  
 महान् मेघों के समान गडगडाहट हो रही थी तथा नगाओं की फोड़  
 ऐसी घोर ध्वनि हो रही थी कि उससे समस्त प्राणियों को श्रव  
 आने लग गये थे ॥१३॥ दैत्यों ने देवों की सेना पर वाणों की व  
 वर्षा करना आरम्भ कर दिया था । उस महान् दारुद्र युद्ध में दे  
 गण भी दैत्यों पर वाणा की वर्षा करने लग गये थे ॥१४॥  
 जहि दारय मिघीति छिधि मारय ताडय ।  
 इत्येव मुमहान्धोपो वदता सेनयोरभूत् ॥१५॥  
 शरदुन्दुमिनिध्वनिं सिंहनाद सुरद्विषाम् ।  
 भाङ्गारं स्यन्दनाना च वाणकोङ्कारनिःस्वनं ॥१६॥  
 अश्वाना ह्येपितैश्चैव गजाना वृ हितैस्तथा ।  
 टङ्कारैर्धनुषा चैव लोकः शब्दमयोऽभवत् ॥१७॥  
 सुरासुरविनिर्मुक्तवाणनिष्पेपजानते ।  
 अकालप्रलय मेने निरीक्ष्य सकल जगत् ॥१८॥



व भी देवद्विपा सेना स्फुरच्छस्त्रौघधारिणि ।  
 चलद्विद्युन्निभा रात्रिशछादिता जलदैरिव ॥१६॥  
 तस्मिन्युद्धे महाघोरैर्गिरीन् क्षिप्तान् सुरारिभि ।  
 नाराचैश्चूर्णयामासुर्देवास्ते लघुविक्त्रमा ॥२०॥  
 केचित्सताडयामासुर्नागाव्रथानृथै ।  
 अश्वैरश्वैश्च केचित्तु गदादण्डैरयार्द्धयन् ॥२१॥

उस महान् भीषण युद्ध में सैनिकों के द्वारा मार दो, चीर डालो, फाड़ दो छेड़न कर डालो इस तरह के उत्साह वर्धक शब्दों की ध्वनियाँ बहते, करते हुये एक दूसरे पर बराबर हमला कर रहे थे और महान् द्वन्द्व होने लग गया था ॥१५॥ उन देव और दैत्यों की भीषणता ऐसी बढ़ गई कि देवों की गूँजों से—असुरों की दहाड़ों से, राधों की झनझनाहट से, बाणों के छूटनेसे कर्ण कठोर ध्वनियों से अश्वों की हिनहिनाहट से, हाथियों की बिघाड़ों से, धनुषों की टकारों से सम्पूर्ण ससार एक दम गूँज उठा था ॥१६॥१७॥ उस युद्ध के समय में देवों और दैत्यों के बाण जब परस्पर में टकराव कर रहे थे तो उस टक्कर से जो अग्नि उत्पन्न हुई थी उसको देखकर सम्पूर्ण जगत के प्राणी उसे अकाल प्रलय हुआ ही समझने लग गये थे ॥१८॥ दैत्यों की सेना लपलपाते हुये शस्त्रों को धारण किये हुये थी और वह मेघावृत चमकने वाली बिजली से युक्त रात सी दिखाई दे रही थी ॥ १९ ॥ देवताओं के गण भी बड़ी फुर्ती से वीरता का प्रदर्शन कर रहे थे । उस युद्ध में दैत्य जिन पापानों को फँक कर देवों पर प्रहार करते थे देवता उनकी अपने परम भयकर बाणों से चूर्ण कर दिया करते थे ॥२०॥ उस समय उस भद्दान भयङ्कर युद्ध में कोई हाथियों के द्वारा हाथियों को टक्कर दे रहे थे । कोई अश्व सवार अश्वों पर घावा बोल रहे थे और कुछ हाथों में गदा दण्डों को ग्रहण करके ही सहार करने में व्यस्त हो रहे थे ॥२१॥

परिधैस्ताडिता केचित्पेतु शोणितकटुर्दमे ।  
 समुत्कलास्तासव केचिद्विमानानि समाश्रिता ॥२२॥  
 ये दैत्या निहता देवप्रसह्य सङ्गरे तदा ।  
 ते देवभावमापन्ना दैत्याःसमुपाद्रवन् ॥२३॥  
 अथ दैत्यगणा क्रुद्धास्तरड्यमाना सुरैर्भृशम् ।  
 शस्त्रैर्बहुविधैर्द्वाग्निजघ्नुरतिदारुणा ॥२४॥  
 हृषदिभिर्हिमालैश्च खड्गैः परजुतोमरैः ।  
 परिधैश्छुरिकाभिश्च चुन्तेश्चकैश्च शकुभिः ॥२५॥  
 मुमलैरकुशैश्चैव लाङ्गलैः पट्टिस्तथा ।  
 पाक्तघोपलैः जतप्नीभिः पाशैश्च तलमुष्टिभिः ॥२६॥  
 शूलैर्नालीकनाराचैः क्षेपणोपैस्त्रमुद्गरैः ।  
 रथाश्च नागपदगैः सङ्कुलो वधूधैः रण ॥२७॥  
 देवाश्च विविधास्त्राणि दंतेयेभ्यः समाक्षिपन् ।  
 एव वपेःसहस्राणि युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥२८॥

उस समय मे कोई सैनिक परिधों के प्रहारों से प्रपीडित होकर बीच मे पड़ गये थे और कुछ प्राणी वा परित्याग कर विमानों पर चढ़े जा रहे थे ॥२२॥ उस युद्ध मे देवों ने जिन दैत्यों को मार गिराया था वे फिर देव रूप धारण करके उल्टे दैत्यों पर झपट रहे थे ॥२३॥ उस युद्ध मे देवों ने दैत्यों की खूब दित खोलकर पिटाई की थी और दैत्यों ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी थी । वे भी अनेक प्रकार के शस्त्रों के द्वारा देवों को मार रहे थे ॥ २४ ॥ उस समय मे युद्ध मे भिन्दिपाल, खड्ग, कुठार, तोमर परिध छुरिका, चुन्त (चाले) चक्र, शकु, मूमल, अकुश, नकड़ी, पटे, गोपन, तोष, फासे, हथेली, मुक्के, शूल, बन्दूक, न राच, क्षेपणीय, मुद्गर, रथ, अश्व हाथी और पैदलों से वह रणभूमि खचाखच भरी हुई थी और महान् दारुण संग्राम हो रहा था ॥२४॥२५॥२६॥२७॥ इस तरह मे यह देव दानवों

का युद्ध एक हजार वर्ष तक बराबर होता रहा था । इसमें देवों ने भी विभिन्न प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग दैत्यों की सेना पर किया था ॥२४॥

अथ दैत्यवले वृद्धे परामृता दिवोकस ।  
 सुरलोक परित्यज्य सर्वे भीता प्रदुद्रुतु ॥२६॥  
 नररूपपरिच्छन्ना विचेतरवनीतले ।  
 चैरोन्ननिस्त्रिभुवन नारायण परायण ॥३०॥  
 बुभुजेऽप्याहतोऽश्वयं प्रवृद्धश्रोमंमहानल ।  
 इयाज चाश्वमेधै स विष्णुप्रीणनतत्परः ॥३१॥  
 इन्द्रत्व चाकरोत्स्वगे दिवपालत्व तथैव च ।  
 देवानां प्रीणनार्थाय ये क्रियन्ते द्विजैर्मखा ॥३२॥  
 तेषु यज्ञेषु सर्गेषु हविर्भुङ्क्ते स दैत्यराट् ।  
 अदिति स्वात्मजान्वीक्ष्य देवमातातिदुःखिता ॥३३॥  
 वृथात्र निवसामीति मत्वागाद्धिमवदभरिम् ।  
 शक्रस्यैश्वर्यमिच्छन्ती दैत्यानां च पराजयम् ॥३४॥  
 हरिध्यानपरा भूत्वा तपस्तेपेर्जतिं दुष्करम् ।  
 निश्चितकाल समासोना तिष्ठन्ती च ततः परम् ॥३५॥

दैत्यों का बल बराबर बढ़ता ही चला जा रहा था उस युद्ध में अततीगता देवगण दैत्यों से हार गये थे और भयभीत होकर सब देवता देवलाग की छाउमर इधर उधर भाग गये थे ॥२६॥ फिर देवता लाग दैत्यों से इतने डर गये थे कि वे मनुष्यों के स्वरूप में पृथ्वी पर विचरण करने लग गये थे । फिर विराचन का पुत्र दैत्यराज बलि भगवान् नारायण की भक्ति करता हुआ त्रिभुवन के राज्य सुख का उपभोग करने लग गया था ॥३०॥ इस दैत्यराज का ऐश्वर्य इतना बढ़ा-चढ़ा था कि कोई भी श्मश्रु कुछ काया नहीं डाल सकता था । उसकी राज्य सश्री दिा दूनी बढ़ रही थी । उस समय में उस महान

बलवान् दैत्यो के राजा बलि न भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने लिये अश्वमेध यज्ञ का यजन किया था ॥३१॥ इस बलि का व पराक्रम इतना बढ़ गया था कि यह स्वर्गलोक में जाकर इन्द्रदेव का कार्य स्वयं ही लिया करता था । यज्ञ मण्डप में ब्राह्मण लोग जो दे को तृप्ति देने के लिये जो भी हवि दिया करते थे उसे सभी यज्ञों वह दैत्यराज ही उस हवि को ग्रहण किया करता था क्योंकि देवग तो डरकर सब भाग ही गये थे । इस समय मैं अपने पुन देवा की ऐ दुवशा देखकर माता भद्रिनि को बड़ा भारी दुःख हुआ था ॥२२॥ उस भद्रिनि ने वहाँ पर रहना व्यर्थ समझकर फिर हिमाचल प प्रस्थान कर दिया था । वहाँ पर जाकर भी पुन देवों के ऐश्वर्य क इच्छा मन में रखती थी और देशों की पराजय होने की भावना उस हृदय में थी ॥३४॥ यह भद्रिनि वहाँ पर्वत पर श्री हरि के ध्यान मग्न होकर परम दुःख तप करने लग गयी थी । कुछ समय त तो उसने बैठकर ही तपश्चर्या की थी फिर वह खड़ी होकर तपस् करने लगी थी ॥३५॥

पादेनैकेन सुचिरं ततः पादाग्रमानत ।  
 कचित्कालं फलाहारात्ततः शीर्णदलाशना ॥३६॥  
 ततो जनाशना वायुभोजनाहारवर्जिता ।  
 सच्चिदानन्दसन्दोहं ध्यायन्मात्मानमात्मना ॥३७॥  
 दिव्याब्दानां सहस्रं सा तपोऽतप्यत नारद ।  
 दुरन्तं तत्तपं श्रुत्वा दंतेया मायिनोऽभद्रिनिम् ॥३८॥  
 देवतारूपमास्थाय सप्रोचुर्बलिनो दिवा ।  
 किमर्थं तप्यते नातः शरीरपरिशोषणम् ॥३९॥  
 यदि जानन्ति दंतेया महद्दुःखं ततो भवेत् ।  
 त्यजेद्दुःखबहुलं वायुशोषणकारणम् ॥४०॥  
 प्रयाससाध्यं मुकृतं न प्रशसन्ति पण्डिताः ।

शरीरयत्नतो रक्ष्यं धर्मसाधनतत्परैः ॥४१॥

ये शरीरमुपेक्षते ते स्युरात्मविधातिनः ।

सुख त्व तिष्ठ सुभगे पुत्रानस्मान्न खेदय ॥४२॥

बहुत समय तक एव ही पैर से खड़ी रहने और फिर केवल अपने चरण के अंगूठे के बल पर ही खड़ी होकर उसने तपस्या की थी । कुछ समय तक तो उसने फलों का ही आहार किया था ॥३६॥ इसके उपरान्त जल का आहार और अन्त में केवल वायु को खाकर ही घोर तप अदिति ने किया था । हे नारद ! उम देव माता अदिति ने इस रीति से परम सन्निवृत्तानन्द सन्दोह श्री भगवान का चित्त में ध्यान-स्मरण करते हुये एक हजार दिव्य वर्षों तक तपस्या की थी । उस देव माता अदिति की इस परम दुष्कर तपश्चर्या करने का वृत्तान्त सुनकर दैत्यो ने राजा बलि की प्रेरणा प्राप्त कर अपनी माया से देव रूप धारण किया था और उस तप में सलग्न अदिति के समीप में पहुँच कर उससे कहने लगे थे । इस समय में आप हे माता जी ! अपने शरीर को शोषण करने वाला ऐसा उग्र तप किस निधे कर रही हो ॥३७-३८॥ आपकी इस तपस्या का ज्ञान यदि दैत्यो को लग जायगा तो फिर आपको बहुत अधिक कष्ट उठाना होगा । अतएव हम लोग यही प्रार्थना करते हैं कि इस अवस्था में आप शरीर को सुखा देने वाले तप को छोड़ दो क्योंकि इससे आपको इस समय में बहुत ज्यादा कष्ट उठाना पड़ रहा है ॥४०॥ अत्यधिक थक उठाने पर जो भी कुछ पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है उस फल के प्राप्त करने की महान् पण्डित लोग प्रशंसा नहीं किया करते हैं । इसलिये जो कोई धर्म की साधना में सलग्न रहना चाहता है उसे अपने शरीर के संरक्षण का भली भाँति ध्यान रखना परम आवश्यक होता है ॥४१॥ जो अपने शरीर की पुण्य साधन के कार्यों में उपेक्षा किया करते हैं वे तो पुण्यात्मा न होकर आत्मघाती ही कहे जाया करते हैं । अतएव हे

भीमायवति । आप मुख से ही अपना जीवन प्रितार्थें । ऐसा दुष्पर तप करके हम पुत्रों के चित्त में धिन्नता उत्पन्न न करे ॥

मात्रा हीना जना मातृमृतप्राया न सजय ।

गावो वा पशवो वापि यत्र गावो महीरुहा ॥४३

न लभन्ते सुखं किञ्चिन्मात्रा हीना मृतोपम ।

दरिद्रो वापि रोगी वा देशान्तरगतोऽपि वा ॥४४

मातुर्दंशनमानेण लभते परमा मुदम् ।

अन्ने वा सलिले वापि घनादौ वा प्रियासु च ॥४५

कदाचिद्विमुखो या त जना मातरि कोऽपि न ।

यस्य माता गृहे नास्ति यत्र धर्मपरायणा ।

साध्वी च स्त्री पतिप्राणा गन्तव्य तेन वै वनम् ॥४६

धर्मश्च नारायणभक्तिहीनो धनं च सद्भोगविवर्जितं हि

गृहं च भ्रातृजनयोर्विहीनं यथा तथा मातृविहीनमप्यम् ॥

तस्माददेवि परिग्राहि दुःपातनात्मजान्तव ।

इत्युक्ताप्यदितिर्देव्येनैव चाल समाधितः ॥४७

एवमुक्त्वागुरोः सर्वे हरिर्ध्यानपरायणाश्च ।

निरीक्ष्य क्रोधसंयुक्ता हन्तुञ्चक्रुर्मनोरथम् ॥४८

विर देवकपटारी उन देव्यो ने अदिति ने कहा—हे माता : जो पुत्र अपनी माता से हीन हो जाया करते हैं वे तो मृत के ही स होने हैं । अपने ही पाम में गौ, पशु, वृक्ष सभी कुछ ही परन्तु यदि मैं नहीं है तो ये सब उस मातृ-मुख की विनी भी प्रकार में प्राप्ता करा सकते हैं । जो अपनी मा से रहित हो जाया करते हैं वे तो मरे हुये से ही रहा करते हैं । चाहे कोई अति दरिद्र हो, राग युक्त परदेन में रहता हो परन्तु माता कभी भी विमुख नहीं होनी प्रिये घर में बाना न हो और पतिप्राणा, धर्म परायणा, परम स पानी भी नहीं उगेता वह उच्च घर का त्याग कर वन में ही

जाना चाहिये क्योंकि ऐसे शून्य घर में कुछ भी आनन्द नहीं रहा करता है ॥४३-४६॥ भगवान् नारायण की भक्ति से शून्य, धर्म, सदभोग से रहित धन का वैभव, भार्या और पुत्रों से रिक्त घर जिस तरह से आनन्द से सूना होता है वैसे ही माता से रहित मनुष्य का जीवन भी निरानन्दामय हुआ करता है ॥४७॥ अतः हे देवि ! आप अपने परम खिन्न एवं दुःखित पुत्रों की रक्षा करो । इस प्रकार से दैत्यों के द्वारा माया कथन के करने पर भी अदिति ने अपनी समाधि का त्याग नहीं किया था ॥४८॥ असुरों के इस तरह से बहुत कुछ कहने पर भी जब अदिति उस से मस तक नहीं हुई और उसको सर्वदा भगवान् विष्णु के ध्यान में ही सलग्न पाया तो वे असुर क्रोध में भरकर उसे मार डालने का विचार करने लगे थे ॥४९॥

कल्पान्तमेघनिर्धोपा क्रोधसंरक्तलोचनाः ।

दष्ट्राग्रं रसृजन्वह्निं सोऽदहत्काननं क्षणात् ॥५०॥

णतयोजनविस्तीर्णं नानाजीवसमाकुलम् ।

तेनेव दग्धा दंतेया ये प्रधर्ययितुं गता ॥५१॥

सौवावशिष्टा जननी मुराणामब्दाच्छतादच्युतसक्तचित्ता ।

सरक्षिता विष्णुसुदर्शनेन दैत्यान्तकेन स्वजनानुकम्पिता ॥५२॥

उन दैत्यों ने माता अदिति को भयभीत करने के उद्देश्य से प्रलय काल के मेघों के समान अपनी भार्या रचित मेघों की गड़गड़ाहट की थी और अरपन्त उग्र क्रोध से अपने नेत्रों को लाल कर लिया था । अपनी दाढ़ी से अग्नि उत्पन्न कर चारों ओर फैला दी थी जो कि एक ही क्षण में सम्पूर्ण वन को शस्मसात् करने में लग गयी थी । चारसौ कोस पर्यन्त फैला हुआ वह वन जिसमें अनेक जीव जन्तु निवास किया करते थे घाय २ कर एक दम जलने लग गया था । उस अग्नि ने अपना प्रभाव प्रकट करने के लिये जो भी दैत्य वहाँ पर समागत हुए थे उनको भी जला दिया था ॥५०॥५१॥ चारों ओर उन दैत्यों

रूप से आप वर्णन करने की कृपा कीजिये क्योंकि जो भी मुनीश्वर होते हैं वे दूसरों को उपदेश प्रदान करके अपनी सज्जनता को प्रकट किया करते हैं ॥२॥ श्री सनत्जी ने कहा—हे नारद । जो श्री हरि के चरणों में ध्यान लगा कर मग्न रहा करते हैं उन साधु पुरुषों को कौन बाधा पहुँचा सकता है ॥३॥ जिस स्थान पर श्री हरि की भक्ति में परायण प्राणी निवास किया करता है उसकी रक्षा करने के लिये सदा ब्रह्मा, विष्णु महेश, देवता सिद्धगण और परम श्रेष्ठ मुनीश्वर सभी खड़े रहा करते हैं ॥४॥ हे महाभाग ! जो अपने चित्त में परम शान्त रहा करते हैं । उनके चित्त में शान्ति प्रिय भगवान् स्वयं ही प्रकट होजाया करते हैं । जो सदा हरिनाम के उच्चारण में तत्पर रहते हैं और श्री हरि के ध्यान में अपने मन को लगाये हुये हैं उनकी क्या प्रशंसा की जावे ॥५॥ जिस स्थल में भगवान् शङ्कर अथवा भगवान् विष्णु की पूजा में मग्न मनुष्य निवास किया करता है वहाँ पर महामक्ष्मी और अन्य सभी देवता पूर्ण कृपा किया करते हैं ॥६॥ जिस स्थान पर श्री विष्णु की अर्चना करने में मग्न प्राणी रहता है वहाँ न अग्नि कोई दुःख दे सकता है और न वहाँ पर चोर तथा व्याधियों का ही कुछ प्रभाव हो सकता है ॥७॥

प्रेता पिशाचा कुम्भाण्डग्रहा बालग्रहास्तथा ।  
 डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधन्तेऽव्युतार्चकम् ॥८॥  
 परपीडारता ये तु भूतवेतालकादयः ।  
 नश्यन्ति यत्र सद्भक्तो हरिलक्ष्म्यर्चने रतः ॥९॥  
 जितेन्द्रिय सर्वहितो धर्मकर्मपरायणः ।  
 यत्र तष्ठति तत्रैव सर्वतीर्थानि देवता ॥१०॥  
 निमिष निमिषाद्धं वा यत्र तिष्ठन्ति योगिनः ।  
 तत्रैव सर्वश्रेयासि तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ॥११॥  
 यन्नामोच्चारणादेव सर्वं नश्यन्त्युपद्रवः ।



स्पृशन्करेण पुण्येन प्राह कश्यपवल्लभाम् ॥१५॥

देवमात प्रसन्नोऽस्मि तपसाराधितस्त्वया ।

चिरथ्रान्तासि भद्र ते भविष्यति न सशय ॥१६॥

वर वरय दास्यामि यत्तो मनसि रोचते ।

मा भैर्भद्रे महाभागे ध्रुव श्रेयो भविष्यति ॥१७॥

इत्युक्ता देवमाता सा देवदेवेन चक्रिणा ।

तुष्टाव प्रणिपत्यैन सर्वलोकसुखावहम् ॥१८॥

नमस्ते देवदेवेश सर्वव्यापिञ्जनादेन ।

सत्त्वादिगुणभेदेन लोकव्यापारकारण ॥१९॥

नमस्ते बहुरूपायारूपाय च महात्मने ।

सर्वैकरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥२०॥

नमस्ते लोकनाथाय परमज्ञानरूपिणे ।

राक्षभक्तजनदात्सत्यशालिने मङ्गलात्मने ॥२१॥

म द मुस्कराहट के कारण कुछ प्रकट होते हुए दन्ती के प्रकाश के कारण से सभी दिशाओ में परमोज्ज्वल प्रकाश फैलाने वाले भगवान ने अपने कमलोपम परम कोमल वरों से देवमाता अदिति के शरीर का स्पर्श करते हुए कहा था—हे देवमाता । आपने अत्यधिक समय तक तपश्चर्या करके भक्तिभाव से मेरा समाराधन किया है और आपने बहुत ही अधिक थम उठाया है । मैं अब आप पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हारा पूर्ण रूप से कल्याण ही होगा—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥१६॥ अब आप व मन म जो भी अच्छा लगता हो वही वरदान मुझ से प्राप्त कर लो । हे भद्रे ! अब आप विल्कुल भी डरिय नहीं । अब आपका पूर्ण रूप से कल्याण होगा ॥१७॥ जिस समय मैं चन्द्रवारी भगवान विष्णुदेव ने देवमाता अदिति म इस तरह में कहा तो वही समस्त लोकों का सुख प्रदान करने वाले भगवान का प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लग गये थे ॥१८॥ अदिति ने कहा—हे देवा के भी दवेश्वर । हे सर्वत्र व्यापक रहने वाले । हे जनादाता । आप ही मेरा मेरा

प्रणाम समर्पित है । सत्त्वादि गुणों के प्रभेद से इस समस्त ससार के व्यापार के कारण स्वरूप आपको मेरा प्रणाम है ॥१६॥ आप तो सर्व-व्यापक हैं अतएव आपके अनेक स्वरूप हैं । अपने २ रूप में प्रतिष्ठित अवस्था में रूप रहित ब्रह्मा, उदार चित्त वाले सभी रूपों के एक रूप ( विराट् रूप धारण करने वाले ) निर्गुण और सगुण परमात्मा के लिये मेरा प्रणाम है ॥२०॥ सम्पूर्ण ससार के स्वामी, परम ज्ञान स्वरूप, सज्जन अपने भक्तों पर कृपा करने वाले मङ्गलमय भगवान् की सेवा में सादर प्रणाम है ॥२१॥

यस्यावताररूपाणि ह्यर्चयन्ति मुनीश्वरा ।  
तमादिपुरुषं देवं नामामि ह्यर्थसिद्धये ॥२२॥  
श्रुतयो य न जानन्ति न जानन्ति सूरयः ।  
त नमामि जगद्धेतुं समाय चाप्यमायिनम् ॥२३॥  
यस्यावलोकनं चित्रं मायोपद्रवकारणम् ।  
जगद्रूपं जगद्धेतुं तं वन्दे सर्ववन्दितम् ॥२४॥  
यत्पादाम्बुजकिञ्जल्कसेवारक्षितमस्तका ।  
अधापुः परमा सिद्धिं वन्दे कमलाधरम् ॥२५॥  
यस्य ब्रह्मादयो देवा महिमानं न वै विदुः ।  
अत्यासन्नं च भक्तानां तं वन्दे भक्तसंगिनम् ॥२६॥  
यो देवस्त्यक्तसङ्गानां शान्तानां करुणार्णवः ।  
करोति ह्यात्मनः सङ्गं तं देवं सङ्गवर्जितम् ॥२७॥  
यज्ञेश्वरं यज्ञकर्म यज्ञकर्मसुनिष्ठितम् ।  
नमामि यज्ञफलदं यज्ञकर्मप्रबोधकम् ॥२८॥

महा मुनीश्वर जिन भगवान् के स्वरूपों का अर्चन किया करते हैं उन परम पुराण आदि पुरुष देव को मैं अपनी मनोवाञ्छित कामना की सिद्धि के लिए प्रणाम करती हूँ ॥२२॥ जिन भगवान् के यान्त्रिक स्वरूप का पूर्ण रूप में वर्णन श्रुतिशास्त्र नहीं कर सक्ती हैं और वटे २

विद्वान् भी भगवान् के स्वरूप को यथार्थ रूप से नहीं बखान सकते हैं उन इस सम्पूर्ण विश्व के कारण स्वरूप, माया से विशिष्ट और माया से रहित परमेश्वर को मैं सादर प्रणाम करती हूँ ॥२३॥ जिन भगवान् का केवल दर्शन ही मोक्ष रूपी अद्भुत फल को प्रदान करने वाला है और जो इस माया स्वरूप उपद्रव का हेतुभूत है अर्थात् यह माया जिनसे प्रकट हुआ करती है उन्हीं जगन्मय विश्व के कारण, सर्व बन्धित भगवान् विष्णुदेव के चरणों में मेरा प्रणाम है ॥२४॥ जिनके चरण कमल के केसर से अपने मस्तक को सुरक्षित करके प्राणी परम सुसिद्धि को प्राप्त किया करते हैं उन्हीं कमलाकान्त भगवान् की मैं वन्दना करती हूँ ॥२५॥ ब्रह्मादि बड़े २ देव भी जिन भगवान् की महिमा का पार नहीं पा सकते हैं और जो अपने भक्तों के लिये प्रकट हुआ करते हैं । उन्हीं भक्तों के सङ्ग करने वाले माधव की मैं वन्दना करती हूँ ॥२६॥ जो हम ससार को त्याग कर परम शांत भक्तजनों के लिए ब्रह्मणा के मार्ग के समान हैं और उनके साथ रहा करते हैं उन सर्व मङ्गल से रहित देवदेव की सेवा में मेरा सादर प्रणाम है ॥२७॥ यज्ञ कर्मों के साक्षी, यज्ञकर्म, यज्ञकर्मों में निष्ठित, यज्ञों का फल प्रदान करने वाले और यज्ञकर्मों के फल का बोध करने वाले वेदस्वरूप भगवान् विष्णु को मेरा प्रणाम अर्पित है ॥२८॥

अजामिनोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु ।  
 प्राप्तवात्परम धाम त वन्दे लोकासाक्षिणम् ॥२९॥  
 हरिरूपी महादेव शिवरूपी जनार्दन ।  
 इति लोकरम्य नेता यस्त नमामि जगद्गुरुम् ॥३०॥  
 ब्रह्माद्या अपि देवेश यन्मायापाशयन्त्रिता ।  
 न जानन्ति पर भाव त वन्दे सर्वनायकम् ॥३१॥  
 हृत्पदमस्योऽप्ययोग्याना दूरस्य ह्य भासते ।  
 प्रमाणातीतसदभावस्त वन्दे ज्ञानसाक्षिणम् ॥३२॥

यन्मुखाद् ब्राह्मणो जातो बाहुभ्या क्षत्रियोऽजनि ।  
 ऊर्वोर्वेश्यः समुत्पन्न पद्भ्या शुद्रोऽभ्यजायत ॥३३  
 मनसश्चन्द्रमा जातो जात. सूर्यश्च चक्षुष. ।  
 मुखादग्निस्तथेन्द्रश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥३४  
 ऋग्यजु सामरूपाय सप्तम्बरगतात्मने ।  
 पङ्कगरूपिणे तुभ्य भूयोभूयो नमो नम ॥३५

महापापी अजामिल भी जिनके एक ही बार अन्त समय में  
 "नारायण"—इस शुभ नाम के उच्चारण करने मात्र से ही परम पद  
 को प्राप्त हो गया था उन्हीं इस सम्पूर्ण सूक्त के दृष्टा भगवान् विष्णु  
 की मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ ॥२६॥ महादेव विष्णु के रूप वाले  
 हैं और जनार्दन भगवान् शिव स्वरूप हैं । इस रीति से सब लोको को  
 उपदेश प्रदान करने वाले जगत् के गुरुदेव भगवान् विष्णु की सेवा में  
 मैं अपना प्रणाम करती हूँ ॥३०॥ ब्रह्मादिव देवगण भी जिनकी महा-  
 माया के पाश में बद्ध होकर उस परम तत्व को वास्तविक रूप में नहीं  
 जान पाते हैं उन्हीं जगत् के नायक भगवान् विष्णु की सेवा में मेरा  
 प्रणाम समर्पित है ॥३१॥ सर्वान्तरयामी और सब के हृदय कमल में  
 विराजमान रहने वाले भगवान् विष्णु जो योग्य नहीं है उन लोगों को  
 दूर ही लगा करते हैं, किसी भी प्रत्यक्षानुपानादि प्रमाणों से जिनके  
 असली भाव का निरूपण नहीं किया जा सकता है उन्हीं ज्ञान के साक्षी  
 भगवान् विष्णुदेव को मैं प्रणाम करती हूँ ॥३२॥ जिन प्रभु के मुखार-  
 विन्द से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है, भुजाओं से क्षत्रिय प्रकट हुए हैं,  
 जाघों से वैश्यों का उद्भव हुआ है और चरणों से शूद्रों का जन्म हुआ  
 है । उन्हीं चारों वर्णों को समुत्पन्न करने वाले भगवान् का मैं प्रणाम  
 करती हूँ ॥३३॥ जिन भगवान् के मन से चन्द्रदेव प्रकट हुए हैं, जिनके  
 नेत्रों से सूर्यदेव, मुख से इन्द्र और अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ है तथा  
 प्राण से वायु ने अण्णा रूप प्रकट किया है उन भगवान् को मैं प्रणाम

करती हैं ॥३४॥ ऋक्, यजु और सामवेद स्वरूप सातो स्वरो मे, व्याप्त आत्मा वाले पदञ्ज रूपी आप के तिये में बारम्बार प्रणाम करती हैं ॥३५॥

त्वमिन्द्र पवन सोमस्त्वमीशानस्त्वमन्तक ।  
 त्वमग्निनिऋतिश्चैव वरुणस्त्व दिवाकर ॥३६॥  
 देवाश्च स्थावराश्चैव पिशाचाश्चैव राक्षसा ।  
 गिरय सिद्धगधर्वा नद्यो भूमिश्च सागरा ॥३७॥  
 त्वमेव जगतामीशो यत्रासि त्व परात्पर ।  
 त्वद्रूपमखिल देव तस्मान्नित्य नमोऽस्तु ते ॥३८॥  
 अनाथनाथ सर्वज्ञ भूतदेवेन्द्रविग्रह ।  
 दैतेयैर्वाधितान्पुनान्मम पाहि जनार्दन ॥३९॥  
 इति स्तुत्वा देवमाता देव नत्वा पुन पुन ।  
 उवाच प्राञ्जलिभूत्वा हर्षाश्रुक्षालितस्तनो ॥४०॥  
 अनुग्राह्यास्मि देवेश त्वया सर्वादिकारण ।  
 अकण्टका श्रिय देहि मत्सुताना दियोकसाम् ॥४१॥  
 अन्तर्ध्यामिञ्जगद्रूप सर्वज्ञ परमेश्वर ।  
 अज्ञात किं तव श्वाश किं मामीहयसि प्रभो ॥४२॥

आप ही इन्द्र, पवन, सोम, ईशान, अन्तक, आग्न, निऋति, वरुण और दिवाकर के रूप मे काम किया करते हैं ॥३६॥ विश्व मे देव, स्थावर, पिशाच, राक्षस, सिद्ध, पर्वत, गन्धर्व, नदी, भूमि और समुद्र सब मे आप ही का प्रकाश दिखाई दिया करता है ॥३७॥ हे भगवन् । आप ही इस समस्त जगत् के स्वामी हैं और आप जहाँ पर भी हैं परम श्रेष्ठ हैं । हे देवेश्वर । यह सम्पूर्ण जगत् आप का ही रूप है अनन्व आपकी सेवा मे भरा सर्वदा प्रणाम अर्पित है ॥३८॥ हे अनाथा के स्वामी । हे सर्वज्ञ । ॥ समस्त प्राणियो और देवेन्द्र मे व्याप्त । हे जनार्दन । भरे सब पुत्र इस समय मे इन दुष्ट दैत्यों से पीडा

प्राप्त कर रहे हैं आप उनकी रक्षा कीजिए ॥३६॥ इस प्रकार से स्तवन करके देवमाता अदिति ने भगवान की सेवा में अनेक बार प्रणाम किया था । हर्षातिरेक होने के कारण वहने वाले अधुओं से उसके स्तन भीग गये थे । उस समय में वह अपने दोनों हाथों को जोड़ कर भगवान से प्रार्थना करने लग गई थी ॥४०॥ अदिति ने कहा—हे सब के आदि कारण देवेश्वर ! यदि आप मुझ पर अपनी अनुकम्पा करने की इच्छा करते हैं तो मैं यही आपकी सेवा में दिनप्रतिदिन करती हूँ कि मेरे पुत्रों को ( देवगणों को ) निष्कण्टक सद्यो प्रदान कीजिएगा ॥४१॥ हे जगद्रूप अन्नर्षामिन् ! हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! आप से तो कुछ भी छिपा हुआ नहीं है तथापि हे सद्योपति देव ! आप मुझ से अपनी मनोव्यथा को कहने के लिए क्यों प्रेरित कर रहे हैं ॥४२

तथापि तव वक्ष्यामि यन्मे मनसि रोचते ।  
 धृयापुत्रास्मि देवेश दैतेयं परिपीडिता ॥४३॥  
 तान्न हिंसितुमिच्छामि यतस्तेऽपि सुता मम ।  
 तानहत्वा श्रियं देहि मत्सुतेभ्यः सुरेश्वर ॥४४॥  
 इत्युक्तो देवदेवेशः पुनः प्रीतिमुपागतः ।  
 उवाच हर्षयन्विप्र देवमातरमादरात् ॥४५॥  
 प्रीतोऽस्मि देवि भद्रं ते भविष्यामि सुतो ह्यहम् ।  
 यतः सपत्निपुत्रेषु वात्सल्यं देवि दुर्लभम् ॥४६॥  
 त्वया तु यत्कृतं स्तोत्रं तत्पठन्ति नरास्तु ये ।  
 तेषां सपत्न्या पुत्रा न ह्रीयन्ते कदाचन ॥४७॥  
 त्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते ।  
 न तस्य पुत्रशोकः स्यादेव घर्मं सनातनः ॥४८॥  
 नाहं वोढुं क्षमा देव त्वामद्य पुरुषं परम् ।  
 असंख्याताण्डरोमाणं सर्वेशं सर्वकारणम् ॥४९॥

फिर भी मेरे मन को जो भी अच्छा मानूँ होता है उसी को

मैं आपकी सेवा में निवेदित करती हूँ । हे देवेश्वर ! मेरी सपत्नी दिति के पुत्र दैत्यो से मैं इस समय में अत्यधिक सताई हुई हूँ और मेरे सभी पुत्र विचारे मारे २ व्यर्थ ही इधर उधर डोस रहे हैं ॥४३॥ हे भगवान् ! मैं उन दैत्यो को मारना तो नहीं चाहती हूँ क्यों कि आखिरकार वे भी मेरे ही पुत्र हैं । हे भगवान् ! आप सहार किये ही बिना मेरे पुत्रों से अपहृत की हुई सम्पत्ति उनको दिना दीजिए ॥४४॥ हे विप्र ! इस रीति से अदिति के द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान् और भी अधिक उस पर प्रसन्न हो गये थे और फिर आदर के साथ देवमाता को प्रसन्न करते हुए बोले ॥४५॥ श्री भगवान् ने कहा—हे देवि ! आपका कल्याण हो । मैं नृम पर अधिक प्रसन्न हूँ । हे देवि ! अपनी सपत्नी के पुत्रों पर वत्सलता का भ्रम दिखाना बहुत ही कठिन है । अतः मैं आपका पुत्र बनकर ही समुत्पन्न होऊँगा ॥४६॥ आप के कहे हुए इस स्तोत्र का जो मनुष्य पाठ करेंगे उनके पुत्र और धन का कभी विनाश नहीं होगा ॥४७॥ अपने और दूसरे के पुत्र में जो कोई समता का बरताव रखता है उसको कभी भी अपने पुत्र का शोक नहीं हुआ करता है यही सनातन धर्म है ॥४८॥ अदिति ने कहा—हे देव ! आप तो परम पुरुष हैं । अखण्ड एव असंख्य ब्रह्माण्ड आपके रोमों में भरे हुए हैं । आप सब के स्वामी हैं और सब के आप कारण हैं । अतएव मैं आपको धारण करने में असमर्थ हूँ ॥४९॥

यत्प्रभाव न जानन्ति श्रुतयः सर्वदेवता ।  
तमहं देवदेवेश धारयामि कथं प्रभो ॥५०॥  
अणोरणीयासमजं पगत्परतरं प्रभुम् ।  
धारयामि कथं देव त्वामहं पुरुषोत्तमम् ॥५१॥  
महापातयुक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमाश्रितः ।  
मुच्यते स कथं देवो ग्राम्येषु जरिमहंति ॥५२॥  
यथा शूकरमत्स्याद्या अवतारास्तव प्रभो ।

तथायमपि को वेद तव विश्वेश चेष्टितम् ॥५३॥  
 त्वत्पादपद्मप्रणता त्वन्नामस्मृतितत्परा ।  
 त्वामेव चितये देव यथेच्छसि तथा कुरु ॥५४॥  
 तयोक्त वचन श्रुत्वा देवदेवो जनादन ।  
 दत्त्वाभय देवमातुरिद वचनमब्रवीन् ॥५५॥  
 सत्यमुक्त महाभागे न्वया रास्त्यत्र सशय ।  
 तथापि शृणु वक्ष्यामि गुह्याद्रह्यतर शुभे ॥५६॥

हे प्रभो ! जिनके प्रभाव और महिमा का पार श्रुति और  
 स्मृतत देववृन्द भी नहीं कर सकत हैं । उन देव देवश्वर को मैं 'अपने  
 उबर में कैसे धारण कर सकूँगी ? ॥५०॥ हे देव ! आप तो सूक्ष्म से  
 भी परम सूक्ष्म है—आप उत्पत्ति से रहित हैं और पर से भी पर प्रभु  
 हैं । पुरुषात्तम आपकी मैं कैसे धारण करूँगी ? ॥५१॥ ब्रह्माहत्या आदि  
 महापातक करने वाला मनुष्य भी जिनके नाम का स्मरण मात्र करने  
 से ही मुक्त हो जाय करता है वह देवश्वर मुझ जैसी क्षामीण के यहाँ  
 जन्म धारण करे—यह कैसे उचित होगा ? ॥५२॥ अच्छा जिस तरह  
 से आपके शूबर और मत्स्य आदि अवतार हुए हैं वैसे ही यह भी  
 आपका अवतार हो जायगा नभो नि ह विश्वेश ! आपकी चेष्टा को  
 मैं समझ सकता है ॥५३॥ जैसी आपकी इच्छा हो वही आप करिए ।  
 मैं तो सर्वथा आपके चरण कमला में प्रणाम करती हूँ ॥५४॥ श्रीसुनक-  
 देवदेव जनार्दन न देवमाता अदिति को अश्वपति का दान दिया और यह  
 कहने लगे थे ॥५५॥ भगवान् न ब्रह्मा—हे महाभागे ! तुमने सर्वथा  
 सत्य ही कहा है—इस आपके कथन में कुछ भी सन्देह नहीं है । हे  
 शुभे ! हे मैं एक परम गुप्त बात आप से कहना हू उसका आप श्रवण  
 करे ॥५६॥

रागद्वेषविहीना ये यद्वक्ता मत्परायणा ।  
 वहति सतत ते मा गतासूया अदाग्निभवा ॥५७॥



परोपतापविमुखा शिवभक्तिपरायणा ।  
 मत्कथाश्रवणासक्ता विहन्ति सतत हि माम् ॥५८॥  
 पतिव्रता पतिप्राणा पतिभक्तिपरायणा ।  
 बहन्ति सतत देवि स्त्रियोऽपि त्यक्तमत्सरा ॥५९॥  
 मातापित्रोश्च शुश्रूषुर्गुरुभक्तोऽतिथिप्रिय ।  
 हितकृद्ब्राह्मणानां यः स मा बहति सर्वदा ॥६०॥  
 पुण्यतीर्यरता नित्य सत्सङ्गनिरतास्तथा ।  
 लोकानुग्रहशोलाश्च सतत ते बहन्ति माम् ॥६१॥  
 परोपकारनिरता परद्रव्यपराङ्मुखा ।  
 नपुंसका परस्त्रीषु ते बहन्ति च मा सदा ॥६२॥  
 तुलस्युपासनरता सदा नामपरायणा ।  
 गौराणपरा ये च सतत मा बहन्ति ते ॥६३॥

जो पुरुष राग द्वेष से रहित है और मेरे भक्तजन हैं, जो अह-  
 निश मेरे ही चरणों में सलग्न रहा करते हैं, जो असूया और दम्भ से  
 रहित हैं वे तो सदा ही मुझे धारण करने में समर्थ होते हैं ॥ ५७ ॥  
 जो सदा दूसरों को सन्ताप देने से बचते हैं और भगवान् शिव की  
 भक्ति में लीन रहा करते हैं तथा सदा मेरी कथा के श्रवण करने की  
 जितनी इच्छा रहा करती है वे मुझे सर्वदा धारण कर सकते हैं  
 ॥५८॥ हे देवि । जो स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं और अपने पति को  
 प्राण के समान ही समझा करती हैं तथा अहनिश पति की भक्ति में ही  
 सलग्न रहा करती हैं । जो स्त्रियाँ मात्सर्य से रहित होती हैं वे मुझे  
 सदा धारण करने में समर्थ होती हैं ॥५९॥ जो अपने माता पिता की  
 सदा सेवा भक्ति भाव से किया करता है—जो गुरु या परम भक्त है  
 तथा समागत अतिथि को प्रिय समझता है और विप्रों का हित विद्या  
 करता है वह मुझे धारण करने का पात्र क्यों नहीं है ? ॥ ६० ॥ जो  
 परम पुण्यमय तीर्थों में भ्रमण किया करते हैं, सदा सत्पुरुषों की गति

किया करत हैं, जिनका स्वभाव समस्त प्राणियों पर अनुग्रह करने का होता है व मुझे सदा धारण कर सकते हैं ॥६१॥ जो परापकार में सत्पर, दूसरे के दुःख से विमुक्त रहा करते हैं तथा पराई स्त्रियों के विनय में नष्ट सत्त्व रक्खा करत हैं वे मुझे सदा धारण कर सकते हैं ॥६२॥ जो सदा तुलसी की उपासना किया करते हैं, जो सदा मेरे नामों का स्मरण किया करत हैं और नाम स्मरण में मग्न रहा करत हैं । जो सर्वदा गौ रक्षा में मग्न रहते हैं, उनके समीप में तो मैं सर्वदा ही रहा करता हूँ ॥६३॥

प्रतिग्रह निवृत्ता ये परान्नविमुखास्तथा ।

अन्नोदकप्रदातापो वहन्ति सततं हि माम् ॥६४॥

त्व तु देविपतिप्राणा साध्वी भूतहिते रता ।

संप्राप्य पुत्रभावं ते साधयिष्ये मनोरथम् ॥६५॥

इत्युक्त्वा देवदेवशो ह्यदिति देवमातरम् ।

दत्त्वा कण्ठगता मालामभयं च तिरोदधे ॥६६॥

सा तु सहृष्टमनसा देवसूक्ष्मनन्दिनी ।

प्रणम्य कमलाकान्तं पुनः स्वस्थानमाव्रजत् ॥६७॥

ततोऽदितिर्महाभागा सुप्रोता लोकवन्दिता ।

असूत समये पुनः सर्वलोकनमस्कृतम् ॥६८॥

शखचक्रधरशान्तचन्द्रमण्डलमध्यगम् ।

सुधावलशदध्यन्नकरवामनसञ्चितम् ॥६९॥

सहस्रादित्यसकाशव्याकोशकमलेक्षणम् ।

सर्वाभरणसयुक्तपीताम्बरधरहरिम् ॥७०॥

स्तुत्य मुनिगणयुक्तं सर्वलीनैकनायकम् ।

आविर्भूतं हरिं ज्ञात्वा वश्यो हर्षविवक्षितः ।

प्रणम्य प्राञ्जलिभूत्वा स्तीतुं समुपचक्रमे ॥७१॥

जो दान लेने के कार्य से दूर रहते हैं, जो दूसरों के अन्न से बचते रहा करते हैं तथा जो स्वयं अन्न और जल का दान दिया करते

हैं वे मुझे पाने के सर्वदा अधिकारी पात्र हुआ करते हैं ॥६४॥ हे देवि ! आप तो समस्त प्राणियों के हित करने में परायण रहा करती है और पतिप्राणा एव परम साध्वी हैं अतएव मैं आपका पुत्र बन कर आपका मनोरथ पूर्ण कर दूँगा ॥६५॥ उन देवेश्वर भगवान ने देवों की माता अदिति को इस रीति से समझा बुझाकर उसको अमय का दान प्रदान करके अन्त में अपने कण्ठ की माला देकर वही पर अन्तर्धान हो गये थे ॥६६॥ उस समय में वह दक्ष प्रजापति की पुत्री देव माता अदिति अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न होकर सध्मीनारायण भगवान की प्रीति पूर्वक प्रणाम करती हुई अपने स्थान पर वापिस लौट कर आ गयी थी ॥६४॥ इसके उपरान्त समस्त सत्तार की वन्दनीया अदिति ने परम प्रसन्नता में भरी रहती हुई समय समाप्त होने पर परम वन्दनीया पुन का प्रसव किया था ॥६८॥ कश्यप मुनि ने भी शङ्ख, चक्र, गदाधारी, परम शान्त चन्द्र मण्डल के मध्य में विराजमान, हाथ में अमृत का पात्र, दधि और अन्न ग्रहण किये हुए बामन नाम की धारण करने वाले, सहस्रों सूर्यों के समान तेजस्वी, कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों से युक्त, सभी आभरणों से विभूषित, स्तुति के समुच्चिन् पात्र, मुनिवृत्तों से घिरे हुये और सब लोको में अद्वितीय एव अनुपम नायक की देखकर उन्होंने साक्षात् श्री हरि को प्रकट हुआ समझ लिया था और परम हर्ष से गद्गद् होकर हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुये स्तवन करने के लिये समुद्यत हो गये थे ॥६९-७१॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय ।

नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविनाशनाय ॥ ७२

नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमो नम सज्जनरजिताय ।

नमो नमो दुर्जननाशनाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय ॥ ७३

नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ।

सर्वाङ्गवक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुष्पोत्तमाय ॥ ७४

नमः पयोराशिनिवासनाय नमोऽस्तु सद्बृत्कमलस्थिताय ।  
 नमोऽस्तु सूर्याद्यमिदप्रभाय नमो नमः पुण्यकथागताय ॥७५॥  
 नमो नमोऽर्कन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ।  
 नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ॥७६॥  
 नमो जगत्कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ।  
 नमोऽस्तु ते दिव्यसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोगताय ॥७७॥

कश्यप मुनि ने कहा—हे भगवन् ! सबके कारण स्वरूप भाग्य की सेवा में मेरा प्रणाम है । सबके परिपालन करने वाले आपकी सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है और पुनः प्रणाम है । देवों के नायक आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है । दैत्यों के विनाश करने वाले आपकी सेवा में मेरा पुनः पुनः प्रणाम है ॥७२॥ भक्तों के परम प्रिय भगवान् को बारम्बार नमस्कार है । सज्जनों को प्रसन्न करने वाले भगवान् की सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम है । दुर्जनों का नाश करने वाले भगवान् को मेरा बारम्बार नमस्कार है । जो इस सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं उन भगवान् के लिये मेरा प्रणाम है ॥७३॥ विशेष कारण के वशीभूत होकर वामन स्वरूप का अवतार धारण करने वाले तथा अमित विक्रम वाले भगवान् को मेरा बारम्बार प्रणाम है । शाङ्ख-घनुष, मुद्रांन चक्र, मन्दक खड्ग और कौमोदकी गदा को धारण करने वाले परम पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा में मेरा प्रणाम है ॥७४॥ क्षीर सागर में निवास करने वाले विश्वम्भर भगवान् को नमस्कार है । सत्पुरुषों के हृदय कमल में सस्थित अन्तर्यामी ईश्वर के लिये मेरा प्रणाम है । सूर्यादि के तुल्य अपरिभित प्रभा से ममन्वित आपकी सेवा में प्रणाम है तथा परम पवित्र कथाओं में वर्णन किये गये आपको नमस्कार है ॥७५॥ सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रा धारण करने वाले भगवान् की सेवा में बारम्बार नमस्कार है । यज्ञों के पुण्य फल को प्रदान करने वाले तथा यज्ञाङ्गों में विराजमान ब्रह्म के लिये नमस्कार है । हे सत्पुरुषों को

प्रिय समझने वाले ! आपको मैं अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ ॥७६॥  
 इस सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप ईश्वर के लिये नमस्कार है । शब्दादि  
 से रहित भगवान् के लिये नमस्कार है तथा दिव्य मुख प्रदान करने  
 वाले भगवान् को प्रणाम है और भगवद्भक्तों के मनमें सदा निवास  
 करने वाले भगवान् को प्रणाम है ॥७७॥

नमोऽस्तु ते ध्वान्तविनाशकाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ।  
 नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥७८॥  
 नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय ।  
 नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥७९॥  
 नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने ।

स्मृतार्तिनाशिने तुभ्य भूयो भूयो नमो नमः ॥८०॥

यज्ञेश यज्ञविन्यास यज्ञविघ्नविनाशन ।

यज्ञरूप यज्ञद्रूप यज्ञाग त्वां यजान्यहम् ॥८१॥

इति स्तुतः स देवेसो वामनो लोकपावनः ।

उवाच प्रहसन् हर्षं बद्धं यन्काश्यपस्य सः ॥८२॥

तात तुष्टोऽस्मि भद्र ते भविष्यति सुराचित ।

अचिरात्साधयिष्यामि निखिल त्वन्मनोरथम् ॥८३॥

अहं जन्मद्वयोस्त्वेष्वयं युवयोः पुनता गतः ।

अस्मिञ्जन्मन्यपि तथा साधयाम्युत्तमं सुखम् ॥८४॥

भक्तानां धकार विनाश करने वाले, मन्दराचलधारी, यज्ञवराह,  
 हिरण्याक्ष के विदारण करने वाले भगवान् की सेवा में बारम्बार  
 प्रणाम समर्पित है । वामन का स्वरूप ( बौना ) धारण करने वाले  
 आपके लिये मेरा प्रणाम है । क्षत्रियों के वध का विध्वंस करने वाले  
 परशुराम के अवतार वाले आपको नमस्कार है । लकेश्वर रावण का  
 वध करने वाले रामरूप आपको नमस्कार है । वतराम के छोटे भाई  
 नन्द मुत्त श्रीकृष्ण का अवतार धारण करने वाले आपको मेरा प्रणाम

है ॥७८॥७९॥ हे कमलावान्त ! सुख प्रदान करने वाले आपको प्रणाम करता हूँ । स्मरण करने मात्र से पीछा की दूर भगा देने वाले आपको बारम्बार प्रणाम है । हे यज्ञेश ! हे यज्ञ विन्यास ! हे यज्ञो के विघ्नो को विनष्ट करने वाले । हे यज्ञ स्वरूप ! हे यज्ञाङ्ग ! मैं आपका पूजन करता हूँ ॥८०॥८१॥ इस प्रकार से कश्यप मुनि के द्वारा स्तुति किये जाने पर लोकावन्त, देश भावन भगवान् वामनजी हँसकर कश्यप मुनि का हृष्य वर्धन करते हुये बोले ॥८२॥ श्री भगवान् न कहे—हे पिता जी मैं प्रसन्न हूँ । हे देवो के वन्दनीय ! आपका कल्याण होगा ॥८३॥ मैं वृश्निगर्भ और श्रीवृष्ण इन दोनों नामों से आपका पुत्र बना करता हूँ अतएव इस वामन जन्म में भी आपको सुख दूँगा ॥८४॥

अनान्तरे वलिर्देत्यो दीर्घसन महामखम् ।  
आरेभे गुरुणा युक्त काव्येन च मुनीश्वरं ॥८५॥  
तस्मिन्मये समाहृतो विष्णुलंघीसमन्वित ।  
हविस्वीकरणार्थं ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥८६॥  
प्रवृद्धैः शर्वदैत्यस्य वर्तमाने महाकृती ।  
आमन्य मातापितरौ स ददुर्वामानो ययौ ॥८७॥  
स्मितेन मोहयन्लोक वामनो भक्तवत्सलः ।  
हविर्भोक्तुमिवायातो बले प्रत्यक्षतो हरिः ॥८८॥  
दुर्वृत्तो वा जडा वाय हितोऽपि वा ।  
यौ भक्तियुक्तस्तस्यान्तः सदा सनिहितो हरिः ॥८९॥  
आयान्त वामन दृष्ट्वा ऋषयो ज्ञानचक्षुषः ।  
ज्ञात्वा नारायण देवमुद्ययुः सम्यसगुताः ॥९०॥  
एतज्ज्ञात्वा दैत्यगुरुरेकाते वलिमब्रवीत् ।  
स्त्रसारमन्त्रिचार्यैव खला कार्याणि कुर्वते ॥९१॥

इस और दैत्यराज वलि ने अपन गुरुवर मुकाचार्य और अन्य मुनीश्वरो को जपन साथ में लेकर बहुत लम्ब समय तक चलने वाले

एक बड़े भारी यज्ञ के करने का आरम्भ कर दिया था ॥ ८५ ॥ उस यज्ञ में ब्रह्मवादी महामर्हपियो ने सखीनारायण भगवान का हवि स्वीकार करने के लिए आवाहन किया था ॥ ८६ ॥ उस समय में बहुतक वामन अपने माता पिता से आज्ञा प्राप्त करके बड़े हुये ऐश्वर्य से सम्पन्न दैत्यराज ने विय जाने वाले महा यज्ञों के देखने को चल दिये थे ॥ ८७ ॥ भक्तवत्सल वामन देव अपनी मन्द मुस्कराहट से सम्पूर्ण ससार को मुग्ध करते हुये बलि राजा ने सामन प्रकट होकर विष्णु भगवान के हवि का भोग लगाने का समान आगे को बढ़ चले ॥ ८८ ॥ जो अन्तःकरण में भक्ति का भाव रखता है वह दुराचारी हो या सदाचारी, जड़ हा या प्राज्ञ, जो लोगों के हित का काम करने वाला है श्री हरि उसके समीप में रहा करते हैं ॥ ८९ ॥ वहाँ पर वामन देव को आते हुये देखकर ऋषिगणों ने अपनी ज्ञान दृष्टि से देख लिया था कि यह तो भगवान नारायण ही आ रहे हैं अतः वे सभ्या के साथ गानोत्तान देने के लिए सब खड़े हो गये थे ॥ ९० ॥ दुष्ट लोग अपनी शक्ति का विचार न कर काम करने के लिए उद्यत हो जाया करते हैं अतएव दैत्य गुरु शुक्राचार्य इस बात को जाँच गये थे और फिर राजा बलि से एकान्त में जाकर कहन लगे थे ॥ ९१ ॥

भो भो दैत्यपते सौम्य ह्यपहर्ता तव श्रियम् ।  
 विष्णुर्कामनरूपेण ह्यदिते पुत्रता गत ॥ ९२ ॥  
 सदाध्वर स आयाति त्वया तस्यासुरेश्वर ।  
 न किञ्चिदपि वातव्य मन्मत शृणु पण्डित ॥ ९३ ॥  
 आत्मबुद्धि सुखकरी गुरुबुद्धिविशेषण ।  
 परबुद्धिविनाशाय स्त्रीबुद्धि प्रलयकरी ॥ ९४ ॥  
 शङ्खूणा हितकृत्यस्तु स हन्तव्यो विशेषतः ॥ ९५ ॥  
 गुरो न क्तव्य घममार्गविगोषतः ।  
 यदादत्तो स्वय विष्णु किमस्मादधिक वरम् ॥ ९६ ॥

कुर्वन्ति विदुषो यज्ञान्विष्णुप्रीणनकारणात् ।  
 स चेत्साक्षाद्विर्भोगी मत्त कोऽय्यधिको भुवि ॥६७॥  
 दरिद्रेणापि यत्किञ्चिद्दीयते विष्णवे गुरो ।  
 तदेव परम दान दत्ता भवन्ति चाक्षयम् ॥६८॥

श्री शुक्राचार्यजी ने कहा—हे दैत्यराज । आप तो बहुत ही सीधे साधे और भोले हैं । मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपकी लक्ष्मी का अपहरण करने के लिये और इसी विचार से यह विष्णु भगवान ही अदिनि के पुत्र बन कर यहाँ आय है ॥६७॥ हे असुरेश्वर । यही आपके द्वय यज्ञ - मण्डप में आ रहे हैं । अब हे पण्डित । आप मेरी बात का ध्रुवण कर भली भाँति समझ लो आप उसको कुछ भी मत देना ॥६८॥ अपने अन्दर यदि बुद्धि हो तो वह हमेशा सुख देने वाली हुआ करती ॥ परन्तु अपने गुरुदेव की बुद्धि परम सुख दिया करती है और शत्रु, अथवा दूसरे की बुद्धि नाश कारिणी होती है । यह कहा भी गया है कि मूर्ख सदा दूसरे की बुद्धि ग्रहण किया करता है । स्त्री की बुद्धि प्रलयकारिणी हुआ करती है ॥६९॥ जो पुरुष अपने शत्रुगण का हित किया करता है वह तो भली भाँति नष्ट विनष्ट होकर ही रहा करता है ॥६९॥ राजा बलि ने इस गुरुदेव के वचन का उत्तर दिया था । उसने कहा—हे गुरुदेव । धर्म मार्ग के विपरीत आपको ऐसी बात कभी भी नहीं करनी चाहिये । यदि स्वयं विष्णु ही दान लेना चाहते हैं तो इससे भली दूसरी मेरे लिये और क्या बात हो सकती है ॥६९॥ विद्वान् लोग भगवान विष्णुदेव को प्रसन्न करने के लिये तो यज्ञ कर्म आदि लिया करते हैं । जब वे स्वयं ही हवि का भोग लगाना चाहते हैं तो इस भूमण्डल पर मनुष्यसे अधिक महान आग्य-शाली अथवा कौन हाथा ? ॥६९॥ हे गुरुवर । एक महान दरिद्र पुरुष भी जो कुछ यथा शक्ति विष्णुदेव की प्राप्ति के लिये दान दिया करता है वह दान परम अष्ट और अक्षय हुआ करता है ॥६९॥



स्मृतोऽपि परया भक्त्या पुनाति पुरुषोत्तमः ।

येन केनाप्यचितश्चेद्ददाति परमा गतिम् ॥६६॥

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तोरपि स्मृतः ।

अनिच्छयापि सस्पृष्टो दहत्येव हि पातकः ॥१००॥

जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।

स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१०१॥

गोविदेति सदा ध्यायेद्यस्तु रागादिवर्जितः ।

स याति विष्णुभवनमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥१०२॥

अग्नीं च ब्राह्मणे वापि हूयते यद्वविर्गुरो ।

हरिभक्त्या महाभाग तेन विष्णुः प्रसीदति ॥१०३॥

अहं तु हरितुष्ट्यर्थं करोम्यध्वरमुत्तमम् ।

स्वयं मायाति चेद्विष्णुः कृतार्थोऽस्मि न शयः ॥१०४॥

एव वदति दैत्येन्द्रे विष्णुर्वामिनरूपधृक् ।

प्रविवेशाध्वरस्थानं हतवह्निमनोरमम् ॥१०५॥

पुरुषोत्तम प्रभु तो अत्युत्कट भक्तिभाव से स्मरण करने पर ही , उस अपने उपासक भक्त को परम पवित्र कर दिया करते हैं चाहे जो कोई भी हो जब उनका वह पूजन करता है तो वे उसको परमोत्तम गति दिया करते हैं ॥६६॥ दोषयुक्त चित्त वाले पुरुष भी यदि श्री हरि भगवान का स्मरण किया करते हैं तो भी वे उनके सम्पूर्ण पाप को हरण कर लिया करते हैं । अग्नि को बिना इच्छा के भी कोई स्पर्श करे तो अवश्य ही जला दिया करता है । इसी प्रकार से भगवान श्री हरि तो पापों के समुदाय का विनाश कर दिया करते हैं ॥१००॥ जिन पुरुषों की जिह्वा के अग्र भाग पर श्री हरि इन दो अक्षरों का निवास रहा करता है वह तो उस परमोत्तम विष्णु लोक की प्राप्ति किया करता है जिस पद में फिर वापिस लौटना परम दुर्लभ हुआ करता है ॥१०१॥ बुद्धिमान पुरुष कहा करते हैं जो रागादि दोषों से रहित

होकर के सर्वदा श्री गोविन्द भगवान् वा ध्यान किया करते हैं वे निश्चय ही भगवान् विष्णु के लोभ को प्राप्ति किया करते हैं ॥१०२॥ हे महामाग ! श्री हरि की भक्ति के साथ जो हवि अग्नि या ब्राह्मण में होमी जाया करती है उससे भगवान् श्री विष्णु परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥१०३॥ मैं भी तो इस समय भगवान् श्री विष्णुदेव को प्रसन्न करने के ही लिये इस महान् यज्ञ का यजन कर रहा हूँ । अब यदि भगवान् विष्णु स्वयं ही कृपा करके यहाँ पदार्पण करते हैं तो मैं तो निश्चित ही परम वृत्तवृत्त्य हो जाऊँगा ॥१०४॥ वह दैत्यराज बलि इस प्रकार से अपने गुरुदेव से कह ही रहा था कि अग्नि में होम करने से उस परम मनोहर स्थल में जहाँ कि यज्ञ का यजन किया जा रहा था वामन स्वरूप को धारण करने वाले श्री विष्णुदेव ने प्रवेश किया था ॥१०५॥

त दृष्ट्वा कोटिसूर्याभं योग्यावयवसुन्दरम् ।  
वामन सहस्रोत्थाय प्रत्यगृह्णात्कृताञ्जलिः ॥१०६॥  
दत्त्वासनं च प्रक्षाल्य पादो वामनरूपिणम् ।  
सकुटुबो वहन्मूर्ध्ना परगा मुदमातवान् ॥१०७॥  
विष्णवेऽस्मिं जगद्गाम्ने दत्त्वार्घ्यं विधिवद्वलि ।  
रोमाञ्चिततनुभूर्त्वा हर्षाश्रुनयनोज्ज्वलीत् ॥१०८॥  
अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफलो मखः ।  
जोवित सफल मेऽद्य कृतार्थोऽस्मि न सशयः ॥१०९॥  
अमोघामृतवृष्टिर्मे समायातातिदुर्लभा ।  
त्वदागमनमात्रेण ह्यनायासो महोत्सवः ॥११०॥  
एते च श्रूय सर्वे कृतार्था नान् शशयः ।  
यैः पूर्वं हि तपस्तप्त तदद्य सफल प्रभो ॥१११॥  
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न सशयः ।  
तस्मात्तभ्य नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमोनमः ॥११२॥

करोड़ों सूर्यों के समान कान्ति वाले और ठीक २ अवयवों से युक्त श्री वामनदेव के दर्शन करके राजा बलि एक साथ अपने आसन से उठकर खड़ा हो गया था और उसने अपने दोनों हाथों को जोड़ते हुए उनका स्वागत किया था ॥१०६॥ फिर एक आसन समर्पित कर उन वामन रूपधारी विप्र बटु के राजा ने चरणों का प्रक्षालन किया था तथा उसके चरणामृत को अपने मस्तक पर एवं अपने समस्त परिवार के मस्तकों पर छिड़क दिया था और उस समय में उसके मन में अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी ॥१०७॥ इसके उपरान्त राजा बलि ने समस्त जगत् के परमाश्रय स्थान भगवान् विष्णुदेव को विधिपूर्वक अर्घ्य दिया था । उस समय में धुलकायमान होकर परम हर्ष से अपने नेत्रों में आँसू भरकर दैत्यराज बलि ने कहा था ॥१०८॥ दैत्यराज ने निवेदन किया था—आज मेरा जन्म परम सफल होगया है और आज मेरा यह गज भी सफल हो गया है एवं आज मेरा जीवन ही सफल होगया है, अधिस्त क्या निवेदन करूँ मैं तो आज निश्चय ही कृतार्थ होगया हूँ ॥१०९॥ मेरे घर में तो मैं समझता हूँ कि आज अति कुलम्भ और अमोघ अमृत की वर्षा हो रही है । हे भगवान् आपके यहाँ पदार्पण करने से ही अनायास मेरे गृह में एक प्रकार का उत्सव सा मण्डप गढ़ा है ॥११०॥ इस समय मैं यहाँ पर विराजमान होने वाले ये सब ऋषिगण भी कृतार्थ हो गये हैं । हे प्रभो ! इनने जो भी अब तक तपश्चर्या की थी वह आज इनकी सफल हो गई है ॥१११॥ मैं तो अवश्य ही कृतार्थ होगया । कृतार्थ हो गया और परम कृतार्थ हो गया हूँ इसी कारण से मैं आपकी सेवा में अपना प्रणाम समर्पित करता हूँ और बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥११२॥

स्वदाजया त्वन्नियोग माधयामीति मन्मन ।

अत्युत्माह्ममायुक्त समानायय मा प्रभो ॥११३॥

एवमुक्ता दीक्षितन प्रहसन्नामनोज्ञगीत् ।

देहि मे दपसि स्यातु भूमि त्रिपद समिताम् ॥११४  
 एतच्छ्रुत्वा वलि प्राह राज्य याचितवान्न हि ।  
 ग्राम वा नगर चापि धन वा किं कृत त्वया ॥११५  
 तान्निशम्य वलि प्राह विष्णु सर्वशरीरभृत् ।  
 आसन्नभ्रष्टराज्यस्य वैराग्य जनयन्निव ॥११६  
 शृणु दैत्येन्द्र वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतम परम् ।  
 सर्वमग विहीनाना किमर्थं साध्यते वद ॥११७  
 अहं तु सर्वभूतानामन्तर्यामीति भावय ।  
 मयि सर्वमिदं दैत्य किमन्यं साध्यते वद ॥११८  
 रागद्वेषविहीनाना शान्ताना त्यक्तमायिनाम् ।  
 नित्यानन्दस्वरूपाणां किमन्यं साध्यते धनं ॥११९

अब जो भी आपकी आज्ञा होगी मैं आपके उसी कार्य को पूर्ण सिद्ध करूँगा । मेरा मन इस समय में बहुत ही अधिक उत्साह से भर रहा है । अतएव हे प्रभो । अब आप मुझे अपनी सेवा के लिये आदेश प्रदान कीजिये ॥११३॥ उस यज्ञ में दीक्षा का ग्रहण किये हुये राजा वलि के द्वारा इस प्रकार से कहने पर श्री वामनदेव ने हँसकर कहा कि मुझे तपस्या करने के लिये केवल तीन पग भूमि का दान करो ॥११४॥ यह सुनकर राजा वलि ने कहा था—हे भगवन् । आपने यह क्या माँगा है ? आपने न तो कोई राज्य ही माँगा न ग्राम की ही याचना की है न कोई नगर माँगा और न धन ही माँगा है ॥११५॥ इस बात का श्रवण कर सब प्राणियों के शरीर को पुष्ट करन वाला वामन स्पर्धारी भगवान् विष्णुदेव शीघ्र ही जिसका राज्य भ्रष्ट होन वाला है उस राजा वलि का वैराग्य दिष्टात दृष्ट करते थे ॥११६॥ भगवान् ने कहा—हे दैत्येन्द्र । मैं आप पर एक गुप्त बात कहना हूँ उसको आप मुनि—हम लोग तो सभी प्रकार के

सङ्गो मे रहित है तो फिर आप ही बताइये, हमको धन सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ? ॥११७॥ हमको तो आप सब प्राणिमो का अन्त-र्यामी ही समझ लेना चाहिए । यह सम्पूर्ण जगत् हममे ही तो है फिर अन्य धनो से सबको क्या करना शेष रहता है ? ॥११८॥ जो सभी प्रकार के राग द्वेष से रहित हैं, जो ज्ञान से सुसम्पन्न हैं जो माया का छोड़ देने वाले हैं और जो नित्य ही आनन्द स्वरूप हैं वे धन को ग्रहण करके भी क्या बाव सिद्ध करेंगे ? ॥११९॥

आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यता शान्तचेतसाम् ।

अभिन्नमात्मन सर्वं को दाता दीयते च विम् ॥१२०॥

पृथ्वीय क्षत्रियवशा इति शास्त्रेषु निश्चितम् ।

तदाज्ञाया स्थिता सर्वे लभन्ते परम सुखम् ॥१२१॥

दातव्यो मुनिभिश्चापि पष्ठाशो भूभुजे वले ।

महीय ब्राह्मणानां तु दातव्याः सवयन्तत ॥१२२॥

भूमिदानस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति ।

परं निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र संशयः ॥१२३॥

स्वल्पमपि मही दत्त्वा श्रोत्रियायाहिताग्नेये ।

ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१२४॥

भूमिदं सर्वदं प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभागभवेत् ।

अतिदानं तु तज्ज्ञेयं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१२५॥

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ।

दशहस्ता हो दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१२६॥

सभी प्राणियों का अपने ही समान देखन वाले और परम शान्त चित्त वाले के नियम तो अपने से सभी अभिन्न हैं तो फिर कौन देने वाला होता है और दिया भी क्या जा सकता है ? ॥१२०॥ यह भूमि तो क्षत्रियों के वश में ही रहा करती है। ऐसा शास्त्रों का निश्चय है। अतएव शास्त्रों की आज्ञानुसार ही चलन वाला वा प में सुख प्राप्त हुआ करता है ॥१२१॥ ह बलिराज ! मुनियों का

भी अपने तप मे से छट्वां भाग राजा को देना पड़ता है । अतएव इस भूमि का दान ब्राह्मणों को यत्न पूर्वक करना चाहिये ॥ १२२ ॥ हे वले ! इस भूमि के दान का साहाय्य भूत और भविष्यत काल मे भी अपनी समता नही रखता है । इस भूमि के दान देने वाले को परम सुख की प्राप्ति हुआ करती है — इसमे तनिक भी सन्देह नही है ॥ १२३ ॥ किसी अग्निहोत्र करने वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण को बहुत थोड़ी-सी भूमि का दान देने से भी उस व्यक्ति को उत ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुआ करती है जहा पर पहुँच कर फिर वापिस सोटना कठिन है ॥ १२४ ॥ जो भूमि का दान करने वाला है वह सभी प्रकार की वस्तुओं का दाता माना जाया करता है । भूमि के दान देने वाले की मुक्ति होजाया करती है । भूमि दान को सब पापों का नाशक एक महा दान समझना चाहिए ॥ १२५ ॥ महा पातकों और सभी प्रकार के पापों से वनमित मनुष्य केवल दश हाथ भूमि का दान देने से सभी पापों में छुटकारा पा जाया करता है ॥ १२६ ॥

सत्पात्रे भूमिदाता य सर्वदानफला लभेत् ।

भूमिदानसम नान्यत्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १२७ ॥

द्विजाय वृत्तिहीनाय यः प्रदद्यान्मही वले ।

तस्य पुण्यफला वक्तु न क्षमोऽदशतैरहम् ॥ १२८ ॥

राक्ताय देव पूजाय वृत्तिहीनाय दत्तय ।

स्वल्पामपि मही दद्यात्तः स विष्णुर्न सशयः ॥ १२९ ॥

इक्षुगोधूमतुवरीपूगवृक्षादिमयुता ।

पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नान सशयः ॥ १३० ॥

वृत्तिहीनाय विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने ।

स्वल्पामपि मही दत्त्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १३१ ॥

भक्ताय देवपूजाय विप्रायादिकिका महीम् ।

दत्त्वा लभेत् गङ्गाया त्रिरात्रस्नानज फलम् ॥ १३२ ॥

विप्राय वृत्तिहीनाय सदाचाररताय च ।

द्रोणिका पृथिवी दत्त्वा यत्फल लभते शृणु ॥१३३॥

जो मनुष्य किसी सत्यान को भूमि का दान किया करता है उसको अनेक प्रकार के दानों का फल प्राप्त हुआ करता है । इस भूमि के दान के समान इस जलोक में अन्य कोई भी दान नहीं होता है ॥१२७॥ हे ब्रह्म ! जो आजीविका से रहित किसी ब्राह्मण को पृथ्वी का दान देता है उसका जो पुण्यफल होता है उसका वर्णन मुझसे यदि लगातार कहता ही रहूँ तो भी सौ वर्ष के लम्बे समय में भी नहीं किया जा सकता है ॥१२८॥ हे दैत्यराज ! अहर्निश देवों के यजन में सलग्न रहने वाले ब्राह्मण को, जिसकी कोई भी वृत्ति नहीं होती है, थोड़ी सी भी पृथ्वी का दान दिया जाता है वह उस प्रति-गृहीता के लिये साक्षात् विष्णु ही है ॥१२९॥ ईश्वर, गुरु, अरुहर, सुपारी आदि वेड पौधा से भरी-पूरी भूमि का जो दान किया करता है वह प्रतिगृहीता और समस्त ससार की दृष्टि में विष्णु ही होता है ॥१३०॥ आजीविका से रहित कुटुम्ब वाले दरिद्री ब्राह्मण को यदि कोई बहुत थोड़ी सी भी पृथ्वी का दान देता है उसे विष्णु भगवान की सयुज्यता प्राप्त हुआ करती है ॥ १३१ ॥ देवों की अर्चना में निमग्न ब्राह्मण को एक आढक अर्थात् जिसमें एक घड़ा भर अन्न उत्पन्न हो जाता हो उसकी ही पृथ्वी का दान देने से तीन दिन तक गङ्गा स्नान का पुण्य फल मिला करता है ॥१३२॥ वृत्ति विहीन सदाचरण से रहने वाले ब्राह्मण के लिये द्रोणका मात्र अर्थात् बीस सेर अन्न उप-जाने वाली पृथ्वी के दान से जो फल प्राप्त होता है उसका श्रवण करो ॥१३३॥

गङ्गानीर्थाश्वमेधाना शतानि विधिवन्नर ।

दृत्वा यत्फलमाप्नोति तदाप्नोति सपुष्कलम् ॥१३४॥

ददाति चारिवा भूमि दरिद्राय द्विजाय य ।

अभवस्तस्य पट् पत्न्य. श्रुति. सिन्धुर्यशोवती ।  
 कामिनी मालिनी चैव शोभा चेति प्रकीर्तिता ॥१४१॥  
 आसु पत्नीषु तस्यसञ्चत्वारिंशच्छतद्वयम् ।  
 पुत्राणामसुरश्रेष्ठ सर्वे नित्यं बुभुक्षिता. ॥१४२॥  
 अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्तानात्मजान्प्रिया. ।  
 पश्यन्स्वयं क्षुधार्तश्च विललापाकुलेन्द्रिय. ॥१४३॥  
 धिग्जन्म भाग्यरहितं धिग्जन्म धनवर्जितम् ।  
 धिग्जन्म धर्मरहितं धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम् ॥१४४॥  
 नरस्य बह्वपत्यस्य धिग्जन्मेश्वर्यवर्जितम् ।  
 अहो गुणा सीम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ॥१४५॥  
 दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते ।  
 प्रिया. पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा भ्रातरस्तथा ॥१४६॥  
 शिष्याश्च सर्वमनुजास्त्यजन्त्येश्वर्यवर्जितम् ।  
 चाण्डालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते ॥१४७॥

उसकी श्रुति-सिन्धु-यशोवती, कामिनी, मालिनी और शोभा  
 इन नामों वाली पत्नियाँ थी ॥१४१॥ हे असुर श्रेष्ठ ! इसके इन  
 पत्नियों के गर्भ में दो सौ चालीस पुत्र उत्पन्न हुए थे । ये सभी भूखे  
 रहा करते थे ॥१४२॥ वह महान् दारिद्र्य भद्रपति अपने सब बच्चों को  
 और पत्नियों को भूखा क्षुधार्त देखकर और स्वयं भी क्षुधातुर होने  
 के कारण से इन्द्रियों के व्याकुल होने पर क्लेश करने लग गया था  
 ॥१४३॥ वह कहता था—अहो ! इस ससार में भाग्यहीन मनुष्य का  
 जीवन व्यर्थ ही है—ऐसे तन विहीन जीवन को धिक्कार है और  
 प्रसिद्धि से रहित जीवन को धिक्कार है ॥१४४॥ जिसके बहुत सी  
 सन्ततियाँ हों परन्तु धन न हो उस मनुष्य के जीवन को भी धिक्कार  
 है । बड़े से बड़े अच्छे गुणगण, सीम्यता, विद्वत्ता और सरकुलीनता ये  
 सब बातें दारिद्र्य के सागर में डूबकियाँ लगाने वाले मनुष्य को शोभा



नही दिया करती है ॥१४५॥ जिसके पास ऐश्वर्य का अभाव होता है उसको प्रिय पुत्र, पौत्र, चा-ध्व, भाई तथा शिष्य सभी मनुष्य त्याग दिया करते हैं । चाहे कोई चाण्डाल हो अथवा द्विज हो सत्कार में धनैश्वर्य से सम्पन्न भाग्यशाली का ही सत्कार हुआ करता है ॥१४६॥

दरिद्र पुरुषो लोके शववल्लोकनिन्दित ।  
अहो सप्तसमायुक्तो निष्ठुरो वाप्यनिष्ठुर ॥१४८॥  
गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वाप्यय पण्डित ।  
ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न साधय ॥१४९॥  
अहो दरिद्रता दुःख तत्राप्याशातिदुःखदा ।  
आशाभिभूता पुरुषादुद्यमश्नुवतेऽक्षयम् ॥१५०॥  
आशाया दासा ये दासास्ते सर्वलोकस्य ।  
आशा दासी येषां तेषां दासायते लोक ॥१५१॥  
मानो हि महता लोके घनमक्षय्यमुच्यते ।  
तस्मिन्नाशाप्यरिपुणा माने नष्टे दरिद्रता ॥१५२॥  
सर्वशास्त्रार्थवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत् ।  
नैष्ठिञ्चन्यमहाग्राहग्रस्तानां को विमोचक ॥१५३॥  
अहो दुःखमहो दुःखमहो दुःख दरिद्रता ।  
तत्रापि पुत्रभार्याणां बाहुल्यमतिदुःखदम् ॥१५४॥

जो मनुष्य दरिद्र होता है वह तो इस सत्कार में एक शव के समान ही परम निन्दित माना जाया करता है । अरे ! सम्पत्तिशाली पुरुष परम निष्ठुर हो तब भी उस दयालु समया जाया करता है ॥१४८॥ वह भले ही गुण से ही हीन हो तो भी उसका गुणो कहा जाया करता है । मूर्ख धनी का पण्डित म्यानी कहकर पुकारा जाता है । जिसमें ऐश्वर्य न साथ गुण भी हो ना फिर उसका क्या कहना है वह तो पूज्य ही हो जाता है ॥१४९॥ अहो ! यह दरिद्रता का होना ही

महान् दुःख है फिर उसमें भी आशा का होना तो बहुत ही दुःख देने वाली हुआ करती है । आशा के पाश में फँसे हुये मनुष्य अर्थात् दुःखों का भोग किया करते हैं ॥१५०॥ जो आशा के दास है वे तो मानो सभी लोगों के दास हो जाते हैं और यह आशा जिन महा पुरुषों की दामी होती है उनका यह सम्पूर्ण ससार ही दास बन जाया करता है ॥१५१॥ बड़े पुरुषों का तो मान-सम्मान ही धन कहा जाया करता है और एक विचारे दरिद्री के मान का तो यह आशा रूपी शत्रु नष्ट ही कर दिया करता है । अतएव वह सो मान के विनष्ट हो जाने से दरिद्र ही रहा करता है ॥१५२॥ दरिद्र पुरुष भले ही समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो वह सदा सबकी दृष्टि में एक मूर्ख ही जँचा करता है । अरे ! जिनको यह दरिद्रतारूपी नाका पंख लिया करता है उसको कौन छुड़ा सकता है ॥१५३॥ यह दरिद्रता महान् दुःख है— विशाल वेदना है और अनुपम यातना है । ऐसी दरिद्रता में बहुत सी स्त्रियाँ और बहुत सी सन्तान हो जाय तो बहुत ही दुःख दिया करते हैं ॥१५४॥

एवमुक्त्वा भद्रमति सर्वशास्त्रार्थपारग ।  
 अन्यमैश्वर्यवद धर्मं मनसाऽचिन्तयत्तदा ॥१५५॥  
 भूमिदानं विनिश्चत्य सर्वदानोत्तमोत्तमम् ।  
 दानेन योऽनुमताति स एव कृतवान्पुरा ॥१५६॥  
 प्रापकं परमं धर्मं सर्वकामफलप्रदम् ।  
 दानामुत्तमं दानभूदानं परिकीर्तितम् ॥१५७॥  
 यद्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतमं नरः ।  
 इति निश्चित्य मतिमान्धीरो भद्रमतिर्बले ॥१५८॥  
 कौशाम्बी नाम नगरी कलत्रापत्ययुग्ययी ।  
 सुघोषी नाम विप्रेन्द्र सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥१५९॥  
 गत्वा याचितवान्भूमिं पञ्चहस्तायता बले ।

विष्णु बुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ ।

सोऽपि भद्रमतिविप्रो धीमता याचिता भुवम् ॥१६५॥

दत्तवान्हरिभक्ताय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ।

सुघोषो भूमिदानेन कोटिवशसमन्वितः ॥१६६॥

प्रपेदे विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति ।

वले भद्रमतिश्चापि यतः प्रार्थितवाञ्छितम् ॥१६७॥

स्थितवान्विष्णुभवने सकुटुम्बो युगायुतम् ।

तथैव ब्रह्मसदने स्थित्वा कोटियुगायुतम् ॥१६८॥

ऐन्द्र पद समासाद्य स्थितवान्कल्पपञ्चकम् ।

ततो भुवः समासाद्य सर्वैश्वर्यसमन्वितः ॥१६९॥

हे द्विजवर ! आपके अनुग्रह से मेरा यह कुल पवित्र होगया है ।

इस रीति से कहकर सुघोष ने उस विप्र का सत्कार किया था ॥१६२॥

फिर उस महान् मतिमान् सुघोष ने इस विप्र को पांच हाथ प्रमाण

वाली भूमि के दान का वचन दे दिया था । मैं इस विष्णु से पालित

विष्णु की पवित्र पृथ्वी को देता हूँ ॥१६३॥ इस भूमि दान से जनार्दन

भगवान् मुझ पर प्रसन्न होवे । हे दैत्येन्द्र ! उस सुघोष ने यह उपर्युक्त

मन्त्र पढ़कर उस द्विज श्रेष्ठ को विष्णु बुद्धि से पहिले तो अर्चन किया

और फिर उतनी भूमि का दान कर दिया था । इसके उपरान्त उस

भद्रमति ब्राह्मण ने एक कुटुम्बी श्रोत्रिय हरिभक्त को वह याचना की हुई

भूमि देदी थी । भूमिदान के प्रभाव से वह सुघोष अपना करोड़ों पीढ़ियों

के सहित विष्णु लोक में चला गया था जहाँ कि किसी को भी कोई

शोक नहीं करना पड़ता है । हे वले ! वह भद्रमति भी सम्पत्ति की चाह

किया करता था ॥१६४-१६७॥ अतएव वह सकुटुम्ब वहाँ पर विष्णु

लोक में दस हजार युग तक रहा था । इसके पश्चात् दस सहस्र युग

पर्यन्त उसने ब्रह्म लोक में निवास किया था । इसके अनन्तर इन्द्र के

पदकर पाँच कल्प पर्यन्त उस भद्रमति ने इन्द्रासन पर विराजमान होकर

स्वर्ग लोक का राज्योपभोग किया था । इसके उपरान्त पुनः इस भूमण्डल

मे उत्पन्त होकर सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त किये थे ॥१६८॥१६९॥

जातिस्मयो महाभागो बुभुजे भोगमुत्तमम् ।

ततो भद्रमतिर्देत्य निष्कामो विष्णुतत्पर ॥१७०॥

पृथिवी वृत्तिहीनेभ्यो ब्राह्मणेभ्य प्रदत्तवान् ।

तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा दत्तैश्वर्यमनुत्तमम् ॥१७१॥

कोटिवशसमेतस्य ददौ मोक्षमनुत्तमम् ।

तस्माद् व्यपते मह्य सर्वधर्मपरायण ॥१७२॥

तपश्चरिष्ये मोक्षाय देहि मे त्रिपदा महीम् ।

विरोचनिस्ततो हृष्ट कलश जलपूरितम् ॥१७३॥

आवदे पृथिवी दातु वर्णिने वामनाय ।

विष्णु सर्वगतो ज्ञात्वा जलधाराविरोधिनम् ॥१७४॥

काव्य हस्तस्थदर्भाग्रि तच्छरे सन्धवेशयत् ।

दभग्निभून्महाशस्त्र कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥१७५॥

वह जातिस्मर हो गया था । इसरीति से उस महा भाग ने अनेक उत्तमोत्तम भोगों का भूमि दान की महिमा से उपभोग किया था । हे दैत्यराज । इसके अनन्तर उस भद्रमति विप्र ने निष्काम भाव से भगवान् विष्णु की सेवा में निरन्तर निमग्न होकर वृत्ति विहीन ब्राह्मणों को भूमिका दान दिया था । इससे विष्णु भगवान् ने अपने वित्त में परम प्रसन्न होकर उसको परम श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान किया था ॥१७०॥ १७१॥ उसके पश्चात् उसके कोटिश वशों के सहित श्रेष्ठ भुक्ति प्रदान की थी । अतएव परम धर्म परायण दैत्यराज । भुक्तको केवल तीन पद पृथ्वी दीजिये ॥१७२॥ उस भूमि पर स्थित होकर मैं अपनी भुक्ति प्राप्त करने के लिए तपस्या करूँगा । तब उसी समय में विरोचन के पुत्र राजा बलि ने उन ब्रह्मचारी वायन देव का पृथ्वी का दान प्रदान करने के लिये जल से परिपूर्ण कलश या बरुआ उठाया था । इधर सर्व व्यापक भगवान् ने समझ लिया था कि दैत्य गुरु शुक्राचार्य उस वरदान की जल

की धारा को रोकने के लिए उसमें प्रविष्ट होकर मध्य में स्थित हो गये हैं । अतएव भगवान् ने अपने हाथ के अग्रभाग को उस बरए की टोटी में प्रविष्ट कर दिया था । वहीं पर जो कुशा का अग्रभाग था वह सूर्य की कान्ति के समान महाशस्त्र बनाया था ॥१७३-१७५॥

अमोघ ब्राह्ममत्युग्र काव्याक्षिग्रासलोलुपम् ।

आयाय भार्गव सुरानसुरानेक चक्षुषा ॥१७६

पश्येति वादिदेशे च दर्भाग्र शस्त्रसन्निभम् ।

वलिदंदौ महाविष्णोर्मंही त्रिपदसमिताम् ॥१७७

ववृधे सोऽपि विश्वात्मा आब्रह्मभुवन तदा ।

अमिमीत महीद्वाम्या पदमघा विश्वतनुर्हरि ॥१७८

स आब्रह्मकटाहातपदान्येतानि सप्रभ ।

पादागुष्ठाग्रनिभिन्न ब्रह्माण्ड विभिदे द्विधा ॥१७९

तद्द्वारा ब्राह्मसलिल बहुधार समागतम् ।

धौतविष्णुपद तोय निर्मल लोकपावनम् ॥१८०

आजाण्डवाह्यनिलय धारारूपमवर्त्तत ।

तज्जन पावन श्रेष्ठ ब्रह्मादोन्पावयत्सुरान् ॥१८१

सप्तर्षिसेवित चैव न्यपतन्मेरुमूर्द्धनि ॥१८२

उस समय में शुक्राचार्य के नेत्र को फोड़ने के लिये उत्साही अमोघ अस्त्र का काम किया था और शुक्राचार्य के नेत्र से काने हो गये थे और सब असुरों के समक्ष वे कहने लगे थे—अरे ! इस कुशा के अग्र भाग को देखो जिसने शस्त्र के समान कर्म किया है । इधर राजा वनि व मन देव को तान पैर पृथ्वी का दान करने में तत्पर हो गया था ॥१७६ १७७॥ उसी समय में विश्वात्मा भगवान् हरि जिनका यह सम्पूर्ण विश्व ही शरीर है बढने लग गये थे और भूमि को नापने के लिए उद्यत होकर दा पग से समस्त पृथ्वी को नाप डाला था ॥१७८॥ फिर उनका उठाया हुआ तीसरा वदम जब बढा तो वह ब्रह्माण्ड बटाह

पर्यन्त पहुँच गया था । उस समय मे उनके चरणामुष्ट के अग्रभाग की ठोकर से बटकर उस ब्रह्माण्ड के दो टुकड़े हो गये थे ॥१७६॥ उसी छिद्र से भगवान् विष्णु के चरण के धुलने से परम निमन सोको को पावन अनेक घाराओं वाला जन बाहिर की ओर निकलने लगा था ॥१८०॥ यह पवित्र कर देने वाला परम श्रेष्ठ जल ब्रह्मादिक सब देव-गणों को पवित्र कर ब्रह्माण्ड से बाहिर की ओर निकल आया था और सप्तर्षियों के द्वारा सेवित होकर मेरु पर्वत के शिखर पर पहुँच गया था ॥१८१-१८२॥

एतद् दृष्ट्वाद्भुतं कर्म ब्रह्माद्या देवतागण ।  
 श्लपयो मनवश्चैव ह्यस्तुबन्धुर्विद्वला ॥१८३॥  
 नमः परेशाय परात्मरूपिणे परात्परायापररूपधारिणे ।  
 ब्रह्मात्मने ब्रह्मरतात्मबुद्धये नमोऽस्तुतेऽन्याहतकर्मशीलिने ॥१८४॥  
 पणेश परमानन्द परमात्मन्परात्पर ।  
 सर्वात्मने जगन्मूर्ते प्रमाणातीते ते नमः ॥१८५॥  
 विश्वतश्चक्षुषे तुभ्य विश्वतो याहवे नमः ।  
 विश्वता शिरसे चैव विश्वतो गतये नमः ॥१८६॥  
 एव स्तुतो महाविष्णुर्व्यास स्वर्द्धिवीरसाम् ।  
 दत्त्वामयं च मुमुदे दददेव सनातन ॥१८७॥  
 विरोचनात्मजं दत्तं पदं कार्यं बन्धु ह ।  
 तत् प्रपन्नं तु यत्ति ज्ञात्वा चास्मि रसातलम् ।  
 ददौ तद् द्वारपालश्च भक्तपश्यो बभूव ह ॥१८८॥  
 रसातले महाविष्णुर्विरोचनमुतस्य वै ।  
 विभोज्य कल्पयामास घारे सर्पमयाकुले ॥१८९॥

इस परमाद्भुत कार्य को देखकर ब्रह्मा आदिक देवता ऋषियों की समुदाय और मनु आदि सब बहुत ही रूपों के साथ अत्यन्त विह्वल होकर वामनदेव भगवान् की स्तुति करना लग गये ॥१८३॥ दशगण न

कहा—हे परमेश्वर परमात्मन् ! आप तो पर से भी पर हैं । आप समय पर सगुण स्वरूप धारण करने वाले हैं । आप ब्रह्मात्मक ब्रह्म में परायण आत्म बुद्धि के रूप हैं तथा अव्याहत बर्षों के करने वाले हैं । आप के चरणों में हम सबका सादर प्रणाम समर्पित है ॥१८४॥ हे परमेश्वर परमानन्द स्वरूप परात्पर परमात्मन् ! समस्त प्रमाणों से अतीत ! हे जगन्मूर्ति ! आप सर्वोत्तम हैं आपके लिए हमारा प्रणाम है ॥१८५॥ सबके नेत्रों में आप व्यापक हैं और सर्वत्र आपकी ही भुजाएँ हैं—सब आपके ही शिष्य हैं और आपकी सर्वत्र गति है ऐसे आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम अर्पित है ॥१८६॥ जिस समय में ब्रह्मादिक देवों ने इस प्रकार से भगवान् का सस्तवन किया तो उन परम सनातन देवों के भी देवेश्वर ने देवताओं को स्वर्ग प्रदान करके सबको भय से रहित कर दिया था और उस समय में उनको परम प्रसन्नता हुई थी ॥१८७॥ और एक पग पृथ्वी के लिये उस बलि को बाँध दिया था किन्तु पीछे बलि को शरण में समागत हुआ समझकर उसको रसातल का राज्य प्रदान कर दिया था और स्वयं उसके द्वारपाल बन कर रहने लगे थे । भगवान् अपने भक्त के वश में होकर इस तरह से निवास करने लगे थे ॥१८८॥ श्री नारद जी ने कहा था कि सर्पों के महान् भय से घबड़ा देने वाले उस परम भोयण रसातल में भगवान् विष्णु ने बलि के भोजन के लिए क्या नियत किया था ॥१८९॥

अमन्त्रित हविर्यत्तु हूयते जातवेदसि ।

अपात्रे दीयते यच्च तद्घोर भोगसाधनम् ॥१९०॥

हुत हविरशुचिना दत्त सत्कम यत्कृतम् ।

तत्सर्वं तत्र भोगाहमध पातफलप्रदम् ॥१९१॥

एव रसातल विष्णुबलये मासुराय तु ।

दत्त्वाभयं च सर्वेषां सुराणां त्रिदिव ददौ ॥१९२॥

पूज्यमानोऽमरगणैः स्तूयमानो महर्षिभिः ।

गन्धर्वैर्गीयमानश्च पुनर्वामनतां गतः ॥१६३॥  
 एतद् दृष्ट्वा 'महत्कर्म' मुनयो ब्रह्मवादिनः ।  
 परस्पर स्मितमुखाः प्रणमुः पुण्योत्तमम् ॥१६४॥  
 सर्वभूतात्मको विष्णुर्वामनत्वमुपागतः ।  
 मोहियन्निखिल लोक प्रपेदे तपसे वनम् ॥१६५॥  
 एव प्रभावा सा देवी गङ्गा विष्णुपदोद्भवा ।  
 यस्याः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥१६६॥  
 इदं तु गङ्गामाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि ।  
 'देवालये नदीतीरे सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥१६७॥

श्री समक महामुनि ने कहा—जो बिना ही मन्त्र के उच्चारण  
 किये अग्नि में हवि का होम किया जाता है और जो दान किसी अपात्र  
 को दिया जाता है वह अत्यन्त घोर अन्न बलि का भोग हुआ करता है  
 ॥१६०॥ जिस हवि का अपवित्र दद्या में रहते हुए श्वसन किया जाया  
 करता है तथा दान दिया जाता है या कोई भी सत्कर्म किया जाता है  
 वह नीचे गिर कर देवों को प्राप्त न होकर बलि असुर को ही प्राप्त  
 हुआ करता है ॥१६१॥ इस भाँति समस्त अगुर गणों के सहित बलि  
 को रसातल प्रदान किया था और सब देवों को अभय का दान प्रदान  
 कर उनकी स्वर्ग का राज्य एवं सब वैभव प्रदान किया था ॥१६२॥  
 उस समय में सभी देवगण भगवान् विष्णु देव का यजन करने लग गये  
 थे । महर्षि गण स्तवन करने में परावर्ण हो गये तथा गन्धर्व गान करने  
 लगे थे । इसके पश्चात् भगवान् विष्णु अपना वह विपाल वपु समेट कर  
 पुन वामन रूप हो गये थे ॥१६३॥ इस बहुत ही भारी कार्य को देख  
 कर ब्रह्मवादी मुनिगणों ने परस्पर में मुस्कराकर पुण्योत्तम भगवान्  
 वामन देव को सादर प्रणाम किया था ॥१६४॥ इस रीति से सर्वात्मक  
 विष्णु भगवान् ने रूप धारण कर सब ससार को मुग्ध करके अन्त में  
 तपस्या करने के लिये वे वन में चले गये थे ॥१६५॥ भगवान् विष्णु



के चरण कमल से प्रादुर्भूत हुई गङ्गा देवी का ऐसा प्रभाव है कि इसका स्मरण करने मात्र में ही प्राणी यहाँ पर सभी प्रकार के महान् पापों से छूट जाया करता है ॥१६६॥ इस गङ्गा भागीरथी देवी का माहात्म्य जो पुरुष किसी देवालय में अथवा पवित्र नदी के तीर पर बैठकर पढ़ता है उसको अवश्यमेव यज्ञ करने का पुण्यफल प्राप्त हुआ करता है ॥१६७॥

+++++ ❦

## ॥ इष्टापूर्त फल एवं वीरभद्र नृप चरित्र ॥

श्रुतं तु गङ्गामाहात्म्यं वाञ्छितं पापनाशनम् ।

अधुना लक्षणं ब्रूहि भ्रातर्मे दानपानये ॥१॥

सर्वपापमेव वर्णानां ब्राह्मणः परमो गुरुः ।

तस्मै दानानि देयानि दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥२॥

ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयात्सर्वतो भयवर्जितः ।

न कदापि क्षत्रविशो गृह्णीयाता प्रतिग्रहम् ॥३॥

चण्डस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च ।

स्वकर्मत्यागिनश्चापि दत्ता भवति निष्फलम् ॥४॥

परदारातस्यापि परद्रव्याभिलाषिणः ।

नक्षत्रसूचकस्यापि दत्ता भवति निष्फलम् ॥५॥

असूयाविष्टमनसः कृतघ्नस्य च मायिनः ।

अयाज्ययाजकस्यापि दत्तं ० ॥६॥

नित्ययाज्यापरस्यापि हिंसकस्य खलस्य च ।

रसविक्रयिणश्चैव दत्तं ० ॥७॥

देवाणि श्री नारदजी ने कहा कि मैं स्वयं पापों के विनाश करने वाले गङ्गाजी के माहात्म्य का श्रवण करना ही चाहता था जो अब मैंने आपके अनुग्रह से श्रवण कर लिया है । हे भाई ! अब मेरा यह

निवेदन है कि आप कृपा करके दान का तथा दान देने के लिए समुचित सत्पात्र वा लक्षण बताइये ॥१॥ तब महा मुनि श्री सनकजी ने कहा— ब्राह्मण सब वर्णों में श्रेष्ठ और सबका बड़ा गुरु होता है । अतएव जो मनुष्य दान में दी हुई वस्तु को अनन्त और अक्षय रूप में प्राप्त करने का अभिलाषी है उसे चाहिये ब्राह्मण को ही दान देवे ॥२॥ वमिष्ठ ब्राह्मण भय से रहित होकर सभी वर्णों से दान ग्रहण कर सकता है परन्तु क्षत्रिय और वैश्य को कभी भी दान का ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥३॥ यदि दान का ग्रहण करने वाला ब्राह्मण क्रोधी पुत्र हीन-वन्द्य करने वाला अपने उचित वर्तमान कर्मों को त्याग देने वाला हो तो ऐसे ब्राह्मण को दिया हुआ दान निष्फल ही हुआ करता है ॥४॥ जो पराई स्त्री के साथ गमन करने वाला हो तथा दूसरों के द्रव्य को अपट कर ग्रहण करने की इच्छा रखता हो एक नक्षत्र सूचक ज्योतिषी हो उसको दान देना निष्फल हुआ करता है ॥५॥ जिसके हृदय में सदा ही असूया भरी रहा करती है—जो किये हुये उपकार को न मानने वाला कृतघ्न होता है—जो मायावी एक अपात्र को यज्ञों का यजन कराया करता है ऐसे ब्राह्मण को दान देना भी सर्वथा निष्फल हुआ करता है ॥६॥ जो सर्वदा ही याचना किया करता हो, हिसाबृत्ति वाला हो, अत्यन्त खल कर्म करने वाला हो उसको दिया हुआ दान कभी भी कुछ फल नहीं दिया करता है ॥७॥

वेदविक्रयिणश्चापि स्मृतिविक्रयिणस्तथा ।

धर्मविक्रयिणो विप्र दत्त ० ॥८॥

गानेन जीविवा यस्य यस्य भार्या च पुश्चली ।

परोपतापिनश्चापि दत्त भवति निष्फलम् ॥९॥

असिजीवो मपीजीवी देवलो ग्रामयाजक ।

घावको वा भवेत्तेषा दत्ता भवति निष्फलम् ॥१०॥

पावकर्तुं परस्यार्थं कवये गदहारिणे ।

अभक्ष्यभक्षकस्यापि दत्तं० ॥११॥

शूद्रान्नभोजिनश्चैव शूद्राणां शवदाहिनः ।

पोश्चलान्नभुजश्चापि दत्तं भवति० ॥१२॥

नामविक्रयिणो विष्णोः सध्याकम्भोजितस्य च ।

दुष्प्रतिग्रहदग्धस्य दत्तं० ॥१३॥

दिवाशयनशीलस्य तथा मय्युनकारिणः ।

सध्याभोजिन एवापि दत्तं भवति० ॥१४॥

जो वेद-मृति और अपने धर्म का विक्रय किया करता है उस ब्राह्मण को भी कभी दान नहीं देना चाहिए क्योंकि वह दान निष्फल ही होता है ॥८॥ जो विद्या के यत्न से ही अपनी आजीविका चलाया करता है, जिसको स्त्री व्यभिचार करने वाली होती है, जो दूसरो को सदा सन्ताप दिया करता है उस ब्राह्मण को भी दान देना सर्वथा व्यर्थ ही होता है ॥९॥ जो मलवार से तथा स्याही से अपनी जीविका का परिचालन किया करता है, जो घेतन ग्रहण करके देवों का यजन किया करता है, जो ग्राम याजक एवं हरकारे का कर्म करता है ॥१०॥ जो भगवान् के निमित्त रसोई न बनाकर दूसरो के लिए रसोई में पाचन कर्म किया करता है अर्थात् भगवान् का भोग नहीं लगाता है, जो दान ग्रहण करने के लिए चतुराई प्रकट किया करता है, जो दया से रहित होता है, जो वैद्य वृत्ति किया करता है और जो अभक्ष्य पदार्थों को भोजन किया करता है उस ब्राह्मण को भी कभी दान नहीं देना चाहिए क्योंकि उसका कोई भी फल नहीं हुआ करता है ॥११॥ जो शूद्रों का अन्न खाया करता है । उसको दिया हुआ दान कुछ भी प्रभाव नहीं रखता है, जो शूद्रों के मुर्दों को जलाता है, जो पुश्चती स्त्री के पति का अन्न खाता है उसको दिया हुआ दान भी व्यर्थ ही होता है ॥१२॥ जो स्वयं शक्ति-भट्टा के भाव से न कर घन की प्राप्ति के लिए ही भगवान् विष्णु का पूजन किया करता है, जो सन्ध्या वन्दन नहीं करता है और

जो दुष्प्रतिग्रह से दान ले चुका है ऐसे ब्राह्मण को दिया दान कुछ भी अपना प्रभाव नहीं रखा करता है ॥१३॥ जो ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतु में भी दिन में सोता है, जो दिन के समय में मंथुन किया करता है, जो सन्ध्या के समय में भोजन करता है ऐसे ब्राह्मण को दिया हुआ दान कभी भी सफल नहीं हुआ करता है ॥१४॥

महापातकयुक्तस्य त्यक्तस्य ज्ञातिवान्धवै ।

कुण्डस्य चापि गोलस्य दत्तं भवति० ॥१५॥

परिवित्ते शठस्यापि परिवेत्तुः प्रमादिनः ।

स्त्रीजितस्यातिदुष्टस्य दत्तं भवति० ॥१६॥

मद्यमासाभिनषचापि स्त्रीविटस्यातिलोभिनः ।

चौरस्य पिशुनस्यापि दत्तं ० ॥१७॥

जे शेरिस्सग्निरत्ता निन्दित्ता सुज्जने सदा ।

न तेम्य प्रतिगृहणीयान्न च दद्याद् द्विजोत्तम ।

सत्कर्मनिरतायापि देयं मत्नेन नारद ॥१८॥

महान् श्रद्धया दत्तं तथा विष्णुसमर्पणम् ।

याचितं वापि पात्रेण भवेत्तद्दानमुत्तमम् ॥१९॥

परलोक समुद्दिश्य ह्यहिक वापि नारद ।

महान् दीयते पात्रे तत्काम्यं मध्यमं स्मृतम् ॥२०॥

दम्भेन चापि हिंसार्यं परस्याविधिनापि च ।

क्रुद्धेनाश्रद्धयापात्रे तद्दानं मध्यमं स्मृतम् ॥२१॥

जो गुरु पत्नी समेत जैसे महापापा में दूषित रहा करता है, जो जानि और वाधुमन के द्वारा स्थाप्य किया हुआ है, जो यदि वे जीवित रहते हुए किसी चार के बीम से सम्पुन्न हुआ हो अर्थात् कुण्ड हो, जो गोबर मत्ता बना हो उन ब्राह्मण का दिया हुआ दान कभी फल वाला नहीं हुआ करता है ॥१५॥ बटो बटिन का विवाह न होने पर छोटी बटिन के साथ विवाह करके अपनी पत्नी बना लेना काम्य, बड़े भाई का

विवाह न हाने पर पहिने अपना विवाह कर लेने वाला, शठता रखने वाला, प्रमादशील और जो दुष्ट प्रकृति का तथा स्त्रीजित जो ग्राहण होता है उसको भी कभी दान नहीं देना चाहिए क्योंकि ऐसे विप्र को दिया हुआ सब दान निष्फल ही हो जाया करता है ॥१६॥ मदिरा पान करने वाले, मास का अशन करने वाले और स्त्री के द्वारा की गयी कमाई को खाने वाले, अत्यन्त सालची, चोर वृत्ति वाले एवं घुगली खाने के स्वभाव वाले विप्र को दिया हुआ दान भी विफल हुआ करता है अतः ऐसे ग्राहकों को दूर परखकर ही दान देना चाहिए ॥१७॥ जिन पापों में डूबे रहने वाले लोगों की सज्जन पुरष निन्दा किया करते हो । हे द्विजवर ! ऐसे विप्रों को भी कभी दान न देवे और ऐसे विप्रों से दान लेना भी नहीं चाहिए । हे नारद ! जो सदा सत्कर्मों के अनुष्ठान में ही प्रवृत्ति रखा करते हैं उन्हीं को प्रबरा प्रयत्न करके दान देना चाहिए ॥१८॥ जो दान के पात्र के द्वारा याचना करने पर भगवदर्पण की भावना से परम श्रद्धा से साथ दान दिया जाया करता है वह ही परमोत्तम दान कहा जाता है और उसी का पुण्य फल भी यथावत् प्राप्त होता है । वैसे ही कुछ किसी को दे देने का नाम दान नहीं हुआ करता है ॥१९॥ हे नारद ! ऐदनीकिक और पारलौकिक किसी भी सुख-सौभाग्य के प्राप्त करने की इच्छा से जो दान उचित पात्र को दिया जाता है वह मध्यम श्रेणी का दान कहा जाता है क्योंकि इसमें अपनी कामना पहिने ही से लिये हुए होती है ॥२०॥ जो दान दम्भपूर्वक शत्रु की हिंसा के उद्देश्य से विधि विहीन रीति से क्रोधावेश में भरकर अश्रद्धापूर्वक किसी अपात्र को दान किया जाया करता है वह निकृष्ट श्रेणी का दान होता है ॥२१॥

अधम वलितोपाय मध्यम स्वार्थसिद्धये ।

उत्तम हरिप्रीत्यर्थ प्राहुर्वेदविदा वरा ॥२२॥

दानशोगविनाशाश्च राय स्युर्गंतयस्त्रिधा ।

यो ददाति च नो भुक्ते तद्धन नाशकारणम् ॥२३॥  
 धन धर्मफल विप्र धर्मो माधवतुष्टिकृत् ॥२४॥  
 तरव किं न जीवन्ति तेऽपि लोके परार्थका ।  
 यत्र मूलफलवृक्षा परकार्यं प्रकुर्वन्ते ॥२५॥  
 मनुष्या यदि निप्राग्रथ न परार्थान्तदा मृता ।  
 परकार्यं न ये मर्त्या वायेनापि धनेन वा ॥२६॥  
 मनसा वचसा वापि ते ज्ञेया पापवृत्तमा ।  
 अत्रेतिहाम वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वत ॥२७॥  
 यत्र दानादिमाना तु लक्षणं परिकीर्तितम् ।  
 गङ्गामाहात्म्यसहितं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२८॥

परम श्रेष्ठ वशो व जाना याग कहा करत हैं अग्रम दान म  
 यति मनुष्ट होत है, स्वार्थ को निष्ठि क लिए जा भी कुछ दान दिया  
 जाता है वह मध्यम है तथा उत्तम दान म भगवान प्रमन हुआ करत  
 है ॥२२॥ गंगार म जिस धन क प्राप्त करन की बहुधा सभी का  
 तानमा रहा जाती है उम धन की दान, भाग और विनाश य तीन  
 ही गतियां हुआ करती है । जो सर्वोत्तम यति धन का दान होगा है  
 उम दान का कभी नही करना है और न स्वय ही उसका उपमान  
 दिया करता है उम धन की अन्तिम यति विनाश ही होनी है । चाह  
 पार पुरा सबे से ह किनी ऐन क रूप म वह पद जाव जा इसका युग  
 तरव म दुःखमाग रूप अपमम करक शीघ्र ही विनष्ट कर दिया जाता  
 है ॥२३॥ ह विप्र ! धन का वास्तविक पथ धर्म करना ही जाना है  
 और धर्म यही है जा भवन आराध्य देव भगवान की प्रसन्नता प्राप्त  
 करना क निम निरा जाया जाता है । इन जट युग क जीवन भी  
 गंगार म दुःखे प्राणिमा क कार्यो की निष्ठि क नियत हा जागा है । जब  
 य महात जब युग भी पून, पन पुन पन, बारन छाया और बाह  
 के द्वारा सदा पराधकार दिया जाता है और माना दुःख क ही नि

उत्पन्न होकर जीवन व्यतीत किया करते हैं ॥२४॥२५॥ तो हे विप्र-  
श्रेष्ठ । ये मनुष्य जो सब कुछ ज्ञान रखने वाले होते, हुए भी दूसरो के  
काम मे कुछ भी नहीं आया करते हैं और दूसरो का कार्य कभी सिद्ध  
नहीं करते हैं तो उनके जीवन रहते हुए भी वे मृत के ही समान होते  
हैं । जो मनुष्य, तन, मन, वचन, धन किसी के द्वारा भी दूसरो की  
भलाई नहीं किया करते हैं उन को इस ससार मे महान् घोर पापी ही  
समझना चाहिए । हे नारद । इस विषय की पुष्टि के लिये आपको मैं  
एक ऐतिहासिक घटना की चर्चा करता हूँ । आप इसको परम समा-  
हित होकर श्रवण करिए ॥२६-२७॥ इस वर्णन मे दानो के विविध  
भेदों का वर्णन है और समस्त प्रकार के महापातको को विनष्ट कर देने  
वाला श्री गङ्गा की महिमा का भी वर्णन है ॥२८

भागीरथस्य धर्मस्य सवाद पुण्यकारणम् ।

आसीद्भगीरथो राजा सगरान्वयसभवः ॥२६

शशास पृथिवीमेता सप्तद्वीपा ससागराम् ।

सर्वधर्मरतो नित्यं सत्यसंधः प्रतापवान् ॥३

कन्दर्पसदृशो रूपे यायजू को विचक्षणः ।

प्रालेयाद्रिसमो धैर्ये धर्म धर्मसमो नृपः ॥३१

सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।

सर्वसपत्समायुक्तः सर्वानन्दकरो मुने ॥३२

आतिथ्यप्रयतो नित्यं वासुदेवार्चने रतः ।

पराक्रमी गुणनिधिर्मित्रः कारुणिकः सुधीः ॥३३

एतादृशं तं राजानं ज्ञात्वा हृष्टो भगीरथम् ।

धर्मराजो द्विजश्रेष्ठ कदाचिद् द्रष्टुमागतः ॥३४

समागतं धर्मराजमहंयामास भूपतिः ।

शास्त्रदृष्टेन विधिना धर्मं प्रीत उवाच तम् ॥३५

इस चर्चा में धर्मराज राजा भागीरथ का भी परम पुण्यप्रद  
सम्वाद भी आता है । यह राजा भगीरथ महाराज सगर के यश

मे ही समुत्पन्न हुए थे ॥२६॥ राजा भगीरथ ने सातो द्वीप और सातो समुद्र तक की भूमि पर अपना शासन किया था । वे धर्म के सभी अङ्गों का पूर्णतया परिपालन करने वाले और सर्वदा सत्य प्रतिज्ञा करने वाले तथा महान प्रतापी हुए थे ॥३०॥ सुन्दरता में वे कामदेव के समान परम सुन्दर रूपवान् हुये थे । वे विलक्षण यज्ञों का ध्वज वारम्बार किया करते थे । राजा भगीरथ धर्म में हिमालय के सट्टा और धर्म कर्मों में साक्षात् धर्मराज के ही तुल्य थे ॥३१॥ हे मुनिवर ! वह राजा भगीरथ सभी सुन्दर सत्तियों से शोभा सम्पन्न समस्त शास्त्रों के तात्पर्य को भलीभाँति समझने वाले सभी तरह की सम्पत्ति के वैभव से भरे पूरे और सबको सर्वदा आनन्दानन्द प्रदान करने वाले हुए थे ॥३२॥ वे सदा समागत हुए अतिथियों का स्वागत सत्कार करने वाले तथा भगवान् वासुदेव के अर्चन में सदा परायण रहने वाले थे । वे परम पराक्रमशील, सक्त सद्गुणों के निधान, अनिशय कष्टनाश करने वाले तथा मंत्री करने के योग्य और सद्युद्धि से सुसम्पन्न थे ॥३३॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जब राजा की इस प्रकार की प्रशंसा का ध्वज किया तो धर्मराज अधिक प्रसन्न हुये और एक बार वे स्वयं ही इनका दर्शन करने के लिये वहाँ पर चले आये थे ॥३४॥ श्रीमान् धर्मराज के वहाँ पर पदार्पण करने पर राजा भगीरथ ने उनका शास्त्रीय विधि विधान से स्वागत एवं अतिथि सत्कार किया था । उस समय मे परम प्रसन्न होकर उनसे कहा था ॥३५॥

राजन्धर्मविदा श्रेष्ठ प्रसिद्धोऽसि जगत्त्रये ।

धर्मराजोऽथ कीर्ति ते श्रुत्वा त्वा द्रष्टुमायत ॥३६॥

सन्मार्गनिरत सत्य सर्वभूतहिते रतम् ।

द्रष्टुमिच्छन्ति विबुधास्तवोत्कृष्टगुणप्रिया ॥३७॥

कीर्तिर्नीतिश्च सपत्तिर्वर्तते यत्र भूपते ।

वसन्ति तत्र नियत गुणास्सन्तश्च देवता ॥३८॥



अहो राजन्महाभाग शोभन चरितं तव ।

सर्वभूतहितत्वादि मादृशमपि दुर्लभम् ॥३६

इत्युक्तवन्त धर्मं प्रणिपत्य भगीरथ : ।

प्रोवाच विनयाविष्टः सहृष्टः श्लाक्षण्या गिरा ॥४०

भगवन्सर्वधर्मज्ञ समदर्शिन् सुरेश्वर ।

कृपया परयाविष्टो यत्पृच्छामि वदस्व तत् ॥४१

धर्मा कीदृग्विधाः प्रोक्ताः के लोका धर्मशालिनाम् ।

कियत्यो यातनाः प्रोक्ताः केपा ताः परिकीर्तिताः ॥४२

धर्मराज ने उनसे कहा—हे धर्म के ज्ञान रखने वाली मे परम श्रेष्ठ राजन । आपका सुयश त्रैलोक्य में प्रचिन है अतएव मुझको भी आपकी विशद कीर्ति को सुन समझकर मनमें प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई थी कि मैं आपके एक बार स्वयं चल कर दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य लूँ और आपके परम श्रेष्ठ गुणों से समाकुष्ट होकर ही मैं आपके समीप में आया हूँ । आपके सद्गुण ही ऐसे हैं कि सभी देव-गण आपके दर्शन करने की उत्सुकता रखा करते हैं क्योंकि आप सन्मार्ग परायण, सदा सत्य भाषण करने वाले और समस्त प्राणियों के हित में संलग्न रहने वाले महानुभाव हैं ॥३६-३७॥ हे राजन ! यह सर्वाधिक नियम ही होना है कि जहाँ पर नीति, कीर्ति और सम्पत्ति हुआ करती है वहाँ पर सभी सद्गुण, सज्जन पुरुष और देव वृन्द भी स्वयं ही खिंचे चले आया करते हैं ॥३८॥ हे महाभाग ! आपका चरित्र परम शोभन है । आपके हृदय में जो प्राणीमात्र के हितों का सम्पादन करने आदि के जो अद्भुत गुण विद्यमान हैं वे हम लोगों में भी कटिनाई से होते हैं ॥३९॥ जब धर्मराज ने इस तरह से प्रशंसा की थी तो राजा भगीरथ ने उनको प्रणाम किया और अत्यधिक प्रसन्न होकर विनय के साथ मयूर वाणी से निवेदन किया था ॥४०॥ राजा भगीरथ ने कहा—हे सर्व धर्मों के ज्ञाता ! आप तो समदर्शी हैं

और मुरेश्वर हैं । मैं इस समय में जो पूछना चाहता हूँ उसके विषय में आप कुछ वर्णन करने की कृपा कीजिये । आपका मुझ पर परम अनुग्रह होगा ॥४१॥ धर्मों का स्वरूप क्या-क्या है ? धर्म कर्मों के करने वाले पुरुषों को कौन-कौन से लोकों का निवास प्राप्त हुआ करता है ? नरकों की यातनाये कितनी हैं ? वे नारकीय यातनाये किनको भोगनी पड़नी हैं ? ॥४२

त्वया संमाननीया ये शासनीयाश्च ये यथा ।  
तत्सर्वं मे महाभाग विस्तराद्वक्तुमर्हमि ॥४३॥  
साधु साधु महाबुद्धे मतिस्ते विमलोजिता ।  
धर्माधर्मात्प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु भक्तितः ॥४४॥  
धर्मा बहुविधा प्रोक्ता पुण्यलोकप्रदायकाः ।  
तथैव यातना प्रोक्ता असंख्या धोरदर्शनाः ॥४५॥  
विस्तरादगदितुं नालमपि वर्षशतायुतं ।  
तस्मात्समासतो वक्ष्ये धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४६॥  
वृत्तिदानं द्विजानां वै महापुण्यं प्रकीर्तितम् ।  
सथैवाध्यात्मविदुषो दत्ता भवति चाक्षयम् ॥४७॥  
कुटुम्बिनं वा शास्त्रज्ञं श्रोत्रियं वा गुणान्वितम् ।  
यो दत्त्वा स्थापयेद्धृतिं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥४८॥  
मातृतं पितृतश्चैव द्विजः कोटिकुलान्वितः ।  
निविश्य विष्णुभवनं कल्पं तत्रैव भोदते ॥४९॥

हे महाभाग । आप तिन प्राणियों का सत्कार किया करते हैं और कौन से लोगों को दण्ड दिया करते हैं ? अब आप कृपा करके इन सब बातों का मेरे समक्ष में विस्तृत वर्णन कीजिये ॥ ४३ ॥ इस प्रकार से राजा भगीरथ के द्वारा जिज्ञासा करने पर धर्मराज ने कहा—हे महान बुद्धि वाले राजन बहुत ही अच्छे २ आपने प्रश्न किये हैं । आपकी बुद्धि बहुत ही विमल एवं उदार है । मैं आपके

प्रश्नों का समुचित उत्तर निवेदित करता हुआ इस समय में सभी धर्मों और अधर्मों के विषय में वर्णन करता है आप भक्ति पूर्वक उन परम तार्किक बातों का श्रवण कीजिये ॥४४॥ शास्त्रों में पुण्य लोको को प्रदान कराने वाले बहुत से कर्मों का वर्णन किया गया है और जैसी भाँति महान भीषण दिखाने वाली विविध नरकों की यातनाओं का भी वर्णन किया गया है ॥४५॥ यदि इन सबका शास्त्रों के अनुसार विस्तृत वर्णन किया जावे तो दश लाख वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है अतएव आपके प्रश्नों के अनुसार में यहाँ पर आपके सामने परम संक्षेप से धर्माधर्मों का दिग्दर्शन कराता हूँ ॥४६॥ ब्राह्मणों के लिए वृत्ति का बाधना परम पुण्यप्रद कार्य है और जो किसी अक्यात्मवादी को दान दिया जाता है वह अक्षय हुआ करता है ॥४७॥ किसी कुटुम्ब परिवार वाले पुरुष की,, शास्त्रों के ज्ञाता, गुणगण सम्पन्न श्रोत्रिय की जो वृत्ति बाँधता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसका श्रवण आप करिये ॥४८॥ वह ब्राह्मण अपने पितृकुल और मातृकुल की करोड़ों पीड़ियों को विष्णु लोक में प्रविष्ट कराकर वहाँ पर एक कल्प पर्यन्त आनन्द का लाभ लिया करता है ॥४९॥

गण्यन्ते पासवो भूमेर्गण्यते वृष्टिविन्दव ।

न गण्यन्ते विधानापि ब्रह्मवृत्तिफलानि वै ॥५०॥

ससस्तदेवतारूपो ब्राह्मण परिकीर्तित ।

जीवन ददतस्तस्य व पुण्य गदितु क्षम ॥५१॥

यो विप्रहि नवृन्नित्य स सर्वाकृतवान्मखान् ।

स स्नात सर्वतीर्थेषु तप्त तेनाखिल तप ॥५२॥

यो ददस्वेति विप्राणा जीवन प्रेरयेत्परम् ।

सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितै ॥५३॥

तडाग कारयेद्यस्तु स्वयमेवापरेण वा ।

वक्तु तत्पुण्यसंख्यानं नालह वर्षशतायुषा ॥ ५४॥

एकश्चेदध्वगो राजस्तडागस्य जल पिवेत् ।  
तत्कतुं सर्वपापानि नैश्यन्त्येव न सशय ॥५५॥  
एकाहमपि यत्कुर्याद्भू मिस्थमुदकं नर ।  
स मुक्तः सर्वपापेभ्यः शतवर्षं वसेदिदमि ॥५६॥

घूस के कण और वर्षा की बूँद भी किसी प्रकार से गिनी जा सकती है जिनकी गणना करना नितांत असम्भव होता है अथवा की तो बात ही क्या है यदि विद्याता भी चाहे तो उस ब्रह्मावृत्ति प्रदान करने वाला क पुण्य फलों की गणना नहीं कर सकता है ॥५०॥ ब्राह्मण सभी देवों का स्वरूप होता है । उसकी जो जीविका बाँध देता है उसके महान पुण्य फल के विषय में किसी शक्ति है जो उनका वणन कर सके ॥५१॥ निरन्तर विप्रों के नियमित हितप्रद कार्य किया करता है उसको तो यो समझना चाहिये कि उसने समस्त यज्ञों का यजन कर लिया है समस्त तीर्थों में उसने अवयाहन कर लिया है और सभी प्रकार की तपश्चर्या भी वह पूरा कर चुका है ॥ ५२ ॥ जो प्राणी दूसरे जीवों को ब्राह्मणों की आजीविका बाँधने के लिये प्रेरित किया करता है उसको भी यही पुण्य फल प्रदान किया जा सकता है ॥५३॥ जो स्वयं किसी तालाब आदि जलाशय का निर्माण कराता है या करता है उसका इतना अधिक पुण्य होता है कि उसकी गणना भी बप की पूरी लम्बी आयु में भी नहीं की जा सकती है ॥५४॥ हे राजन् ! यदि कोई एक पशु भी उस तालाब में स जलपान कर लेता है तो उस तालाब के निर्माण करने वाले के सभी पापों का विनाश हो जाया करता है ॥५५॥ जो बड़े मनुष्य एक दिन के पान करने के नायक भी जल उस तालाब में कर दिया करता है वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर सौ वर्ष तक स्वर्ग में निवास किया करता है ॥५६॥

कतु तडाग यो मत्स्य साह्यक शक्तितो भवत् ।

सोऽपि तत्फलमाप्नोति तुष्ट प्रेरक एव च ॥५७॥  
 मृद सिद्धार्थमात्रा वा तडागाद्यो वहि क्षिपेत् ।  
 तिष्ठत्यब्दशत स्वर्गे विमुक्त पापकोटिभिः ॥५८॥  
 देवता यस्य तुप्सन्ति गुरवो वा नृपोत्तम ।  
 तडागपुण्यभावस त्यादित्येषा शाश्वती श्रुति ॥५९॥  
 इतिहास प्रवक्ष्यामि तवान नृपसत्तम ।  
 य श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशय ॥६०॥  
 गौडदेशेऽतिविद्ययातो राजासीद्वीरमद्रक ।  
 महाप्रतापो विद्यावान्सदा विप्रपूजक ॥६१॥  
 वेदशास्त्रकुलाचारयुक्तो मित्रविवर्धन ।  
 तस्य राज्ञी महामाया नाम्ना चम्पकमञ्जरी ॥६२॥  
 तस्य राज्ञी महामाया कृत्याकृत्यविचारणा ।  
 धर्माणा धर्मशास्त्रैस्तु सदा कुर्वन्ति निश्चयम् ॥६३॥

जो मनुष्य तालाब के निर्माण कराने में अपनी शक्ति के अनुरूप सहायता दिया करता है उसको तथा तालाब के निर्माण में लिये चन्दा आदि करने वाले तथा प्रेरणा देने वाले को भी यही फल प्राप्त हुआ करता है ॥५७॥ जो मनुष्य तालाब के निर्माण होने के समय में तालाब की मिट्टी को निकाल कर बाहर की ओर फेंकता है उसको भी ऐसा पुण्य मिलता है कि वह भी करोड़ों पापों से मुक्त होकर सी वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में वास किया करता है ॥५८॥ हे नृप-श्रेष्ठ । ऐसी एक परम प्राचीन काल से चली आने वाली श्रुति है कि जिस मनुष्य पर गुरु और देवगण परम प्रसन्न हुआ करते हैं उसी को तालाब बनवाने का महान पुण्य प्राप्त हुआ करता है ॥५९॥ हे राजन् । इस विषय में मैं आपको एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन करता हूँ उसका श्रवण करने वाला पुरुष भी सम्पूर्ण पापों से मुक्त होजाया करता है ॥६०॥ गौड देश में वीरभद्र नाम का एक राजा था जो

महान् प्रतापी, विद्यावान् और ब्राह्मणों की पूजा करने वाला परम प्रसिद्ध था ॥६१॥ वह राजा वेद शास्त्र और कुल के उपचारों का पूर्णतया पालन किया करता था तथा अपने मित्रों की वृद्धि करता था । उस राजा की परम भाग्यशालिनी रानी का नाम चम्पक-मजरी था ॥६२॥ उस राजा के जो प्रधान मन्त्री थे वे भी वृत्त्य-अवृत्त्य का भली भाँति से विचार करने वाले थे । उनका कर्त्तव्य यही था कि धर्मशास्त्रों के द्वारा ही पूर्णतया निर्णय किया करते थे ॥६३॥

प्रायश्चित्त चिकित्सा च ज्योतिषे धर्मनिर्णयम् ।

विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ह्यघातकम् ॥६४॥

इति निश्चित्य मनसा मन्वादीरितधर्मकाम् ।

आचार्यैर्म्य सदा भूष शृणोयि विधिपूर्वकम् ॥६५॥

न कोऽप्यन्यायवर्ती च तस्य राज्येऽवरोऽपि च ।

धर्मेण पाल्यमानस्य तस्य देशस्य भूपते ॥६६॥

जात समत्वं स्वर्गस्य सौराज्यस्य शुभावहम् ।

स चैकदा तु नृपतिमृंगयाया महावने ॥६७॥

मन्त्र्यादिभिः परिकृतो बभ्राम मध्यभास्करम् ।

दैवादागेष्टशून्यस्य ह्यतिश्रान्तस्य तत्र वै ॥६८॥

नृपरीतस्य सजात सरमो दर्शनं नृप ।

ततः शुष्का तु सरसी दृष्ट्वा तत्र व्यचिन्तयत् ॥६९॥

किमयं सरसी शृगे भुवः केन विनिर्मिता ।

कथं जलं भवेदत्र येन जीवेदयं नृप ॥७०॥

पापी का प्रायश्चिन्तन, रागों की चिकित्सा, ज्योतिष और धर्म के विषय में जो बिना शास्त्र का विचार किये हो सहसा कुछ बोल देता है वह ब्रह्म पातक के समान ही महा पापी होता है ॥ ६४ ॥ अपने हृदय में इन सभी बातों का भली भाँति विचार करने हो यह सर्वदा मनु आदि महर्षियों के द्वारा वर्णित छमों के विषय में सदा ही विद्वान्

आचार्यों से श्रवण किया करता था ॥६५॥ उच्च वर्णों की तो यात ही क्या है उसके राज्य में कोई शूद्र भी अधर्म का कार्य नहीं किया करता था । धर्म के साथ परिपालन करते हुए उस राजा के देश में जो स्वराज्य था उसमें और स्वर्ग में सभी समान ही कल्याणकारी बातें दिखलाई दिया करती थी । एक समय की बात है कि वह वीर-भद्र राजा मृगया के लिये वन में गया था ॥६६॥६७॥ वह मध्याह्न के समय में पूरा दिन वन में अपने मन्त्रियों के साथ में इधर-उधर भ्रमण करता रहा किन्तु उसे देवाक्ष उस दिन कोई भी शिकार नहीं मिली थी । राजा घूमते हुए बहुत ही अधिक थक गया था । इसी बीच में उसको उस महान् घोर वन में एक बावड़ी दिखलाई दी थी । उस बावड़ी को मनुष्य चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये थे । उस समय में बुद्धिसागर नामक मन्त्री ने उस बावड़ी को शुष्क देख कर अपने मन में विचार किया था ॥६८॥६९॥ यह पर्वत की चोटी पर किमने मिट्टी से एक बावड़ी का निर्माण कर दिया है । इसमें अब जल किस प्रकार से होवे जिससे इस परम परिश्रान्त राजा में जीवन कैसे आवे ॥७०॥

ततो बुद्धि समभवत्खाते तस्या नृपोत्तम ।  
 हस्तमात्र ततो गर्तं खात्वा तोयमवाप्तवान् ॥७१॥  
 तेन तोयेन पीतेन राजस्तृप्तिरजायत ।  
 मन्त्रिणश्चापि भूमौश बुद्धिसागरसज्जन ॥७२॥  
 स बुद्धिसागरो भूप प्राह यमार्थकोविद ।  
 राजन्निय पुष्करिणी वर्षाजलवती पुरा ॥७३॥  
 अद्यना वद्धवप्रा च कर्तुं जाता मतिर्मम ।  
 तद्भवान्मोदता देव दत्तादाज्ञा च मेऽनघ ॥  
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य मन्त्रिणो नृपसत्तम  
 गुमुर्देर्जाततरा भूप स्वयं गर्तुं समुद्यत ॥७४॥

तमेव मन्त्रिण तत्र युयोज शुभकर्मणि ।

ततो राजाज्ञया सोऽपि बुद्धिसागरको मुदा ॥७६॥

सरसी सागर कर्त्तुं मुद्यत पुण्यकृतम् ।

धनुषा चैव पञ्चाशत्सर्वतो विस्तृतायताम् ॥७७॥

सरसी वद्धसुशिला चकारागाधश-वराम् ।

ता विनिर्माय सरसी राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥७८॥

उस समय मैं उसने बुद्धिमान का मन में विचार किया था और एक हाथ का गड्ढा खोद दिया तो उसमें जल प्राप्त हो गया था ॥७९॥ हे राजन् ! उस जल के पान करने से राजा को तृप्ति हुई थी और बुद्धिसागर नाम वाला मन्त्री भी जल पीकर तृप्त हो गया था ॥८०॥ उस समय में धार्मिक कार्यों के करने में परम कुशल उस मन्त्री ने राजा से प्रार्थना की थी कि हे राजन् ! पहिले यह बावड़ी बना के ही जल से भरी हुई थी ॥८१॥ अब इसकी ठीक रचना कराकर सुंदर स्वरूप इसका बनवाने का मेरा विचार है । हे देव ! यदि मरे इस प्रस्ताव का अनुमोदन करे तो हे निष्पाप ! मुझे इस कार्य के सम्पादन करा देने की आज्ञा प्रदान करें ॥८२॥ अपने महान् मेधावी मन्त्री की इस वान का श्रवण कर वह श्रेष्ठ शिरोमणि राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ था तथा बावड़ी की ठीक रचना कराने के कार्य के लिये स्वयं भी समुद्यत हो गया था ॥८३॥ राजा ने इस परम शुभ काम का सम्मन्न कराने के लिये उसी बुद्धिसागर मन्त्री की नियुक्ति कर दी थी । इस पुण्य कर्म के करने के लिय परमेश्वर बुद्धिसागर राजा की आज्ञा पा कर परम प्रसन्न होकर उस बावड़ी को एक उत्तम सरोवर बनवाने के लिय तैयार हो गया था । उस मन्त्री ने फिर वहाँ पर चारों ओर स पचास धनुष की जैली हुई चौड़ी पाषाण की भित्तिवाला परम मनोहर सरोवर बनवा दिया था । फिर तो उमम अपाघ जल हा गया था । इस रीति में जब वह सरोवर पूज्यता तैयार हो गया तो मन्त्री ने राजा को खबर दी थी ॥८६॥ ७८॥



तस्या तत प्रभृति वै सर्वेऽपि वनचारिणः ।  
 पान्था पिपासिता भूप लभन्ते स्म जल शुभम् ॥७६॥  
 कदाचित्स्वायुषश्चान्ते स मन्त्री बुद्धिसागरः ।  
 प्रमृतो गतवाल्लोक लोकशास्तुर्मम प्रभो ॥७७॥  
 तदर्थं तु मया पृष्टो धर्मो धर्मलिपिकरः ।  
 चित्रगुप्तस्तु तत्कर्म मह्य सर्वं न्यवेदयात् ॥७८॥  
 उपदेष्टा स्वयं चासौ धर्मकार्यस्य भूपते ।  
 तस्मद्धर्मविमानं तु समारोढुमिहार्हंति ॥७९॥  
 इत्युक्ते चित्रगुप्तेन समाज्ञप्तो मया नृप ।  
 विमानं धर्मसज्जं तु आरोढु बुद्धिसागरः ॥८०॥  
 अथ कालान्तरे राजन्स राजा वीरभद्रकः ।  
 मृतो गतो मम स्थानं नमश्चक्रे मुदान्वितः ॥८१॥

मन्त्री ने राजा के समीप में यह सम्वाद भिजवाया था कि  
 उस सरोवर के निर्माण होने के पश्चात् सुन्दर निर्मल जल हो गया  
 है और अब उसी दिन से उस सरोवर में वनवासी और यात्री लोग  
 सभी इसके पवित्र जल का पान करने लग गये हैं । ७६॥ हे राजन् !  
 एक समय आ गया कि आयु के पूर्ण होआने पर वह बुद्धिसागर मन्त्री  
 मर गया था । मुझे तो इस समार को शिक्षा देनी ही पड़ती है । अतः  
 एव जब वह मेरे सांक में समागत हुआ तो मैंने धर्म को लिपिबद्ध  
 करने वाले चित्रगुप्त से कहा और उस बुद्धिसागर मन्त्री के धर्म के  
 विषय में प्रश्न किया था । उस समय चित्रगुप्त ने इसका किमा हुआ  
 सभी कर्म मुझे बतलाया था ॥७७॥७८॥ उसने कहा था कि इस  
 मन्त्री ने इस धर्म के कार्य का राजा को स्वयं ही उपदेश दिया था ।  
 अतएव यह धर्म-विमान पर चढ़ने का पात्र है ॥७९॥ हे राजन् !  
 चित्रगुप्त ने द्वारा इस बात के कहने पर मैंने उस बुद्धिसागर राजा के  
 मन्त्री का धर्म नाम वाले विमान पर समारोहण करने का आज्ञापत्र

दे दिया था ॥ ८३ ॥ इस के उपरान्त कुछ समय के व्यतीत हो जाने पर वह राजा वीरभद्रभी आयु के समाप्त हो जाने पर मृत्यु प्राप्त करके मेरे दरबार में उपस्थित हो गया था । उस राजा ने बहुत ही प्रसन्नता के साथ वहाँ आकर मुझे प्रणाम किया था ॥ ८४

मया तु तत्र तस्यापि दृष्टं कर्माखिलं नृप ।

कथितं चित्रगुप्तेन धर्मं सरसिसम्भवम् ॥ ८५

तदा सम्यङ्गया राजा बोधितोऽभूद्यथा शृणु ।

अधित्यकाया भूपाल सैकतस्य गिरेः पुरा ॥ ८६

लावकेनामुना चञ्च्वा खातं द्वयं ज्ञं तमम्बुनि ।

ततः कालान्तरे तेन वाराहेण नृपोत्तम ॥ ८७

खनितं हस्तमात्रं तु जलं तुण्डेन चारुमनः ।

ततोऽन्यदाऽमुया काल्या हस्तयुग्ममितं कृतः ॥ ८८

खातो जले महाराज तोय मासद्वयं स्थितम् ।

पीतं क्षुद्रैर्वनचरैः सत्त्वैस्तृष्णासमाकुलं ॥ ८९

ततो वर्षप्रयान्ते तु गजेनानेन सुव्रत ।

हस्तत्रयमितं खातं कृतस्तत्राधिकं जलम् ॥ ९०

मासत्रये स्थितं तच्च पयो जीवैर्वनेचरैः ।

भवास्तत्र समायातो तलशोपादनन्तरम् ॥ ९१

हे राजन् । मैंने फिर चित्रगुप्त से उस राजा के धर्म के विषय में पूछा तो उसने उस राजा के धर्म के सम्बन्ध में सरोवर के निर्माण में मिले हुए उसी धर्म का वर्णन किया था ॥ ८५ ॥ उस समय में मैंने उस राजा को विस्तार के साथ बतलाया था । अब आप उसका श्रवण करिए । मैंने कहा था—हे राजन् । पहिले इस राजा ने इस पहाड़ की तलहटी की रज में अपनी चोंच सदा अगुल जा गत बनाकर जल निकाला था । हे नृप श्रेष्ठ । इसके पश्चात् किसी समय में एक शूँकर ने अपनी सूँठ में एक हाथ का उसी जगह पर एक गड्ढा बना दिया

था ॥८६॥८७॥८८॥ हे राजन् उस गर्त में दो मास तक जल बना रहा था और प्यास से पबड़ाये हुए छोटे वन के जीव जन्तुओं ने उसके जल का पान कर अपनी पिपासा को शान्त किया था ॥ ६६ ॥ हे सुव्रत ! फिर जब तीन वर्ष व्यतीत होगये थे तो इस हाथी ने उसी जगह पर एक तीन हाथ का गर्त खोदकर बना दिया था और उसमें कुछ अधिक जल रहने लगा था । वह जंगली जीवों के लिये तीन मास तक बराबर बना रहा था । इसके उपरान्त जब उसका जल सूख गया तो आप वहाँ पर पहुँच गये थे ॥६७॥

मासे तत्र तु संप्राप्त हस्तं खात्वा जलं नृप ।

ततस्तस्योपदेशेन मन्त्रिणे नृपते त्वया ॥६८॥

पञ्चाशद्वनुरुत्खातं जातं तत्र महाजलम् ।

पुनः शिलाभिः सुदृढं बद्धं जातं महत्सरः ।

वृक्षाश्च रोपितास्तत्र सर्वलोकोपकारिणः ॥६९॥

तेन स्वस्वेन पुण्येन पञ्चैते जगतीपते ।

विमानं धर्म्यमाख्यास्त्वमप्येन समारुह ॥७०॥

इति वाक्यं समाकर्ण्य मम राजा स भूमिप ।

आहरोह विमानं तत्पथो राजा समाशभाक् ॥७१॥

इति ते सर्वमाख्यातं तडागजनितं फलम् ।

श्रुत्वैयम्भुच्यते पापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥७२॥

यो नरः श्रद्धया युक्तो व्याख्यातं शृणुयात्पठेत् ।

सोऽप्याप्नोत्यखिलं पुण्यं सरोनिर्माणसम्भवं ॥७३॥

हे राजन् ! फिर वही पर एक हाथ का गर्त खोदने पर ही आपको उसमें जल की प्राप्ति होगई थी फिर आपने अपने मन्त्री के उपदेश से पचाम धनुष का मैदान खुदवा कर उसमें बहुत अधिक जल भर दिया था और पाषाणों के द्वारा एक गरम सुन्दर पक्का पाट बनवा कर बहुत ही अच्छा एक सरोवर का निर्माण करा दिया था

और उसके आस-पास सबके उपकार करने वाले अनेक वृक्षों का भी आरोपण करा दिया था ॥६२॥६३॥ हे राजन् । उमी किये हुये अपने अपने पुण्य के प्रभाव से ये पाँचो धर्म के नाम वाले विमान पर चढ़ चुके हैं अब आप भी उस पर समासुद्ध होइये ॥६४॥ हे राजन् । मेरे इस वचन को सुनकर वह छटा राजा भी जो उस जलाशय के निर्माण से उत्पन्न धर्म का समभायी था उस विमान पर चढ़ गया था ॥६५॥ तालाब के निर्माण करने का जो महान पुण्य होता है उसका वर्णन मैं आपको कहकर मुना दिया है । इसका ध्वजण कर तथा इसको करके मनुष्य जन्म से लेकर मा भी पाप होते हैं उनसे मुक्त हो जाया करता है ॥६६॥ जो कोई मनुष्य श्रद्धा की भावना से इस अद्भुत आश्रयान को सुनता या पढ़ता है उसको भी कभी ऐसी शक्ति होने पर यह सब फल प्राप्त हुआ करता है ॥६७



## ॥ नाना प्रकार के दानों का निरूपण ॥

देवतायतन यस्तु कुरुये कारयत्यपि ।  
 शिवस्यापि हरेर्वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१॥  
 मातृत पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वित ।  
 कल्पत्रयं विष्णुपदे तिष्ठत्येव न सशय ॥२॥  
 मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतनं नर ।  
 यावत्पुण्यं भवेत्तस्य तन्मे निगदत शृणु ॥३॥  
 दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थित ।  
 कल्पत्रयं विष्णुपदे तिष्ठत्येव न सशय ॥४॥  
 मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतनं नर ।  
 यावत्पुण्यं भवेत्तस्य तन्मे निगदत शृणु ॥५॥  
 दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थित ।

कल्पत्रय विष्णुपदे स्थित्वा ब्रह्मपुर व्रजेत् ॥६॥

कल्पद्वय स्थितस्तत्र पुनः कल्प वसेद्विवि ।

ततस्तु योगिनामेव कुले जातो दयान्वित ॥७॥

धर्मराज ने कहा—जो मनुष्य भगवान् शङ्कर या भगवान् विष्णु इन देवों का स्थान अर्थात् मन्दिर का निर्माण कराता है अथवा निर्माण कराने की प्रेरणा प्रदान किया करता है इसका जो पुण्यफल होता है उसे भी आप अब सुनिए—ऐसे देवालय का निर्माण करने या कराने वाला मनुष्य अपने माता पिता दोनों के कुलों की दश खरब पीढ़ियों के साथ तीन कल्प पर्यन्त विष्णु लोक में निवास किया करता है ॥१-२॥ इस समय मैं केवल मिट्टी से ही जो किसी देव मन्दिर का निर्माण कराता है उस मनुष्य को जो पुण्यफल प्राप्त होता है वह भी भुज से आप सुन लीजिये ॥३॥ उस व्यक्ति का भी शरीर परम दिव्य होजाया करता है । और वह भी एक परम श्रेष्ठ विमान में बैठकर तीन कल्प तक श्री विष्णु भगवान् के लोक में निवास किया करता है ॥४॥ जो पक्की मिट्टी आदि से देव मन्दिर की रचना करवाया करता है उसका पुण्यफल भी मैं आप को बतलाता हूँ उसका भी आप श्रवण करिए ॥५॥ वह मनुष्य रूपी परम दिव्य देह को धारण करके उत्तम विमान में समावृद्ध हुआ करता है और तीन कल्प तक विष्णुलोक में निवास किया करता है । फिर वह वहाँ से ब्रह्मलोक को चला जाता है ॥६॥ वहाँ पर दो कल्प तक निवास करके फिर एक कल्प तक स्वर्गलोक में निवास का सुख भोगता है । इसके अनन्तर वह प्राणी किसी योगिराज के कुल में समुत्पन्न होता है और अपने जीवन में वह परम दयालु रहा करता है ॥७॥

वैष्णव योगमास्थाय मुक्तिं व्रजति शाश्वतीम् ।

दारुणिं कुरते यस्तु तस्य स्याद् द्विगुण फलम् ॥८॥

त्रिगुण चेष्टकाभिस्तु शिलाभिस्तच्चतुर्गुणम् ।

स्फटिकाभिः शिलाभिस्तु ज्ञेयं दशगुणोत्तरम् ॥६

ताम्रोभिस्तच्छतगुणं हेम्ना कोटिगुणं भवेत् ।

देवालयं तडागं वा ग्राम वा पालयेत्, यः ॥१०

कर्तुः शतगुण तस्य पुण्य भवति भूपते ।

देवालयस्य शुश्रूषा लेपसेचनमडनै ॥११

कुर्याद्यत्सतत भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम् ।

वैतनाद्विद्वितो वापि युण्यकर्मप्रवर्तिता. ॥१२

ते गच्छति धराधारा शाश्वत वैष्णव पदम् ।

तडागाद्ध फल राजन्कासारे परिकीर्तितम् ॥१३

कूपे पादफल ज्ञेय वाप्या पदमाकरोन्मितम् ।

वापीशतगुण प्रोक्त कुल्याया भूपते. फलम् ॥१४

इसके उपरान्त योगाभ्यास के द्वारा भगवान् विष्णु का ध्यान करके परम शाश्वत मोक्ष की प्राप्ति किया करता है । जो काष्ठ के द्वारा किसी देवालय का निर्माण कराया करता है उसको इससे भी द्विगुणित पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है ॥८॥ ईंटों के द्वारा देव मन्दिर के बतवाने वाले को सौगुना पुण्य प्राप्त हुआ करता है । जो स्फटिक मणि के पाषाणों के द्वारा देवालय की रचना कराता है उसको उपर्युक्त पुण्य फल से दशगुना पुण्य मिला करता है ॥९॥ ताम्रधातु से देव मन्दिर की रचना कराने वाले को सौगुना और सुवर्ण के द्वारा देव मन्दिर के निर्माण कराने वाले को करोड़ गुना फल प्राप्त हुआ करता है । जो किसी भी देव मन्दिर का, तालाब का और ग्राम का परिपालन एवं संरक्षण किया करता है उस पुरुष को निर्माण कराने वाले से भी सौगुना पुण्य मिला करता है जो लेपन-अभिषिञ्चन और पुताई आदि के द्वारा इनका रक्षण एवं उद्धार किया करता है तथा परम भक्ति भाव से सब प्रकार से सेवा किया करता है उसको अनन्त पुण्य मिला करता है । हे राजन् ! जो धनिक अथवा राजा महाराजा

वेतन देकर या बिना ही वेतन के ऐसे पुण्य कर्म को प्रवृत्त किया करते हैं । उनको विष्णुनोक सर्वदा के लिए ही प्राप्ति हो जाता है । ह राजन् ! तालाब से आधा पुण्य जाहूड के निर्माण कराने का हुआ करता है ॥ १०-१३ ॥ कूप के निर्माण कराने पर चौधार्ह फल मिला करता है । बावडी बनवाने वाले पुरुष को दश खवं गुना फल प्राप्त हुआ करता है । बावडी से भी सौ गुना पुण्य नहर बनवाने वाले राजा को प्राप्त हुआ करता है ॥ १४ ॥

दृपदिभस्तु धनी कुर्यान्मृदा निष्किञ्चनो जन ।

तयो फल समान स्यादित्याह कमलोद्भव ॥ १५

दद्यादाढ्यस्तु नगर हस्तमात्रमकिंचन ।

भुव तयो समफल प्राहुर्वेदविदो जना ॥ १६

धनाढ्य कुस्ते यस्तु तडाग फलसाधनम् ।

दरिद्र कुस्ते कूप सम पुण्य प्रकीर्तितम् ॥ १७

आराम कारयेद्यस्तु बहुजन्तूपकारकम् ।

स याति ब्रह्मभुवन कुलत्रयसमन्वित ॥ १८

धेनुर्वा ब्राह्मणो वापि यो वा को वापि भूपते ।

क्षणाद् तस्य छायामा तिष्ठन्स्वर्गं नमत्यमुम् ॥ १९

आरामकारका राजन्वेवतागृहकारिण ।

तडागग्रामकर्तारि पूज्यन्ते हरिणा सह ॥ २०

सर्वलोकोपकारार्थं पुष्पाराम जनेश्वर ।

मूर्धन्ते देवतार्थं वा तेषां पुण्यफला शृणु ॥ २१

ग्रहाजी ने कहा—यदि कोई धनी पुरुष पाषाणों से देवालय तालाब आदि का निर्माण कराये और साधारण आर्थिक स्थिति का मनुष्य मृत्तिका से ही निर्माण करवे तो दोनों का एक सा ही फल प्राप्त करता है ॥ १५ ॥ कोई समृद्धिशाली पुरुष एक विशाल नगर को दान में प्रदान करके दे देवे और सामान्य आर्थिक स्थिति का मनुष्य केवल एक ही हाथ भर के प्रमाण वाली भूमि का दान करे उन दोनों को भी

सप्तकोटिकुलैर्युक्तो मातृत पितृतस्तथा ।  
 वसेत्कल्पशतं साग्रं नारायणपदे नृप ॥२५॥  
 ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो यस्तु तुलसीमूलमृत्स्तया ।  
 गोपिकाचन्दनेनापि चित्रकूटमृदापि वा ।  
 गङ्गामृत्तिकया चैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२६॥  
 विमानवरमारूढो गन्धर्वाप्सरसा गणैः ।  
 सङ्गीयमानचरितो मोदते विष्णुमन्दिरे ॥२७॥  
 पत्राणि तुलसीमूलाद्यावन्ति पतितानि वै ।  
 तावन्ति ब्रह्माहत्यादिपातकानि हतानि च ॥२८॥

उस उद्यान में जितने भी फूल और पत्र होते हैं उतने ही वर्षों तक वह मनुष्य जिसने पृथ्वी का आरोपण किया है अपनी करोड़ों पीढ़ियों के सहित स्वर्ग लोक में आनन्द का उपभोग किया करता है ॥२२॥ जो लोग उस उद्यान की सुरक्षा के लिए परदे की बीमार बनवाते हैं या काटों की बाड़ लगाया करते हैं वे एक मन्वन्तर के समय पर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास किया करते हैं ॥२३॥ हे राजन् ! जो तुलसी के पौधे का आरोपण किया करते हैं उनके पुण्य फल को आप मेरे द्वारा कहे जाने पर ही जान सकते हैं ॥२४॥ हे राजन् ! जो तुलसी का पौधा लगाने वाला व्यक्ति अपने माता पिता की सात करोड़ पीढ़ियों के सहित सौ कल्प के समय तक नारायण लोक में निवास प्राप्त किया करते हैं ॥२५॥ जो तुलसी के मूल के समीप की मृत्तिका से, गोपी चन्दन से, चित्रकूट की मृत्तिका से अथवा गङ्गाजी के तट की मृत्तिका से ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किया करता है उसको महान् पुण्य फल प्राप्त होता है । उसको भी मैं अब आपको ज्ञान प्राप्त कराने के लिए बतलाता हूँ । इसे लोग एक साधारण सी बात ही समझा करते हैं और इसकी वास्तविक महिमा का ज्ञान नहीं होता है । वह पुरुष विष्णुलोक में पहुँचकर परमश्रेष्ठ विमान में बैठा करता है और गन्धर्व गण तथा अप्सराओं का दल



उसके यश का गान किया करते हैं ॥२६-२७॥ तुलसी के मूल में जितने भी पत्ते स्वयं झड़कर गिर जाया करते हैं उस पौधे के आरोपित करने वाले पुरुष के उत्तम ही ब्रह्म हत्या आदिक महापातको को दूर करा दिया करते हैं ॥२८॥

तुलस्या सेचयेद्यस्तु जलं चुलुकमाणिकम् ।  
क्षीरोदवासिना साद्धं वसेदाचन्द्रतारकम् ॥२६  
ददाति ब्राह्मणानां यः कोमल तुलसीदलम् ।  
स याति ब्रह्मसदने कुलत्रितयसयुतः ॥३०  
शालग्रामेऽप्येद्यस्तु तुलस्यास्तु दलानि च ।  
स वसेद्विष्णुभवने यावदाभूतसप्लवम् ॥३१  
कण्टकावरणं यस्तु प्राकारं वापि कारयेत् ।  
सोऽप्येकविंशतिकुलैर्मोदते विष्णुमन्दिरे ॥३२  
योऽर्चयेद्धरिपादाब्जं तुलस्यां कोमलैर्दलैः ।  
न तस्य पुनरावृत्तिविष्णुलोकान्तरेऽश्वर ॥३३  
द्वादश्यां पूर्णमास्यां यः क्षीरेण स्नापयेद्धरिम् ।  
कुलायुतयुतं सोऽपि मोदते वैष्णवे पदे ॥३४  
प्रस्थमात्रेण पयसा यः स्नापयति केशवम् ।  
कुलायुतायुतयुतं सोऽपि विष्णुपुरे वसेत् ॥३५

जो कोई एक चुल्हू भर जल से भी तुलसी के पौधे को सींच दिया करता है वह क्षीर सागर में निवास करने वाले भगवान के साथ जब तक सूर्य और चन्द्र इस विश्व में स्थित रहा करते हैं तब तक निवास किया करता है ॥२६॥ जो ब्राह्मणों को लाकर परम कोमल तुलसी के दल अर्पित किया करता है वह अपने तीनों मुलों के सहित ब्रह्मलोक में गमन किया करता है ॥३०॥ जो पुण्यात्मा पुरुष श्रीशालग्राम भगवान पर नित्य मुलगी के दलों को चढ़ाया करता है वह प्रलय-काल तक विष्णुलोक में निवास किया करता है ॥३१॥ जो गुरुक्षा

के लिए तुलसी के पौधों की काँटों की बाढ़ लगाता है अथवा तुलसी का घमला बना देता है वह भी अपनी इक्कीस पुस्तों तक स्वर्ग लोक आनन्द का अनुभव किया करता है ॥३२॥ जो भगवान विष्णु के चरण कमलों की तुलसी के कोमल दलों से पूजा किया करता है वह विष्णुलोक को प्राप्त कर वहाँ से फिर वापिस नहीं लौटा करता है ॥३३॥ जो कोई मनुष्य द्वादशी तिथि अथवा पूर्णिमा के दिन दुग्ध से विष्णु भगवान का स्नान कराया करता है वह अपनी दश करोड़ पुत्रों के सहित विष्णु भगवान के लोक में रहा करता है ॥३४॥ जो एक प्रस्थ भर प्रमाण वाले अर्थात् ६४ तोले दूध से भगवान केशव को स्नान करता है ॥३५॥

पृतप्रस्थेन यो विष्णु द्वादश्या स्नापयेन्नर ।

कुलकोटियुतो राजन्सायुज्य लभते हरे ॥३६॥

पञ्चामृतन य स्नानमेकादश्या तु कारयेत् ।

विष्णो सायुज्यक तस्य भवेत्कुलशतायुतं ॥३७॥

एकादश्या पौर्णमास्या द्वादश्या वा नृपोत्तम ।

नालिकेरोदकं विष्णु स्नापयेत्तत्फलं शृणु ॥३८॥

दशजन्माजितं पापविमुक्तो नृपसत्तम ।

शतद्वयकुलैर्भुक्तो मोदते विष्णुना सह ॥३९॥

इक्षुतोमेन देवेश य स्नापयति भूपते ।

केशव लक्षपितृभि साद्विष्णुपदं व्रजेत् ॥४०॥

पुष्पोदकेन गोविन्द तथा गन्धोदकेन च ।

स्नापयित्वा हरिं भक्त्या वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥४१॥

जलेन वस्त्रपूतेन य स्नापयति माधवम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुना सह मोदते ॥४२॥

जो एक प्रस्थ भर घृत से द्वादशी तिथि के दिन भगवान विष्णु को स्नान कराया करता है । हे राजन् । यह अपन परोक्षा पुत्रों व

सहित भगवान की सायुज्यता की प्राप्त किया करता है ॥३६॥ जो एकादशी के दिन या पूर्णिमा तिथि में नारियल के जल से भगवान विष्णु की प्रतिमा का स्नान कराता है उसके पुण्य फल का भी आप मुझ से श्रवण कीजिए ॥३७३८॥ हे नृपते ! वह दश जन्मों में बने हुए पातकों से छुटकारा पाकर अपने दो सौ वंशज पीढ़ियों के सहित विष्णु भगवान के समकक्ष पहुँच कर निवास किया करता है ॥३९॥ हे राजन् ! जो कोई भक्त गन्ने के रस से भक्तिभाव से भगवान केशव का स्नान कराया करता है वह मनुष्य अपने गन्धों पितृवर्णों के सहित विष्णुलोक में प्रवेश प्राप्त किया करता है ॥४०॥ जो पुण्यों के रस अथवा परम सुगन्धित पुण्यों के अर्क से या इन से बोधिसूक्त का स्नान कराता है वह भी विष्णुलोक का निवास प्राप्त करता है ॥४१॥ जो भक्त वस्त्र से छान कर जल से भगवान माधव प्रभु का स्नान कराता है वह सभी प्रकार के योगविधोः पाप से मुक्ति प्राप्त करके भगवान विष्णु के मणिमणि में ही आनन्दवास किया करता है ॥४२॥

क्षीराद्यै स्नापयेद्यस्तु रविसाक्रमण हरिम् ।

स वसेद्विष्णुसदने निसत्तपुरुषै सह ॥४३॥

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्या पूर्णिमादिने ॥४४॥

एकादश्या भानुवारे द्वादश्या पंचमीतिथौ ।

सोमसूर्योपरागे च मन्वादिषु शुभादिषु ॥४५॥

अर्द्धोदये च सूर्यस्य पुष्यार्के रोहिणीबुधे ।

तथैव शनिरोहिण्या भीमाश्विन्यां तथैव चा४६॥

शम्या भृगुमृगे चैव भृगुरेवतिसङ्गमे ।

तथा बुधानुराघाया श्रवणार्के तथैव च ॥४७॥

तथा च सोमश्रवणे हस्तयुक्ते बृहस्पती ।

बुधाष्टम्या बुधाषाढे पुष्ये चान्ये दिने तथा ॥४८॥

स्नापयेत्पयसाविष्णु शान्तिमात्रं वाग्यत श्रुति ।

घृतेन मधुना वापि दध्ना वा तत्फलं शृणु ॥४९॥

जो भक्त सूर्य सक्रमण के ( सक्रान्ति ) समय में दुग्ध आदि गव्यो से भगवान की प्रतिमा का स्नान भक्ति पूर्वक कराया करता है वह अपने इक्कीस पूर्वजों को साथ में लेकर विष्णु लोक में निवास किया करता है ॥४३॥ जो कोई भक्त शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा अथवा एकादशी रविवार के दिन पञ्चमी, सूर्य अथवा चन्द्र के ग्रहण, मन्वन्तरादि तथा युगादि की तिथियों में अस्तोदय सूर्य-ग्रहण, अर्धोदित सूर्य, पुष्य नक्षत्र युक्त सूर्य, रोहिणी युक्त बुध, शनि युक्त रोहिणी, अश्विनी नक्षत्रयुक्त भीमवार तथा शनिवार, मृगशिरा से युक्त भूगुवार, रेवती से समन्वित शुक्रवार, अनुराधा से युक्त बुधवार, श्रवण समन्वित सोमवार, हस्त नक्षत्र वाले गुरुवार, बुधवार वाली अष्टमी उत्तराषाढा से युक्त बुधवार तथा अन्य किसी परम पुण्यमय दिवस में भगवान विष्णु को हृदय में स्थापित रहकर तथा वाणी को नियम नियन्त्रित रखते हुए परम पवित्रता के साथ धृत, दधि और मधु से भगवान को स्नान कराया करता है उसके पुण्यफल का श्रवण करिये ॥४४-४६॥

सर्वयज्ञफल प्राप्य सर्वपापविवर्जित ।

वसेद्विष्णुपुरे साद्धं त्रिसप्तपुरवैतृप ॥५०॥

तमेव ज्ञानमासाद्य योगिनामपि दुर्लभम् ।

मोक्षमाप्नोति नृपते पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥५१॥

शृण्वन्ने चतुर्दश्या सोमवारे च भूपते ।

शिव सन्नाप्य दुग्धेन शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥५२॥

नलिनेरोदकेनापि शिव सन्नाप्य भक्तितः ।

अष्टम्यामिन्दुवारे वा शिवसायुज्यमश्नुते ॥५३॥

दुर्बलपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्या वापि भूपते ।

पृथेन मधुना स्नाप्य शिव तत्साम्यता व्रजेत् ॥५४॥

तिलतेनेन मन्नाप्य विष्णु वा शिवमेव च ।

स याति तत्तत्सारूप्यं पितृभिः सह सप्तभिः ॥५५॥

शिवमिक्षुरसेनापि यः स्नापयति भक्तितः ।

शिवलोके वसेत्कल्प स सप्तपुरुषैः सह ॥५६॥

हे राजन् ! वह उपर्युक्त द्रव्यो से भगवान का स्नपन कराने वाला भक्त सब पापों में रहित होकर ममस्त प्रकार के यज्ञों के पुण्य को प्राप्त किया करता है । और अन्त में २१ पुस्तो के सहित विष्णु-लोक में वास करना है ॥५०॥ हे राजन् ! वहाँ पर ही योगियों को भी दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त करके जिसके प्राप्त करने से फिर आवृत्ति दुर्लभ होती है ऐंसे मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥५१॥ हे नरपति देव ! जो मास के कृष्णपक्ष की सोमवार से युक्त चतुर्दशी तिथि के दिन भगवान शिव को दुग्ध से स्नान करा कर अर्चन किया करता है वह शिव की सायुज्यता का लाभ लिया करता है और शिवलोक को गमन किया करता है ॥५२॥ सोमवार के दिन जब अष्टमी तिथि हो उस दिन नारियल के अन्दर रहने वाले जल से भक्ति की भावना से गयुन होकर भगवान श्री गङ्गूर की प्रतिमा का स्नान कराया करता है वह भी शिव के लोक को गमन किया करता है ॥५३॥ हे भूपते ! मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथि के दिन घृत और गहूद से शिवजी का स्नान कराता है भगवान का यह सत्य भाव प्राप्त कर लेता है ॥५४॥ जो तिल के रोम में भगवान विष्णु या शिव का स्नान कराना है यह अपने सात पित्रों के साथ एवं ब्रह्म एवं शिव के लोक में निवास किया करना है ॥५५॥ जो शिव को मूत्र या स्नान गर्विण भाव युक्त होकर दूध के रस से कराया करता है वह भी अपनी सात पुत्रों के सहित नरपति तत्र शिव के लोक में निवास प्राप्त किया करता है ॥५६॥

घृतेन स्नापयेन्निम्नमुत्थाने दादशादिने ।

धौरेण वा महाभाग तत्फलं शृणु मदिगरा ॥५७॥

जन्मायुताजितैः पापैर्विमुक्तो मनुजो नृप ।  
 कोटिसांख्य समुद्धृत्य स्वकुला शिवता व्रजेत् ॥५८॥  
 सम्पूज्य गन्धकुसुमैर्विष्णु विष्णुतिथौ नृप ।  
 जन्मायुताजितो पापैर्मुक्तो व्रजति तत्पदम् ॥५९॥  
 पद्मपुष्पेण यो विष्णु शिव वा पूजयेन्नर ।  
 स याति विष्णु भवन कुलकोटिसमन्वित ॥६०॥  
 हरिं च केतकीपुष्पै शिव धत्तूरजैर्निशि ।  
 स पूज्य पापनिर्मुक्तो वसेद्विष्णुपुरे युगम् ॥६१॥  
 हरिं तु चाम्पकं पुष्पैरकंपुष्पैश्च शङ्करम् ।  
 समभ्यर्च्य महाराज तत्तत्सालोक्यमाप्नुयात् ॥६२॥  
 शङ्करस्याथवा विष्णोर्धृतयुक्तं च गुग्गुलुम् ।  
 दत्त्वा धूपे नरो भक्त्या सर्वपापं प्रमुच्यते ॥६३॥

हे महाभाग ! जो सूर्य के उदयकालीन द्वादशी तिथि के दिन भगवान् शङ्कर की लिंगमयी प्रतिमा का क्षीर से स्नान कराया करता है उसको जो पुण्य होना है उसका मैं आपके सामने बतलाता हूँ ॥५७॥ हे राजन् ! वह मनुष्य अपने दश सहस्र जन्मों में किये हुए समस्त महा पापों में छूटकर अपने कुल के करोड़ों पुरुषों का उद्धार करके अपने सम्पूर्ण कुल को भगवान् शिव में ही लीन कर दिया करता है ॥५८॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णु की देवोत्थापिनी द्वादशी तिथि के दिन भगवान् विष्णु की सुगन्धित पुष्पों से पूजा करने वाला अपने दश सहस्र जन्मों में किये हुए पापों से मुक्त होकर अन्त में विष्णु लोक को प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ जो कमल के पुष्पों से भगवान् विष्णु या शिव का समर्पण किया करता है वह करोड़ों ही कुलों के महित संकुल लोक में निवास किया करता है ॥६०॥ जो भक्त विष्णु भगवान् का केतकी के पुष्पों में और भगवान् शिव का धतूरे के पुष्पों में यजन किया करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर एक युग तक विष्णु के लोक में रहा करता है ॥६१॥ हे राजन् ! जो भक्त भगवान् विष्णु की चम्पा के पुष्पों से

तथा भगवान् शिवं चो आक के पुष्पां से पूजता है वह मनुष्य इन दोनों ही देवों के लोको की प्राप्ति किया करता है ॥६२॥ जो मनुष्य भक्तिभाव के साथ भगवान् शङ्कर अथवा विष्णु को धृतमिश्रित मूगल की घूप दिया करता है उसके समस्त पाप दूर भाग जाया करते हैं ॥६३॥

तिलतैलान्वित दीप विष्णोर्वा शंकरस्य वा ।

दत्त्वा नर सर्वकामान्संप्राप्नोति नृपोत्तम ॥६४॥

घृतेन दीप यो दद्याच्छंकराय विष्णवे ।

स मुक्तः सर्वपापेभ्यो गङ्गास्नानफलं सभेत् ॥६५॥

ग्राम्येन वापि तैलेन राजन्नन्येन वा पुन ।

दीप दत्त्वा महाविष्णोर्वा शिवस्यापि फलं शृणु ॥६६॥

सर्वपापविनिर्मुक्त सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।

तत्तत्सालोक्यमाप्नोति त्रिभुवनपुरुषान्वितः ॥६७॥

यद्यदिष्टतमं भोज्यं तत्तदीशाय विष्णवे ।

दत्त्वा तत्तत्पदं याति चत्वारिंशत्कुलान्वितः ॥६८॥

यद्यदिष्टतमं वस्तु तत्तद्विप्राय दापयेत् ।

स याति विष्णुमवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥६९॥

भ्रूणहा स्वर्णदानेन शुद्धो भवति भूगने ।

अन्नतोयसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥७०॥

जो भक्त भगवान् विष्णु अथवा शिव के लिये तिल के तैल का दीपक प्रज्वलित किया करता है उसकी सब मनोकामनायें पूर्ण होजाना करती है ॥६४॥ जो भक्ति के सहित भगवान् शङ्कर अथवा विष्णु के लिये घृत का दीपक जलाता है वह सभी पापों से छुटकारा पाजाता है और गङ्गा में स्नान करने के पुण्य फल की प्राप्ति किया करता है ॥६५॥ जो ग्राम्य या विद्यादि के तैल में अथवा घृत से विष्णु भगवान् का दीपक प्रज्वलित किया करता है उसका पुण्य फल शुभाना है ॥६६॥ वह मनुष्य सभी पापों से छुट जाया करता है और सब प्रकार के

ऐश्वर्य प्राप्त कर अपने इक्कीस पुरुखाओं के साथ शिव या विष्णुलोक में निवास किया करता है ॥६७॥ भोजन के पदार्थों में जो जा पदार्थ आपको अधिक प्रिय हो उसे भगवान विष्णु या शिव की सेवा में समर्पित करने से वह अपने २ इष्टदेव के लोको में अपने चालीस कुल के पुरुषों को लेजाया करता है ॥ ६८ ॥ जो वस्तु स्वयं अपने आपको अत्यधिक प्रिय लगती हो उसका दान ब्राह्मण को देने से ऐम विष्णु लोक की प्राप्ति किया करता है जहाँ से लौटकर फिर पुनर्जन्म नहीं मिला करता है ॥६९॥ हे राजन् ! जो भ्रूण हत्या करने वाला पुरुष है वह भुवर्ण के दान देने से इस पाप से शुद्ध हो जाता है । अन्न का दान और जल का दान जैसा दान तो न आज तक कोई दान हुआ है और न भविष्य में होगा ॥७०॥

अन्नद प्राणद प्रोक्त प्राणदश्चापि सर्वद ।

सर्वदानफल यस्मादन्नदस्य नृपोत्तम ॥७१॥

अन्नदो ब्रह्मसदन याति वशायुतान्वित ।

न तस्य पुनरावृत्तिरिति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥७२॥

सद्यस्तुष्टिवय ज्ञेय जलदान यतोऽधिकम् ।

अन्नदानान्नृपत्रेष्ठ निर्दिष्ट ब्रह्मवादिभि ॥७३॥

महापातकयुक्तो वा मुक्तो वाप्युपपातकै ।

जलदो मुच्यते तेभ्य इत्याह कमलोद्भव ॥७४॥

शरीरमन्नज प्राहु प्राणानप्यन्नजान्विदु ।

तस्मादन्नप्रदो ज्ञेय प्राणद पृथ्वीपते ॥७५॥

यद्यत्तुष्टिवर दान सर्ववामफलप्रदम् ।

तस्मादन्नसम दान नास्ति भूपाल भूतले ॥७६॥

अन्नदस्य कुले जाता आसहस्र नृपोत्तम ।

नरप त न पश्यन्ति तस्मादन्नपदा वर ॥७७॥

जा अन्न वा दान दता है उसका प्राण दाना कहा जाता



है । प्राणों का दाता तो सर्व दाता कहा जाया करता है । हे नृप-  
श्रेष्ठ ! अतः अन्न के दान करने वाले मनुष्य को सभी के दान का पुण्य  
पत्र प्राप्त होजाया करता है । अन्न के दान की बड़ी भारी महिमा  
है क्योंकि इससे प्राणों की रक्षा हुआ करती है ॥७१॥ अन्न का दान  
देने वाले मनुष्य अपने दश सहस्र कुल के पुरुषों को साथ लेकर ब्रह्म  
लोक में गमन करता है और फिर उसका पुनर्जन्म नहीं हुआ करता है  
ऐसा सभी शास्त्रों का निश्चय है ॥७२॥ जल के दान का भी बड़ा  
भारी महत्त्व है क्योंकि इससे तुरन्त ही वृष्टि होजाया करती है अतएव  
इसकी महिमा अन्न के दान से भी अधिक होती है । हे उत्तम राजन् !  
ऐसा ब्रह्मवादिषों ने निश्चय किया है ॥७३॥ ब्रह्माजी ने कहा है—  
महापातकों और उपपातकों में क्षुधित पुरुष जल का दान करने से शुद्ध  
हाजाया करता है ॥७४॥ शरीर और प्राण दोनों को अन्न से पुष्ट  
होन वाला बहुत है अतएव हे भूमिपते ! अन्न के दाता को प्राणों का  
ही दान देने वाला समझ लेना चाहिये ॥७५॥ जितन भी समुत्पन्न करने  
वाले दान हैं वे सभी मन की समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देने  
वाले होते हैं किन्तु हे राजन् ! दान भूमिपते ! अन्न के दान की समता  
करने वाला अन्य कोई भी दान नहीं है ॥७६॥ हे नृपोत्तम ! अन्न-  
दाता के कुल में चाहे सत्सुख ही प्राणी समुत्पन्न हुए हों वे सभी मरक  
का दशन कभी भी नहीं किया करते हैं अतएव यह सिद्ध होता है कि  
अन्न का दान करने वाला पुण्य श्रेष्ठ होता है ॥७७॥

पादाभ्यग भक्तियुक्तो योजतिथे कुस्ने नर ।  
स स्नानं सर्वतीर्थेषु गङ्गास्नानपुरमरम् ॥७८॥  
सैन्याभ्यग महाराज ब्राह्मणानां करोति य ।  
स स्नातोऽष्टशतं मासं गङ्गायां नात्र मज्जय ॥७९॥  
रोगितान्ब्राह्मणान्पुनस्तु प्रेम्णा रक्षति रक्षक ।  
स पोटिपुनस्तु पुनस्तु वन्द्यः सप्तपुरे युगम् ॥८०॥  
यो रोगेऽपि भोपातं न या रोगिणं नरम् ।

तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥८१॥

मनसा कमणा वाचा यो रक्षेदामयान्वितम् ।

सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापविवर्जित ॥८२॥

यो ददाति महीपाल निवास ब्राह्मणाय वै ।

तस्य प्रसन्नो देवेश स्वलोक सप्रयच्छति ॥८३॥

ब्राह्मणाय ब्रह्मविदे यो दद्यादनापयस्विनीम् ।

स याति ब्रह्मसदनमन्येषामतिदुर्लभम् ॥८४॥

जो मनुष्य समागत अतिथि के चरणों को दवाता है वह मनुष्य गङ्गा स्नान के सहित सभी पुण्य तीर्थों के अवगाहन करने का पुण्य फल प्राप्त कर लेता है ॥७८॥ हे राजन् । जो ब्राह्मणों को तेल मन्ता है उसको एकसौ आठ बार गङ्गा के जल में स्नान करने का पुण्य-फल मिला करता है । जो रोग से अवस्थित ब्राह्मण की प्रेम के साथ रक्षा किया करता है वह अपने एक करोड़ कुलों के साथ युग भर पर्यन्त ब्रह्म लोक में निवास किया करता है ॥७९॥ हे पृथिवीपाल । जो किसी गरीब अधया रण की रक्षा करता है उस पर भगवान् विष्णु-देव का चित्त अधिक प्रसन्न होजाया करता है । फिर वे देवेश्वर उसकी सम्पूर्ण मनोकामनायें पूर्ण कर दिया करते हैं ॥८०॥ जो मन, वाणी और कर्म से रोमी पुरुष की रक्षा करता है वह सभी पापों से पृथक् होकर विमुक्त होजाया करता है और उसकी सब कामनायें सिद्ध होती हैं ॥८१॥ हे महीपाल । जो कोई भी पुरुष ब्राह्मण को निवास करने का स्थान देता है भगवान् उस पर परम प्रसन्न होकर अपने लोक का निवास प्रदान कर दिया करते हैं ॥८२॥ जो ब्रह्म के ज्ञाता ब्राह्मण का दूध देने वाली गाय का दान किया करता है उसको वह लोक परमागामी होने पर मिला करता है जो अन्यो को बहुत ही पटिनाई से प्राप्त हुआ करता है ॥८३॥

अन्यन्य प्रतिदृष्ट्वापि यो दद्यादनापयस्विनीम् ।

तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्नोऽस्मि पण्डित ॥८५॥

कपिला वेदविदुषे यो ददाति पयस्विनीम् ।

स एव रदो भूपाल सर्वपापं विनिर्जितः ॥८६॥

विप्राय वेदविदुषे दद्यादुभयतोमुखीम् ।

यस्तस्य पुण्यं समयातु न शक्नोऽद्भुततरपि ॥८७॥

तस्य पुण्यफलं राज्ञश्च वक्ष्यामि तत्त्वतः ।

एकं वृत्तं सर्वे समग्रवरदक्षिणाः ॥८८॥

एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ।

शरक्षति महीपालः यो विप्रभयविह्वलम् ॥८९॥

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।

वस्त्रदो रत्नभवनं कन्यादो ग्रहाण पदम् ॥९०॥

जो स्वयं दूमरे म गो का दान ग्रहण करके दूध देने वाली गो का दान कर दिया करता है उसने पुण्य फल का तो वर्णन करने की मुझमें सामर्थ्य ही नहीं है इतना महान उसे पुण्य-फल हुआ करता है ॥८५॥ जो कोई मनुष्य दुग्धवती कपिलः गाय का दान किसी वेदो के शान रखने वाले ब्राह्मण का देता है वह सभी पापों से दोषों से छूट जाया करता है ॥८६॥ जो मनुष्य वेदो के पठित ब्राह्मण को उभयतो-मुखी ( दोनों तरफ मुख वाली अर्थात् अघम्याई हुई ) गो का दान देता है उसको इतना पुण्य प्राप्त होता है जिसका वर्णन तो यहाँ तक परावर कहने रहने पर भी वर्णन नहीं करने में आता है ॥८७॥ हे राजन् ! जो मनुष्य किसी भय से विचित्र ब्राह्मण की रक्षा किया करता है उसका पुण्य-फल ऐसा होता है कि एक तरफ तो सब दक्षिणा देने वालों का पुण्य होता है और उतना ही पुण्य दूमरी ओर भयभीत प्राणी की रक्षा का पुण्य हुआ करता है ॥८८॥८९॥ उन भीत को प्राण करने वाले पुण्य का तो ऐसा पुण्य हुआ करता है जैसा समस्त प्रकार के यज्ञों की दीक्षा ग्रहण करने वाले का तथा समस्त महान तीर्थों में

स्नान करने वाले का हुआ करता है। जो वस्त्रों का दान करता है उसको रुद्रलोक मिलता है और जो किसी कन्या का दान किया करता है उसको ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुआ करती है ॥६०॥

हेमदो विष्णुभवन प्रयाति स्वकुलान्वित ।

यस्तु कन्यामलकृत्व ददात्यध्यात्मवेदिने ॥६१॥

शतवशसमायुक्त स व्रजेद् ब्रह्मण पदम् ।

कार्तिक्या पूर्णमास्या वा आपाढ्या वापि भूपते ॥६२॥

वृषभ शिवतुष्ट्यर्थमुत्सृजेत्तत्फला शृणु ।

सप्तजन्मार्जितं पापैर्विमुक्तो रुद्ररूपभाक् ॥६३॥

कुलसप्ततिसयुक्तो रुद्रेण सह मोदते ।

शिवलिङ्गाकित कृत्वा महिष य समुत्सृजेत् ॥६४॥

न तस्य यातनालोको भवेन्नृपतिसत्तम ।

ताम्बूलदानं य कुर्याच्छक्तितो नृपसत्तम ॥६५॥

तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा ददात्यायुर्यशश्चियम् ।

क्षीरोदो घृतदशैव मधुदो दधितस्तथा ॥६६॥

दिव्याब्दायुतपर्यंत स्वर्गलोके महीयते ।

प्रयाति ब्रह्मसदनमिक्षुदाता नृपोत्तम ॥६७॥

सुवर्ण का दान देने वाला अपने कुल के सहित विष्णु लोक को गमन किया करता है तथा जो किसी की कन्या को वस्त्राभरणों से विभूषित करके किसी आत्मजानी पुरुष को दान दिया करता है वह अपनी सौ पुस्तों को भी अपने साथ ब्रह्मलोक को ले जाया करता है । जो कोई मनुष्य आपाढ अथवा कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन में भगवान् शिव का प्रसन्न करने के लिये वृषभ का उत्सर्ग किया करता है अर्थात् बिना छोड़ा करता है उसको इतना भारी पुण्य हाता है कि उसका प्रभाव स बह सव जन्मों के किये हुये पुरवले पापों से मुक्त होकर भगवान् रुद्र के ही स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ॥६१॥६२॥

वह अपनी सत्तर पीढ़ियों के सहित रुद्रलोक में भगवान रुद्र-  
देव के साथ निवास किया करता है । जो मनुष्य अकित करके  
अर्थात् शिवलिंग का चिन्ह करके किसी भीसे को बिजार बनाकर छोड़  
दिया करता है उसको कभी भी नरक यातना पाने के स्थानों को नहीं  
देखना पड़ता है । हे नृपोत्तम ! जो अपनी शक्ति के अनुकूल ही लाभूलों  
का दान किया करता है । भगवान् विष्णु उस पर अपने हृदय में  
बहुत प्रसन्न हुआ करते हैं और उसे आयु, लक्ष्मी, यश प्रदान किया  
करते हैं । जो और, घृत, मधु और दधि का दान किया करते हैं वे  
दश सहस्र दिव्य वर्षों तक स्वर्ग में सुखी रहा करते हैं । हे नृपवर !  
ईश्वर का दान देने से स्वर्ग लोक का सुख प्राप्त होता है ॥६३-६७

गन्धद. पुण्यफलद प्रयाति ब्रह्मणः पदम् ।

गुह्यैतरसदश्चैव प्रयादि क्षीरसागरम् ॥६८

भटाना जलदो याति सूर्यलोकमनुत्तमम् ।

विद्यादानेन सायुज्य माधवस्य ब्रजेन्नर. ॥६९

विद्यादान महीदान गोदान चोत्तमोत्तमम् ।

नरकादुद्धरन्त्येव जपवाहनदोहनात् ॥७०

सर्वोपामवि दानाना विद्यादान विशिष्यते ।

विद्यादानेन सायुज्य विष्णोर्याति नृपोत्तम ॥७१

नरस्तिबन्धनदानेन मुच्यते ह्युपपातकैः ।

शालग्रामशिलादान महादान प्रवीक्षितम् ॥७२

यद्दत्त्वा मोक्षमाप्नोति लिंगदान तथा स्मृतम् ।

ब्रह्माण्डकोटिदानेन यत्फल लभते नर ॥७३

तत्फल समवाप्नोति लिङ्गदान सशयः ।

शालग्रामशिलादाने ततोऽपि द्विगुण फलम् ॥७४

गन्ध और पवित्र फलों का दान देने पर भी ब्रह्म लोक मिला  
करता है । गुड और ईश्वर का रस दान देने वाले मनुष्य को क्षीरसागर

प्राप्त हुआ करता है ॥ ६८ ॥ योधा पुरुषों को बल का दान करने वाला मनुष्य परम श्रेष्ठ सूर्य लोक की प्राप्ति विया करता है और विद्या के दान से मनुष्य को भगवान् विष्णुदेव की सायुज्य प्राप्ति होती है ॥ ६९ ॥ विद्या का दान, गोदान, पृथ्वी दान ये सब दान एक से एक उत्तम दान होते हैं । जाप, अन्न प्राप्ति और दोहन के द्वारा ये तीनों दान नरको से उद्धार विया करते हैं ॥ १०० ॥ तथापि विद्या का दान सभी दानों में उत्तम दान होता है क्योंकि इस विद्या के दान से भगवान् विष्णु की सायुज्यता का लाभ प्राप्त होता है ॥ १०१ ॥ ईश्वर के दान से मनुष्य सभी उपपातका से मुक्त हो जाया करता है । शालग्राम शिला का दान महादान बढ़ा गया है ॥ १०२ ॥ शिवलिंग के दान को महादान बताया गया है । इसको देने से मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है । करोड़ों ब्रह्माण्डों के दान से जो फल होता है वही पुण्य का फल शिव की लिंगमयी प्रतिमा के दान से प्राप्त हो जाता है तथा शालग्राम शिला के दान देने से उससे भी दुगुना पुण्य फल हुआ करता है ॥ १०३ ॥ १०४

शालग्रामशिलारूपी विष्णुरेवेति विधुत ।  
 यो ददाति नरो दोष गृहेषु महत्ता प्रभो ॥ १०५ ॥  
 गङ्गास्नानफलं तस्य निश्चितं नृप जायते ।  
 रत्नान्वितसुवर्णस्य प्रदानेन नृपोत्तम ॥ १०६ ॥  
 भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति महादानं यतः स्मृतम् ।  
 नरो माणिक्यदानेन परं मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १०७ ॥  
 ध्रुवलोकमवाप्नोति वज्रदानेन मानव ।  
 स्वर्गं विद्रुमदानेन रुद्रलोकं मवाप्नुयात् ॥ १०८ ॥  
 प्रयाति यानदानेन मुक्तादानेन चैन्दवम् ।  
 वैडूर्यदो रुद्रलोकं पुष्करागप्रदस्तथा ॥ १०९ ॥

पुष्परागप्रदानेन सर्वत्र सुखमश्नुते ।

अश्वदो ह्यस्वसानिध्य चिर व्रजति भूमिष ॥११०॥

गजदानेन महता सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

प्रयाति यानदानेन स्वर्गं स्वर्गान्मास्थित ॥१११॥

महिषीदो जयत्येव ह्यपमृत्यु न सशय ।

गवा तृणप्रदानेन रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥११२॥

भगवान् विष्णु शालग्राम की शिला के रूप वाले हैं ऐसा परम प्रसिद्ध है । जो मनुष्य किसी भी देवालय में दीपक जलाया करता है हे नृप ! उसका मन्त्रा के स्नान करने का पुण्य होता है । रत्नों से जटित स्वर्ण कपड़ान से भोग और मोक्ष दाना मिला करते हैं । पहिले परमोत्तम भोगों का सुख का उपभोग करके अन्त में मुक्ति हाँजाया करती है । यह महादान कहा जाता है । माणिक के दान देने से भी मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है ॥१०५॥ १०७ हीरा के दान देने से अटल लोक की प्राप्ति हुआ करती है, मूंगा के दान से रुद्र लोक मिला करता है ॥१०८॥ किसी सवारी और मुक्ता के दान से चन्द्र-लोक मिला करता है । वेदग्रंथ मणि का दाता और पुण्य राग का दाता म दोनों रुद्रलोक की प्राप्ति करते हैं ॥१०९॥ पुष्पराग रत्न के दान देने से सब जगह सुख की प्राप्ति हुआ करती है । हे राजन् ! जो भय का दान देता है उस प्राणी को बहुत अधिक समय तक अश्विनोत्तमारी के लोक की प्राप्ति हुआ करता है ॥११०॥ गज के दान को बड़ा महत्व होता है उस दान के होता की सभी कामनाये पूर्ण होजाया करती है । गाड़ी के दान देने से स्वर्ण की गाड़ी में समाहित होकर स्वर्ग लोक का भजन किया करता है ॥१११॥ जा मनुष्य भग्न का दान देता है वह मनुष्य अपमृत्यु पर विजय पा लेता है । गौमा की घास खिलाने से रुद्रलोक मिला करता है ॥११२॥

वारण लोकमाप्नोति महीन तवणप्रद ।

स्वाश्रमाचारनिरता सर्वभूतहिते रता ॥११३॥

अदात्मिका गतासूया प्रयान्ति ब्रह्मण पदम् ।

परोपदेशनिरता वीतरागा विमत्सरा ॥११४॥

हरिपादार्चनरता प्रयान्ति सदन हरे ।

सत्सङ्गाह्लादनिरता सत्कमसु सदोद्यता ॥११५॥

परापवादविमुखा प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ।

नित्य हितकरा ये तु ब्राह्मणेषु च गोषु च ॥११६॥

परस्त्रोसङ्गविमुखा न पश्यन्ति यमालयम् ।

जितेन्द्रिया जिताहारा गोषु क्षान्ता सुशीलिन ॥११७॥

हे राजन् ! नमक के दान से बरुण लोक मिला करता है । जो अपने आश्रम के समाचरण में परम तत्पर, समस्त प्राणियों के मङ्गल में मग्न, पाखण्ड और अमूया में जो रहित हैं वे लोग सीधे ब्रह्मलोक को गमन किया करते हैं । जो राग और मत्सरता से रहित होकर भगवान् विष्णु के चरणों की शुश्रूषा में रत रहा करते हैं और अन्य जनों को भी ऐसा ही उपदेश दिया करते हैं वे सीधे श्री हरि भगवान् के भवन को जाया करते हैं । जो सत्सङ्ग आनन्द में मग्न हो जाया करते हैं तथा सदा सत्कर्मों के करने में ही परामग्न रहा करते हैं तथा दूसरों की निन्दा से दूर ही रहा करते हैं वे लोग भी विष्णु लोक को गमन किया करते हैं । जो गौ और ब्राह्मणों का सर्वदा हित किया करते हैं तथा पराई स्त्री के सङ्ग से मुक्त रहा करते हैं तथा जो सदा समय से रहा करते हैं उनको कभी भी यमलोक के दशन करने का अवसर नहीं मिला करता है । जो अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखता करते हैं और आहार के लोलुप नहीं हुआ करते हैं, गौ और ब्राह्मणों पर क्षमा किया करते हैं वे सदाचरण से रहने वाले मानव भी हरि के भवन का जाया करते हैं ॥११३-११७॥

ब्राह्मणेषु क्षमाशीला प्रयाति भवन हरे ।



अग्निशुश्रूषवश्चैव गुरुशुश्रूषकास्तथा ॥११८

पतिशुश्रूषणरता न वै ससृतिभागिनः ।

सदा देवार्चनरता हरिनामपरायणा ११६

प्रतिग्रहनिवृत्तारश्च प्रयान्ति परम पदम् ।

अनाथ विप्रकृण्व ये दहेयुर्नृपोत्तम ॥१२०

अश्वमेधसहस्राणां फलमश्नुवते सदा ।

पत्रं पुष्पं फनीर्वापि जलोर्वा मनुजेश्वर ॥१२१

पूजया रहित लिङ्गमचर्यते तत्फलं शृणु ।

अप्सरोगणगन्धर्वैश्च्युतमानो विमानग ॥१२२

प्रयाति शिवसान्निध्यमित्याहुः कमलोद्भवः ।

चुलुकोदकमात्रेण लिङ्गं सस्नाप्यभूमिषु ॥१२३

लक्षाश्वमेधजं पुण्यं सा प्राप्नोति न साशयः ।

पूजया रहितं लिङ्गं कुसुमैर्व्योञ्जयेत्मुघो ॥१२४

अश्वमेधाद्युत्तमं भवेत्तस्य जनेश्वरः ।

भक्ष्यैर्भोज्यं फलोर्वापि शून्यं लिङ्गं प्रपूज्य च ।

शिवसायुज्यमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१२५

जो पुरुष अग्नि होम करने वाले और अपने गुरु की सेवा में रति रखने वाले हुआ करत हैं और जो स्त्रियां अपने पति की सेवा में सदा परायण रहा करती हैं वे मत्सार के चक्र से छुटकारा पा लिया करती हैं । जो सर्वदा देवों की पूजा किया करत हैं, जो सदा श्री हरि के उच्चारण करने में ही सन्मग्न रहा करते हैं, जो दूसरों के दिये हुए प्रतिग्रह से दूर रहा करत हैं वे सब परम पद की प्राप्ति हो जाया करत हैं । जो मनुष्य किसी भी अनाथ श्व का दाह कर दिया करत है हे नृपवर ! उनको एक सहस्र अश्वमेध यज्ञा के करने का पुण्य मिला करता है । जिसको कोई न पूजे ऐसी शिवलिङ्ग को जो जल-पुष्पादि से अर्चन करता है उसका पुण्यफल का अंश न मिले । ब्रह्माजीन कहा है—

अप्सरा, गन्धर्व उस पूजा करने वाले भक्त की स्तुति किया करते हैं और विमान में बैठकर सीधा शिव के समीप में पहुँच जाया करता है ११८-॥१२२॥ हे राजन् ! जो एक चुल्हू भर पानी से भगवान् शिव के लिंग को स्नान कराता है उसे एक लाख अश्वमेधों का फल मिला करता है । जो सुन्दर बुद्धि वाला पुरुष पूजा से रहित शिव के लिंग की पुष्पो से पूजा करता है हे जनेश्वर । उसको दश सहस्र अश्वमेध यज्ञों के करने का पुण्य-फल मिला करना है । जो परम शून्य स्थल में विराजमान शिवलिंग का भक्ष्य-भोज्य और फलों के द्वारा यजन करता है वह शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है जहाँ से फिर पुनरागमन नहीं हुआ करता है ॥१२३॥१२४॥

पूजया रहित विष्णु योज्ज्वयेदकवंगज ।

जलेनापि स सालोक्य विष्णोर्याति नरोत्तम ॥१२६॥

देवतायतने यस्तु कुर्यात्समार्जनं सुधीः ।

यावत्पासु युगावास वैष्णवे मन्दिरे सभेत् ॥१२७॥

शीर्णं स्फटिकलिंग तु यः संदध्यान्नृपोत्तम ।

शतजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स तु मानवः ॥१२८॥

यस्तु देवालये राजन्नपि गोचर्ममंत्रकम् ।

जलेन सिञ्चेद् भूभागं सोऽपि स्वर्ग लैभेन्नरः ॥१२९॥

गन्धोदकेन यः सिञ्चेद्देवतायतने भुवम् ।

यावत्कणानुकल्प तु तिष्ठेत देवसन्निधौ ॥१३०॥

मृदा घातुविकारैर्वा यो लिम्पेद्देवतागृहम् ।

स कोटिकुलमुद्धृत्य याति साम्य मधुद्विपः ॥१३१॥

शिलाचूर्णेन यो मर्त्यो देवागार तु लेपयेत् ।

स्वस्तिकादीनि वाकुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥१३२॥

यः कुर्याद्दीपरचना देवतायतने नृप ।

तस्य पुण्यं प्रसह्यातु नोत्सदेऽदशतैरपि ॥१३३॥

हे सूर्यवश मे समुत्पन्न भागीरथ । जो पूजा से रहित भगवान विष्णु की पूजा केवल जल के द्वारा भी किया करता है हे नरोत्तम । उसको भी भगवान विष्णुलोक प्रदान करा दिया करते हैं । जो मनुष्य किसी भी देवालय मे बुहारी लगाकर भाजन किया करता है तो वह जितने भी धूलि ने कणों को बुहारा करता है उतने ही गुणों तक वह भगवान विष्णु के मन्दिर मे निवास प्राप्त किया करता है ॥११२६॥१२७॥ जो किसी जीर्ण-शीर्ण स्फटिक से त्रिमित लिंग को ठीक कर दिया करता है हे नृपवर । वह मनुष्य अपने सौक्यों जन्मों के पापों से मुक्त होकर सद्गति पा लिया करता है ॥११२८॥ हे राजन् । जो किसी भी देवालय मे गाधये माघ भूमि पर जल से छिड़काव कर दिया करता है वह जितने भी धूलि के कणों पर छिड़काव किया करता है वह उतने ही कणों तक देव के समीप मे निवास किया करता है ॥११२९॥१३०॥ जो पुरुष किसी भी देव मन्दिर को मिट्टी से अथवा पीतल लोह के पत्तों आदि से मजाना है वह अपने बरोड़ों कुलों का उद्धार कर मधु के यज्ञ करने वाले भगवान विष्णु के सायुष्य को पा लिया करता है ॥११३१॥ जो मनुष्य किसी देव मन्दिर को चूने ( सफेदी ) से पुनवा देता है तथा स्वस्तिक आदि की रचना कराता है ॥११३२॥ हे नृपोत्तम । जो मनुष्य किसी भी देव के मन्दिर मे दीप रचना किया करता है उसका फल तो मैं तो वर्षों मे भी नहीं बता कर सकता हूँ ॥११३३॥

अखण्डदीप यः कुर्याद्विष्णोर्वा शकरस्य च ।

क्षणे क्षणेऽथमेघस्य फल तस्य न दुर्लभम् ॥११३४॥

अचित शयन दृष्ट्वा विष्णुं वापि नमेत्तु यः ।

स विष्णुभवनं प्राप्य मोदत च युगायुतम् ॥११३५॥

देव्या प्रदक्षिणामेका सप्त सूर्यस्यभूमिषु ।

तिस्रो विनायास्यापि चतस्रो विष्णुमन्दिरं ॥११३६॥

दृष्ट्वा तत्तद्गृहं प्राप्य मोदते युगायुतम् ॥११३७॥

यो विष्णोर्भक्तिभावेन तथैव गोद्विजस्य च ।  
 प्रदक्षिणा चरेत्तस्य ह्यश्वमेधः पदे पदे ॥१३८॥  
 काश्यां माहेश्वरं लिङ्गं संपूज्य प्रणमेत्तु यः ।  
 न तस्य विद्यते कृत्यं ससृतिर्नैव जायते ॥१३९॥  
 शिवं प्रदक्षिण कृत्वा सव्येनैव विधानतः ।  
 नरो न ज्यवते स्वर्गिष्ठंकरस्य प्रसादतः ॥१४०॥

जो विष्णु या शिव के मन्दिर में अखण्ड दीपक जलाया करता है उसके लिये प्रत्येक क्षण में अश्वमेध के यज्ञ का फल प्राप्त करना कोई भी दुर्लभ कर्म नहीं होता है ॥१३४॥ जो मनुष्य समर्पित शिव अथवा विष्णु को प्रणाम करता है वह विष्णु के भवन में प्राप्त होकर दश सहस्र युगों तक आनन्द प्राप्त किया करता है ॥१३५॥ हे राजन् ! देवों की प्रदक्षिणा करने का क्रम यह है कि सूर्य की सात परिक्रमा करे । गणेश की तीन प्रदक्षिणा करनी चाहिए । विष्णु की चार और देवी की केवल एक परिक्रमा करे । इस परिक्रमा का ऐसा फल होता है कि प्रदक्षिणा करने वाला मनुष्य उन-उन ही देवों के भुवनो में एक एक लाख युगों तक निवास कर सुख प्राप्त किया करता है ॥१३६॥ जो मनुष्य भक्तिभाव के सहित गो और ब्राह्मण की परिक्रमा किया करता है उसको एक २ पद में अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥१३७-१३८॥ जो मनुष्य काशी में माहेश्वर लिङ्ग की पूजा करके उनकी प्रणाम करता है फिर उग मनुष्य की द्वा द्वय भूतल में कोई भी श्रम करना शेष नहीं रहा करना है और न वह फिर द्वा गंगार में ही लोट कर आया करता है ॥१३९॥ जो मनुष्य विधिपूर्वक सव्य प्रदक्षिणा किया करता है वह फिर भगवान् शङ्कर की श्रुति में सभी भी स्वर्ग में ज्युत नहीं हुआ करता है ॥१४०॥

मनुखा स्तोत्रैर्जगन्नाथं नारायणमनामयम् ।

मर्वांन्नामानवाप्नोति मनगा यत्तिदिच्छति ॥१४१॥

देवतायतने यस्तु भक्तियुक्तः प्रनृत्यति ।

गायते वा स भूपाल रुद्रलोके च मुक्तिभाक् ॥१४२॥

ये तु वाद्य प्रकुर्वन्ति देवतायतने नराः ।

ते हसयानमास्ट्वा ब्रजन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥१४३॥

करताल प्रकुर्वन्ति देवतायतने तु ये ।

ते सर्वपापनिर्मुक्ता विमानस्था युगायुतम् ॥१४४॥

देवतायतने ये तु घण्टानाद प्रकुर्वन्ते ।

तेषां पुण्यं निगदितुं न समर्थं शिवः स्वयम् ॥१४५॥

भेरीमृदङ्गपटहमुरजैश्च सङ्घिण्डिमैः ।

सप्रीणयन्ति देवेश तेषां पुण्यफलं शृणु ॥१४६॥

देवस्त्रीगणसायुक्ता सर्वकर्म समर्चिता ।

स्वर्गलोकमनुग्राह्य मोदन्ते कल्पपञ्चकम् ॥१४७॥

इतः सम्पूर्ण विश्व के स्वामी अनामय भगवान् नारायण की स्तवों के द्वारा जो स्तवन किया करता है उसके सभी मनोवाञ्छित मनोरथ पूर्णतया सफल होजाया करते हैं ॥१४१॥ हे भूपाल ! जो किसी भी देव के मन्दिर में भक्तिभाव के सहित नृत्य किया करता है अथवा भगवद् भजन का गान करता है वह रुद्रलोक में प्राप्त होकर मुक्ति का लाभ लिया करता है ॥१४२॥ जो मनुष्य देवालय में कोई भी वाद्य बजाया करते हैं वे हस्तयुक्त विमान में बैठकर ब्रह्मलोक में गमन किया करते हैं ॥१४३॥ जो मनुष्य देवालय में ताली बजाकर भगवद् भजन किया करते हैं वे सब पापों से शुद्ध होकर दश सहस्र युग पर्यन्त विमानों में बैठे करते हैं ॥१४४॥ जो मनुष्य देव मन्दिरों में घण्टा नाद दिया करते हैं उनके पत्न का वर्णन करने में साक्षात् भगवान् शिवजी थक जाया करते हैं ॥१४५॥ जो मनुष्य भगवान् की नगाड़े, मृदङ्ग, ढोल तथा सिंगी नाद आदि बाजे बजाकर शिवाया करते हैं उनके पुण्य पत्र का आप श्रवण करिए ॥१४६॥ वे मनुष्य

धर्मराज ने कहा—हे नृपो मे परमश्रेष्ठ । अब मैं वेदों मे तथा स्मृतियों मे वर्णन किये गये समस्त वणों ने धर्म का वर्णन करता हूँ और क्रमशः जुलाशा बतलाता हूँ । आप समादित होकर श्रवण कीजिए ॥१॥ जो कोई पुरुष भोजन करने के समय मे क्रोधावेश मे दा अज्ञान के बशीभूत होकर किसी अशुचि पुरुष अथवा पतित एवं चाण्डाल का स्पर्श कर लेता है तो उसके दोष का निवारण करने के लिए क्या प्रायश्चित्त होता है, यहो बतलाया जाता है ॥२॥ ऐसे स्पर्श दोष से युक्त ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह तीन अथवा छै दिन तक तीनों समयों मे स्नान करके पचगव्य का प्राशन करे तो वह पवित्र हो जाया करता है और स्पर्श दोष छूट जाता है ॥३॥ यदि भोजन करने के समय मे किसी ब्राह्मण का मल बाहिर निकल आवे तो उससे होने वाली अपवित्रता का प्रायश्चित्त मैं बतलाता हूँ । उस विप्र का कर्तव्य है कि सर्व प्रथम वह शौच कर्म कर जन का आचमन कर और फिर दिन रात का उपवास करे और पचगव्य मे गौ की ही पाँच वस्तुएँ होती हैं—गौ दुग्ध, गो दधि, गोमय, गो घृत, गोमूत्र । ऐसा करने से शुद्धि हुआ करती है ॥४-५॥ यदि भोजन करने के समय मे पेशाब ( प्रश्रव ) बाहिर निकल आवे तो दिनरात का उपवास करके अग्नि मे घृत की आहुतियाँ देनी चाहिए ॥६॥ यदि भोजन के समय मे ब्राह्मण अशुचि हो जाय तो हाथ मे ग्रहण किये हुए ग्रास को भूमि मे रख देना चाहिए और फिर उठकर स्नान करने से शुद्ध हो जाया करता है ॥७॥

भक्षयित्वा तु तद् ग्रासमुपवासेन शुद्धयति ।  
 अशित्वा चैव तत्सर्वं निरात्रमशुचिर्भवेत् ॥८॥  
 अशनतश्चेद्धमि स्याद्वि ह्यस्वस्थः स्रशता जपेत् ।  
 स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गायत्र्या शोधनं परम् ॥९॥  
 चाण्डालं श्वपचं सृष्टो विष्मूने च कृतं द्विज ॥१०॥  
 निराश्रं तु प्रकुर्वीत भक्तोच्छिष्टं पडाचरेत् ।

उदकया मूतिका वापि सस्पृशेदन्त्यजो यदि ॥११

निरात्रेण विशुद्धि स्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ।

रजस्वला त सस्पृष्टा श्वभिर्मतिङ्गवायसै ॥१२

निराहारा शुचिस्तिष्ठेत्काले स्नानेन शुद्धयति ।

रजस्वल यदा नायावन्त्योन्य स्पृशत क्वचित् ॥१३

शुध्येते ब्रह्मकूर्चैर्न ब्रह्मकूर्चैर्न चोपरि ।

उच्छिष्टेन च सस्पृष्टो यो न स्नानं समाचरेत् ॥१४

यदि जो द्रव्य य स मुख में डालकर खा चुका हो तो फिर शुद्धि के लिये उपवास का करना नित्य त आवश्यक होता है और यदि खूब डट कर पूरा भोजन कर चुका हो ता तीन दिन पय त अशुद्धि रहता करती है ॥८॥ यदि भोजन करते हुए वो वमन हो जावे तो यदि अस्वस्थता होवे तो शुद्धि के लिये तीन सौ गायत्री मंत्र का जाप करे और स्वस्थ हो तो उसको तीन सहस्र गायत्री मंत्र का जाप करना चाहिए । तभी परम पवित्रता होती है ॥९॥ यदि मन मय के त्याग करने के समय में द्विज का किसी चाहाल अथवा श्वपच से स्पर्श हो जावे तो तीन रात्रि पय त उपवास करना चाहिए । यदि भोजन करने के पश्चात् अथवा उच्छिष्ट दशा में स्पर्श हो जावे तो छै रात्रि पय त उपवास करना चाहिए । यदि किसी रजम्बला अथवा मूतिका स्त्री को छ त्याग स्पर्श कर लेवे तो वह फिर तीन रात्रि वे वाद श्वि हुआ करती है । ऐसा शास्त्रों के ज्ञाता मुनियों का मत है । यदि रजस्वला का श्वान कौआ और किरात से स्पर्श हो जावे तो उस निराहार रहना चाहिए ॥१० १२॥ और आहार का त्याग कर फिर उसे समय आने पर स्नान करना चाहिए तभी उसकी शुद्धि हुवा करती है । यदि रजम्बला स्त्रिया परस्पर में स्पर्श कर नव तो ब्रह्मकूच व्रत के करने शुद्धि हुआ करती है जिसका वर्णन पराशर स्मृति में किया गया है । से जो उचित पुरुष से छुट स्नान न कर सके तो ब्रह्मकूच व्रत करना चाहिए ॥१३ १४॥

दिव्य अङ्गनाओ के साथ समस्त कामनाओ को प्राप्त कर पांच बत्स  
तब स्वर्ग लोक में निवास किया करते हैं ॥१४७॥

देवतामन्दिरे कुर्वन्नर शयन नृप ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुर्ना सह मोदते ॥१४८॥

तालकास्यादिनिनद कुर्वन् विष्णुर्गृहे नर ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोभमवाप्नुयात् ॥१४९॥

यो देव सर्वं द्विविष्णुर्ज्ञानरूपी निरञ्जनः ।

सर्वधर्मफल पूर्णं सत्पुष्टं प्रददाति च ॥१५०॥

यस्य स्मरणमात्रेण देवदेवस्य चक्रिणः ।

सललानि भवन्त्येव सर्वकर्मणि भूपते ॥१५१॥

परमात्मा जगन्नाथ सर्वकर्मफलप्रदः ।

सत्कर्मकर्तृभिर्निरय स्मृतं सर्वातिनाशनं ।

तमुद्दिश्य कृत्वा यच्च तदानन्त्याय कल्पते ॥१५२॥

धर्माणिविष्णुश्च फलानि विष्णु कर्माणिविष्णुश्च फलानिभोक्ता

कार्यचविष्णु करणानिविष्णु रस्मान् किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥१५३॥

हे राजन् ! जो मनुष्य किसी भी देव मन्दिर में शख की छवि

किया करता है वह सभी पापों से छुटकारा प्राप्त करके सदा भगवान्

विष्णु की सन्निधि में आनन्द को प्राप्त किया करता है ॥ १४८ ॥

मनुष्य विष्णु मन्दिर में काले की आज्ञादि बजा कर देवेश्वर को रिता

है वे सर्व पाप विमुक्त होकर विष्णु लोक की प्राप्ति किया करते हैं ॥ १४९ ॥

भगवान् विष्णु देव ज्ञान रूपी निरञ्जन और सब दृष्टा हैं उनके पू

सत्पुष्ट एवं प्रसन्न हो जाने पर वे सभी धर्मों का पूण फल प्रदान का

दिय करते हैं ॥ १५० ॥ हे राजन् ! उन शख चक्रादि आयुधों के

धारण करने वाले देवेश्वर के स्मरण मात्र से ही समस्त कर्म सफल हो

जाया करते हैं और फिर कुछ भी शेष नहीं रहा करता है ॥ १५१ ॥



परमात्मा इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, सभी कर्मों के फल दाता हैं । जो सदा सत्वर्गों का अनुष्ठान करने वाले यदि उनका स्मरण किया करते हैं तो वे सभी पीडाओं से मुक्त होकर परम सुखी रहा करते हैं । क्योंकि भगवान् उनको कोई भी व्यथा रहने ही नहीं दिया करते हैं । भगवान् के निमित्त से जो भी कुछ भक्ति पूर्वक किया जाता है वह अनन्त और अक्षय फल का देने वाला हुआ करता है ॥१५२॥ यह परम सिद्धांत सम्पन्न बात है कि धर्म धर्म फल, कर्म और कर्मों का फल, भोजना, कार्य और कारण सब में भगवान् विष्णु व्याप्त होते हैं तथा भगवान् विष्णु से भिन्न इस ससार में अन्य कुछ भी नहीं है ॥१५३॥



## ॥ द्विज-धर्म निरूपण ॥

श्रुतिस्मृत्युदित धर्म वर्णानामनुपूर्वश ।  
 प्रब्रवीमि नृपश्चेष्ट त दृणुष्व समाहित ॥१  
 यो भुञ्जानोऽशुचिर्वापि चाण्डाल पतितः स्पृशेत् ।  
 क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥२  
 त्रिरात्र वाप्य पट्नात्र यथासंख्य समाचरेत् ।  
 स्नान त्रिपवण विप्र पचगव्येन शुध्यति ॥३  
 भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्नवते गुदम् ।  
 उच्छिष्टत्वेऽशुचित्वे च तस्य शुद्धिं वदामि ते ॥४  
 पूर्वं कृत्वा द्विज शौच पश्चादप्य उपसृजेत् ।  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा पचगव्येन शुध्यति ॥५  
 निगिरन्यदि मेहेत भुक्त्वा वा मेहनं कृते ।  
 अहोरात्रोपितो भूत्वा जुहुयात्पिपाजलम् ॥६  
 यदा भोजनकाले स्वादशुचिर्ग्राह्यं क्वचित् ।  
 भूनी निधाय त ग्रास्य स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥७

ऋतो तु गर्भं शङ्कित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ।  
 अनृतो तु स्रयः गत्वा शौचं मूत्रपुरीषवत् ॥१५॥  
 उभावप्यशुची स्यातां दम्पती याभिसंगतौ ।  
 शयनादुत्थिता नारी शुचिं स्यादशुचिं पुमान् ॥१६॥  
 भर्तुः शरीरशुश्रूषा दीरात्म्यादप्रकुर्वती ।  
 दण्ड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं त्रिना ॥१७॥  
 त्यजन्तो पतितान्वन्धून्दण्ड्यानुत्तमसाहसम् ।  
 पिता हि पतितः चाम न तु माता कदाचन ॥१८॥  
 आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वादिभिरुपक्रमैः ।  
 मृते मेध्येन लेप्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥१९॥  
 दण्ड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पाणिकं दमम् ।  
 प्रायश्चित्तं ततः कुपुंर्यथाशास्त्रं प्रचोदितम् ॥२०॥  
 जलाग्न्युद्धनघ्नघ्नप्रज्यानाशकच्युताः ।  
 विषप्रपतः नध्वस्ताः शस्त्रघातहताश्च ये ॥२१॥  
 न चैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकवहिष्कृताः ।  
 चान्द्रायणनः शुद्धयन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥२२॥

ऋतु काल में यदि कोई गर्भ की आशङ्का होवे तो मैथुन करने यासे को स्नान करने का विधान बतलाया गया है । ऋतु में स्त्री के समीप जात पर मूत्र पुरीष के समान ही पवित्रता करनी चाहिए ॥१५॥ मैथुन करने के समय में स्त्री पुरुष दोनों ही अपवित्र हो जाया करते हैं । नारी तों शय्या को छोड़कर उठ जाने पर ही पवित्र होजाया करती है परन्तु पुरुष अपवित्र ही रहता है ॥१६॥ जो स्त्री दुष्ट स्वभाव के कारण अपन स्वामी की सेवा न करे तो उस प्रकार की स्त्री को बारह वर्ष तक त्याग देने का दण्ड देना चाहिये । स्त्री का उसके साथ सम्पन्न न करने का ही दण्ड होता है । धन का दण्ड उसको नहीं दवे ॥१७॥ पतित और दण्ड के पान बन्धुओं को त्यागकर उत्तम साहस का

प्रदर्शन करना चाहिए । पतित पुत्र को पिता भले ही त्याग देवे किन्तु माता को उसका त्याग नहीं करना चाहिए ॥१८॥ जो रस्सी आदि के द्वारा आत्मघात करना चाहे ८। उसके मृत हो जाने पर पवित्र वस्तुओं से उसके शरीर का लेपन करना चाहिए और वह जीवित रह जावे तो उसे दो सौ पण दण्ड करना चाहिए ॥१९॥ उसके जो पुत्र एवं मित्र हो उन पर एक एक पण का दण्ड करना चाहिये । इसके उपरान्त उन्हें शास्त्र में वर्णित विधान के अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिए तब शुद्धि हुआ करती है क्योंकि आत्मघात करने का बड़ा अपराध शास्त्र में बताया गया है ॥२०॥ जो जल, अग्नि और बन्धन से मरने की इच्छा करके भ्रष्ट हो गये हों—सग्यासी का व्रत भङ्ग करने से पतित होगये हों—विषपान कर या घूँस कर मरने के पाप से दूषित होगये हों—जो शास्त्र का प्रहार कर आत्म हत्या करने के दोष से दूषित होगये हों वे मनुष्य फिर व्यवहार के पात्र नहीं रहा करते हैं । सब को चाहिए इनका बहिष्कार कर देवे ऐश्वर्य मरने की चेष्टा करने वाले लोगों की शुद्धि पराशर स्मृति में वर्णित चाण्ड्रायण व्रत अथवा दो तप्त कृच्छ्र व्रतों के करने पर ही विशुद्धि हुआ करती है ॥२१-२२॥

उभयावसित पापश्यामच्छवलकाच्च्युतः ।

चान्द्रायणाभ्यां शुद्धयेत दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥२३॥

श्वशृगालप्लवङ्गवर्गमनुष्यैश्च रतिं विना ।

स्पृष्टा स्नात्वा शुचिं सद्यो दिवा सध्यासु रात्रिषु ॥

अज्ञानाद्वा तु यो भुक्त्वा चाडालान्नं कश्चन ।

गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेनं विशुद्धयति ॥२४॥

गोब्राह्मणगृहं दग्ध्वा मृतं चोद्वन्धनादिना ।

पाशं छित्त्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेकं चरेद् द्विजः ॥२५॥

चाडालपुलकसानां च भुक्त्वा हत्वा च योपितम् ।

कृच्छ्राद्धं माचरेज्जानाज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥२७॥

जो पुरुष महा पातक और उप पातक दोनों प्रकार से भ्रष्टा प्राप्त कर चुके होवे अथवा अन्य कनेक प्रकार के पापों के समाचरण करने से भ्रष्ट हो गये होवे उनको शुद्ध होने के लिये दो चाण्डायन व्रत और धेनु या वृष के दान करने पर ही शुद्धता प्राप्त हुआ करती है ॥२३॥ रति के अतिरिक्त दिन, रात अथवा सन्ध्या के समय में कुत्ता, गौड, बन्दर और पतित पुरुष से स्पर्श हो जावे तो स्नान कर पर तत्काल में ही पवित्र हो जाया करते हैं ॥२४॥ यदि अज्ञानता में वश में आकर किसी चाण्डाल का अग्न खा लेवे तो पन्द्रह दिन तक गो मूत्र में बने हुए जो के भोजन करने से पवित्र हो जाया करता है । गौ अथवा किसी ब्राह्मण के घर को प्रज्वलित करने पर अथवा वाश में द्वारा बाधने से मरने की चेष्टा करते हो तो इनके पास नौ काठ कर द्विज को एक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥२५॥२६॥ यदि अज्ञान होने के कारण किसी पुत्रवत् या चाण्डाल के अग्न का भक्षण कर लेने और इनकी स्त्रियों को मारे तो शुद्धि के लिये अर्ध कृच्छ्र व्रत करने का प्राप्-  
विषय करना चाहिए । यदि ज्ञान पूर्वक भोजन करे तो दो चाण्डायन व्रतों को करना चाहिए ॥२७॥

कोपालिकान्नमोक्तृणा तन्नारोगायिन तथा ।

अग्न्यागमने विप्रो मद्यगोमासभक्षणे ॥२८॥

तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुद्धयति ।

महापातककर्त्ताश्चत्वारोऽय विशेषतः ॥२९॥

अग्निं प्रविश्य शुद्धयन्ति स्थित्वा वा महति व्रतौ ।

रहस्यररणोऽप्येव मासमभ्यस्य पूरुषः ।

अधमपणसूक्तं वा शुद्धयेदन्तर्जले जपन् ॥३०॥

रजकश्चर्मवारश्च नटो बुरड एव च ।

कंवत्तं मेदभित्ताश्च सप्तैते ह्यग्न्यजाः स्मृताः ॥३१॥

भुक्त्वा चैषा स्त्रियो गत्वा पीत्वा य. प्रतिगृह्यते ॥३२

कृच्छ्राद्धं माचरेज्ज्ञानादज्ञानाद्धैन्दवद्वयम् ॥३३

अमूषु पितृगोत्रासु मानृगोत्रगतासु च ॥३४

परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्राद्धं तपने चरेत् ॥३५

कोपानिवा अर्थात् एक धन्यजो की विशेष जाति का नाम है । इसका अन्न खाने पर, उनकी स्त्री के साथ गमन करने पर, जो स्त्री गमन करने के योग्य नहीं होती है उनके साथ गमन करने पर, मदिरा तथा गो मांस का भक्षण करने पर ब्राह्मण की शुद्धि तत्त कृच्छ्र व्रत के करने पर और तेल के तानों से होम करने पर शुद्धि हुआ करती है । जो चार प्रकार के महा पातकी होते हैं उनकी शुद्धि तो अग्नि में प्रवेश करने पर अथवा महा ऋतु में प्रवेश करने पर ही शुद्धि हुआ करती है । यदि एकान्त में कोई भी पाप बन जावे तो एक मास पर्यन्त जलके अन्दर "ऋत च सत्यम्" इत्यादि अध्यामवर्षण मन्त्र का जाप करें तो शुद्धि हुआ करती है ॥ २८-३० ॥ धोशी, चमार, नट, पुरुड, कैवर्त, भेद और भिल्ल (भील) इन सात को शन्यज कहा जाता है ॥ ३१ ॥ इन उन उपर्युक्त सात जातियों का अज्ञान वश अन्न का भक्षण कर लेवे अथवा इनकी स्त्रियों के साथ सगम कर लेवे या इनके घर के जल का पान कर लेवे या इन जातियों का दान ग्रहण कर लेवे तो पराशर स्मृति में बताया हुआ अर्धं कृच्छ्र व्रत करे और जान बूझ कर ऐसा करे तो शुद्धि के लिये दो चान्द्रायण व्रत करने चाहिए इस पाप का यही प्रायश्चित्त है ॥३४॥ माता पिता के गोत्र की पराई दाराओं से गमन करने पर भी शुद्धि के लिये अर्धं कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥३२-३५॥

वेष्याभिगमने पाप व्यपोहन्ति द्विजास्तथा ॥३६

पीत्वा सवृत्सुतप्त च पञ्चरात्र कुशोदकम् ।

गुरुतत्पगतो कुर्याद् ब्राह्मणो विधिवद् व्रतम् ॥३७

गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः ।

दण्डादूर्ध्वं प्रहारेण यस्तु गा विनिपातयेत् ॥३८॥

द्विगुण गोव्रत तस्य प्रायश्चित्त विशोधयेत् ।

अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणक ॥३९॥

साद्रक्त्वा कस्सपलाशश्च गोदण्ड परिकीर्तितः ।

गवा निपातने चैव गर्भोऽपि सभवेद्यदि ॥४०॥

एकंकशश्चरेत्कुच्छ्र एषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ।

बन्धने रोधने चैव पोषणे वा गवा रुजाम् ॥४१॥

द्विजों के वेश्या गमन का पाप भी इस भाँति दूर हो सकता है ॥३६॥ गुरु पत्नी गामी ब्राह्मण एक बार तो अत्यधिक गरम जल और पाँच रात तक कुशोदक का पान कर विधि पूर्वक व्रत करना चाहिए ॥३७॥ कोई-कोई आचार्य गौ का बध करने वाले और अवकीर्णी (धर्म से भ्रष्ट) गौ भी इसी प्रायश्चित्त को कहा करते हैं। जो कोई गाय के ऊपर दण्ड से चोट मारे और वह प्रहार से भूमि पर गिर पड़े तो उसकी शुद्धि दुर्गुणित प्रायश्चित्त से हुआ करती है। एक अंगुष्ठ के बराबर स्थूल और भुजा के समान प्रमाण वाला गीला ढाक का दण्ड ही गोदण्ड कहा जाया करता है। यदि गाय को इतना या ऐसा पीटा जावे कि उसका गर्भ गिर जावे तो उसकी शुद्धि के लिए एककुच्छ्र व्रत करना आवश्यक है। यह तो केवल भ्रष्ट देने मात्र को ही प्रायश्चित्त होता है। बाँधने से, रोधने से, पोषण करने से अथवा पीटा देने से गाय का प्राणान्त ही जावे तो एक-एक पाद कुच्छ्र व्रत करे ॥४०-४१॥

सपद्यते चेन्मरण निमित्तं नैव लिप्यते ।

मूर्च्छितः पतितो वाऽपि दण्डेनाभिहतस्ततः ॥४२॥

उत्थाय पट्पद गच्छेत्सतः पञ्चदशापि वा ।

ग्रासः वा यदि बृहणीयास्तोयः वापि पिवेद्यदि ॥४३॥

सर्वव्याधिघ्नमृष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ।

काष्ठलोष्टाश्मभिर्गर्वं शस्त्रैर्वा निहता यदि ॥४४

प्रायश्चित्ता स्मृता तत्रशस्त्रे शस्त्रे निगद्यते ।

काष्ठे सान्तमन प्रोक्त प्राजापत्य तु लोष्टके ॥४५

तप्तवृच्छं तु पापागे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छकम् ।

औषधा स्नेहमाहार दद्यादनोब्राह्मणेषु च ॥४६

दीयमाने विपत्ति स्यात्प्रायश्चित्तं तदा नहि ।

तैलभेषजपाने च भेषजानां च भक्षणे ॥४७

निशत्यकरणे चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते ।

वत्सानां कण्ठबन्धेन क्रियया भेषजेन तु ॥४८

साय सागोपनार्थं च त्वदोपो रोपबन्धयो ।

पादे चैवास्थ रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥४९

यदि दण्ड से पिटने पर मूर्छित होकर गिरने पर फिर उठकर दश पाँच कदम तक चल लेवे और घास खाकर जल पान कर लेवे तो इस तरह से उसके पिटने की व्याधि दूर हो गई है अतः फिर कोई भी प्रायश्चित्त करने की जरूरत नहीं रहती है । यदि काष्ठ पापाण डला या शस्त्र से गाय की मृत्यु हो जावे तो शास्त्र में उनके भिन्न भिन्न प्रायश्चित्त कहे गये हैं । यथा काष्ठ से मीत होने पर सा तमन घृत दण्ड से मरने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥४२-४५॥ पापाण के द्वारा मृत्यु होने पर तप्त वृच्छ और शस्त्र द्वारा मर जाने पर अति वृच्छ व्रत करना चाहिए । गौ तथा ब्राह्मणों के निमित्त औषध घृत तैलादि स्नेह एव आहार का वितरण करे ॥ ४६ ॥ यदि तल या किसी औषध के खाने पीने से ऐसी विपत्ति आ जावे तो उस देन वाले को किसी प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नहीं होती है । यदि बछड़ी के गले में बाधकर कोई दवा पिलाई जावे अथवा सायङ्कास में रक्षा के लिए कण्ठ में रस्सी बांधी जावे तो उसके साथ अथवा बाधन से भी कोई दोष नहीं होता है । एक पाद जो प्रायश्चित्त होता है उसमें लामो का मुण्डन कराव । द्विपाद प्रायश्चित्त में मूछ मुड़ावे ॥४७-४९॥

त्रिपादे तु शिखावर्तं मूले सर्वं समाचरेत् ।  
 सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदगुलद्वयम् ॥५०॥  
 एवमेव तु नारीणां मुण्डनं शिरसः स्मृतम् ।  
 न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं स्मृतम् ॥५१॥  
 न च गोष्ठे निवासोऽस्ति न गच्छन्तीमनृग्रजेत् ।  
 राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥५२॥  
 अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।  
 केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत् ॥५३॥  
 द्विगुणे तु व्रते चार्णो द्विगुणा व्रतदक्षिणा ॥५४॥  
 पापं न क्षीयते हन्तुर्दाता च नरकं व्रजेत् ।  
 अश्रुतस्मात्तंविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये ॥५५॥

त्रिपादमें शिखा का मुण्डन करावे । पूर्ण प्रायश्चित्त में पूरा मुण्डन कराना चाहिए । स्त्रियों के सब केशों को पकड़कर दो अगुल काट देना चाहिए । नारियों का यही शिरोमुण्डन शास्त्र विधान में बताया गया है । इसके अतिरिक्त स्त्रियों के लिए मुण्डन और वीरासन करना शास्त्र में निषिद्ध होते हैं ॥५०-५४॥ स्त्री गोठ में न रहे और गाय के पीछे-पीछे घूमे । यदि राजा या राज-पुत्र अथवा बहुश्रुत ब्राह्मण को पाप दुर्भाग्य से लग जावे तो उनका प्रायश्चित्त मुण्डन रहित कराना चाहिए और केशों की रक्षा के बदले में दुगुना व्रत करना चाहिए ॥५५-५६॥ दुगुने व्रत प्रायश्चित्त में जब किये जाते हैं तो उन व्रतों की दक्षिणा भी दुगुनी होनी चाहिए ॥५७॥ अगर श्रुति, स्मृतियों में जो नहीं बताया गया है ऐसा प्रायश्चित्त बताया जाता है तो अपराधी के पाप का कभी भी क्षय नहीं हुआ करता है और वह प्रायश्चित्तों का उपदेश देने वाला स्वयं नरक गामी हो जाया करता है ॥५४॥

तान्धर्मविघ्नवन्तृश्च राजा दण्डेन पीडयेत् ।  
 न चैतान्पीडयेद्राजा वधचित्त्वाममोहितः ॥५६॥



तत्पाप शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ।  
 प्रायश्चित्ते ततश्चोर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥५७॥  
 विशातिर्गा वृष चैक दद्यात्तोषा च दक्षिणाम् ।  
 किमिभिस्तृणसभूतैर्मक्षिकादिनिपातितै ॥५८॥  
 कृच्छ्रं स प्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।  
 प्रायश्चित्तं च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥५९॥  
 सुवर्णमानिक दद्यात्तन शुद्धिविधीयते ।  
 चाण्डालश्वपचै स्सृष्टे निशि स्नान विधीयते ॥६०॥  
 न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्य स्नानेन शुद्धयति ।  
 वसेदथ यदा रात्रावज्ञानादविचक्षण ।  
 तदा तस्य तु तत्पाप शतधा परिवर्तते ॥६१॥  
 उदनच्छन्ति च नक्षत्राण्युपरिष्ठाच्च ये ग्रहा ।  
 सास्पृष्टे रश्मिभिस्तेषामुदकस्नानमाचरेत् ॥६२॥  
 याश्चान्तर्जलवल्मीकमूपिकोपरवर्त्मसु श्मशाने ।  
 शौचशेषे च न ग्राह्या सप्त मृत्तिका ॥६३॥

इस तरह के अशास्त्रोक्त प्रायश्चित्त को बनाकर धर्म के कार्य में जो बिघ्न डाला करते हैं उनको तत्कालीन राजा को दण्ड अवश्य ही देना चाहिए । यदि मोह के कारण इन लोगों को दण्ड नहीं देता है तो वही पाप सैकड़ों भागों में बँट जाता है और राजा पर भी जाकर चढ़ बैठा करता है । प्रायश्चित्त पूर्ण करने के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा उनको समुचित दक्षिणा भी देनी चाहिए ॥५६-६०॥ एक वृष और बीस गायों को दक्षिणा देवे । यदि शौ के शरीर पर प्रहार करने से कोई क्षत हो गया हो और उस घाव में धास से कीड़े पड़ जायें और उसमें मक्खी पड़ जावे तो अर्घकृच्छ्र व्रत का प्रायश्चित्त करना चाहिए यथा शक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा थोड़ा सुवर्ण भी देवे तभी शुद्धि होती है । यदि किसी चाण्डाल अथवा श्वपच

से रात्रि के समय में स्पर्श हो जावे तो प्रातः काल में स्नान करने से शुद्धि होती है ॥६१-६३॥ यदि उनके स्पर्श होन पर रात्रि में न रहे तो तत्काल ही में स्नान करके शुद्ध हो जाया करता है । यदि चातुर्य हीन पुरुष अज्ञान होने के कारण रात्रि में चाण्डालों के पास में रहता है तो उनका पाप शत गुना होकर लिपट जाया करता है ॥६१॥ मनुष्यों के ऊपर जो भी ग्रह तथा नक्षत्र निकले उनकी किरणों का स्पर्श हो जाने पर फिर जल में स्नान करे ॥६२॥ जल के अन्दर रहने वाली, सप के वमर्द की बूहे के बिल की, कल्लड भूमि की मार्ग, की श्मशान भूमि की और शौच शेष की इन सात स्थलों की मिट्टी कभी ग्रहण नहीं करनी चाहिए ॥६३॥

इष्टापूर्तं तु कर्त्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ।

इष्टेन लभते स्वर्गं मोक्षं पूर्त्तेन चाप्नुयात् ॥६४॥

वित्तक्षेपो भवेदिष्टं तडागं पूर्त्तमुच्यते ।

आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च ॥६५॥

बापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।

पतिताभ्युद्धरेद्यस्तु स पूर्त्तफलमश्नुते ॥६६॥

शुक्लाया आहरेन्मूत्रं कृष्णाया गो शकृत्तथा ।

ताम्रायाश्च पयो ग्राह्यः श्वेतायाश्च दधि स्मृतम् ॥६७॥

कपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम् ॥६८॥

तुल्यैस्तीर्थैर्नदीतोयैः सर्वद्रव्यं पृथक्-पृथक् ।

आहृत्य प्रणवेनैव उत्थाप्य प्रणवेन च ॥६९॥

प्रणवेन समालोड्य प्रणवेनैव सपिवेत् ॥७०॥

ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि उस इष्ट और पूर्त्त वस्तु को प्रयत्न प्रयत्नों के साथ करना चाहिए । इष्ट वस्तु के करने से स्वयं लाभ प्राप्त हुआ करता है तथा पूर्त्त कार्यों के करने से मोक्ष मित्रा करता है ॥६४॥ धन का दान दान इष्ट कहा जाता है तथा तागाव, उद्यान

तथा देवार्पणं की'हुई यावडी पूर्त' कर्म कहा जाया करता है ॥६५॥  
जो कोई तानाब, यावडी और कूप तथा देवालय जीर्ण-शीर्ण दशा में  
होकर नष्ट हो रहे हों उनका जो उद्धार करता है यह भी पूर्त' कर्म  
कहा जाया करता है । इस का वही फल भी मिलता है ॥६६॥ शुक्ल  
वर्ण वाली गौ का मूत्र और कृष्ण वर्ण की गौ का गोदर ग्रहण करना  
चाहिए । ताम्र के समान जिस का वर्ण हो उस गौ का दूध और सपेद  
रक्त वाली गौ का दही लना चाहिए । जो कपिल गौ हो उसका सदा  
घृत लेवे । ये सब महा पातका के नाश करने वाले हैं । पञ्चगव्य  
जो बनाया जावे तो ऐसा ही बनाना चाहिए वही पञ्चगव्य परमोत्तम  
हुआ करता है ॥६७-७८॥ कुश, नदी और तीर्थ जल इनसे सभी द्रव्यों  
का पृथक् २ लना चाहिए । जब भी इन वस्तुओं को उठावे तो उस  
समय म प्रणव का उच्चारण करना चाहिए और प्रणव (ॐकार के)  
जप करत हुए ही आलोडन करे तथा प्रणव का उच्चारण कर के पान  
भी करना चाहिए ॥६६ ७०॥

पालाशे मध्यमे पर्णे भाण्डे ताम्रमये शुभे ।  
पिवेतपुष्करपर्णे वा मृन्मये वा कुशोदकम् ॥७१॥  
सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ।  
द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुद्ध्यति ॥७२॥  
जातेन शुद्ध्यते जात मृतेन मृतक तथा ।  
गर्भसास्त्रेण भासे त्र्योष्यहानि विनिर्दिशेत् ॥७३॥  
रात्रिभिर्मासतुत्याभिर्गर्भस्रावेविशुद्ध्यति ।  
रजस्युपगतेमाध्वी स्नानेन स्त्री रजम्बला ॥७४॥  
स्नानोत्पाद् भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे ।  
स्वामिगोत्रेण कर्त्तव्यास्तस्या पिण्डोदनक्रिया ॥७५॥  
उद्देश्य पिण्डदानं स्यात्पिण्डे पिण्डे द्विनामत ।  
पण्णा देवस्यैव पिण्डा एव दाता न मुह्यति ॥७६॥

स्वेन भर्ता सहस्रान्द माता भुक्ता सुदैवतम् ।  
 पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥७७॥  
 वर्षे वर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम् ।  
 अदैव भोजयेच्छ्राद्ध पिण्डमेक तु निर्वपेत् ॥७८॥

इस पञ्चगव्य को पलाश (ढाक) के पत्ते में जो एक दोना के रूप में होता है लेवे अथवा ताम्र के परम शुभ पात्र में, मृत्तिका के पात्र में कुशोदक का पान करना चाहिये ॥७९॥ किसी एक आशीच (सूतक) में यदि कोई दूसरा भी सूतक आजावे तो फिर दूसरे का धोप नहीं लगा करता है ॥७२॥ जनना शीच के साथ ही जनना शीच उतर जाया करता है तथा इसी भाँति मृता शीच के साथ मृता शीच दूर हो जाया करता है । गर्भ का स्नाव होजावे तो तीन दिन के लिये सूतक लगा करता है ॥७३॥ जितने मास के गर्भ का स्नाव होता है उतने ही दिन का सूतक भी होना है फिर उतनी ही रात्रियों के पश्चात् शुद्धि होजाया करती है ॥७४॥ सप्तपद में नारी अपने पिता के गोश्र में पृथक् होजाया करती है । इसके पश्चात् उसका पिण्डदान और जलदान उसे अपने स्वामी के गोश्र में ही करना चाहिए ॥७५॥ प्रत्येक पिण्ड पर दो दो नाम बोलना चाहिए । माता-पिता को, पिता-मह पितामही को और प्रपितामह प्रपितामही को तीन पिण्ड देवे । इस रीति से दाता कभी मोह में नहीं पडा करता है ॥७६॥ माता अपने स्वामी अर्थात् पिता के साथ गृहस्थो वय तक पिण्ड का उपभोग किया करती है । इसी रीति से पितामही अपने स्वामी (पितामह) के साथ और प्रपितामही अपने स्वामी (प्रपितामह) के साथ में पिण्ड का उपभोग किया करती है ॥७७॥ प्रत्येक वय में माता-पिता मरण के दिन दिन श्राद्ध मन्त्रार करना चाहिए । विग्रहवा गृह में श्राद्ध में जिमावे तथा एक पिण्ड दान देवे ॥७८॥

नित्य नैमिती ताम्य नृदिश्राद्धमथागम् ।

पार्वण चेति विज्ञेय आह पञ्चविधं बुधै ॥७६॥  
 ग्रहोपरागे सक्रान्तौ पर्वोत्सवमहालये ।  
 निर्वपेत् त्रीन्नर पिण्डानेकमेव मृतेऽहनि ॥८०॥  
 अनुद्धा न पृथक्कन्या पिण्डे गोत्रे च सूतके ।  
 पाणिग्रहणमन्त्राभ्या स्वगोत्राद्भ्रश्यते तत ॥८१॥  
 येन येन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते ।  
 तत्समा सूतकं याति तथा पिण्डोदकेऽपि च ॥८२॥  
 विवाहे चैव सवृत्ते चतुर्येऽहनि रात्रिषु ।  
 एकत्वं सा व्रजेद्भर्तुं पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥८३॥  
 प्रथमेऽहनि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्यके ।  
 अस्थिसचयनं कार्यं बन्धुभिर्हितबुद्धिभि ॥८४॥

विद्वान् पुरुषो का पाच तरह से थोड़ा ससप्त लेना चाहिए ।  
 वे पाँच ये होते हैं—नित्य, नैमित्तिक काम्य, वृद्धि आह और पार्वण  
 आह ॥७६॥ ग्रहण सक्रांति, महालय पर्वोत्सव (कनागन) में मनुष्य को  
 तीन पिण्ड देने चाहिए ॥८०॥ जिस कन्या का विवाह नहीं हुआ हो  
 वह पिण्ड, गोत्र और सूतक में पृथक् नहीं होती है और जिस समय  
 में उस कन्या का पाणिग्रहण होजाया करता है तो वह फिर अपने  
 गोत्र में पृथक् हो जाया करती है और अपने स्वामी के साथ में जाकर  
 मिल जाया करती है ॥८१॥ जिस जिस वर्ण की कन्या विवाही जाया  
 करती है उन २ वर्णों के अनुसार ही सूतक, पिण्ड तथा उदक क्रियाएँ  
 हुआ करती है ॥८२॥ विवाह के सम्पन्न होने पर चौथे दिन में रात्रि  
 के समय में कन्या पिण्ड, गोत्र और सूतक में अपने पति से मिल जाया  
 करती है ॥८३॥ मरण हान पर हिनचिन्तक बन्धुजा का प्रथम, द्वितीय,  
 तृतीय अथवा चतुर्थ दिन में अस्थि सचय करना चाहिए ॥८४॥

चतुर्थ पञ्चम चैव सप्तमे नवमे तथा ।

अस्थिसचयनं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥८५॥

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते घृष ।  
 मुच्यते प्रेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते ॥८६॥  
 नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदयेन तु चिन्तयेत् ।  
 आगच्छन्तु मे पितरो गृह्णन्त्वेताजलाजलीन् ॥८७॥  
 हस्तौ कृत्वा तु मयुक्तौ पूरयित्वा जलेन च ।  
 गोशृङ्गमानमुद्धृत्य जलमध्ये विनिक्षिपेत् ॥८८॥  
 आकाशे च क्षिपेद्धारि वारिस्थो दक्षिणामुख ।  
 पितृणां स्थानमाकाशं दक्षिणादिक् तथैव च ॥८९॥  
 आपो देवगणा प्रोक्ता अपि पितृगणास्तथा ।  
 तस्मादस्य जलं देव पितृणां हितमिच्छता ॥९०॥  
 दिवासूर्याग्निसततं रात्रौ नक्षत्रमाहृतै ।  
 मध्ययोरप्युभाभ्यां च पवित्रं सर्वदा जलम् ॥९१॥

चतुर्थ, पंचम और सप्ताह तथा नवम दिन में भी वर्णों के क्रम से अम्बियो का नमन किया जाता है ॥८५॥ जिस प्रेत के एकादशाह में घृष का उत्सर्ग किया जाता है वह प्रेत लोक से मुक्त होकर स्वर्ग निवास का आनन्द भोग करता है ॥८६॥ नाभि पर्यन्त जल में खड़े होकर हृदय में विचार करे कि मेरे पितरगण आर्य और मेरे द्वारा प्रदत्त जलाजलियों को ग्रहण करे ॥८७॥ अपने दोनों हाथों को मिला कर जल से भरे और गी की मीन की ऊँचाई तक उठाल कर जल में ही उस जल का छोड़ देवे ॥८८॥ दक्षिण दिशा की ओर मुख करके आकाश में जन को प्रशिक्ष कर दास चाहिए कथो कि दक्षिण दिशा में ही आकाश में पितरों का स्थान है ॥८९॥ जल ही देवता और जल की ही पितरगण कहा गया है अतएव जो अपने पितृगण की भलाई चाहता है उस जन का दास बनना चाहिए । जलान्न में पितर वृत्त हो जाना जरूर है ॥९०॥ जन दिन में गर्बोदय की पितरों के ताप में तप्त होता रहा करना है तथा रात्रि के समय में नक्षत्रों

की वायु से वह विशुद्ध होता है एवं दानो सन्ध्याओं में भी दोनों के योग होने से उसकी शुद्धि होती है अतएव सदा परम पवित्र रहता है ॥६१॥

स्वभावयुक्तमव्यक्तममध्येन सदा शुचि ।

भाडस्थ धरणीस्थ वा पवित्र सर्वदा जनम् ॥६२॥

देवताना पितृणा च जल दद्याज्जलाजलीन् ।

असस्कृतप्रमीताना स्थले दद्याद्विवक्षण ॥६३॥

श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना ।

उभाभ्या तर्पणे दद्यादेप घर्मो व्यवस्थित ॥६४॥

किसी भी अशुचि वस्तु जिससे जल का स्पृश न हुआ हो और वह अपने ही स्वभाव में स्थित हो, चाहे वह किसी भी पात्र में रहे या भूमि में रहे वह सर्वदा परम पवित्र होता है। चतुर पुरुष का कर्तव्य है कि वह देवगण एवं पितृगण को जलाजलि अर्पित करे। जो बिना ही मस्कार हुए मृत हो गये हों उनको स्थल में जल की अर्जलि देनी चाहिये ॥६२-६३॥ श्राद्ध और हवन में एक हाथ से जल देना चाहिये और जब केवल तर्पण करना हो तो दोनों ही हाथों से जल दान करना चाहिए, यह इसी प्रकार से घर्म की व्यवस्था है ॥६४॥



## ॥ पापियों को नरक दण्ड वर्णन ॥

पाप भेदान्प्रवक्ष्यामि यथा स्थूलाश्च यातना ।

शृणुस्व धैर्यमास्थाय रौद्रा ये नरका यत ॥१॥

पापिनो य दुरात्मानो नरकाग्निषु सन्ततम् ।

पच्यन्ते येषु तान्वक्ष्ये भयकरफलप्रदान् ॥२॥

तपनो वालुकाकुम्भौ महारौवरौरवौ ।

कुम्भोपाको निरुच्छ्वासः कानसूत्रः प्रमर्दनः ॥३॥

असिपत्रवनं घोर लालामक्षो हिमोत्कटः ।

मूढावस्था वसाकूपस्तथा वंतरणी नदी ॥४॥

भक्ष्यन्ते मूत्रपानं च पुरीषहृन्मद एव च ।

तप्तशूल तप्तशिला शात्मलीद्रुम एव च ॥५॥

तथा शोणितकूपश्च घोरः शोणितभोजनः ।

स्वमासभोजनं चैव वह्निज्वालानिवेशनम् ॥६॥

शिलावृष्टिः शस्त्रवृष्टिर्वह्निवृष्टिस्तथैव च ।

क्षारोदकं चोष्णतोयं तप्रायः पिण्डभक्षणम् ॥७॥

अथ शिरः शोषणं च मरुत्प्रपतनं तथा ।

तथा पापाणवर्णं च कृमिभोजनमेव च ॥८॥

धर्मराज ने कहा—अब मैं समस्त पापों के भेद-प्रभेद तथा महान् भीषण यातनाओं में पूर्ण नरकों के विषय में वर्णन करता हूँ । आप बहुत ही धीरज के साथ उनका श्रवण करिये क्योंकि नरकों का वर्णन बहुत ही भयानक सा प्रतीत हुआ करता है और उसे सुनकर दिल काप उठता है ॥ १ ॥ दुष्ट पापात्मा नर नरक की भीषण अग्नि में निरन्तर जला करते हैं उन्हीं महान् भयावह नरकों का वर्णन अब किया जाता है ॥२॥ उन नरकों का सर्व प्रथम नामों को श्रवण कराया जाता है, तपन, वालुका, कुम्भ, रौरव, महारौरव, कुम्भोपाक, निरुच्छ्वास, कानसूत्र और प्रमर्दन ये नरकों के नाम हैं ॥३॥ असिपत्रवन, हिमोत्कट मूढावस्था, वसाकूप, वंतरणी सरिता जहाँ पर मूत्र का पान करना पड़ता है, पुरीष हृन्मद, तप्तशूल, तप्तशिला और शात्मली द्रुम ये सभी नामों वाले बड़े भीषण नरक हैं ॥४-५॥ शोणित कूप, घोर शोणित भोजन, स्वमास भोजन, वह्नि ज्वाला निवेशन, शिलावृष्टि, शस्त्रवृष्टि, वह्नि वृष्टि, क्षारोदक, उष्णोदक, तप्राय पिण्ड भक्षण ये सभी नरकों के नाम



हैं ॥ ६-७ ॥ शिरशोषण, मरुत्प्रयतन, पापाण वर्ष और कृमि भोजन ये सभी नामो वाले महान् घोर नरक होते हैं ॥८॥

क्षारो दपान भ्रमण तथा क्रकचदारणम् ।

पुरीपलेपन चैव पुरीपस्य च भोजनम् ॥६॥

रैत पान महाघोर सर्वसन्धिषु दाहनम् ।

धूमपान पाशवन्ध नानाशूलानुलेपनम् ॥१०॥

अङ्गारशयन चैव तथा मुसलमर्दनम् ।

वहूनि काष्ठयन्त्राणि कर्पण छेदन तथा ॥११॥

पतनोत्पन चैव गदादण्डादिपीडनम् ।

गजदन्तप्रहरण नानासर्पैश्च दशनम् ॥१२॥

शीताम्युत्सेचना चैव नासाया च मुये तथा ।

घोरक्षाराम्बुपान च तथा लवणभक्षणम् ॥१३॥

स्नायुच्छेद स्नायुवन्धमस्थिच्छेद तथैव च ।

क्षाराम्बुपूर्णनन्ध्राणा प्रवेश मामभोजनम् ॥१४॥

पित्तपान महाघोर तथैव श्लेष्मभोजनम् ।

वृक्षाप्रात्पातन चैव जलान्तर्मज्जन तथा ॥१५॥

क्षारोदकपान, भ्रमण, क्रकच विदारण पुरीष लेपन, पुरीषाहार, रैतपान, महाघोर भव सन्धि विदाहन, धूमपान, पाशवन्ध नाना शूलानु लेपन ये सभी नरक होते हैं ॥६-१०॥ अङ्गार शयन मुसलमर्दन, जिसमें अधिक काष्ठ के यन्त्र बने हुए हैं जो खींचकर काटने वाला नरक है पतनोत्पतन जिसमें गर्त में गिराया जाया जाता है, ऊपर का प्रार म पुमारण पंर दिया जाता है । जिस नरक में गदा तथा दण्डों से पीटा जाता है ऐसा गदा दण्डादि पीडनाम वाला नरक है । दाह ज्मि- रित ऐसे भी नरक हैं जहाँ पर दाह म प्रसार होता है जनक तरह क विपन्न गणों में डबाया जाया करता है ॥११-१२॥ मुख तथा नाक में अधिक शीतल जल चुम्बेह दिया जाता है अथवा ग्राही जल चरवश

पिलाया जाता है तथा केवल नमक ही खिलाया जाता है ऐसे भी नरक यमलोक में होते हैं ॥१३॥ नरको में बड़ी-बड़ी भयानक यातनाये दी जाया करती है, वहाँ पर शरीर की नस काटी जाती है, नसें बांधी जाया करती हैं, हड्डियाँ तोड़ी जाती है, अत्यन्त खारी जल में डुबा दिया जाता है, मांस, पित्त, कफ खिलाया जाता है तथा वृक्ष पर चढ़कर मिराया जाता है और जल में डुबा दिया जाता है ॥१४-१५॥

पापाणधाण चैव शयनं कण्ठकोपरि ।

पिपीलिकादशन च वृश्चिकैश्चापि पीडनम् ॥१६

व्याघ्रपीडा शिवापीडा तथा महिषपीडनम् ।

कदर्दमे शयन चैव दुर्गन्धपरिपूरणम् ॥१७

बहुशश्चार्धशयनं महातिक्तनिषेवणम् ।

अत्युष्णतैलपानं च महाकटुनिषेवथम् ॥१८

कपायोदकपानं च तप्तपापाणतक्षणम् ।

अत्युष्णशीतस्नानं च तथा दशनशोर्णनम् ॥१९

तप्ताय शयनं चैव ह्ययोभारस्य बन्धनम् ।

एवमाद्या महाभाग यातनाः कोटिकोटिशः ॥२०

अपि वर्षसहस्रेण नाहं निगदितुं क्षमः ।

एतेषु यस्य यत्प्राप्त पापिनः क्षितिर्लक्षकः ॥२१

ऐसे भी नरक होते हैं जहाँ पर शिर पर भारी पत्थर की शिलाएँ रख दी जाती हैं, काटो पर मुलाया जाता है, धीटियो से कटाया जाता है और भयानक बिच्छुओं से दशन कराया जाता है ॥१६॥ व्याघ्र- गीदड़ और भैंसों से मुठभेड़ कराई जाती है बीच में लिटा दिया जाता है और घोर दुर्गन्ध ऊपर से छाड़ दी जाती है ॥१७॥ जब तब नींद नहीं भरती है उठाकर बिटा दिया जाता है, ऐसे भी नरक हैं जहाँ पर अत्यन्त अमृत्य तीक्ष्ण पदार्थ पिलाया जाता है, मौनता हुआ तप्त तेल पिलाया जाता है तथा महान् चट्टी बन्तु गिराई जाया करती है

॥१८॥ नारकीय यातनाओं में कसैला जल पिलाया जाता है, जलते हुए पत्थर तुड़वाये जाते हैं, अत्यन्त ठण्डे और अधिक खोलते हुए पानी में स्नान कराया जाता है ॥ १९ ॥ अग्रन्त तप्त लौह की चादर पर लिटाया जाता है, लोहे का भार मस्तक पर रख दिया जाता है । हे महाभाग । नरकों में ऐसी करोड़ा प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं जिनको मैं स्वयं भी हजारों वर्षों में भी पूरा वर्णन नहीं कर सकता हूँ ॥२०-२१॥

तत्सर्वं सप्रवक्ष्यामि तन्मे निगदत शृणु ।  
 ब्रह्महा च सुगपी च स्तेयी च गुरुस्तल्पग ॥२२॥  
 महापातकिनस्त्वेते तत्ससर्गो च पञ्चम ।  
 पवित्रभेदी वृथापाकी नित्य ब्राह्मणद्वेषक ।  
 आदेशी वेदविक्रेता पचैते ब्रह्मघातका ॥२३॥  
 ब्राह्मण यः समाहूय दास्यामीति धनादिकम् ।  
 पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥२४॥  
 स्नानार्थं पूजनार्थं वा गच्छन्तो ब्राह्मणस्य यः ।  
 समायात्यन्तरायत्व तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥२५॥  
 परनिन्दासु निरतश्चात्मात्कर्पंरतश्च यः ।  
 असत्यनिरतश्चैव ब्रह्महा परिकीर्तित ॥२६॥  
 अधर्मस्यानुमन्ता च ब्रह्महा परिकीर्तित ।  
 अन्याद्वेगरतश्चैव अन्येषां दोषमूचक ॥२७॥  
 दम्भाचाररतश्चैव ब्रह्महेत्यभिधीयते ।  
 नित्यं प्रतिग्रहरतस्तथा प्राणिवधे रत ॥२८॥

हे भूमिपाल । अब मैं आपका यह मध्य में बतलाता हूँ कि किन किन पापियों का वहाँ पर क्या-क्या नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं । जो ब्राह्मण को हत्या करने वाला, मदिरापान करने वाला, चार और गुह्य पत्नी के साथ यमन करने वाला ये चारों और पाचवाँ

सुरापानसमं पापं लभते स नराधमः ।

एव बहुविधं पापं सुरापानसमं स्मृतम् ॥३४॥

अब मैं सुरापान के तुल्य होने वाले पापों का अति मक्षेप में वर्णन करता हूँ गणिकाओं के अन्न का भोजन तथा गणिकाओं का सेवन करना, पतितों के अन्न का भोजन करना भी सुरापान के ही समान होता है । उपासना करने का त्याग, देवों का भोजन, शराब पीने वाली स्त्री के साथ गमन करना भी सुरापान के समान ही पाप होता है । जो विप्र शूद्र के यहाँ पर बुलाया जाने पर उमके यहाँ भोजन करता है उमके भी शराबी ही समझना चाहिए और ऐसे ब्राह्मण को कभी भी किसी धार्मिक कृत्य करने का अधिकार नहीं देना चाहिए । जो शूद्रों की आज्ञा से पुण्य कर्म करता है उस नराधम को भी सुरापान के ही समान पाप लगता है । ऐसे अनेक तरह के पाप भी सुरापान के ही तुल्य ही होते हैं ॥२६-३४॥

हेमस्तेयसमं पापं प्रवक्ष्यामि निशामय ।

कन्दमूलफलानां च कस्तूरीपटवाससाम् ॥३५॥

सदा स्तेयं च रत्नानां स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् ।

ताम्रायस्त्रपुकास्यानामाज्यस्य मधुनस्तथा ॥३६॥

स्तेयं सुगन्धद्रव्याणां स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् ।

क्रमुकस्यापि हरणमम्भसा चन्दनस्य च ॥३७॥

पर्णरसापहरणं स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् ।

पितृयज्ञपरित्यागो धर्मकार्यविलोपनम् ॥३८॥

यतानां निन्दनं चैव स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् ॥३९॥

भक्ष्याणां चापहरणं धान्यानां हरणं तथा ॥४०॥

सुद्राक्षहरणं चैव स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् ॥४१॥

अब हम सुवर्ण की चोरी के तुल्य होने वाले पापों के विषय में बतलाते हैं, कन्द, मूल, फलों की चोरी करना, कस्तूरी, वस्त्र और रत्नों

की चोरी करना भी सदा सुवर्ण की चोरी के ही समान होती है । ताम्र लोहा, शीशा, काँसा, घृत, शहद, सुपारी तथा चन्दन से मिश्रित जल की चोरी भी सुवर्ण की चोरी के ही समान पाप होता है ॥ ३५-३७ ॥ शरबत की चोरी, पितृ यज्ञ का त्याग कर देना और विही भी धर्म के कार्य का लोप कर देना भी सुवर्ण की चोरी के समकक्ष ही पाप होता है ॥ ३८ ॥ सन्यामियों की निन्दा, भक्ष्य पदार्थों का अपहरण और धान्यों का अपहरण करना भी सुवर्ण की चोरी के ही समान है ॥ ४०-४१ ॥

धर्मलोपः शास्त्रनिन्दा गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥४२

इत्येवमादयो राजन्महापातकसज्जिताः ॥४३

एतेष्वेकतमेनापि सङ्गकृत्तत्समो भवेत् ॥४४

यथाकथञ्चित्पापानामेतेषां परमर्षिभिः ॥४५

शान्तैस्तु निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तादिकल्पनैः ।

प्रायश्चित्तविहीनानि पापानि शृणु भूपते ॥४६

सनस्तपापतुल्यानि महानरकदानि च ।

ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥४७

ब्राह्मणं द्वेष्टि यस्तस्य निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित् ।

विश्वस्तघातिना चैव कृतघ्नानां नरेश्वर ॥४८

शूद्रस्त्रीसङ्गिना चैव निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित् ।

शूद्रान्नपुष्टदेहानां वेदनिन्दारतात्मनाम् ॥४९

धर्म का लोप और शास्त्रों की निन्दा ये समस्त पाप गुरु तल्प सम के ही समान होते हैं । हे राजन् ! इन उपर्युक्त महान् पापियों का माघ देने वाला भी उसी के समान पानकी हो जाया करता है । शत्रादि गुणों से विभूषित मनुष्यों ने प्रायश्चित्त आदि के द्वारा इन सब पापों से विद्ध होने का मार्ग बतलाया है किन्तु हे भूपते ! कुछ ऐसे भी महान् पाप होते हैं जिनका कि कोई भी प्रायश्चित्त हो ही नहीं सकता है । मैं अब आपके सामने उन पापों का वर्णन करता हूँ, आप

श्रवण करिये ॥४२-४६॥ ऊपर मे बतलाये हुए सभी पाप महान् घोर नरकों को देने वाले होते हैं किन्तु ब्रह्म हत्या आदि के महान् पापों से भी किसी प्रकार से छुटकारा हो भी जाया करता है क्योंकि ये जैसे महान् पाप हैं वैसे ही इसके परम उग्र प्रायश्चित्त भी बतलाये गये हैं ॥४७॥ किन्तु जो मनुष्य ग्राहणों से द्वेष करता है उसके पाप से छुटकारा किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता है । हे नरेश्वर ! विश्वास-घातियों की, किये हुए उपकार को न मानने वालों की, शूद्र की स्त्री से गमन करने वालों की, शूद्रान्न से पुष्ट शरीर वालों की और देवों की निन्दा करने वालों की निष्कृति (उडार हाने की गति) तो कहीं पर है ही नहीं ॥४८-४९॥

सत्कथानिन्दकानां च नेहामुत्र च निष्कृतिः ॥५०॥

बौद्धालय विशेषस्तु महपाद्यपि वै द्विज ।

न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि ॥५१॥

बौद्धा पापण्डिन प्रोक्ता यतो वेदविनिन्दका ।

तस्माद् द्विजस्तान्नेक्षेत यो धर्मबहिष्कृता ॥५२॥

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि द्विजो बौद्धालय विशेषः ।

ज्ञात्वा चेन्निष्कृतिर्नास्ति शास्त्राणामिति निश्चयः ॥५३॥

एतेषां पापबाहुल्यान्नरककोटिकल्पकम् ।

प्रायश्चित्तविहीनानि प्रोक्तान्यन्यानि च प्रभो ॥५४॥

पापानि तेषां नरकान्गदतो मे निशामय ॥५५॥

महापातकिनस्तु प्रत्येकं युगवासिनः ।

तदन्ते पृथिवीमेत्यसप्तजन्ममुगदंभा ॥५६॥

जो सत्कथा की निन्दा करने वाले लोग हैं उनकी निष्कृति तो दृष्ट हो सकती है तथा परलोक में कहीं भी नहीं है ॥५०॥ महान् आपदा में प्रसन्न हो जाने पर भी जो द्विज बौद्धा या मन्दिर में प्रवेश करता है उसकी शतशः प्रायश्चित्तों से भी शुद्धि नहीं हो सकती है ॥५१॥ इसका कारण

यही है कि बौद्ध लोग वेदों के महान् निन्दक होते हैं, वे पापण्डी हैं और धर्म से बहिष्कृत होते हैं, अनएव द्विज यो तो उनकी ओर अपनी दृष्टिभी नहीं डालनी चाहिए ॥५२॥ इन्हीं बातों के कारण से द्विज यदि जान-बूझकर ऐसा करता है तो फिर उसका छुटकारा कभी भी नहीं होता है, ऐसा धर्म शास्त्रों का सत्य सिद्धांत है ॥५३॥ इन ऐसे बहुत से पापों का फल भी करोड़ों कल्पों तक नरकों में यातनाएँ सहन करना ही होता है । हे प्रभो । जिन महा पापों का कुछ भी कही प्रायश्चित्त नहीं है ऐसे भी बहुत से पापों का वर्णन किया गया है । अब उन महा पापों से प्राप्त होने वाले नरकों के विषय में आप मुझसे श्रवण कीजिए । मैं उन्हें अब बतलाता हूँ ॥५४-५५॥ जो पातकी होते हैं वे प्रत्येक नरक में एक-एक भुग पर्यन्त रहा करते हैं । फिर इसके अनन्तर इस पृथ्वी में आकर उनको सात बार गधों की योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है ॥५६॥

ततः स्वानो विद्धदेहा भवेयुर्दशजन्मसु ।  
 आशताब्द विट्कृमयः सर्पा द्वादशजन्मसु ॥५७॥  
 ततः सहस्रजन्मानि मृगाद्याः पशवो नृप ।  
 शताब्द स्थावराश्चैव ततो गोघ्राशरीरिणः ॥५८॥  
 ततस्तु सप्तजन्मानि चण्डाला पापकारिणः ।  
 ततः षोडश जन्मानि शूद्राद्या हीनजातयः ॥५९॥  
 ततस्तु जन्मद्वितये दरिद्रा व्याघ्रिपोडिताः ।  
 प्रतिग्रहपरा नित्य ततो निरयणाः पुनः ॥६०॥  
 असूयाविष्टमनसो रौरवे नरके स्मृतम् ।  
 तत्र कल्पद्वयं स्थित्वा चाण्डाला शतजन्मसु ॥६१॥  
 मा ददस्वेति यो ब्रूयान्दवाग्निब्राह्मणेभ्यः च ।  
 शुना यो योनिशतं गत्वा चाण्डालेषूपजायते ॥६२॥  
 ततो विघ्नाकृमिशचैव ततो व्याघ्रस्त्रिजन्मसु ।

तदन्ते नरक याति युगानामेकविंशतिम् ॥६३॥

इसके उपरान्त दश जन्मों तक के फटे हुए शरीर वाले कुत्ते की योनि में जन्म धारण किया करते हैं । फिर एकसौ वर्ष तक विष्टा के बीड़े होते हैं । इसके पश्चात् बारह जन्मों तक सर्व हुआ करते हैं ॥५७॥ इसके अनन्तर एक हजार जन्म मृग आदि पशुओं में लिया करते हैं । इसके पश्चात् सौ वर्ष तक उनको स्थावर योनि प्राप्त हुआ करती है । फिर गेहूँ का शरीर प्राप्त होता है ॥५८॥ इसमें भी सात जन्म तक पापकारी चाण्डालों के यहाँ उत्पन्न हुआ करता है । इसके पश्चात् हीन जातियों में सोलह बार जन्म लिया करता है ॥५९॥ इसके पीछे वे दूसरे जन्मों में रोग ग्रस्त एवं दरिद्र होते हुये जन्म ग्रहण किया करते हैं और मर्कटा प्रतिग्रह ग्रहण किया करते हैं । उस समय में भी अमूया होने के कारण से रौरव नरक में जाकर यातनायें भोगा करते हैं । वहाँ दो कल्पों तक निवास करके फिर एक सौ जन्म चाण्डाल के घर में ग्रहण किया करते हैं ॥६०॥६१॥ जो कोई गौ, अग्नि और ब्राह्मणों के लिये यह कहता है कि इनको कुछ भी मन दो, इनको देने में क्या होता है वह एक सौ जन्मों तक कुत्ते की योनि को भोगा करता है और फिर चाण्डाल होता है ॥६२॥ इसके पश्चात् विष्टा का बीड़ा होता है तथा इसके पश्चात् तीन जन्मों तक बाघ का शरीर धारण किया करता है और इसके बाद में इक्ष्वाकु युगों तक नरक प्राप्त किया करता है ॥६३॥

परनिन्दापरा ये च ये च निष्ठुरभाषिण ।

दानानां विघ्नकर्तारस्तेषां पपफलं शृणु ॥६४॥

मुण्णोलूखलाम्या तु चूण्यन्ते तत्स्करा भृशम् ।

तदन्ते तन्मपापाणग्रहणं वत्सग्नयम् ॥६५॥

ततश्च कालमूढेण भिद्यन्ते सप्त वत्सरान् ।

शोचन्तः स्वानि कर्माणि परद्रव्यापहारका ॥६६॥



कर्मणा तत्र पच्यन्ते नरकाग्निषु सन्ततम् ॥६७

परस्वसूचकानां च नरकं शृणु दारुणम् ।

यावद्युगसहस्रं तु तप्ताय पिण्डभक्षणम् ॥६८

सपीडयते च रसना सदशैर्भृशदारुणैः ।

निरुच्छ्वासं महाघोरे कल्पाद्धं निवसन्ति ते ॥६९

परस्त्रीलोलुपानां च नरकं कथयामि ते ।

तप्तताम्रस्त्रियस्तेन सुरूपाभरणैर्युक्ता ॥७०

यादृशीस्तादृशीस्ताश्च रमन्ते प्रसभं बहु ।

विद्रवन्त भयेनासा गृह्णन्ति प्रसभं च तम् ॥७१

जो मनुष्य दूसरो की निन्दा किया करते है, कठोर वचन मुख से बोला करते हैं, दान देने में विघ्न बाधाये उपस्थित किया करते हैं उनको जो इस बात का फल प्राप्त हुआ करता है उसका फल श्रवण कर लो ॥६४॥ वे चोर होते हैं और उनको नरको में लोहे के मूसल तथा काठ के मूसलो से पीटा जाया करता है फिर इसके पश्चात् तीन वर्ष तक तपे हुये पत्थर को पकड़ा करते है । इसके उपरान्त वे काल सूत्र से सात वर्ष तक विधा करते हैं । उस समय में दूसरो का द्रव्य हरण करने वाले प्राणी अपने किये हुये कर्मों के विषय में सोचते हुए नरक की अग्नि में पका करते है ॥६६॥६७॥ अब मैं उनके पापों के विषय में बतलाता हूँ जो चोरो को दूसरो के धन का पता ठिकाना बता कर माल का अपहरण कराया करते हैं उनको भी महा दारुण नरको की यातनाये भोगनी पडती है । ऐसे पापी एक सहस्र वर्षों तक तप्त लोहे के पिण्डों को खाया करते है ॥६८॥ इन लोभी की जीभ को यमदूत जीमटी से खींचा करते है क्योंकि जीभ से ही कहकर उन्होंने दूसरो के धन का पता बताया था । ये जीभ बाधे कल्प तक उच्छ्वास रहित दशा में पड़े रूहा वरते हैं ॥६९॥ अब हम पराई स्त्री से सङ्गम करने के लालचियों को प्राप्त होने वाले नरको का वर्णन करते है ।

ये लोग जिस प्रकार की स्त्रियों के साथ भोग करने की कामना किया करत थे उसी प्रकार की तपे हुये ताम्र की आभूषणों से भूषित हुयी स्त्रियाँ उनके साथ बल पूर्वक रमण किया करती हैं ॥७०॥७१

कथयन्तश्च तत्कर्म नयन्ते नरकान्क्रमात् ।

अन्य भजन्ते भूपाल पतिं त्यक्त्वा च या स्त्रिय ॥७२

तप्ताय पुरपास्तास्तु तप्ताय शयने बलात् ।

पातयित्वा रमन्ते च बहुकाल बलान्विता ॥७३

ततस्तैर्योपिनो मुक्ता हुताशनसमोज्ज्वलम् ।

अयस्तम्भ समाश्लिष्य तिष्ठन्त्यब्दसहस्रकम् ॥७४

तत क्षारोदकस्नान क्षारोदकनिषेवणम् ।

तदन्ते नरकान् सर्वान् भुञ्जतेऽब्दशत शतम् ॥७५

यो हन्ति ब्राह्मणं वा च क्षत्रियं च नृपोत्तमम् ।

स चापि यातना सर्वा भुक्ते कल्पेषु पञ्चसु ॥७६

वे ताम्र की तप्त स्त्रियाँ इनके किये हुये कुक्कुरों का बखान करके पुन नरकों में ढकेल लाया करती हैं । हे भूपाल ! जो स्त्रियाँ अपने पति का त्याग करके दूसरे जार पुरुषों का सेवन किया करती हैं । उनको भी लोहके जलते हुए शरीर वाले पुरुष लोहेके तप्त पलङ्गों पर लिटा कर बलपूर्वक उनके साथ रमण किया बहुत समय तक करा करते हैं ॥७२॥७३॥ इनसे पिंड छूट जाने पर अग्नि के समान लाल धधकते हुये लाहे के खम्भों से एक हजार वर्ष तक चिपटा दी जाया करती हैं ॥७४॥ इसके उपरान्त उनको अत्यन्त खारी जल से स्नान कराया जाता है खारी पानी ही पिलाया जाता है फिर एकसौ वर्षों तक वे सभी नरकों की यातनाय भोगा करती हैं ॥७५॥ जो पुरुष गो ब्राह्मण तथा परम श्रेष्ठ क्षत्रिय राजा का वध किया करते हैं वह पाप कल्प ता नरक की ममता घोर यातनाओं को भोगा करते हैं ॥७६॥

य शृणोति महन्निन्दा सादर तत्फलं शृणु ।

तेषां कर्णेषु दाप्यन्ते तप्ताय कीलसचया ॥७७॥  
 ततश्च तेषु छिद्रेषु तैलमत्पुष्पमुत्त्वणम् ।  
 पूर्यन्ते च ततश्चापि कुम्भीपाकं प्रपद्यते ॥७८॥  
 नास्तिकानां प्रवक्ष्यामि विमुखानां हरे हरी ।  
 अब्दानां कोटिपर्यन्तं लवणं भुञ्जते हि ते ॥७९॥  
 ततश्च कल्पपर्यन्तं रौरवे तप्तमैकते ।  
 भज्यते पापकर्माणोऽन्येष्वप्येव नराधिप ॥८०॥  
 ब्राह्मणान्ये निरीक्षन्ते कोपदृष्ट्या नराधमा ।  
 तप्तसूचीसहस्रेण चक्षुस्तेषां प्रसूर्यते ॥८१॥  
 ततः क्षाराम्बुधाराभिः सेच्यन्ते नृपसत्तम ।  
 ततश्च ऋक्चैधोरेभिश्चन्ते पापवर्मणः ॥८२॥  
 विश्वासघातिनां चैव मर्यादाभेदिनां तथा ।  
 परान्नलोलुपानां च गरकं शृणु दारुणम् ॥८३॥

जो अपने से बड़ों की बुराई किया करते हैं या बड़ों की  
 निन्दा को सादर श्रवण किया करते हैं उनके कानों में गर्म लोहे की  
 कीलों को यमपुर में ठोका जाया करता है ॥७७॥ जब कानों में घाव  
 होजाते हैं तो उन पर गर्म तेल डाला जाया करता है । इसके पश्चात्  
 उम पापी को कुम्भीपाक नामक नरक में डाल दिया जाता है ॥७८॥  
 अब उन पापियों की गति का वर्णन किया जाता है जो नास्तिक भग-  
 वान शिव तथा भगवान विष्णु से विमुखता रक्खा करते हैं उनको एक  
 करोड़ वर्ष तक नमक का आहार करना पड़ता है ॥७९॥ ह राजन् ।  
 इसके अनन्तर उन पापियों को एक कल्प तक जलनी हुई रेत वाले  
 रौरव नरक में पड कर भुनना होता है ॥८०॥ जो अधम मनुष्य  
 ब्राह्मणों को क्रोध में पूर्ण दृष्टि से देखा करते हैं उनको आँखें तपी हुई  
 एक महस मुइयो से फाड़ी जाती हैं ॥८१॥ हे श्रेष्ठ नृप । इसके बाद  
 उसके ऊपर क्षारी जल छिड़का जाया करता है और उसके शरीर को

कृत्तियो मे गुरु मोदा जाता है ॥८२॥ अब हम विश्वाम का घात करने वाले पराये अन्न के लालची तथा मर्यादा का भङ्ग करने वाले लोगों को जो महा दाम्प्य नरक यातना भोगनी पड़ती है उनका वर्णन करते हैं । आप भावधान होकर श्रवण करेंगे ॥८३॥

स्वमामभोजिनो नित्य भक्षमाण उचमिष्युते ।

नरकेषु ममस्तेषु प्रत्येक ह्यद्विजगिन ॥८४॥

प्रतिग्रहरता ये च ये चै नजप्रपाठरा ।

ये च देवदाम्प्यना भोजिनस्ताञ्जृणुत्वा मे ॥८५॥

राजन्नाय पपयन् यातनाम्बामु दुष्टिना ।

पच्यन्ते सतत पापाविष्टा भोगरता मदा ॥८६॥

सतस्मैनेन पच्यन्ते रात्रमूत्रप्रपीडिता ।

सत क्षारोदरम्भान मूत्रविष्टानिरेषणम् ॥८७॥

सदन्ते भुवमागाद्य भवन्ति स्वेच्छजानय ।

अयोद्वेगरता ये तु यात्रि वैनरणी नदीम् ॥८८॥

त्यक्तपञ्चमहायज्ञा नानाभक्ष ग्रजन्ति हि ।

उपागनाग्निगामी रौरव नग्य ग्रजन्ति ॥८९॥

विप्रशामागदान युवता क्षुण्ण भूषणे ।

यातनाम्बामु पच्यन्ते गावदात्राग्यम् ॥९०॥

से आक्रान्त होकर एक कल्प पर्यन्त परम दुःखित होकर घोर नरको में पड़े रहा करते हैं ॥८६॥ इसके अनन्तर उनको तेल के कुण्डो में जला दिया जाता है और फिर काल सूत्र से उत्पीड़ित किया जाता है । इसके पश्चात् वे लोग खारी जल से स्नान करके विष्ठा तथा मूत्र का सेवन किया करते हैं ॥८७॥ जब नरको की यातनायें समाप्त हो जाती हैं तो यहाँ पृथ्वी पर ये लोग शेष गाणो को भोगने के लिये स्लेच्छ जाति में जन्म ग्रहण किया करते हैं । जो दूसरो को घड़बड़ाया करते हैं वे वीतरणी नदी में जाकर पड़ा करते हैं ॥८८॥ जो मनुष्य सन्ध्या, तर्पण आदि पाँच महा यज्ञो में से कोई सा एक यज्ञ भी नहीं किया करते हैं वे नर लालाभक्ष नरक में जाया करते हैं और वहाँ पर गोते खाया करते हैं । जो मनुष्य देवोपामना वा त्याग कर देता है वह रौरव नरक में मिरा करता है ॥ ८९ ॥ हे राजन् । जो भूमिपति ब्राह्मणों के परिवार से बहुत कड़ाई के साथ धमूलयात्री किया करता है उसकी यह गति होती है कि वह जब तक सूर्य-चन्द्र स्थित रहा करते हैं तब तक नरको में पड़ा रहा करता है ॥९०॥

ग्रामेषु भूपालवरो य कुर्यादिधिक करम् ।

स सहस्रकुलो भुङ्क्ते नरक कल्पपञ्चसु ॥९१॥

विप्रग्रामकरादाने योजुमन्ता तु पापकृत् ।

स एव कृतवान् राजन्मह्यहत्यासहस्रकम् ॥९२॥

कालसूत्रे महाघोरे स वसेद् द्विचतुर्युगम् ।

अयोनी च वियोनी चपशुयोनी च यो नर ॥९३॥

त्यजेन्द्रेतो महापापी स रेतोभोजन लभेत् ।

वसाकूप तत प्राप्य स्थित्वा दिव्याब्दसप्तकम् ॥९४॥

रेतोभो जी भवेन्मर्त्यं सबलोकेषु निन्दित ।

उपवासदिने राजन्दन्तधावनट्टन्नर ॥९५॥

स घोर नरक याति व्याघ्रपक्ष चतुर्युगम् ।

य. स्वकर्मपरित्यागो पापण्डीत्युच्यते बुधै ॥६६॥

तत्सगकृतमोघ स्यात्तावुभावतिपापिनो ।

कल्पकोटिसहस्रेषु प्राप्नुतो नरकाक्रमान् ॥६७॥

देवद्रव्यापहर्तारो गुरुद्रव्यापहारका ।

ब्रह्महत्याव्रतसम दुष्कृत भुञ्जते नृप ॥६८॥

जो राजा अपनी प्रजा से अधिक कर खींच निया करता है वह अपनी एक हजार पुस्त तक पाँच कल्प पर्यन्त नरक की यातनायें भागा करता है ॥६१॥ जो ब्राह्मणों के ग्राम पर अधिक कर लगाने की या कर में वृद्धि करने की सम्मति एव अनुमति दिया करता है उसको ऐसा ही समझ लेना चाहिए कि हजारों ही ब्रह्महत्या कर चुका है ॥६२॥ इस महा पाप का यह परिणाम होता है कि वह महान घोर काल भूय नरक में चतुर्मुखा की दो कड़ियों तक पड़ा रहना है । जो गमन के अयोग्य पुन वधू आदि नारियों की योनि-अयोनि में अथवा अन्य वर्ण की योनि-वियोनि में या किसी पशु की योनि में अपना वीर्यपात किया करता है वह महा पापी नरक में वीर्य का खाया करता है । इसके पश्चात् सर्वा के गर्त में सात दिव्य वर्षों तक पड़ा हुआ वीर्य भक्षण किया करता है और इसकी लोक में भी सब निन्दा किया करते हैं । हे राजन् ! जो जो मनुष्य उपवास के दिन दन्त धावन ( दातुन ) किया करता है वह व्याघ्र पत्र चीमुगी तक परम घोर नरक में जाकर गिरा करता है जो अपने कर्त्तव्य कर्म का परित्याग कर दिया करता है विदग्जन उसको पाषण्डी कहा करते हैं ॥६३-६६॥ जो पाषण्डी पुष्प की मगति किया करता है वह भ्रञ्छ कहा जाया करता है और दाना ही अनि पापी है जो कि दण खव नरक नर क्रमण सभी नरक में वास करते दृश्य यातनायें भोगा करते हैं ॥ ६७ ॥ हे नृप ! जो मनुष्य द्रवद्रव्य या गुग्मद्रव्य का अपहरण किया करते हैं वे अन्न हत्यार के ही समान पाप के भागी होते हैं ॥६८॥

अनाथधनहर्त्तारो ह्यनाथ ये द्विपन्ति च ।  
 कल्पकोटिसहस्राणि नरके ते वसन्ति च ॥६६॥  
 स्त्रोशूद्राणां समीपे तु ये वेदाध्ययने रता ।  
 तेषां पापफलं वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहित ॥१००॥  
 अधःशीर्षोर्ध्वपादाश्च कीलिताः स्तम्भकद्वये ।

धूम्रपानरता नित्यं तिष्ठन्त्याब्रह्मवत्सरम् ॥१०१॥  
 जले देवालये वापि यस्त्यजेद्देहेजं मलम् ।  
 भ्रूणहत्यासमं पापं संप्राप्नोत्यतिदारुणम् ॥१०२॥  
 दन्तास्थिकेशनखरान्ये त्यजन्त्यमरालये ।  
 जले वा भुक्तशेषं च तेषां पापफलं शृणु ॥१०३॥  
 प्रासप्रोता हर्लंभिन्ना आर्त्तारावविराविण ।  
 अत्युष्णतैलपाकेऽतितप्यन्ते भृशदारुणे ॥१०४॥

जो पुरुष किसी अनाथ का द्रव्य अपहृत किया करता है और अनाथ से द्वेष किया करते हैं वे बुरीसी हुआंगे कल्पों तक नरका में सड़ा करते हैं ॥६६॥ जो पुरुष स्त्रियां अथवा शूद्रों के निबट्ट वेदों के अध्ययन में परायण रहा करत है उनको जो फल प्राप्त होता है उसे आप सावधानता से ग्राह्य श्रवण करिय ॥१००॥ वे लोग ब्रह्मा के एक दिव्य वष पयस्व नीचे की ओर मस्तक और ऊपर की ओर टांगे बरके दो खम्भा के बीच में टांग दिय जाया करते हैं और कीलें ठोक दी जाया करती हैं । उस समय में नीचे का धुआं उनको बरवश पीना पड़ता है ॥१०१॥ जो मनुष्य देवालय में या किसी जलाशय में अपने मल का त्याग किया करता है उसको भ्रूण हत्या का महान् पार एव परम दारुण पाप हुआ करता है ॥१०२॥ जो मनुष्य किसी भी देवता के आलय में अथवा किसी जलाशय में दूध, हड्डी, केश, नाखून अथवा भोजन में बच हुए उच्छिष्ट अन्न का डाल दिया करत है उनका जो पाप का पत्र होता है उसका भी आप भुज्जमें श्रवण करिए ॥ १०३ ॥

इन पापियों को भालों से छेदे जाते हैं, हनों से भेदित किया जाता है और अत्यन्त घोर उष्ण खोलते हुए तैल में डाल दिया जाता है जिसकी वेदना से वे चीखा करते हैं ॥१०४॥

कुर्वन्ति दुःखसतप्तास्ततोऽन्येषु ब्रजन्ति च ।  
ब्रह्म सहस्ते यस्ते गन्धकाष्ठ तथैव च ॥१०५॥  
स याति नरकं घोरं यावदाचन्द्रतारकम् ।  
ब्रह्मस्वहरणं राजनिहामुत्र च दुःखदम् ॥१०६॥  
इह सपट्टिनाशाय परमं नरकाय च ।  
कूटसाध्यं वदेद्यस्तु तस्य पापफलं शृणु ॥१०७॥  
स याति यातनां सर्वां यावद्दिन्द्राश्चतुर्दश ।  
इह पुत्राश्च पौत्राश्च विनश्यन्ति परमं च ॥१०८॥  
रौक्मं नरकं भुङ्क्ते ततोऽन्यानपि च क्रमात् ।  
ये चातिकामिनो मर्त्या ये च मिथ्याप्रवादिन ॥१०९॥  
तेषां मुखे जलोकास्तु पूर्यन्ते पन्नगोपमा ।  
एव पष्टिमहलाब्दे ततः क्षाराम्बुसेचनम् ॥११०॥  
ये वृथामासन्निरतास्ते यान्ति क्षारकदंभम् ।  
ततो गर्जनिपात्यन्तो मरुत्प्रपतन् यथा ॥१११॥

इसी भाति परम दुःख से मग्न होने हुए फिर दूसरे नरकों में जाकर पड़ा करते हैं । जो शब्द ब्रह्म ( वेद ) और गुणघन पाप ( चन्दनादि ) की चोरी करता है वह महा पापी पुरुष जब तक चन्द्र, सूर्यं समार में स्थित रहते हैं तब तक नरकों में पड़ा रहा करता है । हे राजन् ! ब्राह्मण के धन का हरण करने में इस सोर और परमोच दोनों में ही दुःख पाया जाता है ॥१०५॥१०६॥ इसका तात्पर्य यह है कि इस लोक में उमकी सम्पत्ति नष्ट होजाती है और परमोच में उगे नरक प्राप्त हुआ जाता है । जो झूठी गवाही दिया करता है उमके पाप का पतन धरी होता है कि उमकी एक बल्य गर्जना सभी नरकों में



जाकर यातना भोगनी पड़ती हैं। इस लोक में उसके पुन पीनादि सब नष्ट होजाया करते हैं और परलोक में रौरव आदि नरको का कष्ट क्रमशः भोगना पड़ता है ॥१०७ १०६॥ जो अधिक कामी और झूठे होते हैं इनके मुख में साप के सदृश जोक डाल दी जाती है। इस रीति से साठ हजार वर्षों के पश्चात् खारी जल उन पर छिड़कवाया जाता है ॥११०॥ वृथा मांस खाने वाले लोग क्षारकदम नाम वाले नरको में डाले जाया करते हैं। वहाँ उनका बड़े २ हाथी पछाड़ लगाते हैं और वायु धक्का दिया करता है ॥१११॥

तदन्तो भवमासाद्य हीनाङ्गा प्रभवन्ति च ।  
 यस्त्वृत्तौ नाभिगच्छेत स्वस्तिगय मनुजेश्वर ॥११२॥  
 स याति रौरव घोर ब्रह्महत्या च विन्दति ।  
 अत्याचाररत दृष्ट्वा य शक्तो न निवारयेत् ॥११३॥  
 तत्पाप समवाप्नोति नरक तावुभावपि ।  
 पापिना पापगणना कृत्वान्येभ्यो दिशान्त च ॥११४॥  
 अस्तित्वे तुल्यपापास्तो मिथ्यात्वे द्विगुणा नृप ।  
 अपापे पातक यस्तु समारोप्य विनिन्दति ॥११५॥  
 स याति नरक घोर यावच्चद्रार्कतारकम् ।  
 पापिना निन्द्यमानाना पापाद् क्षयमेति च ॥११६॥  
 यस्तु व्रतानि सृष्ट्य असमाप्य परित्यजेत् ।  
 साजसिपगजुभूयाति हीनाङ्गो जायते भुवि ॥११७॥  
 अन्ये सगृह्यमाणाना व्रताना विघ्नकृन्नर ।  
 अतीव दुःखद रीद्र स याति श्लेष्मभोजनम् ॥११८॥  
 न्याये च धमशिक्षाया पक्षपात करोति य ।  
 न तस्य निष्कृतिर्भूय प्रायश्चित्तायुतेरपि ॥११९॥

इसके पश्चात् इम गगार में हीन जन्म वात होता है जन्म दिया करत है। हे मनुजेश्वर। जो पुण्य पुरुषान में भी अपनी स्त्री

से सज्जम नहीं किया करता है वह रौरव नरक में पड़ता है और उसको ब्रह्महत्या का भी पाप लगता है । जो सामर्थ्य रखने पर भी अत्याचार करने वाले को दखकर नहीं रोका करता है उसका भी पाप लगा करता है और वे दाना ही नरक में गमन किया करते हैं । जो पापियों के पापों की गणना करके दूसरा को बताने जाते हैं वे पाप हान पर तो उनके ही बराबर पाप किया करते हैं और जो हे राजा ! मिथ्या ही दोष लगाया करते हैं उनको दुगुना पाप लगा करता है । जो बिना पाप वाले का पाप लगाकर उसकी बुराई किया करता है वह जबतक चन्द्र-सूय लोक में स्थित रहते हैं तबतक नरक का ही सबन किया करता है । पापा का जो कीर्तन किया जाता है उससे पापियों का आधा पाप नष्ट हो जाया करता है ॥ ११२-११६ ॥ जो कोई भी मनुष्य किसी व्रत को प्रथम तो ग्रहण कर लेता है और पीछे उसको बिना पूरा हुए ही छोड़ दिया करता है वह मनुष्य अमिपक्ष वन नामक नरक में निवास किया करता है । वहा पर बहुत नरक की यातनाय भोगकर फिर इस मसार में बिबिध होकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥ ११७ ॥ जो कोई व्रत को ग्रहण करने वाद्य दूमेरे क प्रत में विघ्न डाल दिया करते हैं वह अधिक दुःख दन वाले महान् भयङ्कर शनष्म भोजन नाम वाले नरक में गमन किया करते हैं ॥ ११८ ॥ जो न्याय तथा धर्म की शिक्षा में पक्षपात किया करता है उसका एक-दो क्या दश हजार भी प्रायश्चित्त करे तो भी उद्धार नहीं हुआ करता है ॥ ११९ ॥

अभोज्यभोजी सप्राप्य विहभोज्य तु समायुतम् ।

ततश्चाण्डालयानो तु गोमासाशी सदा भवेत् ॥ १२० ॥

अवमान्य द्विजान्वाग्भिर्ब्रह्महत्या च विन्दति ।

सर्वाश्च यातना भुक्त्वा चाण्डालो दशजन्मसु ॥ १२१ ॥

विप्राय दीयमाने तु यस्तु विघ्न समाचरेत् ।

ब्रह्महत्यामम तेन वर्तव्यं व्रतमेव च ॥ १२२ ॥

अपहृत्य परस्परार्थं यः परेभ्यः प्रयच्छति ।  
 अपहर्त्ता तु निरयी यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ॥१२३॥  
 प्रतिश्रुत्याप्रदानेन लालाभक्ष ब्रजेन्नरः ।  
 यतिनिन्दापारो राजन् शिलामात्रे प्रयाति हि ॥१२४॥  
 आरामच्छेदिनो यान्ति युगानामेकविंशतिम् ।  
 श्वभोजनं ततः सर्वा भुञ्जते यातनाः क्रमात् ॥१२५॥  
 देवतागृहभेत्तारस्तडागानां च भूपते ।  
 पुष्पारामभिदश्चैव या गतिं यान्ति तच्छृणु ॥१२६॥

जो अभक्ष्य पदार्थों को खाया करता है वह दश सहस्र वर्षों तक  
 विष्टा खाया करता है और इस नरक यातना भोगने के पीछे भी पाप  
 के मांस का भक्षण करने वाले चाडाल के घर में जन्म लिया करता  
 है ॥१२०॥ विप्रों का अपमान करने से ब्रह्महत्या लग जाती है और  
 इस अपराध से वह समस्त नरकों को भोगने के बाद चाडालों में ही  
 दश बार जन्म लिया करता है ॥१२१॥ ब्राह्मणों के दिये जाने वाले  
 दान में जो विघ्न उपस्थित किया करता है उसको भी एक ब्रह्महत्या  
 करने वाले के तुल्य ही व्रत प्रायश्चित्त के लिये करने चाहिए ॥१२२॥  
 जो दूसरों का धन छीन कर दूसरों को दान देता है वह अपहरण करने  
 वाला नरकगामी हुआ करता है और जिसका वास्तव में धन होता है  
 उसको उस दान का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है ॥ १२३ ॥ जो  
 पहिले देने की प्रतिज्ञा करले और पीछे नहीं दे वह लालाभक्ष नाम  
 वाले नरक में गमन करता है और सन्यासियों की निन्दा करने वाला  
 प्राणी पापान्न हो जाया करता है ॥१२४॥ अब हे राजन् ! जो  
 देव मन्दिर, जलाशय और पुष्पित उद्यानों को नष्ट-भ्रष्ट किया करते  
 हैं उनकी जो गति हुआ करती है उसके विषय में भी मुझ से आप  
 श्रवण करें ॥१२५॥ उद्यान को उजाड़ने वाले पापी को इक्कीस युग  
 पर्यन्त कुत्ते खाया करते हैं । फिर जो महापातकी होते हैं वे प्रत्येक

नरक म एक-एक युग पर्यन्त रहा करते हैं । फिर वह क्रमशः सभी नरकों म भाग भोगा करते हैं ॥१२६॥

यातनास्वासु सुर्वासु पच्यन्ते वै पृथक् पृथक् ।

ततश्च विष्ठाकृतमय कल्पानामेकविंशतिम् ॥१२७॥

ततश्चाण्डालयोनी तु शतजन्मानि भूपते ।

ग्रामविध्वंसकानां तु दाहकानां च क्षुम्पताम् ॥१२८॥

महत्पाप तदादेष्टुं न क्षमोज्झ निजायुषा ।

अच्छिष्टभोजिनो ये च मित्रद्रोहपराश्च ये ॥१२९॥

एतेषां यातनास्तीव्रा भवन्त्याचन्द्रतारवत् ।

उच्छिन्नापितृदेवेज्यावेदमागंवहि स्थिता ॥१३०॥

पापण्डा इति विख्यातास्तेषां वै सर्वयातना ।

एवं बहुविधा भूय यातना पापकारिणाम् ॥१३१॥

तेषां तासां च संख्यानं कर्तुं नालमहं प्रभो ।

पापानां यातनानां च धर्माणांचापि भूपते ॥१३२॥

संख्यां निगदितुं लोके न क्षमो विष्णुना विना ।

एतेषां सर्वपापानां धर्मशास्त्रविधानतः ॥१३३॥

इन सभी नरकों म वे पृथक्-पृथक् दुःख भोगा करते हैं और पीछे इधर-उधर कल्प-कल्प विष्ठा व कीड़े द्वारा मरते हैं ॥१२७॥ हे राजा ! इनमें भी पीछे उनमें से बार-बार जन्म चाण्डाल-योनि म हुआ करता है । जो ग्रामों व विध्वंसक हान हैं या ग्रामों म आग लगा कर नष्ट-धष्ट कर दिया करते हैं उनका पापों की मरणा इतनी अधिक हानी है कि मैं अपनी पूरी आयु भी लगा दूँ ना भी उनका पापों की मरणा नहीं कर सकता हूँ । जो सदा उच्छिष्ट भोजन करने वाले हैं और अपने मित्रों म ही द्राह दिया करते हैं उनका जब तक मृग-मृग की मरणा रहा करती है सभी तक नरकों के बहुत भोगन रहता है । जो

देव-यजन और पितृ तर्पण नहीं किया करते हैं तथा वेदोक्त मार्ग के विपरीत चला करते हैं वे महान् पाखण्डी कहे जाया करते हैं और उनको सभी तरह के नरको के कष्ट भोगने पड़ते हैं । हे राजन् ! इस प्रकार के पाप करने वालों को अनेक प्रकार की यातनाये भोगनी पडा करती हैं ॥१३०॥१३१॥ हे प्रभो ! उन ऐसे पापियो और नरको की गणना मुझसे नहीं की जा सकती है । हे भूप ! पापियो की, धर्मों की और नरको की गणना भगवान् विष्णु ही करने की शक्ति रखते हैं उनके बिना अन्य कौन कर सकता है ? धर्म शासन के विधानानुसार प्रायश्चित्त करने पर पाप राशि नष्ट होजाया करती है ॥१३२॥१३३॥

प्रायश्चित्तेषु चीर्णेषु पापराशि प्रणश्यति ।

प्रायश्चित्तानि कार्या ण समीपे कमलापते ॥१३४

न्यूनातिरिक्तकृत्याना संपूर्तिकरणाय च ।

गङ्गा च तुलसी चैव सत्सङ्गो हरिकीर्तनम् ॥१३५

अनसूया ह्यहिंसा च सर्वेभ्येते हि पापहा ।

विष्ण्वर्पितानि कर्माणि सफलानि भवन्ति हि ॥१३६

अनर्पितानि कर्माणि भस्मविन्यस्तहव्यवत् ।

नित्य नैमित्तिक काम्य यच्चान्यन्मोक्षसाधनम् ॥१३७

विष्णो समर्पित सर्वं सात्त्विक सफल भवेत् ।

हरि भक्ति परा नृणा सर्वपापापप्रणाशिनी ॥१३८

सा भक्तिदंशधा ज्ञेया पापारण्यदबोपमा ।

तामसो राजसौर्चव्र सात्त्विकैश्च नृपोत्तम ॥१३९

यच्चान्यस्य विनाशार्थं भजन श्रोपतेर्नृप ।

सा तामस्यधमा भक्ति खलभावधारा यत ॥१४०

धर्मों की न्यूनाधिकता सागोपागता सम्पादन करने के लिये ये सभी प्रायश्चित्त भगवान् विष्णु की प्रतिमा के समीप से ही करने

चाहिये । गङ्गा, तुलसी, सत्संगति, अनमूया, अहिंसा और श्री हरि भगवान् के नाम गुण और लीला-धामों की महिमा का कीर्तन ये सभी पापों का विनाश करने वाले होते हैं । जो कर्म सभी पापों का विनाश करने को किये जाते हैं, जो कर्म श्रीभगवदर्पण करने की बुद्धि से किये जाते हैं वही साग सफल हुआ करता है और उनका फल भी पूर्ण होता है ॥१३४-१३६॥ जो कर्म भगवान् की सेवा में समर्पित किये जाते हैं वे सभी कृत कर्म राख में हवि के होम के ही समान निष्फल हुआ करते हैं । नित्य कर्म, नीमित्तक कर्म, काम्य अनुष्ठान तथा अन्य मोक्ष के बन्धन स्वरूप सभी कार्य-बलाप श्री भगवान् की सेवा में ही सादर समर्पित कर देने पर परम मात्त्विक एव सफल हुआ करते हैं । श्री हरि की भक्ति मनुष्य के सम्पूर्ण पापों को भगा दिया करती है ॥१३७-१३८॥ हे राजन् । दूसरे प्राणियों का विनाश करने के लिये श्री भगवान् का भजन करना अत्यन्त तामसी भक्ति कही जाती है क्योंकि इसमें हृदय के अन्दर दुष्टता का भाव निहित रहा करता है । हे भूपाल । पापपूर्ण मन के लिये भगवान् की भक्ति दावानल की तरह ही हुआ करती है । यही हरि भक्ति सात्त्विक, राजस और तामस भेद से दश प्रकार की हुआ करती है ॥१३६-१४०॥

योऽर्चयेत्कृतवर्धना स्वैरिणी स्वपतिं यथा ।

नारायणं जगन्नाथं तामसीं मध्यमां तु सा ॥१४१॥

देवपूजापरान्दृष्ट्वा मात्सर्याद्योऽर्चयेद्धरिम् ।

सा भक्तिः पृथिवीपाल तामसी चोत्तमा स्मृता ॥१४२॥

धनधान्यादिकं यस्तु प्रार्थयन्नर्चयेद्धरिम् ।

श्रद्धया परया युक्तं सा राजस्यधमा स्मृता ॥१४३॥

यः सर्वलोकविख्यातकीर्तिमुद्दिश्य माधवम् ।

अर्चयेत्परया भक्त्या सा मध्या राजसी मता ॥१४४॥

सालोक्यादि पदं यस्तु समुद्दिश्यार्चयेद्धरिम् ।

सा राजस्युत्तमा भक्तिः कीर्तिता पृथिवीपते ॥१४५॥

यस्तु स्वकृतपापाना क्षयार्थं प्राचंयेद्वरिम् ।

श्रद्धया परयोयेपेत. सा सात्त्विक्यधमा स्मृता ॥१४६॥

हरेरिद प्रियमिति शुश्रूषा कुरुते तु य ।

श्रद्धयासयुतो भूय सात्त्विकी मध्यमा तु सा ॥१४७॥

जो धूर्तता के साथ व्यभिचारिणी स्त्री अपने ही पति के समान जगत् के स्वामी श्री भगवान् नारायण की अर्चना किया करता है वह मध्यम श्रेणी की तामसी भक्ति हुआ करती है ॥१४१॥ जो दूसरे लोगो को देव-यजन करते हुए देखकर मत्सरता के बशीभूत हो कर स्वयं भी श्री भगवान् का पूजन किया करते हैं वह भक्ति भी तामसी अवश्य है क्योंकि मांस्य ही उसका महान् दाप हुआ करता है किन्तु वह उत्तम श्रेणी की तामसी नहीं जाना करती है ॥१४२॥ धन-धान्यादि के लाभ की कामना रखकर परम श्रद्धा के साथ श्री हरि के चरणों की उपासना करना अत्यधम राजसी भक्ति नहीं जाना करती है ॥१४३॥ जो मनुष्य अपने हृदय में ऐसी भावना रखता है कि मेरी कीर्ति सर्वत्र विस्तृत होकर फैल जावे और इसी उद्देश्य को लेकर भगवान् की भक्ति भाव से पूजा किया करता है वह मध्यम श्रेणी की राजसी भक्ति हुआ करती है ॥१४४॥ हे पृथिवीपते ! जो सालोक्य भुक्ति आदि की उपलब्धि की इच्छा से श्री हरि की पूजा-अर्चा किया करता है वह उत्तम-कोटि की राजसी भक्ति नहीं जाना करती है ॥१४५॥ जो मनुष्य अपने इस जन्म के तथा पूर्वजन्मोत्पन्न समस्त मखिन पापों के क्षय कराने के लिये परम श्रद्धा की भावना से श्री हरि का यजन किया करता है वह स्वार्थ की भावना हृदय में भरी होने के कारण से अधम सात्त्विकी भक्ति होती है क्योंकि भगवान् से कुछ अपना मननय पूर्ण करता है ॥१४६॥ भक्ति का करना श्री हरि को परम प्रिय लगा करना है यही समझकर उनको प्रीति का सम्पादन कर कृपापात्र बनने की भावना में श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा

किया करता है वह मध्यम श्रेणी की सात्त्विक भक्ति कही जाया करती है ॥१४७॥

विधिवद्व्याचयेद्यस्तु दासवच्छ्रीपतिं नृप ।  
भक्तीनां प्रवरा सा तु उत्तमा सात्त्विकी स्मृता ॥१४८॥  
महिमानं हरेर्यस्तु किञ्चित्कृत्वा प्रियो नर ।  
तन्मयत्वेन सानुष्ट सा भक्ति उत्तमोत्तमा ॥१४९॥  
अहमेव परो विष्णुर्मति सर्वमिदं जगत् ।  
इति यः सततं पश्येत्तं विद्यादुत्तमोत्तमम् ॥१५०॥  
एवं दशधा विभक्तिः सासारच्छेदकारिणी ।  
तत्रापि सात्त्विकी भक्तिः सर्वकामफलप्रदा ॥१५१॥  
तस्माच्छृणुष्व भूपाल सासारविजिगीषुणा ।  
स्वकर्मणोऽविरोधेन भक्तिः कार्या जनार्दने ॥१५२॥  
यः स्वधर्मं परित्यज्य भक्तिमान्नेन जीवति ।  
न तस्य तुष्यते विष्णुराचारेणैव तुष्यते ॥१५३॥  
सर्वांगमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ।  
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥१५४॥

हे नृप । शास्त्र सम्मत विधान को समझ कर अपने कर्तव्य का परिपालन करने के लिये दास का भाव लेकर उसी के समान श्रीपति की समाराधना किया करता है वह समस्त प्रकार की परमोत्तम सात्त्विकी भक्ति कही जाती है ॥ १४८ ॥ जो नर नारायण की महान् महिमा को हृदय में धारण करके उनका परम प्रिय दास बनकर तन्मय होता हुआ सदा सन्तुष्ट रहा करता है वही उत्तमोत्तम परम श्रेष्ठ भक्ति हुआ करती है ॥१४९॥ जो मैं स्वयं ही परम विष्णु का स्वरूप हूँ जो कि मनुज के चोले में रहकर ससार में भ्रमण किया करता हूँ और वह सम्पूर्ण जगत मुझमें ही व्याप्त है । इस रीति से जो सदा विचार किया करता है उसको परमोत्तम भक्ति समझना



आहिए क्योंकि उसे सर्वदा ही विष्णु के स्वरूप का ध्यान बना रहा करता है और उसका दृष्टिकोण परम निश्चल होता है ॥ १५० ॥ ये दशो प्रकार की भक्ति चाहे तामस ही क्यों न हो इस ससार का समच्छेद कर देने वाली हुआ करती है क्योंकि भगवान की भक्ति तो होती ही है । इतमे जो सात्त्विकी भक्ति होती है वह सम्पूर्ण कर्मों के स्वप्नः ही पुण्य फलों को प्रदान करने वाली हुआ करती है ॥ १५१ ॥ अतएव हे राजन् ! आप समाहित होकर सिद्धान्त की बात का ध्यान करिए । जो इन ससार यात्रा में आकर अपनी पूर्ण विजय चाहता है उसका परम कर्तव्य है कि अपने वर्णाश्रम धर्म का पूर्ण पालन करते हुए उसे इस प्रकार से भगवान की भक्ति करनी चाहिए ॥ १५२ ॥ जो अपने वर्णाश्रम का परित्याग करके केवल भगवान की भक्ति का करना अपना कर्तव्य समझा करता है उस पर भगवान् पूर्णतया प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं क्योंकि उसकी प्रसन्नता तो सर्वदा सदाचार से ही हुआ करती है ॥ १५३ ॥ इसका एक मात्र कारण यही है कि सभी शास्त्रों का सिद्धान्त यही है कि सर्व प्रथम धर्म आचार ही है । धर्म आचार से ही हुआ करता है और उस धर्म के स्वामी भगवान् श्री विष्णु देव ही हैं ॥ १५४ ॥

तस्मात्कार्या हरेर्भक्त. स्वधर्मस्याविरोधिनी ।

सदाचारविहीनाना धर्मा अप्यसुखप्रदाः १५५

स्वधर्महीना भक्तिश्चाप्यकृतैव प्रकीर्तिता ।

यस्तु पृष्टं त्वया भूयस्तत्सर्वं मदितं मया ॥ १५६

तस्माद्धर्मपरोभूत्वा पूजयस्व जनार्दनम् ।

नारायणजीयासु सुखमेप्यसि शाश्वतम् ॥ १५७

शिव एव हरिः साक्षाद्वरिरेव शिवः स्वयम्

द्वयोरन्तरदृश्याति नरकान्कोटिश. पल. ॥ १५८

तस्माद्विष्णुं शिवं वापि मम बुद्ध्वा ममर्चय ।

भेदकृद् दुःखमाप्नोति इह लोके परम च ॥१५६॥

तदर्थमहमायातस्त्वत्समीपं जनाधिप ।

तत्तो वक्ष्यामि सुमते सावधानं निशामय ॥१६०॥

आत्मघातकपाप्मानोदग्धाः कपिलकोपतः ।

वसन्ति नरके ते तु राजंस्तव पितामहाः ॥१६१॥

अतएव भगवद्भक्त मानव का परम कर्त्तव्य यही है कि अपने वर्णाश्रम प्रयुक्त धर्म का किसी प्रकार से भी भूल कर भी विरोध न करे । ऐसी ही स्वधर्म विरुद्ध श्री हरि भगवान की भक्ति करनी चाहिये क्योंकि जो सदाचार से विहीन पुरुष होते हैं वे यदि धर्म भी करते हैं तो वह दुःखप्रद ही हुआ करता है ॥१५५॥ अपने धर्म का त्याग करके जो भगवान की भक्ति की जाया करती है उसका करना भी व्यर्थ ही माना जाता है । हे राजन् ! आपने मुझ से जो भी कुछ प्रश्न किये थे उन सबका समाधान मैंने भली भाँति कर दिया है ॥१५६॥ अतएव आप परम धर्म परायण रहते हुए अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप भगवान श्री नारायण जनार्दन का यजन करें तो आप निश्चय ही परम सुख को प्राप्त कर लेंगे ॥१५७॥ भगवान् शिव साक्षात् श्री हरि का ही एक स्वरूप होता है और उमी भाँति श्री हरि साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप हुआ करता है । वस्तुनः इन दोनों स्वरूप में तात्त्विक रूप में कोई भी भेद नहीं होता है । वैसे इनके रूपों में ही भेद है जो दर-असल भेद नहीं होता है । इन दोनों के रूपों में जो भी मूढ़ मानव भेद समझा करता है उस दुष्ट पुरुष को करोड़ों नरकों की भीषण यातनाएँ सहन करनी पड़नी हैं ॥१५७॥ अतएव आपका परम कर्त्तव्य यही है कि शिव तथा विष्णु का समान ही समझकर पूजित किया करो । जो इन दोनों के स्वरूपों में भेदभाव समझता है उसको दस सौ तथा परमाव में वही भी सुख प्राप्त न होकर केवल दुःख ही उठाना पड़ता है ॥१५८॥ हे राजन् ! इस समय में मैं त्रिमया के लिये आपसे

समीप मे उपस्थित हुआ है उसको आप परम समाहित होकर श्रवण कीजिए ॥१६०॥ हे राजन् ! आपके साठ हजार पितामह भगवान् कपिल देव के कोपभाजन बनकर भस्म हो गये थे एवं अपने आत्मघात के पाप को भोगते हुए नरको मे पड़े हुए हैं ॥१६१॥

तानुद्धर महाभाग गङ्गानयनकर्मणा ।

गङ्गा सर्वाणि पापानि नाशयत्येव भूपते ॥१६२

केशास्थिनखदन्ताश्च भस्मापि नृपसत्तम ।

नयति विष्णुमदन स्पृष्टा गागेन वारिणा ॥१६३

यस्यास्थि भस्म वा राजन् गङ्गाया क्षिप्यते नरै ।

स सर्वपापानिमुक्त प्रयाति भवन हरे ॥१६४

यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि तत्र भूपते ।

तानि सर्वाणि नश्यन्ति गङ्गाविन्दभिवेचनात् ॥१६५

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल महाराज भगीरथम् ।

धर्मात्मन धर्मराज सद्यश्चान्तर्दधे तदा ॥१६६

स तु राजा महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ।

निक्षिप्य पृथिवी सर्वा सचिवेषु ययौ वनम् ॥१६७

तुहिनाद्रौ ततो गत्वा नरनारायणश्रमात् ।

पश्चिमे तुहिनाक्रान्ते शृङ्गे पाण्डशयोजने ॥१६८

सपस्तप्तवानयामास गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ॥१६९

हे महाभाग ! अब आप त्रिपयगा था गङ्गा देव नदी को यहाँ भूमण्डल मे लाने के कर्म मे प्रवृत्त हो जाइये और उन सब का उद्धार करिये । हे राजन् ! गङ्गा का जल सभी पाप का आमूत्र मूल विनाश कर दिया करता है ॥१६२॥ हे परम श्रेष्ठ भूपते ! यदि गङ्गा जल से मनुष्यो के केश आन्ध नाग्रन दात या भस्म का खाड़ा सा भी स्पर्श हो जावे तो गङ्गा मे यह सामर्थ्य है कि उनको विष्णु लोक मे पहुँचा दिया करती है ॥१६३॥ जो वाग्धव अपन मृत मनुष्य को अस्थियाँ या भस्म को गङ्गा मे प्रवाण ॥ प्रक्षिप्त कर दिया करती है । हे पुरुष

समस्त पापों के समुदाय से मुक्ति पाकर सीधे विष्णुलोक में चले जाया करते हैं ॥१६४॥ हे राजन् । मैंने आप के समक्ष में जितने भी पापों का वर्णन किया है वे सभी पाप एक ही गङ्गाजल की बूँद के पड़ जाने पर नष्ट भ्रष्ट होजाया करते हैं ॥१६५॥ श्री सीतकजी ने कहा—हे मुनि शार्दूल नारद । धर्मा राज ने परम धार्मिक राजा भगीरथ से ये बातें समाप्त करके तुरन्त ही वही पर अन्तर्धान होगये थे ॥१६६॥ उस समस्त शास्त्रों के अर्थों के ज्ञाता और पारगामी वह महान् बुद्धिमान राजा भगीरथ भूमण्डल के सम्पूर्ण शासन के भार को मन्त्रियों के लिये सौंप कर तपस्वर्षा करने के लिये वन को चला गया था ॥१६७॥ वहाँ पर भगवन् नरनारायण के आश्रम में पश्चिम दिशा की ओर हिम से समाच्छादित ६४ कोस के परिमाण वाले शिखर पर तपस्या करके त्रैलोक्य में व्याप्त रहने वाली पवित्र पावना गङ्गाजी को लेकर आया था ॥१६८ १६९॥

शृंगुः शृंगुः मेऽन्तः

॥ भगीरथ द्वारा गंगाजी का लाना ॥

हिमवद्दिनरिमाद्य नि चकार महीपति ।  
 कथमानी त्वान्गङ्गामेतन्मे वक्नुमहंसि ॥१॥  
 भगीरथो महाराजो जटाचीरधरो मुने ।  
 गच्छन्हिमाद्रि तपसे प्राप्तो गोदावरतटम् ॥२॥  
 तत्रापश्यन्महारण्ये भृगोराश्रममुत्तमम् ।  
 वृष्णमागममाकीर्णं मानङ्गणमेवितम् ॥३॥  
 ध्रुमदभमरसबुष्टं ब्रूजद्विहगमवुत्तम् ।  
 अजद्वराहनिर्जरं चमरीपुच्छग्रीजितम् ॥४॥  
 नृत्यन्मयूरनिर्जरं मारुङ्गादिनिषवितम् ।  
 मन्त्रिजनपदात्मन् मनिरन्याभिरादगात् ॥५॥

शालतालतमालाढ्य नूनहिन्तालमण्डितम् ।

॥६॥

वेदशास्त्रमहाघोषमाश्रम प्राविशद् भृगो ॥७॥

गृणन्त परम प्रह्व वृत शिष्यगणैर्मुनिम् ।

तेजसा सूर्यसदृश भृगु तत्र ददर्श स ॥८॥

देवपि श्री नारद जी ने कहा— राजा भगीरथ ने हिमालय पर्वत पर पहुँच कर क्या किया था और वह किस रीति से गङ्गाजी को लाये थे—इसका स्पष्ट वर्णन मुझे करके कृपा कर सुनाइये ॥१॥ श्री सनक जी ने कहा—हे मुनिवर ! जटाचीर धारी राजा भगीरथ हिमालय पर्वत पर तपस्या करने के लिए विचरण करये हुए, गोदावरी के तट पर पहुँच गये थे ॥२॥ उस महाबल भे भगीरथ नृप ने भृगु जी के परम श्रेष्ठ आश्रम का निरीक्षण किया था जहाँ पर कि कृष्णसार मृग और वाय हाथी भ्रमण कर रहे थे ॥३॥ चारो ओर मँडराते हुए भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे—पक्षियों की चहचहाहट कानों को परम प्रिय पुनीत हो रही थी—इधर-उधर मूकरा के मुण्ड के मुण्ड घूम रहे थे और खमरी गायें अपनी श्वेत पूँछों को हिला रही थी ॥४-४॥ मयूरो का वहाँ पर नृत्य हो रहा था । सारङ्ग (पहीहा) बोल रहे थे और वहाँ पर मुनि कम्याओं के द्वारा सीजे गये पौधे जो बटे प्रेम से समारोपित किये गये थे बड़े होकर परम शोभायमान दिखाई दे रहे थे ॥५॥ वह परम शुभ आश्रम साधू, ताड तथा तमाखू के पेड़ पौधों से ममन्वित था एवं शहतूत, हिताल (बाह वृक्ष का ही एक भिन्न रूप) के वृक्षों की उसमें बहुत अधिक शोभा हो रही थी । जड़ी, बन्नेर, चमेली, चम्पा और अश्वत्य के वृक्ष एवं लताओं से वह आश्रम परम विभूषित हो रहा था ॥ ६ ॥ वहाँ पर चारो ओर विबभित पुष्पों की अद्भुत छटा पँची हुई थी । दधर-उधर श्रवणियों का मधुदाय निवाग

किया करता था। सब ओर वेदों के मन्त्रों के उच्चारण का बड़ा भारी घोष सुनाई दे रहा था। उस आश्रम में राजा भगीरथ ने भृगुमुनि का दर्शन किया था जो परम ब्रह्म का विस्तृत वर्णन करते हुए चारों ओर में शिष्यों से घिरे हुए थे और तेज में सूर्य के समान दिखलायी दे रहे थे ॥७॥

प्रणनामाय विप्रेन्द्र पादसग्रहणादिना ।  
आतिथ्य भृगुरप्यस्य चक्रे सन्मानपूर्वकम् ॥६॥  
कृतातिथ्यक्रियो राजा भृगुणा परमपिणा ।  
उवाच प्राञ्जलिभूर्त्वा विनयान्मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।  
पृच्छामि भवभीतोऽहं नृणामुद्धारकारणम् ॥११॥  
भगवास्तुष्यते येन कर्मणा मुनिसत्तम ।  
तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ अनुग्राहोऽस्मि ते यदि ॥१२॥  
राजस्तवेप्सिता ज्ञाता त्वं हि पुण्यवता वर ।  
अन्यथा स्वकुल सर्वं कथमुद्धतुं महर्षि ॥१३॥  
यो वा को वापि भूपाल स्वकुल शुभकर्मणा ।  
उद्धतुं कामस्ता विद्यान्नररूपधर हरिम् ॥१४॥

राजा भगीरथ ने उस महं महर्षि प्रवर के चरणों का स्पर्श करके सादर प्रणाम किया था। भृगु मुनि ने भी बहुत ही सम्मान के साथ राजा का अतिथि सत्कार एवं आदर किया था ॥६॥ महामुनि भृगु से आतिथ्य ग्रहण करके राजा भगीरथ को मुनिवर से सविनय एवं साञ्जलि प्रार्थना की थी ॥१०॥ राजा भगीरथजी ने कहा— हे समस्त शास्त्रों के महान पण्डित भगवन ! इस महान भयङ्कर से भयभीत हुआ मैं कुछ मानवों के उद्धार का उपाय आप से पूछन की इच्छा रखता हूँ ॥११॥ हे सबज्ञ ! आप तो मुनियों में परम श्रेष्ठ हैं। यदि मुझ से रक्षक अपना अनुग्रह करना चाहते हैं तो जिस कर्म से करने

पर भगवान् को प्रसन्नता होवे उस कलाप का वर्णन मेरे समक्ष में करने की कृपा कीजिए ॥ १२ ॥ श्री भृगु मुनि ने उत्तर दिया—हे राजन् ! आपका हार्दिक मनोरथ मैं समझ गया हूँ । आप तो पुण्यात्मक पुरुषों में परम श्रेष्ठ पुरुष हैं अन्यथा अपने सम्पूर्ण कुल के उद्धार करने का विचार ही कैसे करते ? ॥ १३ ॥ हे भूमिपते ! जो आपके शुभ कर्मों के द्वारा अपने कुल के उद्धार करने की इच्छा करे वह भले ही कोई भी क्यों न हो, उसको मनुष्य के स्वरूप का धारण करने वाला साक्षात् श्री हरि ही समझ लेना चाहिए ॥ १४ ॥

कर्माणा येन देवेशो नृणामिष्टफलप्रदः ।

तत्प्रवक्ष्यामि राजेन्द्र शृणुष्व सुसमाहित ॥ १५ ॥

भव सत्यपरो राजन्नहिंसानिरतस्तथा ।

सर्वभूतहितो नित्य मानस वद वै क्वचित् ॥ १६ ॥

त्यज दुजनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।

कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर विष्णुं सनातनम् ॥ १७ ॥

कुरु पूजां महाविष्णोर्याहि शान्तिमनुत्तमाम् ।

द्वादशाष्टाक्षरं मन्त्रं जपेद्यो भविष्यति ॥ १८ ॥

सत्यं तु कीदृशं प्रोक्तं सर्वभूतहितं मुने ।

अनृतं कीदृशं प्रोक्तं दुर्जनाश्चापि कीदृशा ॥ १९ ॥

साधवः कीदृशा प्रोक्तास्तथा पुण्यं च कीदृशम्

स्मर्तव्यं च यथ विष्णुस्तस्य पूजा च कीदृशी ॥ २० ॥

शान्तिश्च कीदृशी प्रोक्ता की मन्त्रोऽष्टाक्षरो मुने ।

यो वा द्वादशवर्णश्च मुने तत्त्वायवोविद ॥ २१ ॥

हे राजेन्द्र प्रवर ! देवश्वर भगवान् विष्णु जिस वर से मानवों को अनीष्ट पन्थ प्रदान किया करता है उसको ही मैं अब आपका बतलाता हूँ आप परम गमाह्व होकर उमका श्रवण करिये ॥ १५ ॥ हे राजन् !

आ वरत है उन्हें मैं आपका बत-

लाता हूँ—आप सदा सत्य भाषण करो, पूर्णतः अहिंसा व्रत का परिपालन करो, सर्वदा समस्त प्राणियों के हित का सम्पादन करो और भूल कर भी किसी भी दशा में झूठ मत बोलो ॥१६॥ दुष्ट दुर्जन पुरुषों की सङ्गति कभी मत करो और सदा सत्पुरुषों का सङ्ग करते रहा करो और अहर्निश परम पुण्यमय सत्वमों को करते हुए मृत्यु एवं सनातन विष्णु भगवान् का भजन करते रहना चाहिए ॥१७॥ महा विष्णु भगवान् का अर्चन करने से परमोत्तम शान्ति का लाभ होगा तथा द्वादशाक्षर (ओ नमो भगवते वामुदेवाय) एवं अष्टाक्षर (श्री कृष्ण शरणं मम) मन्त्र का जाप किया करो । इसमें आपका परम कल्याण होगा ॥१८॥ राजा भगीरथ ने कहा—हे मुनिवर ! सत्य का क्या लक्षण होता है ? समस्त भूतों (प्राणियों) का हित किसको कहा जाता है ? मिथ्या किसका नाम है और दुर्जनों का स्वरूप कैसा होता है ? ॥ १९ ॥ साधु तथा पुण्य किसको कहा जाया करता है ? पुण्य का वास्तविक स्वरूप क्या हुआ करता है ? भगवान् विष्णु का स्मरण किस रीति से किया जाता है ? तथा उन भगवान् का अर्चन किस विधान में किया जाता है ॥ २० ॥ शान्ति का सच्चा स्वरूप क्या बतलाया गया है ? अष्टाक्षर मन्त्र कौनसा है ? हे पन्ना के अर्षों के जानन वाले महा पण्डित ! हे मुनिवर ! आप यह भी बतलाइये कि वह द्वादशाक्षर मन्त्र कौनसा है ॥२१॥

कृपा कृत्वा मयि परा सर्वं व्याख्यातुमर्हसि ।  
 साधु साधु महाप्राज्ञ तव बुद्धिरनुत्तमा ॥२२॥  
 यत्पृष्टोऽहं त्वया भूप तत्सर्वं प्रवदामि ते ।  
 यथार्यकथनं यत्तत्सत्यमाहुर्विपश्चित ॥२३॥  
 धर्माविरोधतो वाच्यं तद्धि धर्मपरायणं ।  
 देशकालादि विज्ञाय स्वयमभ्याविराधत ॥२४॥  
 यद्वचं प्रोच्यते सद्भिस्तसत्यमभिधीयते ।  
 सर्वेषामेव जतूनामवलेशजननं हि तत् ॥२५॥



अहिंसा सा नृप प्रोक्ता सर्वकामप्रदायिनी ।  
 कर्मकार्यसहायत्वमकार्यपरिपन्थिता ॥२६॥  
 सर्वलोकहितत्व वै प्रोच्यते धर्मकोविदै ।  
 इच्छानुवृत्तकथन धर्माधर्माविवेकिन ॥२७॥  
 अनृत तद्धि विज्ञय सर्वश्रेयोविरोधि तत् ।  
 ये लोके द्वेषिणो मूर्खा कुमार्गरतबुद्धय ॥२८॥

हे महामुने । इन सभी मेरे प्रश्नों की आप कृपा कर विशद व्याख्या कीजिए । श्री भृगुमुनि ने कहा— हे महान् बुद्धि वाले राजन् । बहुत ही अच्छी बातें आपने जनहित करने वाली पूछी हैं क्योंकि आप आपकी बुद्धि तो बहुत ही श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ हे राजन् । आपने इस समय जो भी कुछ पूछा है । उसका मैं यथातक वर्णन करता हूँ—विद्वान् पुरुष जो यथार्थ कहा जाता है उसको ही स य कहा करते हैं । सत्य यही है जिसका प्रवणकर मनुष्य सही बात को ठीक समझ जावे ॥२३॥ उस सत्य को ऐसी रीति से धर्म में तत्पर पुरुष को कहना चाहिए कि धर्म में कोई भी विरोध न आये । देश और काल को भी भली भाँति समझकर जिसमें कोई विरोध न होवे ऐसा जो वचन कहा जाता है उसी को सत्पुरुष सत्य वचन कहा करते हैं । जिसमें किसी प्राणी को कोई कष्ट नहीं पहुँचता है ॥२४-२५॥ हे नृपेत्तम ! अहिंसा उसी का नाम है जिसमें समस्त वामनाएँ पूर्ण हो जाया करती हैं । सभी सत्त्वर्गों में सहायता देना और क्रुत्सिन् कर्मों से दूर रहना ही धर्म में चतुर पुरुषों के द्वारा गर्व भोगों का हित कहा करते हैं । धर्म और अधर्म का कुछ भी विचार न कर विवेक रहित होकर स्वेच्छा पूर्वक कार्य करना ही झूठ है ॥२६-२७॥ इन झूठ में सभी कल्याणों का दरयाज। बन्द हो जाया करता है । जो इस जगत में द्वेष करने वाले लोग हैं तथा मूर्ख हैं इनकी मति मयंदा बुरे मार्गों की ओर ही जाया करती है ॥२८॥

ते राजन्दुज्जना ज्ञेया सर्वधर्मव हृक्कृता ।  
 धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिण ॥२६  
 सर्वलोकहितासक्ता साधव परिकीर्त्तिता ।  
 हरिभक्तिकर यत्तत्सद्भिश्च परिञ्जितम् ॥३०  
 आत्मन प्रीतिजनक तत्पुण्य परिकीर्त्तितम् ।  
 सर्व जगदिद विष्णुविष्णु सर्वस्य कारणम् ॥३१  
 अहं च विष्णुर्यज्ज्ञान तद्विष्णुस्मरण विदुः ।  
 सर्वदेवमयो विष्णुविधिना पूजयामि तम् ॥३२  
 इति या भवति श्रद्धा सा तदभक्ति प्रकीर्त्तिता ।  
 सर्वभूतभयो विष्णु परिपूर्णं सनातन ॥३३  
 इत्यभेदेन या बुद्धि समता सा प्रकीर्त्तिता ।  
 समता शत्रुमित्रेषु वशित्वं च तथा नृप ॥३४  
 यदृच्छालाभसमुष्टि सा शान्तिः परिकीर्त्तिता ।  
 एते सर्वे समाख्यातास्तय सिद्धिप्रदा नृणाम् ॥३५

हे राजन् । उन्ही पुरुषों को दुष्ट एवं दुर्जन समझना चाहिए और ऐसे लोग समस्त धर्म कृत्यों से बहिष्कृत रहा करते हैं । जो पुरुष सदा धर्म एवं अधर्म का विचार गहराई के साथ करते ही वेद प्रतिपादित मार्गों पर गमन किया करते हैं । सर्वदा सब प्राणियों का हित सम्पादन करने में परायण रहा करते वे ही साधु पुरुष कहे जाया करते हैं, जिससे श्री हरि भगवान् के चरणा की प्रीति बढ़ती है और राज्ञन जिससे परम प्रसन्नता प्राप्त करें और अपने हृदय में भी ज़िम्मे करने में प्रसन्नता उत्पन्न होती है उसी को पुण्य कहा जाया करना है । यह सम्पूर्ण विश्व भगवान् विष्णु का ही एक व्यापक स्वरूप है और इस सब के भगवान् विष्णु ही परम कारण हैं ॥२६-३१॥ मैं भी विष्णु का ही एक स्वरूप हूँ, ऐसा ज्ञान का होना ही विष्णु का स्मरण कहा जाया करता है । भगवान् विष्णु तो सब देवमय हैं, मैं उनकी तद्विधि अर्चना

करूँ, इस प्रकार की श्रद्धा-भावना का समुत्पन्न होना ही भक्ति कही जाती है। परिपूर्ण सनातन भगवान विष्णु सर्वभूतमय होते हैं ॥३२-३३॥ इसी प्रकार की जो ये दया से शून्य बुद्धि है वही समता नहीं आती है। हे राजन् शत्रु-मित्र में समता का व्यवहार रखना, इन्द्रियो को अपने वश में रखना, जो कुछ भी यदृच्छया प्राप्त हो जावे उसी में सन्तुष्ट रहना शान्ति कही जाया करती है। ये सभी बातें, सिद्धान्त पूर्ण हैं और मनुष्यों को ये तपस्या की सिद्धि प्रदान करने वाली हुमा करती हैं जिन्हें मैंने अभी आपको बतलाया है ॥३४-३५॥

समस्तपापराशीनां तरसा नाशहेतवः ।

अष्टाक्षर महामन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥३६

वृक्ष्यामि तव राजेन्द्र पुरुषार्थैकसाधनम् ।

विष्णोः प्रियकर चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥३७

नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् ।

नमो भगवते प्रोच्य वासुदेवाय तत्परम् ॥३८

प्रणवाद्यं महाराज द्वादशार्णमुदाहृतम् ।

द्वयोः सम फलं राजन्नष्टद्वादशवर्णयोः ॥३९

प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च साम्यमुद्दिष्टमेतयोः ।

शंखचक्रधर शान्त नारायणमनयमयम् ॥४०

लक्ष्मीमश्रितवामाङ्कं तथाभयङ्कुर प्रभुम् ।

किराटकुण्डलधर नानामण्डनशोभितम् ॥४१

भ्राजत्कोस्तुभमालाढ्य श्रीवत्साङ्कितवदासम् ।

पीताम्बरधर देव सुरासुरनमस्कृतम् ॥४२

ध्यायेदनादिनिधन सर्वकामफलप्रदम् ।

अन्तर्यामी ज्ञानरूपी परिपूर्णः सनातनः ॥४३

इन सब का परिपालन करने से शीघ्र ही सब पापों के समुदाय

का विनाश हो जाया करता है। अष्टाक्षर महामन्त्र सभी पापों का नाश कर देने वाला होता है ॥३६॥ हे राजन् ! यह महामन्त्र सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति का एकमात्र साधन है और यह भगवान् विष्णु को प्रिय बना देने वाला है तथा सभी मिद्धियों को प्रदान करने वाला है। उसे अब मैं आपको बतलाता हूँ ॥३७॥ “ॐ नमो नारायणाय”, यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इसका जाप करना चाहिए। “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”, यह द्वादशाक्षर मन्त्र है। आठ और बारह अक्षरों से युक्त इन दोनों ही मन्त्रों का फल समान ही हुआ करता है ॥३८-३९॥ प्रवृत्ति और निवृत्ति में इन उपयुक्त दोनों मन्त्रों को समता बतलाई गयी है। साप्ताहिक कर्मों से अनुराग सहित सम्पादन करने को प्रवृत्ति कहा जाता है और सभी लौकिक कार्यों से निवेद प्राप्त कर उनसे दूर हटने को निवृत्ति कहा करते हैं। अब भगवान् के ध्यान करने के लिए उनके स्वरूप का वर्णन किया जाता है—शास्त्र-चक्र धारण करने वाले, परम शान्त स्वरूप, अनामय अर्थात् परमानन्दमय, अपने बाये भाग में सर्वदा लक्ष्मी देवी को साथ रखने वाले, किरीट और कुण्डलों को धारण करने वाले, सदा अभय का प्रदान करने वाले, विविध बहु मूल्य भूषणों से विभूषित, दमकने वाली कौस्तुभ मणियों की माला को धारण करने वाले, श्री वत्स के चिह्न से युक्त वक्षस्थल वाले, पीताम्बर को पहिने हुए, सब देवासुरों के द्वारा बन्धमान, अनादि निधन और सब कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले भगवान् विष्णु हैं—ऐसा ही उनका ध्यान करना चाहिए। ये भगवान् विष्णु अन्तर्यामी हैं, ज्ञान स्वरूप हैं, परिपूर्ण एवं सनातन हैं ॥४०-४३॥

एतत्सर्वं समाख्यात तत्तु पृष्ट त्वया नृप ।  
 स्वस्ति तेऽस्तु तपःसिद्धिं गच्छ लब्धुं यथासुखम् ॥४४॥  
 एवमुक्तो महीपालो भृगुणा परमपिणा ।  
 परमा प्रीतिमापन्नः प्रपेदे तपसे वनम् ॥४५॥

॥५३॥ देवों ने प्रार्थना की थी—हे भगवान आप तो अपने स्मरण करने वालों की सभी पीड़ाओं को दूर कर दिया करते हैं । आप सर्वोपरि विराजमान परमात्मा हैं । आप अपने स्वभाव से परम विशुद्ध हैं और सद्य प्रकार से परिपूर्ण हैं । इस जगत के एक मात्र आप ही स्वामी हैं । ऐसे भगवान् श्री विष्णु की सेवा में हम सबका सादर एवं सयिनय प्रणाम समर्पित है । आपके स्वरूप का ज्ञान करने वाले मनीषी आपको ज्ञानात्मक ही कहा करते हैं ॥५४॥ योगी लोग जिस महाग आत्मा वाले का हमेशा ध्यान किया करते हैं और जो स्वेच्छा से ही शरीर धारण करके देवगणों का काय सफल किया करते हैं । यह सम्पूर्ण ससार जिनका ही स्वरूप है तथा इस समस्त विश्व के जो आदि स्वामी हैं उन महा पुरुष की सेवा में हम सब नमस्कार करते हैं ॥५५॥ जिनके परम पावन नामों का सकीर्तन करने से दुष्टों के सब पापों का नाश होजाया करता है उन्हीं परम पूजनीय महान् पुराण पुरुष भगवान् विष्णु को हम लोग अपने अर्थ की सुसिद्धि प्राप्त करने के लिये प्रणाम करते हैं ॥५६॥

यत्तेजसा भान्ति दिवाकराद्या नातिक्रमत्यस्य कदापि शिक्षा ।  
 कालात्मक त त्रिदशाधिनाथ नमामहे वै पुरुषार्थरूपम् ॥५७॥  
 जगत्करोऽप्यब्जभवोऽस्ति रुद्र पुनाति लोकाञ् श्रुतिभिश्च विप्रा ।  
 तमादिदेव गुणसन्निधान सर्वोपदेशारमिता शरण्यम् ॥५८॥  
 वर वरेण्य मधुकैटभारि सुरासुराभ्यर्चितपादपीठम् ।  
 सद्भक्तसकल्पितसिद्धिहेतु ज्ञानकवेद्य प्रणता स्म देवम् ॥५९॥  
 अनादिमुध्यान्तमज परेशमनाद्यविद्य ख्यतमोविनाशम् ।  
 सच्चित्परातन्दघनस्वरूप रूपादिहीन प्रणता स्म देवम् ॥६०॥  
 नारायण विष्णुमनन्तमीश पीताम्बर पद्मभवादिसेव्यम् ।  
 यज्ञप्रिय यज्ञवर विशुद्ध नता स्म सर्वोत्तममव्यय तम् ॥६१॥

इति स्तुतो महाविष्णुर्देवरिन्द्रादिभिस्तदा ।  
चरित तस्य राजर्षेर्देवाना सन्यवेदयत् ॥६२॥  
ततो देवान्त्रमाश्वस्य दत्त्वाभयमनञ्जनः ।  
जगाम यत्र राजर्षिस्तपस्तपति नारद ॥६३॥

सूर्य आदि समस्त ग्रह जिनके तेज के द्वारा ही प्रकाश प्रदान किया करते हैं और आज्ञा एवं शिक्षा का कभी उल्लंघन नहीं किया करते हैं उन्हीं बलारूप देवों के प्रभु परम पुरुषार्थ स्वरूप भगवान् विष्णु की सेवा में हमारा प्रणाम सादर निवेदित किया जाता है ॥५७॥ जो ब्रह्म का स्वरूप धारण कर इस विश्व की रचना किया करते हैं । श्री रुद्रदेव के स्वरूप में अवस्थित होकर इस जगत का सहार किया करते हैं और विप्र के स्वरूप में आकर सब लोगों को धृतियों के द्वारा पवित्र करते हैं उन्हीं आदि देव गुणों के सन्निधान, सबको उपदेश देने वाले और शरण करने के योग्य भगवान् विष्णु की हम शरणागति लेते हैं ॥५८॥ परम श्रेष्ठ शिरोमणि, मधु और कूटभ ईश्वरों के विनाश करने वाले, देवासुरों के द्वारा पूजित चरण, अपने भक्तों के मनोरथों की सिद्धि के कारण स्वरूप और केवल ज्ञान के द्वारा ही जानने योग्य भगवान् विष्णु देव को हम सब प्रणाम करते हैं ॥५९॥ जो आदि मध्यान्त से रहित है, जिनका जन्म कभी नहीं होता है, जो परम परेश आदि पुरुष और जो अविद्या के अन्धकार का नाश करने वाले तथा स्वरूप विहीन, सच्चिदानन्द हैं उन भगवान् विष्णु देव की सेवा में हम सब लोगों का प्रणाम है ॥६०॥ जो साक्षात् नारायण, ईश, अनन्त विष्णु, पीताम्बर धारण करने वाले, ब्रह्मादि सय देवों के वन्दनीय, यज्ञप्रिय, यज्ञकर, परम विशुद्ध स्वरूप, सर्व शिरोमणि और अविनाशी हैं उन देवेश्वर की सेवा में हम सबका प्रणाम है ॥६१॥ इस भाँति इन्द्रादि सब देवताओं ने भगवान् का स्तवन करके फिर प्रार्थना की थी तो उन्होंने राजर्षि भगीरथ के परम चरित्र का

वर्णन किया था और हे नारद ! उस समय मे भगवान विष्णु ने समस्त देवों को समास्वासन दिया था । जहाँ पर राजर्षि भगीरथ तपश्चर्या कर रहे थे वहाँ भगवान स्वयं पहुँच गये थे ॥६२॥६३

शखचक्रधरो देव सच्चिदानन्दविग्रह ।  
 प्रत्यक्षतामगात्तस्य राज्ञ सर्वजगद्गुरु ॥६४॥  
 त दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भाभासितदिगन्तरम् ।  
 अतसीपुष्पसकाश स्फुरत्कुण्डलमच्छितम् ॥६५॥  
 स्निग्धकुन्तलवक्त्राब्ज विभ्राजन्मुकुटोज्ज्वलम् ।  
 श्रीवत्सकौस्तुभधर वनमालाविभूषितम् ॥६६॥  
 दीर्घबाहुमुदाराग लोकेशाजितपकजम् ।  
 नमामि दण्डवद् भूमौ भूपतिर्नम्रकधर ॥६७॥  
 अत्यन्तहर्षसापूर्णं सरोमाञ्च सगद्गद ।  
 कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति श्रीकृष्णेति समुच्चरन् ॥६८॥  
 तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा ह्यन्तर्यामी जगद्गुरु ।  
 उवाच कृपयाविष्टो भगवान्भूतभावन ॥६९॥  
 भगीरथ महाभाग तवाभीष्ट भविष्यति ।  
 आगमिष्यन्ति मल्लोक तव पूर्वपितामहा ॥७०॥

इस सम्पूर्ण जगत् के गुरु सच्चिदानन्द भगवान् विष्णु राजा भगीरथ के समक्ष भ शख-चक्र आदि को धारण कर प्रकट होगये थे वह राजर्षि भगीरथ ने अपनी दिव्य प्रभा से दिशाओं को प्रकाशित करते हुये जिस समय मे भगवान के अलसी के पुष्प ने समान कान्ति वाले हिलत हुए कुण्डलो से विभूषित परम स्निग्ध और घुँघराले केशों से शोभायमान मुख कमल वाले, ददोप्यमान समुज्ज्वल मुकुट को मस्तक पर धारण करने वाले, वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि और श्रीवत्स को धारण किये हुए, वनमालाधारी, परम विशाल भुजाओं से युक्त, लोच-

पालो द्वारा वन्द्यमान, उदार अङ्गो से शोभित पुण्डरीकाक्ष भगवान का दर्शन किया तो वे अपना शिर झुका कर भगवान के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करने लगे थे ॥६५—६७॥ उस समय मैं भगवान का दर्शन प्राप्त करके राजा भगीरथ के मन में अत्यधिक आह्लाद हो रहा था । उनका प्रत्येक रोम ह्योस्तास के कारण खड़ा हो गया था, उनकी वाणी गदगद हो गई थी वे केवल मुख से श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण उच्चारण करने लग गये थे ॥६८॥ भगवान विष्णु के हृदय में भक्त की भाव विह्वल दशा को देखकर बहुत ही प्रसन्नता हुई और उस समय में अन्तर्यामी सब प्राणियों पर कृपा करने वाले जगदगुरु राजा भगीरथ से कहने लगे थे ॥६९॥ भगवान ने कहा—हे महाभाग । भगीरथ । तेरा हार्दिक मनोरथ पूर्ण होगा और तेरे पूर्वजों का उद्धार होकर वे सब मेरे लोक को प्राप्त होजायेंगे ॥७०॥

मम मूर्त्यन्तर शम्भु राजन्स्तोत्रं स्वशक्ति ।  
 स्तुहि ते सकल काम स वै सद्य करिष्यति ॥७१॥  
 यस्तु जग्राह शशिन शरण समुपागतम् ।  
 तस्मादाराधयेजान स्तोत्रं स्तुत्य सुखप्रदम् ॥७२॥  
 अनादि निधनो देव सर्वकाम फलप्रद ।  
 त्वया संपूजितो राजन्सद्य श्रेयो विधास्यति ॥७३॥  
 इत्युक्त्वा देवदेवो जगता पतिरच्युत ।  
 अन्तर्दधे मुनिर्धेय उत्तम्यौ सोऽपि भूपति ॥७४॥  
 किमिदं स्वप्न आहोस्वित्सत्य साक्षाद् द्विजोत्तम ।  
 भूपतिर्विस्मय प्राप्त किं करोमीति विस्मित ॥७५॥  
 अथान्तरिक्षे वागच्चै प्राह त भ्रान्तचेतसम् ।  
 सत्यमेतादति व्यक्तं न चिन्ता कर्तुमर्हसि ॥७६॥  
 तन्निशम्यावनोपाल ईशान सर्वकारणम् ।  
 समस्तदेवताराजमस्तोपीदं भक्तितत्परा ॥७७॥



भगवान् ने कहा—हे राजन् ! यह शम्भु मेरी ही दूसरी मूर्ति हैं । अब तुमको चाहिए कि उन शम्भु भगवान् का स्तवन अपनी शक्ति के अनुसार करो । वे तुम्हारे सभी मनोरथों को पूर्ण अवश्य ही कर देंगे क्योंकि शम्भु बहुत ही दयालु हैं ॥७१॥ भगवान् शम्भु ने शरण में समागत चन्द्र को ग्रहण किया है । अब उन्हीं स्तुत्य भगवान् परम सुहृदायक ईश्वर की स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करो ॥७२॥ जन्म-मरण से रहित सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले भगवान् शङ्कर की है राजा । यदि तुम अर्चना करोगे तो वे भोलेनाथ परम कृपालु प्रभु अति शीघ्र आपका कल्याण कर देंगे ॥७३॥ हे मुनि शिरोमणि ! देवों के भी देव भगवान् जगत के स्वामी अच्युत राजा भगीरथ से यह कहकर वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे । तब राजा भगीरथ उठकर खड़ा हो गया था ॥७४॥ उस समय में राजा ने मन में विचार किया था कि क्या यह मेरा स्वप्न था अथवा सर्वथा सत्य घटना घटित हुई है । मैं इस समय में क्या कहूँ । राजा भगीरथ को उस समय में ऐसा विस्मय-सा हो रहा था ॥७५॥ उसी समय में इस भ्रान्ति से पूर्ण राजा को आकाशवाणी सुनाई दी थी कि यह सब स्पष्टतया सत्य है, तुमको अब कुछ भी मनमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥७६॥ इस प्रकार से उस नभोवाणी के द्वारा श्रवण करके राजा भगीरथ ने सब के कारण स्वरूप और सब देवों में महान् भगवान् शङ्कर की स्तुति करने में भक्ति भाव से सलग्न हो गये थे ॥७६॥

प्रणमामि जगन्नाथ प्रणतार्तिप्रणाशनम् ।

प्रमाणागोचर देवमीशान प्रणवात्मकम् ॥७८॥

जगद्रूपमज नित्य सर्गस्थित्यतकारणम् ।

विश्वरूप विरूपाक्षं प्रणतोऽभ्युपरेतसम् ॥७९॥

यस्य ।

समामनन्ति योगीन्द्रास्त वन्दे पुष्टिवर्धनम् ॥८०॥

नमो लोकाधिनाथाय वञ्चते परिवञ्चते ।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय पशूना पतये नमः ॥८१॥

नमचैश्वर्यरूपाय पुष्टाना पतये नमः ।

नमोऽकल्पप्रकल्पाय भूताना पतये नमः ॥८२॥

नमः पिनाकहस्ताय शूलहस्ताय ते नमः ।

नमः कपालहस्ताय पाशमुद्गरधारिणे ॥८३॥

नमस्ते सर्वभूताय घण्टाहस्ताय ते नमः ।

नमः पञ्चास्यदेवाय क्षेत्राणा पतये नमः ॥८४॥

नमः समस्त भूतानामादिभूताय भूभृते ।

अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय परात्मने ॥८५॥

राजर्षि भगीरथ ने प्रार्थना की थी—मैं इस समस्त जगत के परम प्रभु प्रगतिशील पुरुषो के दुखों के विनाशक, प्रमाणों के द्वारा अगोचर और प्रणयस्वरूप भगवान् शम्भु की सेवा में अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ ॥७८॥ यह सम्पूर्ण जगत ही जिनका स्वरूप है, जो अजन्मा और नित्य हैं । उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में जो मूल कारण है उन विरूपाक्ष, विश्वरूप एवं उग्र वीर्य वाले भगवान् शिव के चरणों में मेरा प्रणाम है ॥७९॥ बड़े २ योगी जन जिन प्रभु को आदि मध्यान्त न रहित, अनन्त, अज और अव्यय बतलाया करते हैं उन्हीं पुष्टि के बढ़ाने वाले भगवान् शङ्कर को मैं प्रणाम करता हूँ । ८० आप सभी लोको के स्वामी हैं अपनी अदम्य अचिन्त्य माया के द्वारा सबको मोह जात में डाले हुए हैं उन्हीं नीलकण्ठ, अजजीवो को ज्ञान प्रदान करने वाले भगवान् शङ्कर के चरण कमलों में मेरा प्रणाम है ॥८१॥ जो स्वयं चैतन्य स्वरूप से युक्त हैं । परिपुष्टों को सुमार्ग में लगाने वाले भगवान् शम्भु की सेवा में मेरा प्रणाम प्रस्तुत है । असम्भव को भी सम्भव कर देने वाले, पाँच भूतों पर प्रभुता रखने वाले भगवान् शङ्कर को मेरा प्रणाम है । ८२॥

कपाल को धारण करने वाले तथा पाश और मृदङ्ग को ग्रहण करने वाले भगवान शङ्कर को मेरा प्रणाम है ॥८३॥ सर्वभूत, हाथ में घण्टा धारण करने वाले, पाँच मुखों से युक्त, क्षेत्र रक्षक भगवान शम्भु की सेवा में समादर सहित मेरा प्रणाम है ॥८४॥ सब भूतों में आदि भूत, भूभूत, अनेक स्वरूपों वाले, निर्गुण निरजन भगवान शम्भु को मेरा प्रणाम है ॥८५॥

नमो गणाधिदेवाय गणाना पतये नम ।  
 नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यपतये नम ॥८६॥  
 हिरण्यरेतसे तुभ्य नमो हिरण्यवाहवे ।  
 नमो ध्यानस्वरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥८७॥  
 नमस्ते ध्यानसंस्थाय ध्यानगम्याय ते नम ।  
 येनेदं विश्वमखिलं चराचरविराजितम् ॥८८॥  
 वर्षवाभ्रेण जनितं प्रधानपुरुषात्मना ॥८९॥  
 स्वप्रकाशं महात्मानं परं ज्योतिः सनातनम् ।  
 यमामनन्ति तत्त्वज्ञाः सवितारं नृचक्षुषाम् ॥९०॥  
 उमाकान्तन्नन्दिवेश नीलकण्ठ सदाशिवम् ।  
 मृत्युञ्जय महादेव परात्परतः विभुम् ॥९१॥  
 परशद्वन्द्वरूपं तं वन्देऽखिलवारणम् ।  
 कपर्दिने नमस्तुभ्य सद्योजाताय वै नम ॥९२॥

समस्त गणों के आदि देव, सब गणों के अधिदेव तथा गणों के पति आपसों में मेरा प्रणाम है । हिरण्यगर्भ और हिरण्य पति को मेरा प्रणाम है ॥८६॥ जिसका यह मुखर्ष वीर्य है उन हिरण्यवाह भगवान शिव का मेरा प्रणाम है । ध्यान के स्वरूप में समवस्थित तथा ध्यान के साक्षी के लिए भरा प्रणाम है ॥८७॥ सदा ध्यान में मग्न रहने वाले तथा परम ध्यान के द्वारा ही प्राप्त होने वाले भगवान शम्भु को मेरा प्रणाम समर्पित है । त्रिपद्म प्रधान पुरुष से यह सम्पूर्ण स्थावर,

जङ्गम विश्व मेघ वर्षा के ममान ही प्रकट हुआ है और जिनको तत्त्व-  
वेत्ताजन मनुष्य दृष्टि का सूर्य कहते हैं उन स्वप्रकाश, महान् आत्मा  
वाले, परम ज्योति रूप भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६८-  
६९॥ जगदम्बा उमा देवी के पति, नन्दिवेश, नील वण्ठ, मृत्युञ्जय  
सदाशिव, महान् देव, परम श्रेष्ठतम, विष्णु, शब्द ब्रह्म स्वरूप और  
सबके कारण स्वरूप भगवान् शिव को मेरा प्रणाम है । मस्तक पर  
जटा जूट धारण करने वाले, अपने भक्तजनो की रक्षा करने के लिए  
तुरन्त प्रकट होने वाले सद्योजात भगवान् शङ्कर को मेरा प्रणाम  
है ॥६९-६२॥

भवोद्भवाय शुद्धाय ज्येष्ठाय च कनीयसे ।  
मन्यवे त इषे त्रय्या पतये यज्ञतन्त्रवे ॥६३  
ऊर्जे दिशा च पतये कालायाघोररूपिणे ।  
कृशानुरेतसे तुभ्य नमोऽस्तु सुमहात्मने ॥६४  
यत् ससुद्रा सरितोऽद्रयश्च गन्धर्वयक्षात्युरसिद्धसथा ।  
स्थाणुश्चरिण्युर्महदल्पक च असञ्च सज्जीवमजीवमास ॥६५  
नतोऽस्मि त योगिनताघ्रिपद्म सर्वान्तरात्मानमरूपमीशम् ।  
स्वतन्त्रमेक गुणिना गुण च नमामि भूय प्रणमामि भूय ॥६६  
इत्य स्तुतो महा देव शङ्करो लोकशङ्कर ।  
आविर्बभूव भूपस्य सततस्तपसोऽग्रत ॥६७

इससमस्त जगत् के उत्पत्ति स्थान, सर्वव्यापक, महान् और परम  
मूक्षम स्वरूप वाले, यज्ञ स्वरूप, वेदनयो (ऋक्, यजु और साम) की रक्षा  
करने वाले, यज्ञ तन्त्र, महाबलवान्, दिशाओं के स्वामी कालरूप, अघोर  
रूपी और कृशानुरेता, महान् आत्मा भगवान् शिव को प्रणाम है ॥६३  
-६४॥ जिन भगवान् से य समुद्र, नदियाँ, पर्वत, यक्ष, गन्धर्व, अमुर,  
सिद्ध समुदाय, स्थावर जङ्गम, छोटे-बड़े सत् वस्तु और चेतन एव  
अचेतन समुत्पन्न हुए हैं उन प्रभु शिव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६५॥

योगीजन जिनके चरणों की सदा वन्दना किया करते हैं उन शिव को मेरा प्रणाम है। जो सबके अन्तरात्मा है, रूप रहित ईश, एक, स्वतन्त्र और गुणीजनो के गुण हैं, उन भगवान् शङ्कर की मैं वन्दना करता हूँ ॥६६॥ जिस समय में समस्त ससार का कल्याण करने वाले भगवान् शिव की इस भाँति स्तुति की गई तो वे उस भगीरथ के अत्युग्र तप से सन्तुष्ट होकर वही पर प्रकट हो गये थे ॥६७॥

पञ्चवक्त्र दशभुज चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ।

त्रिलोचनमुदाराङ्ग नागयज्ञोपवीतिनम् ॥६८॥

विशालवक्षस देव तुहिनाद्रिसमप्रभम् ।

गजचर्मम्बरधर सुरार्चितपदाम्बुजम् ॥६९॥

दृष्ट्वा पपात पादाग्रे दण्डवद्भुवि नारद ।

तत उत्थाय सहसा शिवाग्रे विहिताञ्जलि ॥१००॥

प्रणनाम महादेव कीर्तयञ्छङ्खगह्वयम् ।

विज्ञाय भक्तिं भूपस्य शङ्कर शशिशेखर ॥१०१॥

उवाच राज्ञे तुष्टोऽस्मि वर वरय वाञ्छितम् ।

तोषितोस्मि त्वया सन्यक् स्तोत्रेण तपसा तथा ॥१०२॥

एवमुक्तः स देवेन राजा सतुष्टमानसः ।

उवाच प्राञ्जलिभूर्त्वा जगतामीश्वरेश्वरम् ॥१०३॥

अनुग्राह्योऽस्मि यदि ते वरदानान्महेश्वर ।

तदा गङ्गा प्रयच्छास्मत्पितॄणा मुक्तिहेतवे ॥१०४॥

दत्ता गङ्गा मया तुभ्यः पितॄणां ते गतिः परा ।

तुभ्य मोक्षः परश्चेति तमुक्त्वान्तर्दधे शिवः ॥१०५॥

हे नारद ! राजपि भगीरथ ने अपने समक्ष में जब भगवान् शङ्कर व स्वरूप का दर्शन किया था तो उस समय में उनका स्वरूप परम सुन्दर था। शिव ने पाँच मुख थे दश भुजाये थी, माथे पर अर्ध चन्द्र शाश्वत था, तीन नेत्र थे, विशाल अङ्ग था जिस पर नागों का यज्ञपवीत धारण किया हुआ था। विशाल वक्षस्थल था, हिमालय के

सदृश कानि सम्पन्न थे । गज के चर्म को धारण करने वाले, देवों द्वारा वन्दित चरण वाले भगवान शङ्कर को साक्षात् सामने उपस्थिति देखत ही भगीरथ प्रेम विभोर होकर उनके चरणों में लोट गया था । दण्डवत् सेटकर उन चरणों का स्पर्श किया और फिर उठकर दोनों हाथ जोड़ कर शिव के शुभ श्रेयस्कर नामों का कीर्तन करने लग गया था । भगवान शङ्कर उस राजा की भक्ति को अपनी-भाँति समझ गये थे ॥६८-१०१॥ भगवान शङ्कर राजा भगीरथ से कहने लगे—मैं तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ अब तरी जो भी इच्छा हो वही वरदान मुझसे माँग ले । तुम्हारे इस स्तोत्र से और तपश्चर्या क्षर्या से मैं बहुत ही अधिक सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया हूँ ॥१०२॥ भगवान शिव के इस कथन से भगीरथ के मन को बहुत कुछ सन्तोष हो गया था और फिर वह हाथ जोड़कर जगदीश्वरों के भी ईश्वर से प्रार्थना करने लगा था ॥१०३॥ राजर्षि भगीरथ ने कहा—हूँ महेश्वर । यदि आप वरदान प्रदान करके मुझ मेवक पर पूर्ण अनुग्रह करना चाहते हैं तो मेरे भस्मीभूत पितरों के उद्धार करने के लिए गङ्गाजी को दीजिए ॥१०४॥ भगीरथ की इस प्रार्थना पर भगवान शिव ने उत्तर दिया था कि मैं तुमको गङ्गा देता हूँ । इससे तेरे पितरों की तो परम श्रेष्ठ गति होगी ही और तेरी भी मुक्ति हो जायगी, इतना ही कहकर शङ्कर का बशी पर अन्तर्धान हो गया था ॥१०५॥

कपदिनो जटाम्रस्ता गङ्गा लोकेऽपाविनी ।  
पावयन्ती जगत्सर्वमन्यगच्छद्भगीरथम् ॥१०६॥  
ततः प्रभृति सा देवी निर्मला भलहारिणी ।  
भागीरथीति विख्याता त्रिषु लोकेष्वभून्मुने ॥१०७॥  
मगरम्यात्मजा पूर्वं यत्र दग्धा स्वपाप्मना ।  
त देशं प्लावयामास गङ्गा मवसरिद्धरा ॥१०८॥  
यदा सज्जातः भस्म सागराणां तु गङ्गाया ।  
तदैव नरके मग्ना उद्धृताश्च मनैरसः ॥१०९॥

पुरासक्रुश्यमानेन ये यमेनातिपीडिता ।

तदैव नरके मग्ना उद्धृताश्च गतैतस ॥११०॥

गतपापान्स विज्ञाय यम सगरसम्मान् ।

प्रणम्याभ्यर्च्य विधिवत्प्राह तान्प्रीतमानस ॥१११॥

इधर भगवान् को जटाओं की लट से नटखट गङ्गा जो सम्पूर्ण ससार को पवित्र करने वाली है इस ससार को पवित्र करती हुई राजा भगीरथ के पीछे पीछ चल रहा थी ॥११०॥ उमी दिन से वह गङ्गा हे मुनिवर । मल को दूर करने वाली परम निमल तीनों लोकों में भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध हो गई थी ॥११०॥ तब प्रथम सगर के पुन अपने पाप के कारण भस्मोभूत हो गये थे उसी स्थान पर पहुँचकर गङ्गा नदी ने पवित्र एव प्लवित किया था ॥११०॥ गङ्गाजी ने सगर के साठ हजार पुत्रों की भस्म को प्रक्षालित किया था कि नरकों में पड़े हुए सगर मुक्त निष्पाप होकर परम शुद्ध हो गये थे और उनका उद्धार हो गया था ॥११०॥ इसके पूव यमराज ने बहुत ही डाट डपट कर घोर दण्ड जिनको दिया था उ ही की गङ्गा जल से स्नात से स्नान करने पर बहुत आदर के साथ पूजा की थी ॥११०॥ यमराज ने जब सगर के पुत्रों का निष्पाप हुआ जान लिया तब उनको प्रणाम और सत्कार करके परम प्रमनता से कहने लगा था ॥१११॥

भो भो राजसुता यूय नरवाद् भृशदारुणात् ।

मुक्ता विमानमारुह्य गच्छस्व विष्णुमन्दिरम् ॥११२॥

इत्युक्तास्ते महात्मानो यमेन गतकल्मषा ।

दिव्यदहधरा भूत्वा विष्णुलोक प्रपदिरे ॥११३॥

एवप्रभावा सा गङ्गा विष्णुपादाग्रसम्भवा ।

सदलावपु विख्याता महापातकनाशिनी ॥११४॥

य इद्र पुण्यमाग्र्यान् महापातकनाशनम् ।

पठञ्च शृणुयाद्वापि गङ्गास्नानफला लभत् ॥११५॥

यस्त्वत्पुण्यमाग्र्यान वयवदाह्णायत ।

स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥११६॥

यमराज ने कहा—हे राज पुत्रो ! अब आप इस परम भयानक नरक से मुक्त हो गये हैं । अब तो श्री गङ्गाजी की कृपा से आप लोग दिव्य विमानों का पर समारूढ होकर सीधे विष्णु लोक को गमन करिए ॥११२॥ यमराज के द्वारा इस तरह में कहने पर उन समस्त सगर के पुत्रों ने दिव्य देह धारण करके निष्प्राण होते हुए विष्णु भगवान के लोक में गमन किया था ॥११३॥ भगवान विष्णु के चरणों के नखों से प्रकट हुई गङ्गा का ऐसा अद्भुत प्रभाव है । फिर वह गङ्गा समस्त लोको में महान् से भी महान् पापों का विनाश करने वाली पनिशपावनी प्रसिद्ध हो गई थी ॥११४॥ जो मनुष्य पाप नाशक परम पवित्र आश्रयान का श्रवण किया करना है अथवा इसको पढ़ता है उसको गङ्गाजी के स्नान करने के सुख ही पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है ॥११५॥ जो इस परम पवित्र आश्रयान का विश्व की सभा में वर्णन किया करता है वह भी पुनर्जन्म से छूटकर विष्णु लोक को गमन किया करता है ॥११६॥



॥ शुक्ला द्वादशी वृत का उद्यापन ॥

साधु सूत महाभाग त्वयातिकरुणात्मना ।  
श्रावित सर्वपापघ्न गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ॥१॥  
श्रुत्वा तु गङ्गामाहात्म्य नारदो देवदर्शन ।  
किं पप्रच्छ पुन सूत सनक मुनिसत्तमम् ॥२॥  
शृणुध्वमृषय सर्वे नारदेन मुरर्षिणा ।  
पृष्ट पुनर्यथा प्राह प्रवक्ष्यामि तथैव तत् ॥३॥  
नानाख्यानेतिहासाढ्य गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ।  
श्रुत्वा ब्रह्मसुतो भूय पृष्ट्वानिदमादरात् ॥४॥



अहोऽतिधन्य मुकृत्तकसार श्रुत मया पुण्यमसंवृतार्थम् ।  
 गाङ्गेयमाहात्म्यमघप्रणाशि त्वत्तो मुने कारुणिकादभीष्टम् ॥५॥  
 ये साधव साधु भजन्ति विष्णुं स्वार्थं परार्थं च यतन्त एव ।  
 नानोपदेशै सुविमुग्धचित्त प्रबोधयन्ति प्रसन्नं प्रसन्नम् ॥६॥  
 तत समाख्याहि हरेर्व्रतानि कृतंश्च यं प्रीतिमुपैति विष्णुः ।  
 ददाति भक्तिं भजता दयालुमुक्तिस्तु तस्या विदिता हि दासी ॥७॥

शौनकादि महर्षियो ने श्री सूतजी से कहा—हे महाभाग ! आपने समस्त महान् भीषण पापों के विनाश करने वाली गङ्गाजी के माहात्म्य का श्रवण करा कर हम लोगों पर अत्यधिक कृपा का प्रदर्शन किया है । अब आप हम को यह बताइये कि देवर्षि नारद जी ने गङ्गाजी के इस माहात्म्य का श्रवण कर इसके पीछे मुनि श्रेष्ठ श्री सनकजी से क्या जिज्ञासा की थी ॥१-२॥ इस पर सूतजी ने कहा—हे ऋषि-गणों ! देवर्षि श्री नारद जी के पूछने पर महर्षि सनक देव ने जो उनसे कहा था उस सबको मैं बिलकुल उसी भाँति आप लोगों को सुनाता हूँ ॥३॥ ब्रह्मा क पुत्र नारदजी विविध कथानको तथा इतिहास से परिपूर्ण गङ्गाजी के इस उत्तमोत्तम आख्यान को सुनकर फिर सनकजी से बड़े ही समादर के साथ पूछने लगे थे ॥४॥ श्री नारद जी ने कहा था—हे मुनिवर ! आपके मुखारविन्द से परम पुण्यो का सार और परम पुण्य स्वरूप एवं महा पाप विनाशक गङ्गा माहात्म्य सुना है ? आप तो स्वयं ही बहुत दयालु हैं आपको धन्यवाद है ॥५॥ साधु पुरुषों का ऐसा स्वभाव ही हाता है कि वे सर्वदा भगवान् विष्णु का भजन किया करते हैं और वे अपने तथा दूसरों के उद्धार की सदा चेष्टा किया करते हैं । जिनका मन महान् घोर मोह में पड़ा रहता है उनको अनेक प्रकार का सदुपदेश प्रदान कर उन्हें वह यश प्रसन्नता दिया करते हैं ॥६॥ अतएव जिन वनों के करने में भगवान् विष्णु की प्रसन्नता हुआ करती है उन वनों का अवश्य वर्णन कीजिए । भगवान् तो स्वयं ही बहुत दयालु हैं ।

नारद पुराण ]

जो लोग उनका भजन किया करते हैं। उनको भक्ति दे दिया करते हैं और मुक्ति तो उनकी परम प्रसिद्ध दामी है ॥७॥

ददाति मुक्तिं भजता मुकुन्दा व्रतार्चनध्यानपरायणानाम् ।  
भक्तानुमेवामु महाप्रयास विमृश्य कस्यापि न भक्तियोगम् ॥८॥

प्रवृत्ता च निवृत्ता च यत्कर्म परितोषणम् ।  
तदाख्याहि मुनिश्रेष्ठ विष्णुमक्तोऽसि मानद ॥९॥

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ भक्तस्त्य पुरुषोत्तमे ।  
भूयो भूयो यत पृच्छेश्वरिण शाङ्गधन्वन ॥१०॥

व्रतानि ते प्रवक्ष्यामि लोकोपकृतिमन्ति च ।  
प्रसीदति हरिर्यस्तु प्रयच्छत्यभय तथा ॥११॥

यस्य प्रसन्नो भगवान्यत्रलिङ्गो जनार्दनः ।  
ब्रह्मामुत्र सुख तस्य तपोवृद्धिश्च जायते ॥१२॥

येन केनाप्युपायेन हरिपूजापरायणा ।  
प्रयान्ति परम स्थानमिति प्राहुर्महर्षय ॥१३॥

मार्गशीर्षे सितेपक्षे द्वादश्या जन्मशायिनम् ।  
उपोषितोऽर्चयेत्सम्यङ् नर श्रद्धाममन्वित ॥१४॥

जो लोग भगवान का व्रत-पूजन और ध्यान किया करते हैं उनको भगवान मुक्ति दे दिया करते हैं किन्तु भक्तों को सेवा करने में बहुत श्रद्धा भोगना पड़ता है—ऐसा समझ कर किसी को भी भक्ति-योग देना नहीं चाहते हैं ॥८॥ हे मानद । भले ही प्रवृत्ति मार्ग का हो या चाहे निवृत्ति मार्ग का हो, जो यत्कर्म भगवान श्री हरि की प्रसन्नता समुत्पन्न कराने वाला हो उसी का अब आप मेरे सामने वर्णन करिए । आप तो स्वयं भगवान विष्णु के परम निरोधवि भक्त हैं और आप सभी कुछ जानते हैं ॥९॥ श्री मनोज्ञी ने कहा—हे परम श्रेष्ठ मूने । बहुत अच्छा प्रश्न किया है, यह अत्यधिक अच्छी बात है । आप भी तो भगवान पुरुषोत्तम के परम भक्त हैं क्योंकि माहर्षि धनुष के धारण करने

वाले भगवान के चरित्र को बारम्बार पूछते ही चले जा रहे हैं । बिना भक्ति के ऐसी बात अन्य कौन पूछ सकता है ? ॥१०॥ मैं अब आपके प्रश्न के अनुसार ही अपने समक्ष मे गप्पार का परम उपकार करने वाले व्रतो का विशद वर्णन करता हूँ जिन व्रतो के करने पर भगवान विष्णु परम प्रसन्न हुआ करते हैं और अभय का दान दिया करते हैं ॥११॥ यज्ञ स्वरूप भगवान की जिस जीव पर प्रसन्नता होती है उस जीवात्मा को दोनों लोको मे सर्वदा सुख की प्राप्ति हुआ करती है और उसकी तपस्या की वृद्धि हुआ करती है ॥१२॥ महर्षियों का ऐसा कहना है कि हरि का पूजन करने वाले चाहे जिस प्रकार स उनका अर्चन करने वाले चाहे जिस प्रकार से उनका अर्चन करने वाले हो उनको अवश्य ही परम पद की प्राप्ति हो जाया करती है ॥१३॥ जो परम श्रद्धा से समुत्त होते हैं वे मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन को व्रत धारण कर जलशायी भगवान का भली-भांति पूजन किया करते हैं ॥१४॥

स्नात्वा शुक्लाम्बरधरो दन्तधावनापूर्वकम् ।

गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यपूर्वकम् ॥१५॥

वाग्यतो भक्तिभावेन मुनिश्रेष्ठार्चयेद्धरिम् ।

केशवाय नमस्तुभ्यमिति विष्णुं च पूजयेत् ॥१६॥

अष्टोत्तरशतं हुत्वा वह्नो घृततिलाहुतीः ।

राश्रीं जागरणं कुर्याच्छालग्रामसमीपतः ॥१७॥

स्नापयेत्प्रस्थपयसा नारायणमनामयम् ।

गोतैर्वाद्यैश्च नैवेद्यैर्मन्त्रैर्भोज्यैश्च केशवम् ॥१८॥

त्रिकालं पूजयेद्भक्त्या महालक्ष्म्या समन्वितम् ।

पुनः कल्पे समुत्थाय कृत्वा कर्म यथोचितम् ॥१९॥

पूर्ववत्पूजयेद्देवं वाग्यतो नियतः शुचिः ।

पायसा घृतसमिधं नालिकेरफलान्वितम् ॥२०॥

नारायणपरो भूत्वा स्वयं भुञ्जोत वाग्यत ।  
 इति यः कुरुते भक्त्या केशवार्चनमुत्तमम् ॥२३॥  
 स पौण्डरीकयज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ।  
 पौषमासं सिते पक्षे द्वादश्यां समुपापित ॥२४॥  
 नमो नारायणायेति पूजयेत्प्रयतो हरिम् ।  
 पयसा स्नाप्य नैवेद्यं पायसं च समर्पयेत् ॥२५॥  
 रात्रौ जागरणं कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्परः ।  
 धूपदीपैश्च नैवेद्यगन्धैः पुष्पैर्मनोरमैः ॥२६॥  
 तृणैश्च गीतवाद्याद्यैः स्तोत्रैश्चाप्यर्चयेद्भरिम् ।  
 कृशरान्नं च विप्राय दद्यात्सघृतदक्षिणम् ॥२७॥  
 सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्वव्यापी सनातनः ।  
 नारायणं प्रसन्नं स्यात्कृशरान्नप्रदानतः ॥२८॥  
 मन्त्रेणानेन विप्राय दत्त्वा वै दानमुत्तमम् ।  
 द्विजाश्च भोजेच्छक्त्या स्वयमद्यात्सवान्धवः ॥२९॥

इसके अनन्तर अपनी वाणी को नियम नियन्त्रित रखते हुए  
 नारायण का ध्यान रखकर स्वयं प्रसाद ग्रहण करना चाहिये । इस  
 विधान के अनुसार जो भी कोई भक्तिभाव पूर्वक भगवान् केशव का  
 पूजन किया करता है ॥२३॥ वह मनुष्य पौण्डरीक यज्ञ का अष्टगुण  
 पुष्प-फल प्राप्त किया करता है । फिर पौष शुक्ला द्वादशी के दिन भी  
 श्रद्धा रखने तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर 'नमो नारायण'  
 इस मन्त्र का उच्चारण कर श्री हरि का पूजन करना चाहिये । दूध  
 से भगवान् का स्नान कराकर फिर नैवेद्य और क्षीर का भाग लगाना  
 चाहिये ॥२४॥२५॥ रात्रि के समय में जागरण करे तथा तीनों कालों  
 में भगवान् का सविधि अर्चन करना चाहिये । धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प,  
 गन्ध, घसादि तृण, गान वाद्य और स्तौत्र आदि से श्री हरि का पूजन  
 करे । 'सर्वात्मा, सब लावेश सर्वव्यापी सनातन । नारायण प्रसन्न

स्यात्कृशरान्न प्रदानतः' अर्थात् सर्वव्यापी, समस्त लोको के स्वामी, सब में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले सनातन भगवान् नारायण इस खिचड़ी के दान में प्रसन्नता प्राप्त करें, इस मन्त्र के द्वारा घृत तथा दक्षिणा द्रव्य रखकर ब्राह्मण को दान देवे । इस विधि से ब्राह्मण को श्रेष्ठ दान देकर फिर अपनी शक्ति के अनुसार विप्रों को भोजन करावे और अपने बन्धु बान्धवों के सहित स्वयं भी भोजन करे ॥२६-२६॥

एव सपूजयेद्भक्त्या देव नारायण प्रभुम् ।  
अग्निष्टोमाष्टकफलं स सपूर्णमवाप्नुयात् ॥३०॥  
माघस्य शुक्लद्वादश्या पूर्ववत्समुपोषितः ।  
नमस्ते माघवायेति हुत्वाष्टौ च घृताहुतीः ॥३१॥  
पूर्वमानेन पयसा स्नापयेन्माघव तदा ।  
पुष्पगन्धाक्षतैरर्चेत्माघधानेन चेतसा ॥३२॥  
रात्रौ जागरणं कुर्यात्पूर्ववद्भक्तिसयुतम् ।  
कल्पकर्म च निर्वर्त्य माघव पुनरर्चयेत् ॥३३॥  
प्रस्थं तिलानां विप्राय दद्याद्द्विंशं मन्त्रपूर्वकम् ।  
सदक्षिणं स वस्त्रं च सर्वपापविमुक्तये ॥३४॥  
माघव सर्वभूतात्मा सर्वकर्मफलप्रदः ।  
तिलदानेन महता सर्वान्कामान्प्रयच्छन् ॥३५॥

इस विधि से भगवान् नारायण का भक्तिपूर्वक अर्पण करने में आठ अग्निष्टोम यज्ञों का पुण्य-फल मिला करना है । भगवान् हममें परम प्रसन्न होते हैं । इसी भाँति माघ मास की द्वादशी तिथि के दिन भी व्रत रखना चाहिये । इस दिन 'नमस्ते माघवाय' इस मन्त्र का उच्चारण करके घृत की आठ आहुतियाँ अग्नि में देनी चाहिए । एवं प्रस्थ दुग्ध में भगवान् माघव की प्रतिमा को स्नान कराना चाहिये और परम गमाहित वित्त में गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा भगवान् का

पूजन करना चाहिये ॥३०-३२॥ पूर्ववत् भक्तिभाव पूर्वक रात्रि में जागरण करे और प्रातः काल का सर्वं कर्म करके भगवान् माधव का पुनः पूजन करना चाहिए ॥३३॥ इसके उपरान्त मन्त्र पढ़ कर एक प्रस्थ तिल तथा दक्षिणा एव वस्त्र रख कर ब्राह्मण को दान देना चाहिये । ऐसा करने से ममस्त पापों का विनाश होजाया करता है ॥३४॥ इसका मन्त्र यह है—‘माधव सर्वभूतात्मा सर्वं कर्म फलप्रद । तिल दानेन महता सर्वान् कामान् प्रयच्छतु—अर्थात् समस्त प्राणियों की आत्मा, सब कर्मों का फल प्रदान करने वाले भगवान् माधव इन तिलों के दान से समस्त मनोरथों को पूर्ण करें ॥३५

मन्त्रेणानेन विप्राय दत्त्वा भक्तिसमन्वित ।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या सस्मरन्माधव प्रभुम् ॥३६

एव यः कुरुते भक्त्या तिलदाने व्रत मुने ।

वाजपेयशतस्यासौ सार्पूर्ण फलमाप्नुयात् ॥३७

फाल्गुनस्य सिते पक्षे द्वादश्या तमुपोषितः ।

गोविन्दाय नमस्तुभ्यमिति सापूजयेद् व्रती ॥३८

अष्टोत्तरशतं कृत्वा घृतमिधृतिलाहुती ।

पूर्वमानेन पयसा गोविन्द स्नापयेच्छुचिः ॥३९

रात्रौ जागरणं कुर्यात्त्रिकालं पूजयेत्तथा ।

प्रातः कृत्यं समाप्याथ गोविन्दं पूजयेत्पुनः ॥४०

ग्रीष्माढ्यं च विप्राय दद्याद्द्वस्त्रं सदक्षिणम् ।

नमो गोविन्द सर्वेश गोपिकाजनवल्लभ ॥४१

अनेन धान्यदानेन प्रीतो भव जगद्गुरो ।

एव कृत्वा व्रतं सम्यक् सर्वपापविवर्जितः ॥४२

गोमेघमखज पुण्यं सम्पूर्णं लभते नरः ।

चैत्रमासेमिते पक्षे द्वादश्या तमुपोषितः ॥४३

इमं मन्त्र से ब्राह्मण को भक्तिभाव के साथ दान देकर भगवान्

माधव का हृदय में स्मरण करता हुआ अन्य ब्राह्मण को अपनी शक्ति के अनुसार भोजन कराना चाहिये ॥३६॥ हे मुनिवर ! इस विधि से भक्ति की भावना से दिलों को दान में प्रदान किया करता है उसको एक ही वाजपेय यज्ञों के करने का फल मित्त करता है ॥३७॥ व्रत करने वाले पुरुष को फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन पूर्व की ही भाँति व्रत रखकर 'गोविन्दाय नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्र का उच्चारण करके भगवान का पूजन करना चाहिये तथा घृत मिश्रित तिलों से एकसी आठ आहुतियाँ देकर एक प्रम्य दुग्ध से पवित्रता के साथ श्री गोविन्द को स्नान करावे ॥३८॥३९॥ व्रत के दिन में रात्रि में जागरण करे, तीनों कालों में भगवान का पूजन करे और प्रातः-कालीन सम्पूर्ण कृत्य समाप्त करके फिर श्री गोविन्द भगवान का यजन करना चाहिये ॥४०॥ 'नमो गोविन्द सर्वेण गोपिका जन वल्लभ । अनेन धान्य दानेन प्रीतो भव जगद्गुरो ।' अर्थात् हे गोपीजनो के परम प्रिय गोविन्द ! आप सबके ईश है । आपकी सेवा में भेरा प्रणाम समर्पित है । इस धान्य के दान से आप पूज्य पर प्रसन्न होइये । इस रीति से प्रार्थना करने पर चार सेर ( एक जाटक ) धान, वस्त्र और दक्षिणा ब्राह्मणों को दान देवे । इस विधि से व्रत कराने पर मनुष्य सब पापों में मुक्त होकर गोमेध यज्ञ के पूरे फल को प्राप्त किया करता है ॥४१ — ४३॥

नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यमिति पूर्ववदचंयेत् ।  
क्षीरेण स्नापयेद्विष्णु पूर्वमानेन शक्तित् ॥४४॥  
तथैव स्नापयेद्विप्रवृत्तप्रम्येन सादरम् ।  
कृत्वा जागरण रात्रौ पूजयेत्पूर्ववद्वती ॥४५॥  
ततः कुर्ये ममुत्थाय प्रातः कृत्य समाप्य च ।  
अष्टोत्तरशतं हुत्वा मध्वाज्यतिलमिश्रितम् ॥४६॥  
सदक्षिणं च विप्राय दद्याद्वै तण्डुनाढकम् ।

प्राणरूपी महाविष्णु प्राणद सर्ववल्लभ ॥४७

तण्डुलाढकदानेन प्रीयता मे जनार्दन ।

एव कृत्वा नरो भक्त्या सर्वपापविवर्जितः ॥४८

अत्यग्निष्टोमयज्ञस्य फलमष्टगुण लभेत् ।

वैशाखशुक्लद्वादश्यामुपोष्य मधुसूदनम् ॥४९

द्रोणक्षीरेण देवेश स्नापयेद्भक्ति सायुत ।

जागर तत्र कर्त्तव्य त्रिकालार्चनसायुतम् ॥५०

इसी रीति से चैन शुक्ल द्वादशी के दिन व्रत करना चाहिये । इस दिन पे 'नमोऽस्तुऽविष्णवे'—इस मन्त्र से पूर्व के समान ही भगवान का पूजाचर्चन करे तथा एक मेर दुग्ध से भगवान विष्णु का स्नान करावे ॥४४॥ इसके अनन्तर एक सेर घृत से स्नान कराना चाहिये । प्रती पुरुष को पूर्ण की भांति ही रात्रि जागरण करके पुन पूजन करना चाहिये ॥४५॥ प्रातः काल मे उठ कर सम्पूर्ण कृत्यों से निवृत्त होकर मधु, घृत और विला से निमित्त शाकट्य से एकसी आठ अग्नि मे आहुतिया देनी चाहियें ॥४६॥ प्राण रूपी महा विष्णु प्राणद सर्व वल्लभ । तण्डुलाढक दानेन प्रीयता मे जनार्दन ' अर्थात् जो भगवान् विष्णु प्राणो के स्वरूप वाले है, प्राणो का बल का प्रदान करने वाले है और सभी के परम प्रिय हैं वे भगवान् जनार्दन मेरे इस चार सेर चावलो के दान से प्रसन्न होंगे, भक्तिभाव से समन्वित होकर ऐसी विधि करन पर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर परम विशुद्ध होजाया करता है ॥४७॥४८॥ वह मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञके अष्टगुण पुण्य-फल को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है । इसी भांति वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन भी व्रत रख और परम भक्ति की भावना मे मधुसूदन भगवान की प्रतिमा का एक द्रोण (३२ मेर) दूध मे अग्निवेश करा दे तथा तीनो समय मे सविधि पूजन कर और रात्रि मे जागरण भी पूर्ववत् करना चाहिये ॥४९॥५०



नमस्ते मधुहन्त्रे च जुहुयाच्छक्तितो घृतम् ।  
 अष्टोत्तरशत प्राच्यविधिवन्मधुसूदनम् ॥५१  
 विपापो ह्यश्वमेधानामष्टाना फलमाप्नुयात् ।  
 ज्येष्ठमासे सिते पक्षे द्वादश्यापुपवासकृत् ॥५२  
 क्षीरेणाढकमानेन स्नापयेद्यस्त्रिविक्रमम् ।  
 नमस्त्रिविक्रमायेति पूजयेद्भक्तिसायुत ॥५३  
 जुहुयात्पायसेनेव ह्यष्टोत्तरशताहुती ।  
 कृत्वा जागरण रात्रौ पुन पूजा प्रकल्पयेत् ॥५४  
 अपूपविंशति दत्त्वा ब्राह्मणाय सवक्षिणम् ।  
 देवदेव जगन्नाथ प्रसीद परमेश्वर ॥५५  
 उपायन च सगृह्य ममाभीष्टप्रदो भव ।  
 ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या स्वय भुञ्जीत वाग्यत ॥५६

नमस्ते मधुहन्त्रे इस मन्त्र का उच्चारण करके धी की अष्टोत्तर शत आहुतियाँ अग्नि में अर्पित करे । इस तरह अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रों में वर्णित विधि विधान से भगवान का अर्चन करने से सब पापों से छुटकारा प्राप्त कर व्रती मनुष्य आठ अश्वमेध यज्ञों के समाचरण का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है ॥ ५१।५२ ॥ इसी प्रकार से ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन में उपवास करने वाला पुरुष चार मेर दूध से त्रिविक्रम प्रभु का स्नान करावे और 'नमस्त्रिविक्रमाय' - इस मन्त्र के द्वारा भक्ति भाव पूर्वक भगवान त्रिविक्रम का पूजन करे ॥५३॥ मोदुग्ध में पायस बना कर उसकी एकमो आठ आहुतियाँ देवे । रात्रि जागरण और पूजन करना चाहिये ॥५४॥ इसने अनन्तर बीस गुणगुले और दक्षिणा 'देव देव जगन्नाथ प्रसीद परमेश्वर । उपायन च सगृह्य ममाभीष्ट प्रदोभव' अर्थात् हे देवों के भी देव इस जगत् के स्वामी ! आप मुझ पर प्रसन्न होइए । हे परमात्मन् ! आप मेरी इस तुच्छ भेट को स्वीकार करके

मेरी मनोवाछिन वस्तु का दान मुझको कृपा कर प्रदान कीजिये ।  
इसका उच्चारण करे और ब्राह्मण को दान देवे । फिर अपनी शक्ति  
के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भी मौन रहकर भोजन  
करे ॥५५॥५६॥

एव यः कुस्ते विप्र व्रत त्रैविक्रम परम् ।  
सोऽष्टाना नरमेघाना विपाप फलमाप्नुयात् ॥५७॥  
आपाढशुक्लद्वादश्यामुपवासी जितेन्द्रियः ।  
वामन पूर्वमानेन स्नापयेत्पयसा व्रती ॥५८॥  
नमस्ते वामनायेति दूर्वाज्याप्तोत्तर शतम् ।  
हुत्वा च जागर कुर्याद्वामन चार्चयेत्पुनः ॥५९॥  
सदक्षिण च दक्ष्यन्न नालिकेरफलान्वितम् ।  
भक्त्या प्रदद्याद्विप्राय वामनार्चनशीलिने ॥६०॥  
वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यस्थ वामनः सदा ।  
वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमो नमः ॥६१॥  
अनेन दत्त्वा दक्ष्यन्न शक्तितो भोजयेद् द्विजान् ।  
कृत्वैवमग्निष्टोमाना शतस्य फलमाप्नुयात् ॥६२॥  
श्रावणस्य सिते पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत् ।  
क्षीरेण मधुमिश्रेण स्नापयेच्छीघर व्रती ॥६३॥

हे विप्र । जो कोई भी मनुष्य इस विधि-विधान में इस परम  
श्रेष्ठ त्रिविक्रम व्रत को किया करता है उस मानव के समस्त पाप  
नष्ट हो जाया करते हैं और वह फिर आठ नरमेघ यज्ञों के द्वारा  
होने वाले पुण्यों को प्राप्त कर लिया करता है ॥५७॥ इसी रीति से  
आपाढ मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी का भी व्रतोपवास का विधान  
है । जो इस दिन उपवास किया करता है उसको जितेन्द्रिय रहकर  
प्रथमोक्त तीन के समान ही दुग्ध में वामन देव प्रभु का अभिषेचन  
करावे ॥५८॥ फिर दध और घी की—‘नमस्ते वामनाय’ इम मन्त्र में

अष्टोत्तर शत आहुतियाँ अग्नि में देनी चाहिये । रात्रि में जागरण तथा वामनदेव का यजन करे और इसके पश्चात् उस उपवास एवं पूजन करने वाले मनुष्य को चाहिये कि वह किसी सुयोग्य ब्राह्मण को 'वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यम्यो वामनो सदा वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमोनमः' इसका अर्थ यह है कि वामन भगवान् बुद्धिदाता हैं और इन सब द्रव्यों में वामन देव विराजमान हैं । वामन देव के द्वारा बुद्धि देने से ही मैं इस समय में हवन कर रहा हूँ । इस जगत में वामन देव ही उद्धार करने वाले हैं । ऐसे वामन देव भगवान् की सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है । इस मन्त्र से दधि, अन्न और नारियल तथा दक्षिणा का दान करे ॥६०॥६१॥ इसी मन्त्र के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार ही ब्राह्मणों को दधि और अन्न से भोजन कराना चाहिये । ऐसी रीति इस व्रत दान और पूजन से एक ही अग्निष्टोम यज्ञ के यजन करने का फल प्राप्त हुवा करता है ॥६२॥ इस प्रकार से श्रावण शुक्ला द्वादशी के दिन का भी उपवास होता है । इस दिन व्रती व्यक्तियों को चाहिये कि दूध और मधु से भगवान् श्रीधर प्रभु को स्नान करावे ॥६३॥

नमोज्जु श्रीधायेनि गन्धार्घ्यं पूजयेत्क्रमात् ।  
जुहुयात्पृषदाज्येन शतमष्टोत्तर मुने ॥६४॥  
कृत्वा च जागर रात्रौ पुन पूजा प्रकल्पयेत् ।  
दातव्यं चैव विप्राय क्षीराढकमनुत्तमम् ॥६५॥  
दक्षिणा च सवस्त्रा वै प्रदद्याद्देमकुण्डले ।  
मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वकामार्थसिद्धये ॥६६॥  
क्षीराब्धिशाधिन्देवेश रमावान्त जगत्पते ।  
क्षीरदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रद ॥६७॥  
सुखप्रदत्वाद्विप्राश्च भोजयेच्छक्तिव्रती ।  
एव कृत्वाश्वमेधाना सहस्रम्य फल लभेत् ॥६८॥

भासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्या समुपोषितः ।  
 स्नापयेद् द्रोणपयसा हृषीकेश जगद्गुरुम् ॥६६॥  
 हृषीकेश नमस्तुभ्यमिति सपूज्येन्नर ।  
 चरुणा मधुयुक्तेन शतमष्टोत्तर हुनेत् ॥७०॥

‘तमोऽस्तु श्रीधराय’—इस मन्त्र का मुख से उच्चारण करते हुये गन्धाक्षत पुष्पादि पूजन के औपचारिक द्रव्यों से भगवान् का पूजन करना चाहिये । फिर हे मुनिवर ! फिर पृषदाज्य दधि घृत मिश्रित हव्य में एकसौ आठ आहुतियाँ अग्नि में देवे ॥६४॥ रात्रि में यथा विधि जागरण करके पुनः भगवान् का अर्चन करे और इस मन्त्र को पढ़ता हुआ हे विप्र ! फिर चार सेर उत्तम दुग्ध, वस्त्र, सुवर्ण के कुण्डल तथा दक्षिणा बिंसी मुयाग्य सत्पात्र ब्राह्मण को दान में देना चाहिए । इससे मनुष्यों की सम्पूर्ण मनोकामनायें सिद्ध हो जाया करती हैं ॥६५॥६६॥ ‘क्षीराब्धिं शायिन् देवेश रमाकान्त जगत्पते । क्षीर दानेन सप्रीतो भव सर्वसखप्रद’ । अर्थात् हे क्षीर सागर में सुख शयन करने वाले, भगवती लक्ष्मी के पति तथा देवों के ईश जगत्पते ! आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस क्षीर के दान से परम प्रसन्न होकर मुझे सभी प्रकार के सुखों को प्रदान कीजिए । इसका उपरान्त व्रती को ब्रह्मभोज कराना चाहिये क्योंकि विप्रों को भोजन कराना परम सुखों का देने वाला हुआ करता है । ऐसी विधि से इस व्रत को साङ्ग सम्पादित करने पर एक सहस्र अवशमेघों का फल मिला करता है ॥ ६७॥६८ ॥ इसी भाँति भाद्रपद भास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी के व्रत का भी विधान है । इस दिन उपवास करके ३२ सेर दूध से भगवान् जगत् के गुरु हृषीकेश का स्नान कराना चाहिए ॥६९॥ ‘हृषीकेश नमस्तुभ्यम्’ इस मन्त्र का पढ़कर भगवान् का अर्चन करे तथा मधु मिश्रित चर की अष्टोत्तर गत आहुतियाँ दानो चाहिये ॥७०॥

जागरादीनि निर्वर्त्य दद्यादात्मविदे ततः ।

सार्धादिकं च गोधूमान्दक्षिणां हेम शक्तितः ॥७१  
 हृषीकेश नमस्तुभ्य सर्वलोकैकहेतवे ।  
 मह्यं सर्वसुख देहि गोधूमस्य प्रदानतः ॥७२  
 भोजयेद्ब्राह्मणाशक्त्या स्वयं चाशनीत वाग्यतः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्ममेघफल लभेत् ॥७३  
 आश्विने मासि शुक्लाया द्वादश्या समुपोषितः ।  
 पद्मनाभ च पयसा स्यापयेद्भक्तितः शुचिः ॥७४  
 नमस्ते पद्मनाभाय होम कुर्यात्स्वशक्ति ।  
 तिलव्रीहिवाज्यैश्च पूजयेच्च विधानतः ॥७५  
 जागर निशि निर्वर्त्य पुन पूजा समाचरेत् ।  
 दद्याद्विप्राय कुडव मधुनस्तु सदक्षिणम् ॥७६  
 पद्मनाभ नमस्तुभ्य सर्वलोकपितामह ।  
 मधुदानेन सुप्रीतो भव सर्व सुखप्रदः ॥७७

इसके अनन्तर पूर्ववत् जागरण कर पुन पूजन करे । इस समस्त  
 कृत्य के अवसान में किसी आत्मवेत्ता ब्राह्मण को ६ सेर गेहूँ तथा  
 शक्ति के अनुरूप द्रव्य दक्षिणा अर्पित करे । दान करने के समय में—  
 'हृषीकेश नमस्तुभ्य सर्वलोकैक हेतवे । मह्यं सर्व सुख देहि गोधूमस्य  
 प्रदानतः ॥ अर्थात् हे हृषीकेश । आपकी सेवा में सादर प्रणाम है ।  
 आप ही समस्त लोको के एक मात्र कारण हैं । अब इन गेहूँओं के दान  
 में मुझे सभी प्रकार के सुखों को प्रदान कीजिए ॥७१॥७२॥ इसके  
 उपरान्त अथाशक्ति ब्रह्मभोज करावे और स्वयं भी मोन रहकर भोजन  
 करे । ऐसा विधान करने से मनुष्य समस्त कृत महा पापों से मुक्त  
 होकर ब्रह्ममेघ यज्ञ के पुण्य फल को प्राप्त किया करता है ॥ ७३ ॥  
 इसी रीति से आश्विन मास की शुक्ला द्वादशी के दिन उपवास रख  
 कर परम पवित्र होता हुआ भक्ति के सहित दूध के द्वारा यमनाभ  
 भगवान का स्नान कराना चाहिए ॥७४॥ "नमस्ते पद्मनाभाय"—इस

मन्त्र का उच्चारण करके तिल, धान जो और धृत की अपनी शक्ति के अनुसार अग्नि में आहुतिया देवे और शास्त्र वर्णित विधि से ही पूजन करना चाहिए ॥ ७५ ॥ रात्रि में भी सविधि जागरण करके पुन रात्रि में भी पूजन करना चाहिए तथा एक कुडव ( एक पाव ) शहद और द्रव्य दक्षिणा किसी सत्पात्र विप्र को—पद्मनाभ नमस्तस्यै सब लोक पितामह ! मधु दानेन सुप्रीतो भव मव सुखप्रद' अर्थात् हे समस्त लोको की रचना करने वाले पितामह ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । आप इस मधु के दान से परम सन्तुष्ट होकर मुझे सब सुखों को दीजिए । इसका उच्चारण कर दान देना चाहिये ॥ ७७

एव य कुरुते भक्त्या पद्मानभद्रत सुधी ।  
 ब्रह्मादेधसहस्रस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥७८॥  
 द्वादश्या कार्तिके शुक्ले उपवासो जितेन्द्रिय ।  
 क्षीरेणावढकमानेन दध्ना वाज्येन तावता ॥७९॥  
 नमो दामोदरायेति स्नापयेद्भक्तिभावन ।  
 अष्टोत्तरशत हुत्वा मध्वाज्याक्ततिलाहुता ॥८०॥  
 जागर नियत कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्पर ।  
 प्रातः सपूजयद् व पद्मपुष्पमनारम ॥८१॥  
 पुनरष्टोत्तरशत जुहुयात्सधृतैस्तिलै ।  
 पञ्चभक्ष्ययुत चान्न दद्याद्विप्राय भक्तित ॥८२॥  
 दामादर जगन्नाथ सवकारणवारण ।  
 ग्राहि मा कृपया देव शरणागतपालक ॥८३॥  
 अनेन दत्त्वा दान च श्रोत्रियाय मुटुम्बिन ।  
 दक्षिणा च यथा शक्त्या ब्राह्मणारचापि भाजयेत् ॥८४॥

जो वृद्धिमान पुरुष इस रीति से भक्ति भाव पूर्वक इस पद्म नाम भगवान् के साथ किया करता है उसका एक महान् अर्थ-

मेघ यज्ञों के यजन करने का पुण्य-फल मिला करता है ॥७८॥ इसी रीति से कार्तिक मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी का फल हाता है । इस दिन अपनी सब इन्द्रियों को पूर्ण नियन्त्रण में रख कर उपवास करना चाहिये । व्रत में चार सेर दूध, दही अथवा घृत से 'नमो दामोदराय' इस मन्त्र के द्वारा भक्ति भाव से समन्वित होकर भगवान का स्नान कराना चाहिये तथा पुनः घृत, मधु मिश्रित तिलों के सकल्य से अष्टोत्तर शत आहुतियाँ अग्नि में डाल कर होम करे । प्रातः मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों कालों में भगवान का अर्चन करे । रात्रि में जागरण करे । प्रातः काल में कमल के परम सुन्दर पुष्पों से भगवान का पूजन करना चाहिए और फिर घृत मिश्रित तिलों की एक सौ आठ आहुतियाँ देवे । "दामोदर जगन्नाथ सर्व कारण । आहिमा कृपया देव शरणागत पालक अर्थात् हे दामोदर । हे जगत् के नाथ । आप सब कारणों के कारण हैं । हे देव । कृपा करके मेरी रक्षा कीजिए । आप भक्तोंका पालन करने वाले हैं । इस मन्त्र से ब्राह्मणों को भक्ति भाव के साथ पाँच प्रकार के व्यजनों का दान करे ॥७९—८३॥ इस मन्त्र के द्वारा किसी कुटुम्ब वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण को दान एवं द्रव्य दक्षिणा देकर यथा शक्ति ग्रहभोज करावे ॥८४

एव कृत्वा व्रत सम्यगशनीयाद्वन्धुभिः सह ।  
 अश्वमेघसहस्राणां द्विगुण फलमश्नुते ॥८५  
 एव कुर्याद्विती यस्तु द्वादशीव्रतमुत्तमम् ।  
 सवत्सर मुनिश्चेष्ट स याति परम पदम् ॥८६  
 एकमासे द्विमासे वा य कुर्याद्भक्तितत्परः ।  
 तत्तत्फलमवाप्नोति प्राप्नोति च हरेः पदम् ॥८७  
 पूर्णं सवत्सर कृत्वा कुर्यादुद्यापनं व्रती ।  
 मार्गशीर्षसिते पक्षे द्वादश्या च मुनीश्वर ॥८८  
 स्नात्वा प्रातर्यथाचारं दन्तधावनपूर्वकम् ।

शुक्लमाल्याम्बरधर. शुक्लगन्धानुलेपन ॥८६  
 मण्डप कारयेद्दिव्य चतुरस्रं सुशोभनम् ।  
 घण्टाचामरसयुक्त किङ्किणीरवशोभितम् ॥८७  
 अलकृत पुष्पमाल्यैर्वितानध्वजराजितम् ।  
 छादित शुक्लवस्त्रेण दीपमालाविभूषितम् ॥८८

इस विधि से व्रत पूर्ण करके फिर अपने बान्धवों के साथ  
 बैठ कर स्वयं भी भोजन करना चाहिए । इस उपवास को करके  
 दो सहस्र अश्वमेध यज्ञों के यजन का पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है  
 है मुनिवर ! जो कोई भी मनुष्य इस विधान से पूरे वर्ष भर के उप-  
 वास किया करता है उस द्वादशी के व्रती को अन्त में परमपद की  
 प्राप्ति होती है ॥८६॥ जो कोई मनुष्य भक्ति भाव पूर्वक एक या  
 दो मास भी इस व्रत का अनुष्ठान करता है उसको उन मासों का  
 पुण्य फल प्राप्त होजाया करता है और अन्त में विष्णु लोक की प्राप्ति  
 हुआ करती है ॥८७॥ यदि पूरे वर्ष तक सभी मासों में यह व्रत पूर्ण  
 करे तो उस उपवास करने वाले पुरुष का इस व्रत का उद्यापन भी  
 अवश्य ही करना चाहिये । उद्यापन का विधान यह है कि मार्गशीर्ष  
 मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन प्रातः काल के  
 समय में दौड़कर स्नानादि नित्य कृत्य समाप्त करे इसके  
 पश्चात् श्वेत एव सुगन्धित पुष्पों की माला बनवा कर उसे धारण  
 करे और श्वेत चन्दन का लेपन करे । एक चोखोर परम दिव्य मण्डप  
 की रचना कर उसमें सब ओर घण्टे, चमर और घुँघरू लटकाने  
 चाहिए ॥८८—८९॥ इस सुन्दर मण्डप को भली भाँति पुष्पों की  
 मालायें लटका कर विभूषित करे । बीच में चँदोवा, उस पर ध्वजा  
 और चारों ओर शुक्ल वस्त्र की सुन्दर झालर लटकानी चाहिये  
 तथा दीपमालाओं से उसे दीप्ति युक्त करे ॥९०॥

तन्मध्ये सर्वतोभद्र कुर्यात्सम्यगलकृतम् ।



तस्यापरि न्यमेत्तुम्भान्द्वादगाम्प्रुप्रूरितान् ॥६२॥  
 एवेन शुक्लवस्त्रेण सम्यक्मणोर्धितेन च ।  
 सर्वानाच्छादयेत्तुम्भान्पञ्चरत्नममन्वितान् ॥६३॥  
 नक्ष्मीनारायण देव कारयेद्भक्तिमान्त्रती ।  
 द्वेष्ना या रजनेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज ॥६४॥  
 स्यापयेत्प्रतिमा ता च कुम्भापरि मुमयमी ।  
 तन्मूल्य वा द्विजयेष्ठ धाञ्चन च स्वशक्तित ॥६५॥  
 सर्वग्रतेषु मतिमान्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।  
 यदि धुर्यात्क्षय यान्ति तस्यायुद्धं न सापद ॥६६॥  
 अनन्तशायिन देव नारायणमनामयम् ।  
 पञ्चानृतेन प्रथम स्नापयेद्भक्तिसायुत ॥६७॥  
 नामभि वेशवाद्यैश्च ह्युपचारान्प्रकल्पयेत् ।  
 राशौ जागरण दुर्यात्पुराणश्रवणादिभि ॥६८॥

उम मण्डित मज्जुल मण्डप के मध्य म सुन्दर सर्वतोभद्र ।  
 मण्डप की रचना करवावे । उसके ऊपर जल स भरे हुए बारह घट  
 रखे ॥६२॥ भनी भानि स्वच्छ शुक्ल वस्त्र से पञ्चरत्न जिनमे पड़े  
 हुए हैं उन घटों को ढाँक देना चाहिए ॥६३॥ हे द्विजवर्य । भक्त व्रत  
 धारी पुरुष को चाहिए कि मुवर्ण, चाँदी अथवा ताम्र की श्री लक्ष्मी  
 नारायण भगवान् की प्रतिमा बनवावे ॥६४॥ उस समयमशील उपवास  
 धरने वाले पुरुष के द्वारा उस सुन्दर भगवान् की प्रतिमा की स्थापना  
 घट के ऊपर धरनी चाहिए । यदि किसी विशेष कारणवश भगवान्  
 की मूर्ति का निर्माण न कराया जा सके तो उतने ही मूल्य का अथवा  
 वित्तशास्त्र से रहित होकर अपनी शक्ति क अनुसार वहाँ पर मुवर्ण  
 रख देना चाहिए ॥६५॥ बुद्धिमान् पुरुष को अत्यन्त उदारता से  
 भक्ति पूर्वक इस कर्म का समाचरण करना चाहिए । इन भगवान्  
 के प्रीति के लिये किए हुए व्रतों में कजूमी व्रतो न करे । यदि वृषणता

से काम करता है तो भगवान् असन्तुष्ट हो जाया करते हैं ॥ ६६ ॥  
 सर्व प्रथम अनन्तशायी लक्ष्मीनारायण प्रभु का भक्ति के सहित पचा-  
 मृत से स्नान अर्थात् अभिषेक कराना चाहिए ॥ ६७ ॥ फिर केशव  
 आदि भगवान् के परम पावन एवं शुभ नामों से भगवान् की सेवा  
 करते हुए तथा पवित्र पुराणादि की कथा का श्रवण करते हुये राज्ञि  
 में जागरण करना चाहिये ॥ ६८ ॥

जितेन्द्रो भवेत्सम्यक्सोपवासो जितेन्द्रियः ।  
 त्रिकालमर्चयेद्देव यथाविभवविस्तरम् ॥ ६९ ॥  
 ततः प्रातः ससुत्याय प्रायः कृत्य समाप्य च ।  
 तिलहोमान्व्याहृतिभिः सहस्रं कारयेद्विजैः ॥ ७० ॥  
 ततः संपूजयेद्देव गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।  
 देवस्य पुरतः कुर्यात्पुराणश्रवणं ततः ॥ ७१ ॥  
 दद्याद् द्वादशविप्रेभ्यो दध्यन्नं पायसं तथा ।  
 अपूपैर्दशभिर्भुक्तं समृतं च सदक्षिणम् ॥ ७२ ॥  
 देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह ।  
 गृहाणोपायनं कृष्ण सर्वाभीष्टप्रदो भव ॥ ७३ ॥  
 अनेनोपायनं दत्त्वा प्रार्थयेत्प्राञ्जलिः स्थितः ।  
 आधाय जानुनी भूमौ विनयावनतो व्रती ॥ ७४ ॥  
 नमो नमस्ते सुरराजराज नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास ।  
 कुरुष्व संपूर्णफलं ममाद्य नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय ॥ ७५ ॥

निद्रा न कर उसको जीत लेवे । उपवास करते हुए अपनी  
 समस्त इन्द्रियों को विषयों की ओर न जाने देकर अपने वश में ही  
 रक्खे । अपने वैभव के अनुरूप ही तीनों समयों में भगवान् का अर्चन  
 करता चाहिए । इसके अनन्तर जागरण समाप्त कर प्रातः काल में सब  
 कृत्य करके ब्राह्मणों के द्वारा व्याहृतियों से अग्नि में एक सहस्र आहु-  
 तिया डलवानी चाहिए । वे व्याहृतियाँ ये हैं—“ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ

स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम् ॥६६-१००॥ इसके अन-  
न्तर मुग्धित पुष्प और गन्धाऽनादि के द्वारा भगवान का ध्वनन  
करे । इसके उपरान्त भगवान ने समीप में ही स्थित होकर पुराणों का  
श्रवण करे ॥१०१॥ इसके पश्चात् दश विप्रों को दधि, अन्न, क्षीर,  
दश-दश गुणगुने, घृत और द्रव्य दक्षिणा देकर "देवदेव जगन्नाथ भक्ता-  
मुग्रह निग्रह ! गृहाणो पायनं वृज्य सर्वाभोष्ट प्रदोषव ।" अर्थात् हे देवों  
के देव ! अपने भक्तजनों पर अनुकम्पा करने के ही लिये शरीर धारण  
करने वाले अर्थात् भवनार लेने वाले । जगत् के स्वामिन् हे वृज्य !  
मेरे द्वारा समर्पित इस भेंट को अङ्गीकार करके मुझे भरी सभी भक्तो-  
पाछिन वस्तुएं प्रदान कीजिए । इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए ॥१०२-  
१०३॥ इस विधि से उपयुक्त मन्त्र का पाठ करते हुए भेंट समर्पित  
करे और पीछे घृतधारी पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह अपने दोनों घुटने  
भूमि पर टेक कर हाथ जोड़ते हुए सविनय श्री भगवान् से प्रार्थना करे  
॥ १०४ ॥ प्रार्थना इस भाँति है— "नमोनमरते सुरराज राजनमोऽस्तुते  
देव जगन्निवास । कुरुष्व सम्पूर्णं फलं ममाय नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय"  
अर्थात् हे देवों के देव के भी राजा ! आपकी सेवा में मेरा बारम्बार  
प्रणाम निवेदित है । हे जगत् के निवास ! हे देव आपको मेरा अनेकशः  
प्रणाम है । आप अब मुझे सम्पूर्ण फल प्रदान कीजिये ॥ १०५ ॥

इति सप्रार्थयेद्विप्रान्देव च पुरुषोत्तमम् ।

दद्याद्धर्मं च देवाय महालक्ष्मीयुताय वै ॥१०६॥

लक्ष्मीपते नमस्तुभ्य क्षीराणं वनिवासिने ।

अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च त्रिहितः प्रभो ॥१०७॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।

न्यून संपूर्णता यति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥१०८॥

इति विज्ञाप्य देवेश तत्सर्वं सयमो व्रते ।

प्रतिमा दक्षिणायुक्ततामाचार्याय निवेदयेत् ॥१०९॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।

भुञ्जीत वाग्यतः पश्चात्स्वयं बधुजनैर्वृतः ॥१११०॥

आसायं शृणुयाद्विष्णोः कथां विद्वज्जनैः सह ।

इत्येव कुरुते यस्तु मनुजो द्वादशीव्रतम् ॥११११॥

सर्वान्कामान्स आप्नोति परत्रेह च नारद ।

त्रिसप्तकुलसमुक्तः सर्वपापविवर्जितः ।

प्रयाति विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति ॥१११२॥

य इदं शृणुयाद्विप्रः द्वादशीव्रतमुत्तमम् ।

वाचयेद्वापि स नरो वाजपेयफल लभेत् ॥१११३॥

इस रीति से श्री भगवान् से तथा तत्कालीन समुपस्थित ब्राह्मणों से प्रार्थना करनी चाहिए । फिर देवी महालक्ष्मी और भगवान् श्री नारायण की सेवा में—“लक्ष्मीपते नमस्तुभ्य क्षीरार्णवनिवासिने । अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च सहितः प्रभो ।” अर्थात् हे क्षीरसागर में निवास करने वाले हे प्रभो ! हे लक्ष्मीदेवी के स्वामिन् ! आपको मेरा प्रणाम है । हे प्रभो ! आप अपनी प्रियतमा लक्ष्मी माता के सहित मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्य को ग्रहण कीजिये । इस मन्त्र उच्चारण करता हुआ भगवान् को अर्घ्य अर्पित करना चाहिए ॥ १०६, १०७ ॥ इसके पश्चात् सयमशील व्रतधारी पुरुष को देवेश्वर की सेवा में प्रार्थना करनी चाहिए । “यस्य स्मृत्या च नामोत्तमा तपोयज्ञ क्रियादिषु । न्यून सम्पूर्णता याति सद्यो बन्धे तमच्युतम्” अर्थात् जिस भगवान् का स्मरण करने से अथवा उनके नाम लेने से समस्त तप-यज्ञ तथा सत्कर्मों की न्यूनता भी पूर्ण हो जाया करती है उन्हीं अच्युत भगवान् की सेवा में मैं अपना समादर सहित प्रणाम अर्पित करता हूँ । इसके अनन्तर वह सम्पूर्ण सामग्री और प्रतिमा तथा दक्षिणा आचार्य की सेवा में भेंट कर देनी चाहिये ॥ १०८, १०९ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्मभोज कराना चाहिए और अपनी शक्ति अनुरूप उन विप्रों को दक्षिणा देनी चाहिए । तथा

पीछे मौन व्रत में रहकर वा-धवों के साथ बैठकर स्वयं भी आहार का ग्रहण करना चाहिए ॥ ११० ॥ इसके उपरान्त सुयोग्य विद्वानों की परिपक्व में स्थित होकर सायंकाल पर्यन्त भगवान् विष्णु की कथाओं का श्रवण करना चाहिए । इस प्रकार से द्वादशी-व्रत का विधान है ॥ १११ ॥ जो भक्त इस व्रत को इसी विधान से साङ्गोपाङ्ग किया करता है । हे नारद । उसको इस लोक में सभी कामनायें पूर्ण हुआ करती हैं और परलोक में सब पापों से छूटकर अपनी इक्कीस पुरतों के पूर्व पुरतों के साथ विष्णुलोक का निवास प्राप्त किया करता है जहाँ पर उसको किसी भी शोक का मुकाबला नहीं करना पड़ता है ॥ ११२ ॥ हे विप्रवर । जो भक्त इस परमोत्तम द्वादशी व्रत के विधान का श्रवण किया करता है अथवा इसको पढ़ता है उस भक्त्युक्त को भी वाजपेय यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है ॥ ११३ ॥



## ॥ पूर्णिमा व्रत का उद्घापन ॥

अन्यद्व्रतवर वक्ष्ये शृणुष्व मुनिसत्तम ।  
 सर्वपापहर पुण्य सर्वदुःखनिवर्हणम् ॥१॥  
 ब्राह्मणक्षत्रियविशा शूद्राणां योपिता तथा ।  
 समस्तकामफलं सर्वव्रतफलप्रदम् ॥२॥  
 दुःस्वप्ननाशन धर्म्यं दुष्टग्रहनिवारणम् ।  
 सर्वलोकेषु विख्यातं पूर्णिमाव्रतमुत्तमम् ।  
 येन चोर्णेन पापानां राशिकोटिः प्रशाम्यति ॥३॥  
 मार्गशीर्षे सिते पक्षे पूर्णिया नियतं शुचि ।  
 स्नानं कुर्याद्यथाचारं दन्तधावनपूर्वकम् ॥४॥  
 शुल्काम्बरधरं शुद्धो गृहमागत्य वाग्यतः ।  
 प्रक्षाल्य पादावाचम्य स्मरन्नारायणं प्रभुम् ॥५॥

नित्य देवार्चनं कृत्वा पश्चात्संकल्पपूर्वकम् ।  
 लक्ष्मीनारायणं देवमर्चयेद्भक्तिभावतः ॥६॥  
 आवाहनासनाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिर्ब्रूती ।  
 नमो नारायणायैति पूजयेद्भक्तितत्परः ॥७॥

श्री सनक जी ने कहा—हे परम श्रेष्ठ मुने ! अब मैं आपके समक्ष में समस्त पापों एवं दुःखों को दूर भगाने वाले एक अन्य परम पवित्र व्रत का वर्णन करता हूँ । यह ऐसा व्रत है जो चारों ही वर्णों के पुरुषों की तथा स्त्रियों की भी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी कर दिया करता है और सभी व्रतों के करने का पूरा पुण्य-फल प्रदान किया करता है ॥ १ । २ ॥ यह कहे जाने वाला व्रत बुरे स्वप्नों के फल को नष्ट किया करता है तथा दुष्ट ग्रहों के फल को भी दूर भगा दिया करता है । यह परमोत्तम व्रत सभी लोकों में “पूर्णिमा व्रत” के नाम से प्रसिद्ध है । इस व्रत का अनुष्ठान करने से करोड़ों पापों का समुदाय नष्ट हो जाया करता है ॥ ३ ॥ मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के दिन इस व्रत की साधना करने वाले को परम पवित्रता और सयम-नियम के साथ दातुन कर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त श्वेत वस्त्र धारण करके घर में बैठकर मीन व्रत में समास्थित होकर अपने चरणों को धोकर भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए आचमन करना चाहिए ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् नैतिक देव-पूजन करके सङ्कल्प पढ़े और फिर परम भक्तिभाव के साथ श्री लक्ष्मीनारायण देवेश्वर की अर्चना करनी चाहिए ॥ ६ ॥ जो इस व्रत को करे उसे भक्ति भाव के साथ “नमोनारायण”—इसका उच्चारण करके भगवान् का गन्ध पुष्पादि से अर्चन करना चाहिए । प्रथम उनका आवाहन करे और फिर आसनादि को अर्पित करे ॥ ७ ॥

गीतैर्वार्द्यैश्च नृत्यैश्च पुराणपठनादिभिः ।

स्तोत्रैर्वाराधयेद्देवं व्रतकृत्सुसमाहितः ॥८॥

देवस्य पुरतः कृत्वा स्थण्डिलं चतुरस्रकम् ।  
 अरत्निमात्रं तत्राग्निं स्थापयेद् गृह्यमार्गतः ।  
 आज्यभागान्तर्पयन्तः कृत्वा पुरुषसूक्ततः ।  
 चरुणा च तिलैश्चापि घृतेन जुहुयात्तथा ॥६॥  
 एकवारं द्विवारं वा त्रिवारं वापि शक्तितः ।  
 होमं कुर्यात्प्रयत्नेन सर्वपापनिवृत्तये ॥१०॥  
 प्रायश्चित्तादिकं सर्वं स्वर्गहोक्तविधानतः ।  
 समाप्य होमं विधिवच्छान्तिं सूक्तं जपेद्गुध ॥११॥  
 पश्चाद्देवं समागत्य पुनः पूजां प्रकल्पयेत् ।  
 तथोपवासं देवाय ह्यर्पयेद्भक्तिसंयुतः ॥१२॥  
 पूर्णमास्यां निराहारं स्थित्वा देवं तत्राज्ञया ।  
 भोक्ष्यामि पुण्डरीवाक्षं परेऽहिं शरणं भव ॥१३॥  
 इति विज्ञाप्य देवाय ह्यर्घ्यं दद्यात्तथेन्द्रवे ।  
 जानुभ्यामवनीं गत्वा शूलपुष्पाक्षतान्वितः ॥१४॥  
 क्षीरोदार्णवसंभूतं अग्निगोत्रसमुद्भवम् ।  
 गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिणीनायक प्रभो ॥१५॥

( जो भी इस व्रत को करे उसे बहुत ही सावधानी के सहित  
 गायन—वादन—नृत्य—पुष्पाञ्जलि—पठन और स्तोत्र पाठादि के द्वारा  
 भगवान् की समाराधना करनी चाहिए ॥ ८ ॥ ) भगवान् के समक्ष में  
 एक चौकार वेदी की रचना करावे उस वेदी में गृह्य सूत्र के कथना-  
 नुसार पाँच भूसंस्कार करे । उममें फिर अरत्नि प्रमाण ( कनिष्ठ अंगुलि  
 से रहित मुट्ठी के बराबर ) अग्नि की स्थापना करनी चाहिए । फिर  
 पुरुष सूक्त से आज्य भाग तक कर घृतमिश्रित तिस्रो की आहुतियाँ  
 अग्नि में डाल कर होम करना चाहिए ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण पापों को दूर  
 भगवान् के तथै अपनी शक्ति के अनुरूप एक—दो अथवा तीन बार होम  
 करने का प्रयत्न करना चाहिए ॥ १० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए

कि अपने गृह्य सूत्र के अनुसार प्रायश्चित्त प्रभृति करके होम समाप्त करे और अन्त में शान्ति सूक्त का पाठ भी करना चाहिए ॥ ११ ॥ पुनः श्री भगवान् के निकट उपस्थित होकर फिर उनका यजन करे तथा भक्ति सहित भगवान् को उपहारों का समर्पण करे ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर भगवान् से निम्न मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करनी चाहिए—“पौर्णमास्या निराहार स्थिता देव नवाज्ञया । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽहिनि शरणभव —अर्थ इसका यह है कि—हे पुण्डरीक के तुल्य नेत्रों वाले देव । मैं पूर्णिमा तिथि में आहार न करते हुए उपोषित होकर आपको आज्ञा में कल भोजन करूँगा । आप मेरे रक्षक हो जाइए । इसके उपरान्त शुक्ल एवं सुगन्धित पुष्प और चावल हाथ में लेकर भूमि पर अपने घुटनों को टेकते हुए चन्द्रमा को अर्घ्य समर्पित करके यह प्रार्थना करे—“क्षीरोक्षर्णव सम्भूत अत्रिगोन समुद्भव । गृहाणाढ्यं भया दत्त रोहिणी नायक प्रभो ।” अर्थात् हे क्षीर सागर के नाथ प्रभो । आप मेरे द्वारा अर्पित किये गये इस अर्घ्य को अङ्गीकार करिए । ॥ १४-१५ ॥

एवमर्घ्यं प्रदायेन्दो प्राथयेत्प्राञ्जलस्ततः ।  
 तिष्ठ-पूर्वमुखो भूत्वा पश्यन्निन्दु च नारद ॥ १६ ॥  
 नमः शुक्लाशवे तुभ्य द्विजराजाय ते नमः ।  
 रोहिणीपतये तुभ्य लक्ष्मीधराय नमोऽस्तु ते ॥ १७ ॥  
 ततश्च जागर कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः ।  
 जितेन्द्रियश्च सशुद्ध पापण्डालोऽवर्जितः ॥ १८ ॥  
 ततः प्रातः प्रकुर्वीत स्वाचारं च यथाविधि ।  
 पुनः स पूजयेद्देवं यथाविभवविस्तरम् ॥ १९ ॥  
 ब्राह्मणम्भोजयेच्छक्त्या ततश्च प्रयतो नरः ।  
 दधुभृत्यादिभिः साधु स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥ २० ॥  
 एव पौषादिमानेषु पूर्णमास्यामुपोषितः ।



### अर्चयेद्भक्तिसयुक्तो नारायणमनामयम् ॥२१॥

हे नारद । इस विधि से चन्द्रदेव को वर्ष देकर अपना मुख पूर्व दिशा में करके हाथ जोड़कर पुनः प्रार्थना करनी चाहिए ॥ १६ ॥ "नमः शुक्लाश्वे तुभ्य द्विजराजायते नमः । रोहिणी पतये तुभ्य लक्ष्मी प्राप्ते नमोऽस्तुते ।" अर्थात्—परम शुद्ध किरणों वाले द्विजराज आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । हे रोहिणी के स्वामिन् । हे लक्ष्मी देवी के भाई । मेरा आपको सादर प्रणाम है ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर सब पाखण्डियों से दूर रहते हुए परम शुद्धता और जितेन्द्रियतापूर्वक पुराणों का श्रवण करते हुए रात्रि में जाग्रण करना चाहिए ॥ १८ ॥ प्रातः काल में शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अपने नैत्यिक आचार को करके अपने ऐश्वर्य के ही अनुरूप भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् यथाशक्ति ब्रह्मभोज करा कर स्वयं सवाश्व भोजन करे ॥ २० ॥ इसी विधि से पौष आदि मासों की पूर्णिमा तिथियों में व्रत करके भक्तिभाव से अनामय भगवान् श्री नारायण का अर्चन करना चाहिए ॥ २१ ॥

एव सवत्सर कृत्वा कार्तिनया पूर्णिमादिने ।  
उद्यापनं प्रकुर्वीत तद्विधानं वदामि ते ॥२२॥  
मण्डपं कारयेद्दिव्यं चतुरस्रं सुमङ्गलम् ।  
शोभितं पुष्पमालाभिवितानध्वजराजितम् ॥२३॥  
बहुदीपसमाकीर्णं किङ्किणीजालशोभितम् ।  
दर्पणैश्चामरैश्चैव कलशैश्च समावृतम् ॥२४॥  
तन्मध्ये सर्वतोभद्रं पञ्चवर्णविराजितम् ।  
जलपूर्णं ततः कुम्भं न्यसेत्तस्योपरि द्विज ॥२५॥  
पिधाय कुम्भं वस्त्रेण सुमूढमेणातिशोभितम् ।  
हेम्ना वा रजतेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज ।  
लक्ष्मीनारायणं देवं कृत्वा तस्योपरि न्यसेत् ॥२६॥

पञ्चामृतेन सस्नाप्याभ्यर्च्यं गन्धाग्निभिः क्रमात् ।

भक्ष्यैर्भोज्यादिनैवेद्यैर्भक्तितः सयतेन्द्रियः ॥२७॥

जागर च तथा कुर्यात्सम्यक्छृद्धासमन्वितः ।

परेऽहिं प्रातर्विधिवत्पूर्वंवद्विष्णुमचंयेत् ॥२८॥

इसी विधि से पूरे वर्ष की पूर्णिमाओं का उपवास करे और फिर कार्तिक मास की पूर्णिमा में इस परम पावन व्रत का उद्यापन साल भर पूरे होने पर करना चाहिए । उस उद्यापन का विधान भी अब मैं आपको बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ चार कोणी वाला एक परम दिव्य और माङ्गलिक मण्डप की रचना करवावे उस मण्डप को भली भाँति विभूषित करे और उसमें सब ओर फूलों की सुन्दर मालाएँ—चेंदोवा और ह्वजा—पताकाएँ लटकानी चाहिए ॥ २३ ॥ मण्डप में बहुत—से दीपक जलावे और घुँघरू, दर्पण—चमर और कलश आदि पदार्थों से भली भाँति मण्डप को सुशोभित करना चाहिए ॥ २४ ॥ इसकी पूरी सजावट करके हे द्विजवर ! उस मण्डप के बीच में पाँच वर्णों का सर्वतोभद्र मण्डल की रचना करवावे । उसके ऊपर 'जल' से भरे हुए कलशों की स्थापना करे ॥ २५ ॥ उस बलश को बारीक श्वेत वस्त्र से समाच्छादित करे और फिर उसके ऊपर शक्ति के अनुसार सुवर्ण—रजत या ताम्र की श्री भगवान् लक्ष्मी नारायण की मूर्ति की स्थापना करे ॥ २६ ॥ उस देव मूर्ति का स्नान पञ्चामृत से कराकर गन्ध पुष्प—धूप—दीप—रजत या ताम्र की श्री भगवान् लक्ष्मीनारायण की मूर्ति का स्नान पञ्चामृत से कराकर गन्ध पुष्प—धूप—दीप—नैवेद्य आदि पूजन के समस्त उपचारों के द्वारा अर्चन भक्तिभाव के सहित करना चाहिए ॥ २७ ॥ फिर श्रद्धा के सहित रात्रि जागरण कर पुनः प्रातः काल में विधि के सहित देव—यजन करना चाहिए ॥ २८ ॥

आचार्याय प्रदातव्या प्रतिमा दक्षिणान्विता ।

हेमभारसहस्रं तु यो ददाति कुटुम्बिने ।  
 तत्फलं तुल्यमात्रं स्यादध्वजारोपणकर्मणः ॥३॥  
 ध्वजारोपणतुल्यं स्यादगङ्गास्नानमनुत्तमम् ।  
 अथवा तुल्यसारोवा शिवलिङ्गप्रपूजनम् ॥४॥  
 अहोऽपूर्वमहोऽपूर्वमहोऽपूर्वमिदं द्विज ।  
 सर्वपापहरं कर्म ध्वजारोपणसंज्ञितम् ॥५॥  
 सन्ति वै यानि कार्याणि ध्वजारोपणकर्मणि ।  
 तानि सर्वाणि वक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥६॥  
 कार्तिकस्य सिते पक्षे दशम्या प्रयतो नरः ।  
 स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनपूर्वकम् ॥७॥

श्री सनवानार्य ने कहा—अब मैं एक अन्य ध्वजारोपण नाम वाले व्रत के विषय में सुनाता हूँ । यह परमोत्तम व्रत भी भगवान् विष्णु की प्रसन्नता करने वाला है । तथा इस व्रत से समस्त सञ्चित पाप दूर भाग जाया करते हैं और परम पुण्य का लाभ इसके करने वाले को हुआ करता है ॥१॥ यह व्रत भगवान् श्री विष्णु के मन्दिर में उत्तम ध्वजा के समारोपण करने वाला है । जो भी कोई मनुष्य भगवान् विष्णु के मन्दिर में उत्तम ध्वजा लगाता है उसका इतना अधिक पुण्य प्रभाव होता है कि ब्रह्मादिक देव भी उस भक्त की पूजा किया करते हैं—इससे अधिक इस व्रत की महिमा को क्या वर्णन किया जा सकता है ॥२॥ एक कुटुम्बी पुरुष को एक सहस्र भार सुवर्ण का दान करने से जो पुण्य-फल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य का फल ध्वजा के समारोपण करने वाले भक्त को प्राप्त हुआ करता है ॥३॥ इस विष्णु मन्दिर में ध्वजारोपण व्रत की समानता रखने वाला पुण्य थोड़ा गङ्गा स्नान—तुलसी सेवन और शिव लिङ्ग के पूजन का हो सकता है ॥४॥ हे द्विजवर ! यह ध्वजारोपण नामक व्रत एक परम अद्भुत एवं अपूर्व होता है इसका अपरिमित महत्त्व होने से यह अपूर्व ही है । इस ध्वजा-

रापण व्रत के करने में जो लाभ हुआ करते हैं उन सबका वर्णन मैं आपके सामने करता हूँ । आप परम समाहित होकर सुनिए ॥५॥६॥  
इस व्रत के करने वाले मनुष्य को वार्षिक मास की शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि के दिन प्रातः काल में दांतुन आदि द्रव्यों से निवृत्त होकर स्नान करना चाहिए ॥७॥

एकाशी ब्रह्मचारी च स्वपेन्नारायण स्मरन् ।  
धौताम्बरधर शुद्धो विप्रो नारायणाग्रतः ॥८॥  
ततः प्रातः समुत्थाय स्नात्वाचम्य यथाविधि ।  
नित्यकर्माणि निर्वृत्य पश्चाद् विष्णुं समर्चयेत् ॥९॥  
चतुर्भिर्ग्राह्यै साढं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् ।  
नान्दीश्राद्धं प्रवृत्तिं ध्वजारोपणकर्मणि ॥१०॥  
ध्वजस्तम्भौ च गायत्र्या प्रोक्षयेद् वस्त्रसयुतौ ।  
सूर्यं च वैनतेयं च हिमाशु तत्परोर्जयेत् ॥११॥  
धातारं च विधातारं पूजयेद् ध्वजदण्डके ।  
हरिद्राक्षतगन्धाद्यैः शुक्लपुष्पैर्विशेषतः ॥१२॥  
ततो गोचर्ममात्रं तु स्थण्डिलं चोपलिप्य वै ।  
आध्यायान्निं स्वगृहोक्तया ह्याज्यभागादिकं क्रमात् ॥१३॥  
जुहुयात्पायसं चैव साज्यमष्टोत्तरं शतम् ।  
प्रथमं पीरुषं सूक्तं विष्णोर्नुक्मिरावतीम् ॥१४॥

उस दिन एक बार भोजन करे—ब्रह्मचर्य व्रत का पूणतया परिपालन करे—धुने हुए परम विशुद्ध वस्त्र धारण कर भगवान् श्री नारायण का ही मन में स्मरण एवं ध्यान करके उसी के सामने रात्रि में भूमि पर शयन करना चाहिए ॥८॥ प्रातः काल में उठकर यथा विधि नित्य कृत्यों से निवृत्त होकर स्नानाचमन करे तथा भगवान् विष्णु का सविधि अर्चन करना चाहिए ॥९॥ चार अन्य सुयोग्य विप्रों को अपने साथ लेकर सब प्रथम स्वस्ति वाचा करके ध्वजारोपण

कर्म में पहिले नान्दीमुख थाढ़ करना चाहिए ॥२०॥ फिर गायत्री महा मन्त्र के द्वारा एक वम्त्र से लिपटे हुए ध्वजा तथा स्तम्भ दोनों का सविधि प्रोक्षण करना चाहिए । इसके पश्चात् सूर्यदेव, गरुड और चन्द्रदेव का पूजन करे ॥११॥ उस ध्वजा के दण्ड में हल्दी, गन्ध, अक्षत और विशेष रूप से श्वेत, सुगन्धित पुष्पो के द्वारा घाता-विधाता का यजन करना चाहिए ॥१२॥ इसके पश्चात् गौ चर्म मात्र अर्थात् सौ गीयें और साँड जिनकी भूमि में बैठ सके उतनी भूमि पर गोमय को लीप कर वहा पर फिर अपने गृह्य सूत्र के अनुसार विधि पूर्वक अग्नि की स्थापना करनी चाहिए और उसमें क्रम से घृत और पायस का अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देकर होम करना चाहिये । पहिले पुरुष सूक्त का पाठ कर 'विष्णोतु'कम्' मन्त्र से और 'इरावतीम्' इस मन्त्र से आहुति देनी चाहिये ॥१३॥१४

ततश्च वैनतेयाय स्वाहेत्यष्टाहुतीस्तथा ।  
 सोमो धेनुमुदुत्य च जुहुयाच्च ततो द्विज ॥१५॥  
 सौरमन्त्राञ्जपेत्तत्र शान्तिमूक्तानि शक्तित् ।  
 रानो जागरण कुर्यादुपवण्ठ हरे शुचि ॥१६॥  
 तत प्रातः समुत्थाय नित्यकर्म समाप्य च ।  
 गन्धपुष्पादिभिर्देवमर्चयेत्पूवत्क्रमात् ॥१७॥  
 ततो मङ्गलवाद्यंश्च सूक्तपाठंश्च शोभनम् ।  
 नृत्यंश्च स्तोत्रपठनं नैयद्विष्ण्वालये ध्वजम् ॥१८॥  
 देवस्य द्वारदेशे वा शिखरे वा मुदान्वित ।  
 मुग्धिर स्थापयेद्विप्र ध्वज सुस्तम्भसयुतम् ॥१९॥  
 गन्धपुष्पाक्षतैर्देव धूपदीपैर्मनोहरैः ।  
 भक्ष्यभाज्यादिमधुवर्नैर्वैद्यंश्च हरि यजेत् ॥२०॥  
 एव देवालय स्थाप्य शोभन ध्वजनुत्तमम् ।  
 प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तागमेतद्दीरयेत् ॥२१॥

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।

नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥२२

इसके अनन्तर 'वेननेयाय स्वाहा' इसका समुच्चारण करके आठ आहुतियाँ देवे । दूसरे उपरान्त 'सोमो धेनुम्' और 'उदृत्यम्' इनसे आहुतियाँ देनी चाहिए । इसके अनन्तर यथा शक्ति ऐसे अन्य मन्त्रों का जिनका देवता मूल है तथा शान्ति सूक्त का जाप करे और उस दिन भी श्री हरि के सामने बैठ कर रात्रि जागरण करना चाहिये ॥१४-१६॥ इसके पश्चात् प्रातः काल उठ कर नित्य कर्म को पूर्ण करके पूर्ण कर्मानुसार ही गन्ध पुष्पादि के द्वारा देव पूजन करे ॥१७॥ यह सब पूजा करने के पश्चात् परम मांगलिक वाद्य, मून पाठ, स्तौत्र पाठ और नृत्य करता हुआ उस ध्वजा को श्री विष्णु के मन्दिर में ले जाना चाहिए ॥१८॥ वहाँ विष्णु मन्दिर के द्वार देश में अथवा शिखर भाग में परम प्रसन्नता के साथ उस दण्ड सहित ध्वजा का समारोपण करे ॥१९॥ वहाँ पर भी ध्वजा की स्थापना करने के पश्चात् पुनः गन्ध पुष्पादि के द्वारा भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए ॥२०॥ इस विधि से देव मन्दिर में उस उत्तम ध्वजा को स्थापित करके उसकी प्रदक्षिणा करे और उस समय में 'नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । इमं पक्षं से ( २२० मूल में लिखित श्लोक से ) आरम्भ करके ३८ वे मूलोक्त श्लोक पर्यन्त स्तौत्र का पाठ करे । अर्थात् हे पुण्डरीकाक्ष । हे सम्पूर्ण विश्व पर कृपा करने वाले । आपकी सेवा में प्रणाम है । हे महान् पुरुष पूर्वज । हे हृषीकेश । आपको मेरा प्रणाम है ॥२१॥२२

येनेदमखिल जात यत्त सर्व प्रतिष्ठितम् ।

लयमेप्यति यत्रैव त प्रपन्नोऽस्मि केशवम् ॥२३

न जानन्ति पर भाव यस्य ब्रह्मादयः सुरा ।

योगिनो य न पश्यन्ति त वन्दे ज्ञानरूपिणम् ॥२४

अन्तरिक्षं तु यन्तामिद्योर्मूर्द्धा यस्य चैव हि ।  
 पादोऽभूद्यस्य पृथिवी त वन्दे विश्वरूपिणम् ॥२५॥  
 यस्य ध्योत्रे दिशः सर्वा यच्चक्षुर्दिनकुच्छशो ।  
 ऋक्सामयजुषी वाग्वै त वन्दे ब्रह्मरूपिणम् ॥२६॥  
 यन्मुखाद् ब्राह्मण जाता यद्वाहीरभवन्नृपा ।  
 वैश्या यस्योरुनो जाता पद्भ्या शूद्रो व्याजयत ॥२७॥

यह सम्पूर्ण जगत् जिन आपसे प्रादुर्भूत हुआ है और जिस  
 आपके ही स्वरूप में यह समस्त जगत् प्रतिष्ठित है और अन्त में यह  
 सम्पूर्ण विश्व सब को प्राप्त हुआ करता है उन्हीं भगवान् केशव की  
 मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥२३॥ जिन भगवान् के परमोत्तम भाव  
 का ज्ञान ब्रह्मा आदि महान् देवता भी नहीं रख सकते हैं और योगी-  
 जन अपने योग मार्ग के द्वारा जिनका दर्शन नहीं कर पाते हैं उन्हीं  
 ज्ञान स्वरूप वाले भगवान् को मैं सादर प्रणाम समर्पित करता हूँ  
 ॥२४॥ यह व्यापक अन्तरिक्ष जिन भगवान् की नाभि है, दिव लोक  
 जिनका मस्तक है, पृथ्वी जिनके चरण हैं उन्हीं विश्वरूपी भगवान् की  
 सेवा में मैं प्रणाम निवेदित करता हूँ ॥२५॥ ये समस्त दिशायें जिन  
 प्रभु के श्रोत्र हैं—सूर्य और चन्द्र ये दोनों प्रभु के नेत्र हैं। वेद-  
 रूपी (ऋक्, यजु और सामवेद) जिन प्रभु की वाणी हैं ऐसे ब्रह्म-  
 स्वरूप वाले भगवान् की मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥ जिनके मुख  
 कमल त ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है, भुजाओं से क्षत्रिय वर्ण की  
 उत्पत्ति हुई है। जिनके ऊरुओं में वैश्य जाति का आविर्भाव हुआ है  
 और चरणा से शूद्रों का समुद्भव हुआ है ॥२७॥

मायासङ्गममाणेण वदन्ति पुरुष त्वजम् ।  
 स्वभावविमल शुद्ध निर्विकार निरञ्जनम् ॥२८॥  
 क्षीराब्धिधामिन देवमनन्तमपराजितम् ।  
 सद्भक्तवत्सल त्रिष्णु भक्तिगम्य नमाम्यहम् ॥२९॥

ही सबत्र प्राप्त होने वाले हैं वही भगवान् विष्णु पर मुक्त प्रसन्न होवे ॥३४॥

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्या पञ्चभिरेव च ।  
 हूयते च पुनर्द्वाभ्या स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३५॥  
 ज्ञानिना कर्मिणा चैव तथा भाक्तमता नृणाम् ।  
 गतिदाता विश्वमृष्य स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३६॥  
 जगद्धितार्थं ये देहा ध्रियन्ते लीलया हरे ।  
 तानचयन्ति विबुधा स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३७॥  
 यमामनन्ति वै सन्त सच्चिदानन्दविग्रहम् ।  
 निर्गुणं च गुणाधारं स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३८॥  
 इति स्तुत्वा नमोद्विष्णुं ब्राह्मणाश्च प्रपूजयेत् ।  
 आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्दक्षिणाच्छादनादिभिः ॥३९॥  
 ब्राह्मणाभ्याजयेच्छक्त्या भक्तिभावसमन्वितः ।  
 पुष्पमित्त्रकलप्राद्यं स्वयं च सह यन्बुधिः ॥४०॥  
 कुर्वीत पारणं विप्रं नारायणपरायणम् ।  
 मस्तुवेतकर्मकुर्वीत ध्वजारोपणमुत्तमम् ।  
 तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहितः ॥४१॥  
 पटो ध्वजस्य विप्रेन्द्र यावच्चलति वायुना ।  
 तावन्ति पापजालानि नश्यन्त्येव न सशयः ॥४२॥

जो चारों वर्णों से—चारों वाद्यम वालों के द्वारा—दिन तथा रात्रि में धीरे पाषा प्रकार के मनुष्यों से जिनकी पूजा की जाया करती है वही भगवान् विष्णुदत्त मुक्त पर प्रसन्न होवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ साधुगुण जिन भगवान् का सच्चिदानन्द—निर्गुण और सगुण भी वहाँ करते हैं वह भगवान् विष्णु मुक्त पर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ इस प्रकार से भगवान् का स्तवन कर विष्णु का तथा ब्राह्मणों का अर्चन करे और दक्षिणा द्रव्य तथा अस्त्रादि समर्पित कर आचार्य का सत्कार करना



चाहिए ॥ ३६ ॥ फिर भक्ति भाव के सहित अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणा को भोजन करावे । इसके अनन्तर पुनः मित्र-स्त्री और समस्त वन्धु-बान्धवों के साथ स्वयं भी भोजन करे ॥ ४० ॥ हे विप्रवर ! इस प्रकार मे भगवान् नारायण—परायण होकर पारंपा करनी चाहिए । जो पुरुष इस ध्वजारोपण कर्म को सुविधि किया करते हैं उनके पुण्य-फल का मैं अब वर्णन करता हूँ । आप सावधान होकर श्रवण करिए । ॥ ४१ ॥ हे विप्रेन्द्र ! इस समारोहित ध्वजा सज्जा शत्रु में जब तक चला करता है उतन ही पापों का समुदाय भस्म हो जाया करता है ॥ ४२ ॥

महापातकयुक्तो वा मुक्तो वा सर्वपातकं ।  
ध्वज विष्णुगृहे कृत्वा मुच्यते सर्वपातकं ॥४३॥  
यावदिदानीं तिष्ठेत ध्वजो विष्णुगृहे द्विज ।  
तावद्युगसहस्राणि हरिमान्प्यमश्नुते ॥४४॥  
आरोपित ध्वज दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति धार्मिकाः ।  
तेऽपि सर्वं प्रमुच्यन्ते महापातककोटिभिः ॥४५॥  
आरोपितो ध्वजो विष्णुगृहे धुन्वन्पट स्वकम् ।  
कुर्वन् सर्वाणि पापानि धुनोति निमिषादृतं ॥४६॥  
यस्वारोप्य गृहे विष्णोर्ध्वजं नित्यमुपाचरेत् ।  
स देवयानेन दिव यातीव मुमतिर्नृप ॥४७॥

जो कोई मनुष्य महापातका में अथवा अन्य सभी प्रकार के महान् पापों में दूषित हा गया हो वह भगवान् विष्णु के मन्दिर में ध्वजा चढ़ाकर समस्त पापों में विमुक्त होजाया करता है ॥४३॥ हे द्विजवर ! वह ध्वजा जितन दिना तक विष्णु के मन्दिर में रहा करता है उतन ही मह्य युगों तक वह श्री हरि की मूर्तिधि में निवास किया करता है । ॥ ४४ ॥ जो कोई भी धार्मिक पुरुष उस चट्टी हुई ध्वजा को दृष्टकर उगकी वन्दना किया करते हैं व भी किम हुए अपन करादा पाठनों से

छूटकर विशुद्ध हो जाया करते है ॥ ४५ ॥ भगवान् विष्णु के मन्दिर में चढ़ाई हुई ध्वजा अपने झण्डे को फहराती हुई उस ध्वजारोपण करने वाले व्यक्ति के सभी पापों को आधे निमेष में ही क्षम्य कर दिया करती है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष श्री विष्णु के मन्दिर में ध्वजा को चढ़ाकर सबदा उसकी वन्दना किया करता है । वह राजा सुभक्ति के समान ही देव यान में बैठ कर सीधा स्वर्ग लोक को चला जाया करता है ॥ ४७ ॥

## ॥ सुमति विभाण्डक संवाद ॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ।

सर्वकर्मवरिष्ठ च त्वयोक्त ध्वजधारणम् ॥१॥

यस्तु वै सुमतिर्नाम ध्वजारोपपरो मुने ।

त्वयोक्तस्तस्य चरित विस्तरेण ममादिश ॥२॥

शृणुष्वैकामना पुण्यमितिहास पुरातनम् ।

ब्रह्मणा कथितं मह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥३॥

आसीत्पुरा कृतयुगे सुमतिर्नाम भूपति ।

सोमवशोद्भवः श्रीमान्सप्तद्वीपैकनायक ॥४॥

धर्मात्मा सत्यसपन्नः शुचिवश्योऽतिथिप्रिय ।

सर्वलक्षणमपन्नः सर्वमपद्धिभूषितः ॥५॥

सदा हरिक्थासेवी हरिपूजापरायणः ।

हर्षभक्तिपराणां च शुश्रूषुर्निरहकृतिः ॥६॥

पूज्यपूजारतो नित्यं समदर्शी गुणान्वितः ।

सर्वभूतहितं शान्तं वृत्तज्ञः कीर्तिमास्तथा ॥७॥

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—ह भगवन् । आप तो समस्त शास्त्रों के वास्तविक प्रयोजनों के ज्ञाता हैं और सभी धर्मों के तत्त्व को

भी मरी भाँति जानने हैं । आपने परम श्रेष्ठ ध्वजागेपण वर्णन किया है । हे मुने । आपने इसी प्रसङ्ग में राजा मुमति की जो चर्चा की है जिसने ध्वजारोपण किया था अब आप महुँनी कृपा करके उस राजा मुमति का चरित्र विस्तृत रूप में मुझे श्रवण कराइये ॥ १ । २ ॥

इस तरह में नारदजी के पूछने पर सनक मुनि ने कहा—यह परम प्राचीन ऐतिहासिक घटना है । इसको आप मन लगाकर अब परम पवित्र एवं प्राचीन इतिहास की एकाग्रता में श्रवण करिए । ग्रह्याजी ने मुझमें इस समस्त पापों को दूर करने वाले इतिहास का वर्णन किया था ॥ ३ ॥ बहुत पहिले सत्ययुग में एक मुमति नामधारी राजा हुए थे । वह राजा सोमवश में समुत्पन्न हुआ था तथा मातो द्वीपों का एक छन राजा हुआ था ॥ ४ ॥ यह राजा बहुत ही धार्मिक, सत्यभाषी पवित्र वश में समुद्रमूत, समागत, अतिथियों में अत्यधिक प्रेम किया करते थे । यह सभी सुन्दर लक्षणों से युक्त और सभी तरह की सम्पदाओं में समन्वित एवं भूषित थे ॥ ५ ॥ राजा मुमति नित्य ही श्री हरि भगवान की कथा का श्रवण किया करते थे और अर्हतिश भगवान विष्णु के पूजन करने में मग्न रहा करते थे और अभिमान में रहित होकर सर्वदा भगवान् विष्णु के भक्तों की सेवा में तत्पर रहा करते थे ॥ ६ ॥ जो भी पूजा के करन के योग्य सत्पात्र होते थे उनकी पूजा किया करते थे । यह सबको समान दृष्टि से देखने वाले—गुण गणों से युक्त—ममस्त प्राणियों के हितैषी—शम का परिपालन करने वाले एवं परम वृत्तज थे । इसीलिये उस राजा की कीर्ति का चारों तरफ विस्तार हो रहा था ॥ ७ ॥

तस्य भार्या महाभागा सर्वलक्षणसयुता ।  
पतिव्रता पतिप्राणा नाम्ना सत्यमतिर्मुने ॥८॥  
तावुभौ दम्पती नित्य हरिपूजापरायणा ।  
जातिस्मरौ महाभागौ सत्यज्ञौ सत्परायणौ ॥९॥

अन्नदानरती नित्य जलदानपरायणी ।

तडागारामवप्रादीनसख्यातान्वितेनतु ॥१०॥

सा तु सत्यमतिनित्य शचिविष्णुगृहे सती ।

मृत्यत्यन्तसन्तुष्टा मनोज्ञा मञ्जुवादिनी ॥११॥

सोऽपि राजा महाभागो द्वादशीद्वादशोदिने ।

ध्वजमारोपयत्येव मनोज्ञ बहुविस्तरम् ॥१२॥

एव हरिपर नित्य राजान धर्मकोविदम् ।

प्रिया सत्यमति चास्य देवा अपि सदास्तुवन् ॥१३॥

त्रिलोके विश्रुती ज्ञात्वा दम्पती धर्मकोविदौ ।

आययौ बहुभि शिष्यैर्द्रष्टुकामोविभाण्डक ॥१४॥

हे मुनिवर ! उस राजा की पत्नी का नाम सत्यमती था । वह भी महान् भाग्य वाली, समस्त शुभ लक्षणों से समुत्पन्न, अपने पति की प्राण के समान समझने वाली परम पतिव्रता थी ॥ ८ ॥ ये दोनों ही पति-पत्नी सर्वदा श्री हरि के अर्चन में सलग्न रहा करते थे । इन दोनों को अपने प्रथम जन्म का भी स्मरण था । ये दोनों ही सत्य प्रतिज्ञा रखने वाले और सत्परायण रहा करते थे ॥ ९ ॥ ये सदा अन्न और जल का दान दिया करते थे । इन्होंने अणित उद्यान—तालाब आदि स्थापित एवं निर्मित किये थे ॥ १० ॥ वह रानी सती सत्यमती विष्णु भगवान् के मन्दिर में जाकर सर्वदा परम पवित्रता पूर्वक नृत्य किया करती थी तथा सन्तोष के साथ अतीव मनोहर वाद्यों का वादन कर भगवान् को रित्नाया करती थी ॥ ११ ॥ इसी प्रकार से परम महाभाग वह राजा भी द्वादशी तिथि के दिन जो कि प्रत्येक मास में आती थी भगवान् के मन्दिर में सुन्दर ध्वजा का समारोहण किया करता था ॥ १२ ॥ इन प्रकार के अत्यन्त धर्म-सत्पर परम धार्मिक राजा और सती सत्यमति रानी का देवगण भी प्रशंसा किया करते थे ॥ १३ ॥ त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध धार्मिक दम्पती के विषय

म श्रवण करके विभाण्डक मुनि अपने समस्त शिष्य वर्ग के साथ उस दम्पति का दर्शन करने के लिये एक बार वहाँ पर समागत हुए थे ॥ १४ ॥

तमायात मुनि श्रुत्वा स तु राजा विभाण्डकम् ।  
 प्रत्युद्ययो सपत्नीक पूजाभिवंदुविस्तरम् ॥१५  
 कृतानिश्चक्रिय शान्त कृतासनपरिग्रहम् ।  
 नीचासनस्थितो भूष प्राञ्जलिमुनिमब्रवीन् ॥१६  
 भगवन्कृतकृत्योऽस्मि त्वदभ्यागमनेन वै ।  
 सतामागमन सन्त प्रशसन्ति सुखावहम् ॥१७  
 यत्र स्थान्महता प्रम तत्र स्यु सवसम्पद ।  
 तेज कीर्तिर्धन पुत्रा इति प्राहुर्विपश्चत ॥१८  
 तत्र वृद्धिमुयायान्ति श्रेयास्यनुदिन मुने ।  
 यत्र सन्त प्रकुर्वन्ति महतीं वरुणा प्रभो ॥१९  
 यो मूर्ध्नि धारयेद् ब्रह्मन्महत्पादजल रज ।  
 स स्नात सर्वतीर्थेषु पुण्यात्मा नात्र सशय ॥२०  
 मम पुत्राश्च दाराश्च सपत्न्यश्चि समर्पिता ।  
 मामाज्ञापय विप्रन्द्र किं प्रिय करवाणि ते ॥२१

राजा न जब मुना कि विभाण्डक मुनि वहाँ पर पधार रह है तो उगन अपनी पत्नी का साथ म सबर उनकी अगधानी करने क निय आसन से उठ कर बाहर आगमन किया था । जब व आगये तो उनका बहुत ही अच्छी तरह म आतिथ्य एवं सत्कार किया था । जब मुनिवर समर्पित उच्चासन पर विराजमान हो गये तो सब राजा नीच एवं आसन पर बैठ गया था और हाथ जोड़ कर मुनिवर म प्राणार्पण करने लगा था ॥ १५, १६ ॥ राजा न कहा—ह भगवन् । आज आपका शुभागमन म मे परम कृतार्थ हो गया है क्योंकि मञ्जना क आगमन म मे भारी सुख की प्राप्ति हुआ करती है—यह एका मनुष्या

के दर्शन की महिमा ही होती है ॥२७॥ विद्वान् लोग कहा करते हैं कि जहा पर उदार सत्पुरुष प्रेम किया करते हैं वहाँ पर निश्चित रूप से कीर्ति—सम्पदा और पुत्रादि की प्राप्ति होने लगा करती है ॥१८॥ हे मुनिवर ! हे प्रभो ! सत्पुरुष जहाँ पर अपनी बड़ी कृपा किया करते हैं वहा पर प्रतिदिन मङ्गल ही मङ्गल हुआ करते हैं ॥१९॥ हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य अपने पूज्य तम बड़ो के चरणोदक तथा चरण से स्पर्श की गई धूलि को अपने मस्तक पर धारण किया करते हैं उन परम पुण्यात्मा पुरुषो ने सभी पवित्र तीर्थों मे स्नान कर लिया है—इसमे लेशमान भी सशय नहीं है ॥२०॥ मैं अपने पुत्र—स्त्री और सम्पूर्ण वैभव को आपकी सेवा मे समर्पित करता हूँ । हे विप्रवर ! आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए मैं इस समय मे आप का परम प्रिय कार्य क्या करूँ ? ॥२१॥

विनयावनत भूप स निरोक्ष्य मुनीश्वर ।  
 स्पृशन्क्रेण त प्रीत्या प्रत्युवाचातिर्हपित ॥२२॥  
 राजन्यदुक्त भवता तत्सर्वं त्वत्कुलोचितम् ।  
 विनयावनत सर्वो बहुश्रेयो लभेद्विह ॥२३॥  
 धर्मश्चार्यश्च कामश्च मोक्षश्च उपसत्तम ।  
 विनयाल्लभते मर्त्यो दुर्लभ किं महात्मनाम् ॥२४॥  
 प्रीतोऽस्मि तव भूपाल सन्मार्गेणरिवात्तिन ।  
 स्वस्ति ते सतत भूयाद्यत्पृच्छामि तदुच्यताम् ॥२५॥  
 पूजा बहुविधा सन्ति हस्तितुष्टिविधायिका ।  
 तासु नित्य ध्वजारोपे वर्त्तसे त्व सदोद्यत ॥२६॥  
 भार्याणि तव चाध्वीय नित्य नृत्यपरायणा ।  
 विमर्शमेतद् वृत्तान्तं यथावद्वक्तमर्हमि ॥२७॥  
 मृणुष्य भगवन्सर्वं यत्पृच्छसि वदाम तत् ।  
 आश्चर्यभूतलोचनानामाश्रयोश्चागति त्विह ॥२८॥

वह महा मुनि उस राजा की ऐसी नम्रता देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और बड़े ही प्रेम के साथ उस पर हाथ फेरते हुए कहने लगे—॥२२॥ श्री ऋषिवर ने कहा—हे राजन् । आपने जो कुछ भी मुझ से प्रार्थना की है वह सब आपके इस परमोच्च एवं पवित्र कुलके योग्य ही है । ऐसा निश्चित नियम है कि जो विनम्र होता है उसे अनेक तरह के कल्याणों की स्वतः ही प्राप्ति हो जाया करती है ॥२३॥ हे नृप श्रेष्ठ । यह विनय ऐसा उत्तम गुण है कि इसके द्वारा धर्म—अर्थ हे नृप श्रेष्ठ । यह विनय ऐसा उत्तम गुण है कि इसके द्वारा धर्म—अर्थ काम और मोक्ष सभी कुछ प्राप्त हो जाया करते हैं । महान् आत्मा वालों को इस ससार में कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहा करता है ॥२४॥ हे राजन् । आप तो परम श्रेष्ठ मार्ग पर चल रहे हो—मैं आपसे बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ । मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आपका सदा कल्याण होवे । अब मैं आपसे जो कुछ भी पूछना हूँ उसका उत्तर आप मुझे दीजिए ॥२५॥ ऋषि ने कहा— भगवान् विष्णु का प्रसन्न करने वाली अनेक प्रकार की अर्चन—पद्धतियाँ हैं उन मयमे से आप केवल ध्वजारोपण नाम वाली पूजा ही क्यों किया करते हैं ? ॥२६॥ ( यह आपकी परम साध्वी पत्नी भी विष्णु मन्दिर में सदा नृत्य ही किया करती हैं—यह सब क्या बात है ? ) आप दोनों ऐसा ही क्यों किया करते हैं जब कि अन्य अनेक भगवान् के प्रसन्न करने के उत्तमोत्तम साधन विद्यमान हैं ? इसका मत्तय—मत्तय उत्तर मुझे दीजिए ॥२७॥ राजा ने कहा—हे भगवन् । आपने जो कुछ भी मुझ से इन समय में पूछा है उसको मैं बताना हूँ, आप सुनिए । हम दोनों के चरित्र में मोग आशय में पड़े रहा करते हैं ॥२८॥

अहमाम पुरा शूद्रो मानिनिर्नाम मत्तम ।  
कुमार्गनिर्गतो निन्य मर्वनोनाहिते रत ॥२९॥  
पिङ्गुनो धर्मविद्वेषी देवद्रव्यापहारः ।  
गोघ्नश्च शत्रुहा चोर मर्वप्राणघ्ने रत ॥३०॥

नित्य निष्ठुरवक्ता च पापी वेश्यापरायणः ।

एव स्थित कियत्कालमनादृत्य महद्वच- ॥३१॥

सर्वबन्धुपरित्यक्तो दुःखी वनमुपागतः ।

मृगमासाशनो नित्य तथा पान्थविलुम्पक ॥३२॥

एकाकी दुःखबहुलो न्यवसन्निर्जने वने ।

एकदा क्षुत्परिश्रान्तो निदाघार्त्तः पिपासितः ॥३३॥

जीर्ण देवालय विष्णोरपश्य विजने वने ।

हसकारण्डवाकीर्ण तत्समीपे महत्सर ॥३४॥

पर्यन्तवनपुष्पोद्यच्छादित तन्मुनीश्वर ।

अपि व तत्र पानीय तत्तीरे विगतश्रमः ॥३५॥

फलानि जग्ध्वा शीर्णानि स्वयं क्षुच्च निवारिता ।

तस्मिञ्जीर्णालये विष्णोर्निवास कृतवानहम् ॥३६॥

हे मुनिवर ! मैं पहिले जन्म में मनिनि नाम वाला शूद्र था । मैं बहुत ही अधिक कुमार्गगामी था और सदा दूसरों के अहित के ही कार्य करने में लगा रहा करता था ॥३६॥ मैं बड़ा जुगलखोर—घर्म से द्वेष रखने वाला—देवद्रव्य का चोर और शी ब्राह्मणों को मारने वाला था और सभी प्राणियों की हिंसा किया करता था ॥३७॥ मैं सदा बड़वी बातें कहा करता था और पाप कर्म ही किया करता था । मैं वेश्यागामी था और अपने बड़ों की बातें नहीं मानता था । इसी प्रकार मैं बहुत सा समय व्यतीत हो गया था ॥३८॥ ऐसी दशा मेरी देखकर मेरे सभी बान्धवों ने मुझे त्याग दिया था । तब मैं परम दुःखित होकर जगत् में चला गया था और वहां पर मैं मृगों के मांस का आहार करने लग गया था तथा मैं राज्यों में जाने जाने वाले मुनियों का छूटने का काम करने लग गया था ॥३९॥ इस प्रकार मैं बहुत से दुःखों में संलग्न होकर वन में रहने लगा था । एक समय मैं भूयः प्रयास कर भी न पीड़ित होकर त्याग प्रसन्न हुआ था । उस समय मैं मैंने



उस निर्जन बियावान जङ्गल में भगवान विष्णु के जीर्ण-शीर्ण एक मन्दिर को देखा था । उस मन्दिर के समीप में ही एक सरोवर भी था जो हंस और कारण्डवों से घिरा रहता था ॥ वह सरोवर हे मुनि-वर ! जल पर्यन्त पुष्पो वाली लताओं से सुशोभित था । उसने तट पर मैंने पहुँच कर जल पान किया था । उससे मेरी थकान दूर होगई थी । उस समय पर मैंने देखा कि भूमि पर कुछ फल वृक्षों पर से दूढ़ कर गिर गये हैं । मैंने उनको उठा कर अपनी क्षुधा को भी शांत किया था । इसके उपरान्त मैं उसी जीर्ण मन्दिर में रहने लग गया था ॥३५॥३६॥

जीर्णस्फुटितसधान तस्य नित्यमकारिणम् ।  
पर्णस्तृणैश्च काष्ठौघैर्गृहं सम्यक् प्रकल्पितम् ॥३७॥  
स्वसुखार्थं तु तद्भूमिमंया लिप्ता मुनीश्वर ।  
तत्राह व्याघ्रवृत्तिस्थो हत्वा बहुविधान्मृगान् ॥३८॥  
आजीव वर्ततन्नित्य वर्षाणां विशति स्थित ।  
अधेयमागता माध्वा विन्ध्यदेशसमुद्भवा ॥३९॥  
निपादकुलजता विप्र नाम्ना ख्याताऽवकोकिला ।  
बन्धुवर्गपरित्यक्ता दुःखिता जीर्णविग्रहा ॥४०॥  
क्षत्तृद्वर्षमपरिश्रान्ता शोचन्ती स्वकृतह्यधम् ।  
दैवयोगात्ममायाता भ्रमन्ती विजने वने ॥४१॥  
ग्रीष्मतापाहिता बाह्ये स्वान्ते चाग्निनिषीडिता ।  
इमा दुःखादिता दृष्ट्वा जाता मे त्रिपुत्रा दया ॥४२॥

जो उस मन्दिर के भाग टूट-फूट हुआ था उनको धीरे-धीरे मृग और बाघों से ठीक करता रहता था । इस तरह में कुछ समय में बहुत अच्छा निवास गृह बना लिया था ॥३७॥ हे मुनीश्वर ! शनैः शनैः वहाँ को जो भूमि थी उसको भी मैंने अपने ही मुख के दृष्टिरोप में सीप कर ठीक बना लिया था । उस स्थान पर ही एक

बहेलिया का व्रम करता हुआ मैं नित्य ही बहुत-से मृगों को मार कर बीस वर्ष तक रहा था । हे विप्रवर ! इसके अनन्तर विध्यदेश के एक निषाद्र कुल में उत्पन्न अवकोकिला नाम वाली परम साध्वी स्त्री वहा पर आगयी थी । जिसको उसके बन्धु-बान्धवों ने त्याग कर निकाल दिया था । इसका शरीर बहुत जीर्ण हो गया था और वह भूख प्यास धूप से बहुत घबडाई हुई उस निजन वन में इधर उधर घूम रही थी । वह अपने किय हुए पापों का पश्चात्ताप कर रही थी । इस तरह से वह दैवयोग से मेरे पास आ निकली थी ॥३८-४१॥ वह विचारी बाहिर तो धूप की गर्मी से झुलस रही थी और अपने मनके अन्दर इन प्राप्त हुए क्लेशों के कारण बहुत ही सन्ताप वाली थी । उस समय मैं उस अत्यन्त दुखिनी को देख कर मेरे हृदय में अत्यन्त करुणा उत्पन्न हो गई थी ॥४२॥

दत्ता मया जल चास्यै मास वन्यफलानि च ।

गतश्रमा त्वयि ब्रह्मन्मया पृष्टा यथा तथम् ॥४३॥

अवेदयत्स्ववृत्तान्तं तच्छृणुष्व महामुने ।

नाम्नावकोकिला चाह निषादकुलसम्भवा ॥४४॥

दारुवस्य सुता चाह विन्ध्यपर्वतवासिनी ।

परस्वहाग्निं नित्यं सदा पैशुन्यवाविनी ॥४५॥

पुश्चलात्येवमुक्त्वा तु बन्धुवर्गे समुज्जिता ।

कियत्कालं ततः पत्या भूताह लोकनिन्दिता ॥४६॥

नैवात्सोऽपि गतो लोकः यमस्याय विहाय माम् ।

वान्तारे विजने चेन्म भ्रमन्ती दुःखपीडिता ॥४७॥

देवात्त्वत्सविष्टं प्राप्ता जीविताह त्वयाधुना ।

इत्येव स्पष्टं वमं मह्यं सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥

ततो दयालयं तस्मिन्दम्पतीभावमाश्रितो ।

स्थितो वर्षाणि दश च आवा मासफलाग्निनो ॥४९॥

एकदा मद्यपानेन प्रमत्तो निर्भर मुने ।

तत्र देवालये रात्रौ मुदितौ मासभोजनान् ॥५०॥

अतएव मैंने उसको जल और मांस तथा जङ्गली फल दे दिये थे अब । वह अपनी थकान दूरकर शान्त हो गई थी तब मैंने उसका सब कारण पूछा था ॥४३॥ हे महामुने । उसने अपना सारा हाल सुनाया था उमे मैं आपको सामने कहना हूँ आप श्रवण कीजिये । उसने कहा था—मैं निपाद कुल मे समुत्पन्न हुई हूँ और मेरा नाम अब काशिला है ॥४४॥ मेरे पिता का नाम दारुक है, मैं विन्ध्याचल पर्वत पर रहती थी, मैं सदा दूसरो का घन चुराया करती थी और सर्वादा दूसरो की चुगली खाया करती थी ॥४५॥ मेरे कुल वालो ने 'यह छिनाल है' यह कह कर घर से निवाल दिया था किन्तु मुझे लोक में निन्दित होने पर भी मेरे पति ने कुछ समय तक मेरा पोषण किया था ॥४६॥ मेरे दुर्भाग्य से वह भी मुझे असहाय छोड़कर परलोक-गामी हो गया है । अब मैं इस निर्जन वन मे अत्यन्त पीडित होकर अकेली घूम रही थी ॥४७॥ भाग्यवश मैं तेरे समीप मे आ निकली हूँ । तूने मुझको मौत से उबार लिया है । ऐसे उसने मुझको अपना सब ममाचार सुना दिया था ॥४८॥ इसके अनन्तर हम दोनो गृहस्थी बनकर उमी मन्दिर मे मांस खाकर तथा मदिरा पान करके मत्त होत हुये प्रमत्त हो रहे थे ॥४९॥५०

तनुवस्त्रापरिज्ञानी नृत्य चकृव मोहितौ ।

प्रारब्धकर्म भोगान्तभावा युगपदागतौ ॥५१॥

यमदूतास्तदायाता पाशहस्ता भयकरा ।

नेतुमाया नृत्यरतौ मुधोरा यमयातनाम् ॥५२॥

ततः प्रसन्नो भगवान्कर्मणा मम मानद ।

देवावमयमस्कारमजितेन वृत्तेन न ॥५३॥

स्वदूतान्प्रेषयामास स्वभक्तावनतत्पर ।

ते दूता देवदेवस्य शखचक्रगदाधरा ॥५४॥

सहस्रसूयसकाशा सर्वे चारुचतुर्भुजा ।

किरीटकुण्डलधरा हारिणो वनमालिन ॥५५॥

दिशो वितिमिरा विप्र कुवन्त स्वेन तेजसा ।

भयकरान्पाशहस्तान्दष्टिणो यमकिङ्कुरान् ॥५६॥

भावयोर्ग्रहण यत्तानूचु कृष्णपरायणा ॥५७॥

( उस समय मैं अपने शरीर की सब मुष्ण खोकर हम मोह में नृत्य करने लगे थे । ) हमको अपने शरीर और वस्त्रों का भी कुछ होश हवास नहीं रहा था । उस समय में हम दोनों का ही प्रारब्ध भोग का अन्त आ गया था ॥५१॥ ( हम दोनों नृत्य में मस्त हो रहे थे कि महान् भयकर यमदूत हाथ में फाँसी के पाश लिये हुये वहाँ नरकों में ले जान के लिये आ पहुँचे थे ॥५१॥ ) हे मानव ! उसी समय मैं भगवान् विष्णु ने भी अपने देवान् की स्वच्छता रखने के कारण परम प्रसन्न होकर अपने दूतों को भेज दिया था ॥५३॥ भगवान् सदा अपने भक्तों की सुरक्षा का ध्यान रखत हुये तत्पर रहा करत हैं । देवेष्वर के दूत शख चक्र और गदा धारण करने वाले थे ॥५४॥ वे सहस्रों सूर्यों के समान प्रकाश से युक्त थे सबके चार भुजाय थीं किरीट कुण्डल और वनमाला धारण किये हुये थे ॥५५॥ हे परमपद ! उसी परम दिव्य कर्त्तृत्व से त्रिशाशा से समस्त अधकार दूर हो गया था । इस प्रकार से श्रीकृष्ण भगवान् के पार्यन्त ने हम दोनों की घात में प्रस्तुत उन महान् भयकर यमदूतों में जो बड़ी २ दाढ़ी वाल पाशधारी वहाँ पर थे उनसे कहा था ॥५६॥५७॥

भाभाभरादुराचारा निवक्परिवर्जिता ।

मुञ्चध्वमतो निष्पापो दम्पती हरिः लभा ॥५८॥

विवक्स्मिन्नुलागु मपदामादिवारणम् ।

अपापपापधीयन्तु विद्यातुपाधगम् ॥५९॥

पापे त्वपापघोर्यस्तु तं विद्यादधमाधमम् ॥६०॥  
 युष्माभि सत्यमेवोक्तं किं त्वेतीपापिसत्तमौ ।  
 यमेन पापिनो दण्डयास्तन्नेप्यामो वय त्विमौ ॥६१॥  
 श्रुतिप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।  
 धर्माधर्मविवेकोऽयं तन्नेध्यामो यमान्तिकम् ॥६२॥  
 एतच्छ्रुत्वात्तिबुपिता विष्णुदूता महींजसः ।  
 प्रत्यूचूस्तान्यमभटानधर्मं धर्ममानिनः ॥६३॥

श्री विष्णुदूतो ने कहा—अरे क्रूर पुरुषा । तुम बहुत ही विवेक-  
 हीन और दुराचारी हो । तुम इन हरि क निराप दम्पतियो को छोड  
 रा ॥५८॥ त्रैलोक्य मे विवेक ही समस्त सम्पदाओ का आदि कारण  
 माना जाय करता है । जो पाप रहित प्राणी मे पाप बृद्धि रखता है  
 जेना पापी का पाप रहित समझता है उमका महान अधम पुरष ही  
 समझना चाहिए ॥५९॥६०॥ यमराज के दूतो ने उत्तर दिया—हे  
 पार्षदो । आपन जो कुछ भी कहा वह अक्षरशः सत्य है किन्तु ये दोनों  
 तो छटे हुए बदमाश हैं । यमराज ऐसे महा पापियो को ही दण्ड दिया  
 करते हैं । इसीलिए हम इनका पकड कर लिए जाते हैं ॥६१॥ वेद  
 जिस कर्म का प्रतिपादन किया करता है वही धर्म होता है और वेद  
 जिस कर्म का निषेध किया करता है वही अधर्म है । यही धर्माधर्म  
 का विचार हम जानते हैं । इसीलिए हम इनको यमराज के सामने  
 लिये जाते हैं ॥६२॥ इस उनके उत्तर को सुनकर महा पराक्रमी विष्णु  
 के पार्षदो को बडा क्रोध हो गया और अधर्म वा धर्म समझने वाले  
 इन यमराज के दूतो म उन्होंने कहा—॥६३॥

अहो कष्ट धर्मदृशामधर्मं स्पृशते सभाम् ।  
 सम्यग्विवेकशून्याना निदानं ह्यापदा महत् ॥६४॥  
 तर्कणाद्यविवेकेण नरकाध्यक्षता गता ।  
 यूय किमर्थमद्यापि कर्तुं पापानि सोद्यमा ॥६५॥

स्वकर्मक्षयपर्यन्तं महापातकिनोऽपि च ।

तिष्ठन्ति नरके घोरे यावन्चन्द्रार्कतारकम् ॥६६॥

पूर्वसंचितपापानामदृष्ट्वा निष्कृतिं वृथा ।

किमर्थं पापकर्माणि करिष्येऽथ पुनः पुनः ॥६७॥

श्रुतिप्रणिहितो धर्मः सत्य सत्य न सशयः ।

किन्त्वाभ्या चरितान्धर्मान्प्रवक्ष्यामो यथातथम् ॥६८॥

एतो पापविनिर्मुक्तौ हरिशुश्रूषणे रतौ ।

हरिणा त्रायमाणौ च मुञ्चध्वमविलम्बितम् ॥६९॥

एषा च नर्तन चक्रे तथैव ध्वजरोपणम् ।

अन्तकाले विष्णुगृहे तेन निष्पापता गतौ ॥७०॥

विष्णु दूतों ने कहा—अहो ! अत्यन्त ही दुःख की बात है कि धर्म के द्रष्टाओं की सभा को अधर्म स्पर्श करने की इच्छा कर रहा है । यह अधर्म जिसका ठीक २ विचार ही नहीं कर सकते हैं उनको बहुत अधिक आपत्ति में डाल दिया करता है ॥६४॥ अरे ! तुम तो बहुत ही विवेक शून्य हो । तुमको ऐसा होने पर भी किसने नरको का जेलर बना दिया है । अरे ! तुम अभी भी पाप करने के लिये ही बमर कत्ते खड़े हुए हो ? ॥६५॥ अरे ! जिस समय तक पाप कर्मों का क्षय नहीं हुआ करता है तब तक घोर महापातकी भीषण नरकी में रहा करते हैं और प्रलय काल तक भी वहीं पर घोर यातनायें सहन किया करते हैं ॥६६॥ अरे ! तुम लोगो का अभी तक पहिले बिये हुए सञ्चित पापों से तो छुटकारा नहीं हुआ है और फिर भी तुम लोग पाप कर्मों के ही करने पर उतारू बयो हो रहे हो ? ॥ ६७ ॥ तुमने जो यह कहा था कि वेद में जिसका विधान है वही धर्म है । यह सर्वथा सत्य है । अब हम इन दोनों प्राणियों के लिए हुए धर्मों को बतलाते हैं ॥६८॥ ये दोनों ही भगवान् विष्णु की पूजा करने से विस्तृत पाप रहित हो गये हैं । अब भगवान् विष्णु इनकी रक्षा करना

चाहते हैं अब आप लोग इन दोनो को तुरन्त ही छोड़ दो ॥ ६६ ॥  
(इतने इस अन्तिम समय में इस भगवान् विष्णु के मन्दिर में ध्वजा  
सगाई है और नृत्य किया है। इसीलिये बिल्कुल निष्प होकर विशुद्ध  
भक्त हो गये हैं ॥७०॥ )

अन्तकाले तु यन्नाम श्रुत्वोक्त्वापि च वै सकृत् ।  
लभते परम स्थान किमु शुश्रूषणे रता ॥७१॥  
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः ।  
कृष्णसेवी नरोऽन्तेऽपि लभते परमागतिम् ॥७२॥  
यतीनां विष्णुभक्तानां परिचर्यापरायणा ।  
ते दूता सहसा यान्ति पापिनोऽपि परा गतिम् ॥७३॥  
मुहूर्तं वा मुहूर्ताद्विं यस्तिष्ठेद्धरिमन्दिरे ।  
सोऽपि याति पर स्थान किमु द्वार्शिवत्सरान् ॥७४॥  
उपलेपनकर्तारो समार्जनपरायणो ।  
एतौ हरिगृहे नित्यं जीर्णशीर्णार्थिरोपको ॥७५॥  
जलसेचनकर्तारौ दीपदौ हरिमन्दिरे ।  
कथमेतौ महाभागौ यातनाभोगमर्हन् ॥७६॥  
इत्युक्त्वा विष्णुदूतास्ते च्छिन्वा पाशास्तदैव हि ।  
आरोप्यावा विमानाग्रं यमुर्विष्णो पर पदम् ॥७७॥

जो प्राणी अपने जीवन के अन्त काल में एक बार भी भगवान्  
के परम पावन नाम का उच्चारण कर लेता है अथवा भगवन्नाम का  
श्रवण कर लेता है तो उसको परम पद की प्राप्ति हुआ करती है फिर  
जो स्वयं ही भगवान् की सेवा में लग्न हो उनको परम पद प्राप्त होता  
है तो क्या आश्चर्य की बात है ॥७१॥ चाहे कोई पापी हो या महा  
पातकी हो श्रीकृष्ण की सेवा करने वाले को अन्त में परम गति प्राप्त  
हुआ करती है ॥७२॥ अरे हे यमदूतों ! देखो, जो संन्यासियों और  
विष्णु भक्तों की सेवा शुश्रूषा में निरत रहा करते हैं वे कैसे भी पापी हा

तो भी परम गति के पाने के अधिकारी होते हैं ॥७३॥ अरे महामूढो ! जो एक बार भी या आधे मुहूर्त भी हरि मन्दिर में निवाम बिया करता है वह भी परम पद प्राप्त कर लेता है फिर ये दोनों प्राणी तो बत्तीस वर्ष तक इस विष्णु मन्दिर में रहे हैं ॥७४॥ ये दोनों इस विष्णु भगवान के मन्दिर को लीपते रहा करते थे इसमें कुहारी लगा कर स्वच्छ रखते थे तथा जहाँ-तहाँ इसकी मरम्मत किया करते रहते थे जोकि इसका अत्यन्त जोर्ण-शोर्ण भाग था ॥७५॥ ये इस मन्दिर में जल का छिड़काव किया करते थे और दीपक जलाया करते थे । इतनी सेवा करने पर ये महाभागो नरक में जाने के पात्र कैसे बने रह गये हैं ? ॥७६॥ विष्णुदूतो ने यह कहते हुए यमदूतो के पाशों का छेदन कर दिया था और हम दोनों को एक दिव्य विमान में बिठाकर वे विष्णु लोक को लेकर चल दिए थे ॥७७॥

तत्र सामीप्यमापन्नो देवदेवस्य चक्रिणः ।  
 दिव्यान्भोगान्भुक्तवन्तो तावत्काल मुनीश्वर ॥७८॥  
 दिव्यान्भोगास्तु तत्रापि भुक्त्वा यातो महीमिमाम् ।  
 अत्रापि सपदतुला हरिसेवाप्रसादतः ॥७९॥  
 अनिच्छया कृतेनापि सेवनेन हरेर्मुने ।  
 प्राप्तमीदृक् फलं विप्र देवानामपि दुर्लभम् ॥८०॥  
 इच्छयारारध्य विश्वेशं भक्तिभावेन माधवम् ।  
 प्राप्स्याव परम श्रेय इति हेतुनिरूपितः ॥८१॥  
 अवशेनापि यत्कर्म कृत स्यात्सुमहत्फलम् ।  
 जायते भूमिदेवेन्द्र किं पुन श्रद्धया कृतम् ॥८२॥  
 एतदुक्तं निशम्यासौ स मृनोन्द्रो विभाण्डकः ।  
 प्रशम्य दम्पती तो तु प्रययी स्वतपोवनम् ॥८३॥  
 तस्माज्जानीहि देवर्ष देवदेवस्य चक्रिणः ।  
 परिचर्या तु सर्वेषां कामधेनूपमा स्मृता ॥८४॥



हरिपूजापराणा तु हरिरेव सनातन ।  
 ददाति परम श्रेय सर्वकामफलप्रद ॥८५॥  
 य इद पुण्यमाख्यानं सर्वपापप्रणाशनम् ।  
 पठेच्च शृणुयाद्वापि सोऽपि याति परा गतिम् ॥८६॥

हे मुनीश्वर । वहाँ पर भगवान् चक्रधारी विष्णु के समीप में पहुँच कर हमने दिव्य भागा का सुखोपभोग किया था ॥८५॥ इस तरह से वहाँ पर चिरबात तक दिव्य भाग प्राप्त कर अब पुन इस भूमण्डल में उत्पन्न हुए हैं तो यहाँ पर भी भगवान् विष्णु के प्रसाद से अतुल्य सुख-सम्पत्ति मिली है ॥८६॥ हे विप्र । हे मुनिवर । इस रीति से इच्छा न होने पर भी वनी हुई विष्णु की सेवा से ही ऐसा देव दुलभ फल मिला है ॥८७॥ हमारा अब सेवा करने का यही कारण है कि अब हम इच्छापूर्वक भक्ति-भाव से माधव की सेवा-आराधना करके परमोत्तम श्रेय की प्राप्ति करें ॥८८॥ हे भूदेवेश्वर । अवशता के होते हुए भी किया हुआ कर्म अब ऐसा महान् फल देता है तो फिर परम श्रद्धा के साथ किए हुए श्री हरि भजन का क्या कहना है ॥८९॥ इस कथन का श्रवण कर विभाण्डक मुनि ने उन दोनों सम्पत्ति की बहुत प्रशंसा की और फिर वे अपने तपोवन को वापिस चले गये थे ॥९०॥ अतः हे देवर्षे । आप समस्त लीजिए चक्रधारी भगवान् की सेवा का फल सबको कामधेनु के ही समान हुआ करता है ॥९१॥ श्री हरि भगवान् की पूजा में निमग्न रहने वाले जनों को समस्त कामनायें पूर्ण करने वाले श्री हरि ही परम श्रेय प्रदान किया करते हैं ॥ ९२ ॥ जो कोई भी प्राणी समस्त पापों के विनाश करने वाले इस परम पावन आख्यान का श्रवण या वाचन करता है वह भी परम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥९३॥



## ॥ हरिपञ्चरात्र वृत ॥

अन्यद्वृत प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वत ।  
 दुर्लभ सर्वलोकेषु विख्यात हरिपञ्चकम् ॥१॥  
 नारीणां च नराणां च सर्वदुःखनिवारणम् ।  
 धर्मकामार्थमोक्षाणां निदानं मुनिसत्तम ॥२॥  
 सर्वाभीष्टप्रदं चैव सर्वव्रतफलप्रदम् ।  
 मार्गशीर्षे सिते पक्षे दशम्या नियतेन्द्रियः ॥३॥  
 कुर्यात्स्नानादिकं कर्म दन्तधावनपूर्वकम् ।  
 कृत्वा देवाचनं सम्यक्तथा पञ्च महाध्वरान् ॥४॥  
 एकाशी च भवेत्तस्मिन् दिने नियममास्थितः ।  
 ततः प्रातः समुत्थाय ह्येकादश्या भुनीश्वर ॥५॥  
 स्नानं कृत्वा यथाचारं हरिं चैवाचंयेद् गृहे ।  
 स्नापयेद्देवदेवेशं पञ्चामृतविधानतः ॥६॥  
 अचंयेत्परया भक्त्या गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।  
 धूपदीपैश्च नैवेद्यं स्ताम्बूलैश्च प्रदक्षिणैः ॥७॥

श्री रामनाथार्यजी ने कहा—हे नारद । अब मैं आपके सामने  
 एक अन्य व्रत का तत्त्व बतलाता हूँ—एक हरिपञ्चक नाम वाला व्रत  
 इस श्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध है और यह परम दुर्लभ है ॥ १ ॥ इस  
 व्रत के करने से मनुष्यों के और नारियों के सभी दुःख दूर हो जाया  
 करते हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! इस व्रत से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन  
 चारों पुष्टियों की प्राप्ति हो जाया करती है ॥ २ ॥ इससे मानवी की  
 सभी मनाकामनाएँ संपन्न हुआ करती हैं और अन्य सभी व्रतों का फल  
 इनके करने में प्राप्त हो जाया करता है यह ऐसा ही है । मार्गशीर्ष  
 मास में ऋषयण्य की दशमी के दिन अपनी गमस्त इन्द्रियों को यज्ञ में  
 कर दोनून एक स्नान आदि नित्य एक आचरण कर्मों को करने

भसी भाँति से देव पूजन और पञ्च यज्ञ करे तथा उस दिन के नियमों का परिपालन करने के लिये एक समय में बाहार ग्रहण करना चाहिए। एकादशी तिथि के दिन पात काल में सत्र शारीरिक कृत्यों से निपट कर श्री हरि का अर्चन करे और पञ्चामृत से भगवान् श्री हरि का स्नान कराना चाहिए ॥ ३-६ ॥ भगवान् का अर्चन भक्ति भावना के सहित सभी आवश्यक गन्ध, पुष्प, घूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल एवं प्रदक्षिणा आदि से करना चाहिए ॥ ७ ॥

संपूज्य देवेदेवेश मिम मन्त्रमुदीरयेत् ।  
नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तु ते ॥८॥  
नमस्ते सर्वरूपाय सर्वसिद्धिप्रदायिने ।  
एव प्रणम्य देवेश वासुदेव जनार्दनम् ॥९॥  
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण ह्युपवास समर्पयेत् ।  
पञ्चरात्र निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव ॥१०॥  
त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन्ममाभीष्टप्रदो भव ।  
एव समर्प्य देवस्य उपवास जितेन्द्रिय ॥११॥  
रात्रौजागरण कुर्यादिकादश्यामथो द्विज ।  
द्वादश्या च त्रयोदश्या चतुर्दश्या जितेन्द्रिय ॥१२॥  
पौर्णमास्या च कर्त्तव्यमेव विष्णुवर्चनं मुने ।  
एकादश्या पौर्णमास्या कर्त्तव्यं जागर तथा ॥१३॥  
पञ्चामृतादिपूजा तु सामान्या दिनपञ्चसु ।  
क्षीरेण स्नापयेद्विष्णु पौर्णमास्या तु शक्तित ।  
तिलहोमश्च कर्त्तव्यस्तिलद न तथैव च ॥१४॥

भगवान् की पूजा करके फिर उनके समक्ष में निम्न मन्त्र का उच्चारण करके प्रार्थना करनी चाहिए । 'नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तुते । नमस्त सर्वरूपाय सर्वसिद्धि प्रदायिने ।' अर्थात् हे भगवन् । आप ज्ञान के स्वरूप वाले हैं आपको मेरा प्रणाम है । आप ज्ञान के

प्रदान करने वाले हूँ आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है । आप समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं आपको मेरा नमस्कार है । आप सर्व रूप के लिये मेरा प्रणाम है । इस विधि से भगवान् देवेश्वर वासुदेव का अर्चन करना चाहिए ॥ ८८ ॥ इससे अनंतर जो उपवास भगवत्प्रीत्यर्थ किया है उसे भगवान् की सेवा में समर्पित कर देवे । उसका मन यह है—‘पञ्चरात्र निराहारा ह्यद्य प्रभृति केशव । त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन् । ममाभ्युदयप्रदोभव’ अर्थात् हूँ केशव । मैं आपकी ही आज्ञा प्राप्त कर पाँच रात्रि तक निराहार रहकर उपवास करने का इच्छुक हूँ । अतएव हे इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् । आप मेरे सभी मनोरथ पूर्ण करिये । इस रीति से भगवान् की सेवा में उपवास का अर्पण करे । हे द्विजवर । फिर उस एकादशी के दिन रात्रि में जागरण करना चाहिए । हे मुनिवर । फिर द्वादशी—त्रयोदशी—चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को भी इसी विधान से भगवत्पूजन करे । सिर्फ एकादशी और पूर्णिमा की रात्रियों में जागरण करे ॥ १०-१३ ॥ साधारणतया पाँचों दिन पञ्चामृत आदिसे पूजन करे । पूर्णिमा के दिन भगवान् को दूध से स्नान करावे और यथा शक्ति तिसा का दान तथा तिलों से होम करना चाहिए ॥ १४ ॥

तत पष्ठे दिने प्राप्ते निर्वृत्य स्वाश्रमक्रियाम् ।  
सप्राश्य पञ्चगव्यं च पूजयेद्विधिवद्धरिम् ॥ १५ ॥  
ब्राह्मणान्भोजयेत्पशून्चाद्विभवे सत्यवारितम् ।  
तत स्ववन्धुभिः साद्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यत ॥ १६ ॥  
एव पौषादिमासेषु कार्तिकान्तेषु नारद ।  
शुक्लपक्षे यत कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना नर ॥ १७ ॥  
एव सवत्सरं कार्यं यत पापप्रणाशनम् ।  
पुनः प्राप्ते मार्गशीर्षे कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ १८ ॥  
एकादश्या निराहारो भवेत्पूर्वमिदं द्विज ।

द्वादश्या पञ्चगव्य च प्राशयेत्सुसमाहित ॥१६  
 गन्धपुष्पादिभि सम्यग्देवदेव जनार्दनम् ।  
 अभ्यर्च्योपायन दद्याद् ब्राह्मणाय ।जतेन्द्रिय ॥२०  
 पायस मधुसमिध घृतयुक्त फलान्वितम् ।  
 सुगन्धजलसयुक्त पूर्णकुम्भ सदक्षिणम् ॥२१

इसके उपरान्त छठवें दिन अपने आथम के नित्य कृत्यों से निवृत्त होकर पञ्च गव्य का प्राशन करे तथा विधि पूर्वक भगवान् का यजन करना चाहिए ॥ १५ ॥ यदि पास में कुछ धैभव हो तो ब्राह्मणों को भोजन करावे और इसके पश्चात् बान्धवों के सहित एकत्र बैठकर स्वयं भी प्रसाद ग्रहण करना चाहिए ॥१६॥ हे नारद । इसी रीति से पौष आदि मासों में भी आगे आने वाले कार्तिक मास पर्यन्त प्रतिमास इस व्रत का समाचरण करना चाहिए । सभी मासों के व्रतों में विधान यही पूर्व में कहा हुआ है ॥१७॥ इस तरह से पूरे वर्ष में किया हुआ यह व्रत समस्त पापों का नाश कर दिया करता है । व्रतधारी पुरुष को पुनः मार्गशीर्ष मास के आने पर ही इस महाव्रत का उद्घाटन करना चाहिए ॥१८॥ हे द्विजवर । एकादशी तिथि के दिन पूर्व की भांति ही निराहार रहे तथा द्वादशी के दिन सावधानता के साथ पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिए ॥१९॥ देवेश्वर जनार्दन भगवान् का गन्ध पुष्पादि के द्वारा पूजन करे—जितेन्द्रिय रहे और ब्राह्मण का भेट देव । ॥२०॥ उम वान में मधु और घृत मिश्रित पायस—फल—सुगन्धित जल से पूर्ण कलश और द्रव्य दक्षिणा होने चाहिए ॥२१॥

वस्त्रेणाच्छादित कुम्भ पञ्चरत्नममन्वितम् ।  
 दद्यादष्टात्मविदुः ब्राह्मणाय मुनीश्वर ॥२२  
 सर्वात्मन् सवभूतश्च सर्वव्यापिन्सनातन ।  
 परमान्नप्रदानेन सुप्रीतो भव माधव ॥२३  
 अनन पायस दत्त्वा ब्राह्मणान्भाजयेत्ततः ।

शक्तितो बन्धुभि साद्धं वय भुञ्जीत वाग्यतः ॥२४॥  
 व्रतमेतत्, य कुर्याद्वरिपञ्चकसंज्ञितम् ।  
 न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥२५॥  
 व्रतमेतत्प्रकर्त्तव्यमिच्छद्दिभर्मोक्षमुत्तमम् ।  
 समस्तपापकान्तारदावनलसम द्विज ॥२६॥  
 गवाकोटिसहस्राणि दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात् ।  
 तत्फलं लभ्यते पुम्भिरेतस्मादुपवासतः ॥२७॥  
 यस्त्वेतच्छृणुयाद्भक्त्या नारायणपरायणः ।  
 स मुच्यते महाधोरै पातकानां च कोटिभिः ॥२८॥

जो कलश दिया जावे वह पञ्चरत्नो से युक्त और वस्त्र से समावृत होना चाहिए । इस दान को किसी अध्यारमवेत्ता विद्वान् ब्राह्मण को ही देना चाहिए ॥ २२ ॥ फिर निम्न मन्त्र का उच्चारण कर प्रार्थना करे— 'सर्वात्मन् सर्वभूतेश सर्वभूतेश सर्वव्यापिन् सनातन । परमात्म प्रदानेन सुप्रीनो भवमाधव ।' अर्थात्—हे भगवन् ! आप सबके आत्म स्वरूप वाले हैं और आप सभी भू-तों के प्रभु हैं । हे सर्वव्यापक ! आप सनातन ( सर्वदा से चले आने वाले ) माधव हैं । इस परम श्रेष्ठ अन्न के प्रदान में आप मुझ पर प्रसन्न होइये । इसी मन्त्र को पढ़त हुए ब्राह्मण को क्षीर अर्पित करे । फिर यथा शक्ति ब्रह्मभोज करवावे और सबके पश्चात् स्वयं भी अपने पाँचवों के साथ बँटकर भोजन करे ॥२३॥ २४ ॥ जो मनुष्य इस हरिपञ्चक नाम वाले व्रत को किया करता है वह ब्रह्मलोक से पुनः यहाँ पर कभी भी वापिस नहीं आया करता है ॥ २५ ॥ हे द्विजवर ! जो मनुष्य परम श्रेष्ठ मोक्ष की प्राप्ति की अभि-न्नापा रखते हो उनको सब पापों के बन्धन के दावानल मारकर इस व्रत को अवश्य ही करना चाहिए ॥ २६ ॥ दस अरब गौओं के दान में जो पुण्य-पत्र प्राप्त होता है वही पुण्य-पत्र इस उपवास के करने में प्राप्त हुआ करता है ॥२७॥ जो कोई भगवद्भक्त इस उपवास करने के विधान

को सुनता है और भक्तिभाव से इसका श्रवण किया करता है वह कोटिश महापापों से विमुक्त हो जाता है ॥२८॥



## ॥ मासोपमास व्रत ॥

अन्यद् व्रतवर वक्ष्ये तच्छृणुष्व समाहित ।  
 सर्वपापहर पुण्य सर्वलोकोपकारकम् ॥१॥  
 आपाढे श्रावणे वापि तथा भाद्रपदेऽपि च ।  
 तथैवाश्विनके मासे कुयदितद्भ द्विज ॥२॥  
 एतेष्वन्यतमे मासे शुक्लपक्षे जितेन्द्रिय ।  
 पाशयेत्पञ्चगव्यं च स्वपेद्विष्णुसमीपतः ॥३॥  
 ततः प्रातः समुत्थाय नित्यकम् समाप्य च ।  
 श्रद्धया पूजयेद्विष्णुं वशी क्रोधविवर्जितः ॥४॥  
 विद्वद्भिः सहितो विष्णुमर्चयित्वा यथोचितम् ।  
 सकल्पं तु ततः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥५॥  
 मासमेकं निराहारो ह्यद्यप्रभृतिः केशव ।  
 मासान्तपारणं कुर्वे देवदेव तवाज्ञया ॥६॥  
 तपारूपं नमस्तुभ्यं तपसा फलदायकम् ।  
 ममाभ्योष्टव्रतं देहि सर्वविघ्नान्निवारय ॥७॥

श्री सनकाचार्य ने कह — हे नारद । मैं इस समय में एक अथ व्रतम व्रत के विषय में व्रणन करके आपका सुनाता हूँ आप उसको समाहित होकर सुनिये । यह व्रत समस्त महान् से भी महान् पापों का विनाशक है और मरुत लोको का अत्यधिक उपचार किया करता है ॥१॥ इस व्रत के करने का समय आपाढ श्रावण भाद्रपद और आश्विन मास होता है ॥२॥ इन उक्त मासों में से किसी भी एक मास में स्वच्छया एवं सुविधा के अनुसार शुक्लपक्ष में अपनी समस्त

इन्द्रियो पर नियन्त्रण करके पञ्चगव्य का प्राशन कर भगवान् विष्णु के समीप में ही शयन करना चाहिए ॥ ३ ॥ प्रातः काल में उठकर अपन नित्य कृत्य से निपट कर बहुत ही श्रद्धा के साथ भगवान् विष्णु का अर्चन करे और इस व्रत के अनुष्ठान के समाचरण के समय में अपनी सब इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए क्रोध बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥ विद्वानो को साथ में रखकर विष्णु का पूजन कर स्वस्ति-वाचन करे तथा सङ्कल्प करना चाहिए । इसके पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करे—“मासमेक निराहारो ह्यद्य प्रभृति केशव । मासान्त पारणकुर्वे देवदेव तवाज्ञया ।” अर्थात्—हे देवो के देव । हे केशव । मैं आपसे आज्ञा प्राप्त करके एक मास पर्यन्त निराहार व्रत करने की अभिलाषा रखता हूँ और मास के अवसान में मैं धारणा करूँगा ॥ ६ ॥ “तपोरूपं नमस्तुभ्य तपसा फलदायक । ममभीष्टं पदं देहि मर्मा विष्णाध्विवाग्य ।” अर्थात् हे तप के ही नाम और स्वरूप वाले प्रभो । मैं आपको प्रणाम अर्पित करता हूँ । आप ही सब तपश्चर्याओं के फल का प्रदान करने वाले हैं मुझे इस व्रत को पूर्ण करने की शक्ति प्रदान कीजिये और मेरे इस व्रत में जाने वाले विद्वानों को दूर करिये ॥ ७ ॥

एव समर्प्य देवस्यविष्णोर्मासव्रतं शुभम् ।  
 ततः प्रभृति मासान्तं निवसेद्वरिमन्दिने ॥८॥  
 प्रत्यहं स्नापयेद्देवं पञ्चामृतविधानतः ।  
 दीपं निरन्तरं कुर्यात्तस्मिन्मासे हरेर्गृहे ॥९॥  
 प्रत्यहं खादयेत्काष्ठं ह्यपामार्गं ममुद्भवम् ।  
 ततः स्नायीत विधिन्नारायणपरायण ॥१०॥  
 ततः सस्नापयेद्विष्णुं पूर्ववत्प्रयताञ्चयेत् ।  
 ब्राह्मणान्भोजयेच्छुक्लं भक्तियुक्तं गदक्षिणाम् ॥११॥  
 स्वयं च दग्धुमि साद्धं भुञ्जीत प्रयतेन्द्रियः ।



एव मासोपवासांश्च व्रती कुर्यात्त्रयोदश ॥१२

वर्षान्ते वेदविदुषे गा प्रदद्यात् सदक्षिणाम् ।

भोजयेद्ब्रह्मणांस्तत्र द्वादशैव विधानतः ।

शक्त्या च दक्षिणा दद्याद्ब्रह्मण्याभारणानि च ॥१३

मासोपवासत्रितय यः कुर्यात्सयतेन्द्रियः ।

आप्तोर्यामस्य यज्ञस्य द्विगुण फलमश्नुते ॥१४

इस प्रकार से भगवान् विष्णुदेव की सेवा में परम शुभ मास व्रत का समर्पण करके उसी दिन से एक मास पर्यन्त भगवान् विष्णु के मन्दिर में ही निवास करे ॥ ८ ॥ प्रति दिन भगवान् को पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिए और उस पूरे मास में देवालय में अखण्ड दीपक को प्रज्वलित रखना चाहिये ॥ ९ ॥ प्रतिदिन चिरचिटा की दांतुन करे और भगवान् नारायण की भक्ति में मग्न रहता हुआ स्नान करे ॥ १० ॥ इसके अनन्तर भगवान् को स्नान करावे और पूर्ववत् परम समाहित होकर विष्णुदेव का अर्चन करना चाहिये । जब इस रीति से व्रत करते हुए मास का अन्त होवे तब उस अवसान काल में जितनी अपनी आर्थिक शक्ति हो उसी के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन श्रद्धापूर्वक कराना चाहिए । तथा उचित दक्षिणा देवे । ब्रह्मभोज और दक्षिणा के बिना कोई भी अनुष्ठान सफल नहीं हुआ करता है । पुष्कट दक्षिणा देने में कृपणता करना महान् मूर्खता है ॥ ११ ॥ अपनी समस्त इन्द्रियो को दश में रखकर फिर स्वयं भी बान्धवगण के साथ भोजन करना चाहिये । व्रतधारी पुरुष को तेरह मासोपवाम ( मास भर के व्रत ) करने चाहिए ॥ १२ ॥ जब वर्ष पूर्ण हो जावे तो किसी वेदों के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण को दक्षिणा के सहित गौ का दान देना चाहिये । इस समय में सविधि बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा यथा शक्ति दक्षिणा तथा भूषण ब्राह्मणों को देवे ॥ १३ ॥ जो पुरुष तीन मास का व्रतोपवास करता है और इन्द्रियो पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता

व्रती को नरमघ यज्ञ का पाँच गुना पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है ॥१६॥ जो पुरुष नौ बार इस व्रत को कर लेता है उस पुरुष को गोमेघ यज्ञ का त्रिगुणित फल प्राप्त हुआ करता है ॥२०॥ हे महान् श्रेष्ठ मुनिवर ! इस पराक व्रत का जो मनुष्य दस बार कर लिया करता है उस व्रतधारी पुरुष को ब्रह्ममेघ यज्ञ का त्रिगुना पुण्य फल मिला करता है ॥२१॥

एकादश पराकाशच य कुर्यात्सयतेन्द्रिय ।  
 स याति हरिसारूप्य सर्वभोगसमन्वितम् ॥२२॥  
 त्रयोदश पराकाशच य कुर्यात्प्रयतो नर ।  
 स याति परमानन्द यत्र गत्वा न शोचति ॥२३॥  
 मासोपवासनिरता गङ्गास्नानपरायणा ।  
 धर्ममार्गप्रवक्तारो मुक्ता एव न सशय ॥२४॥  
 अवीराभिश्च नारीभिर्द्येतिभिर्ग्रहाचारिभि ।  
 मासोपवास कर्त्तव्यो वनस्थैश्च विशेषत ॥२५॥  
 नारी वा पुरुषो वापि व्रतमेतत्सुदुलभम् ।  
 कृत्वा मोक्षमवाप्नोति योगिनामपि दुलभम् ॥२६॥  
 गृहस्थो वानप्रस्थो वा व्रती वा भिक्षुरेव वा ।  
 मूर्खो वा पण्डितो वापि श्रुत्वैतन्मोक्षभागभवेत् ॥२७॥  
 इदं पुण्य व्रताख्यानं नारायणपरायण ।  
 शृणुयाद्वाचयेद्वापि सर्वपापं प्रमुच्यते ॥२८॥

जो कोई सुदृढ मनुष्य इन्द्रिय जित होकर ग्यारह पराक व्रत कर लेता है वह मन्त्र सुखोपभोग से परिपूर्ण श्री हरि के सारूप्य को प्राप्त कर लिया करता है ॥२२॥ जो कोई मनुष्य प्रयत्न पूर्वक तमह पराक व्रत का साङ्गापाङ्ग कर लेता है । इसकी प्राप्ति करके फिर उसको कभी भी शोक करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ करता है ॥ २३ ॥ जो मासोपवास करत है गङ्गा स्नान में जो परायण रहत है

और धर्म का प्रचार करते हैं वे युक्त ही होते हैं ॥२४॥ पति-पुत्रादि से रहित नारी, सन्यासी, वानप्रस्थ और ब्रह्मचारी को यह व्रत ध्यानपूर्वक करना चाहिए ॥२५॥ कोई स्त्री हो या पुरुष हो जो इस महान् दुर्लभ एव कठिन व्रत को कर लेता है उसको बड़े-बड़े योगाभ्यासियों को भी अति दुर्लभ मोक्ष प्राप्त हो जाया करता है ॥२६॥ जो कोई गार्हस्थ्य-श्रमी हो चाहे वानप्रस्थ हो अथवा भिक्षु ( सन्यासी ) हो या ब्रह्मचारी हो, मूर्ख हो अथवा विद्वान् हो इस व्रत के इस विधान एव आख्यान को श्रवण करके ही मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करता है ॥ २७ ॥ जो भगवान् की भक्ति में परायण पुरुष इस परम पवित्र व्रत के आख्यान का श्रवण करता है अथवा इसका पठन किया करता है वह समस्त प्रकार के महापापों से भी मुक्त होजाया करता है तथा उसकी अन्त में सद्गति हो जाती है ॥२८॥

गन्तव्यं च

## ॥ एकादशी व्रत—भद्रशील उपाख्यान ॥

इदमन्यत्प्रवक्ष्यामि व्रत त्रैलोक्यविश्रुतम् ।  
 सबपापप्रशमन सर्वकामफलप्रदम् ॥१॥  
 ग्राह्यक्षत्रियविशा शूद्राणां चैव योपिताम् ।  
 मोक्षदं कुर्वता भक्त्या विष्णो प्रियतरं द्विज ॥२॥  
 एकादशीव्रतं नाम सर्वाभीष्टप्रदं नृणाम् ।  
 कर्त्तव्यं सर्वथा त्रिषु विष्णुप्रीतिरयं यत ॥३॥  
 एकादश्या न भुञ्जीत पक्षयारुभयारणि ।  
 यो भुङ्क्ते सोऽत्र पापीयान्परत्र नरकं व्रजेत् ॥४॥  
 उपवासपत्रं निष्पुर्जं तदाऽभुक्तिरुत्तमम् ।  
 पूर्वापरदिने रात्रावहोरात्र तु मध्यमे ॥५॥

एकादशीदिने यस्तु भोक्तुमिच्छति मानव ।

स भोक्तु सर्वपापानि स्पृहयालुन सशय ॥६॥

भवेद्दशम्यामेकाशी द्वादश्या च मुनीश्वर ।

एकादश्या निराहारो यदि मुक्तिमभीप्सति ॥७॥

श्री सनकाचार्य महर्षि ने कहा—हे नारद ! अब मैं आपके समक्ष मे सम्पूर्ण पापों को शांत करवा देने वाले और सभी मनोकामनाओं को पूरा एवं सफल करने वाले तथा त्रिलोकी में परम प्रतिष्ठित एक अन्य महा व्रत का वर्णन करता हूँ ॥१॥ यह महा व्रत भगवान् विष्णु को परम प्रिय है । स्त्री हो या पुरुष ब्राह्मण हो या क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी इस व्रत का बड़ी भारी निष्ठा एवं भक्ति के साथ किया करता है उसको यह व्रत मोक्ष दे दिया करता है ॥२॥ यह व्रत मानवा की मन की कामनाओं को पूरा कर दिया करता है । इस व्रत का नाम एकादशी व्रत है । इस व्रत को सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक अवश्य ही करना चाहिये क्योंकि यह व्रत भगवान् विष्णु को अधिक प्रसन्न करने वाला बताया गया है ॥३॥ मास में दो पक्षा में एकादशी तिथि आया करती है । इस दिन भोजन विलुप्त नहीं करना चाहिए । जो एकादशी के दिन भोजन किया करता है वह महा पापी कहा जाया करता है । परलोक में उसे घोर नरक की यातना सहनी पड़ती है ॥४॥ इस उपवास के पूरा करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति का चार समय के भोजन का त्याग करना पड़ता है । दशमी तिथि को रात्रि का भोजन, एकादशी में दोना समय का भोजन और द्वादशी तिथि को रात्रि के समय का भोजन त्याग देना चाहिए ॥५॥ जो मनुष्य एकादशी तिथि के दिन भोजन करने की इच्छा किया करता है उसको माना नहीं पाया के पुण्य की भावने का भाव है ॥६॥ हे मुनिवर ! यदि मुक्ति के प्राप्त करने की इच्छा हो तो दशमी और द्वादशी को

एक २ बार ही भोजन करे और एकादशी को निराहार रहना चाहिये  
॥ ७ ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।  
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति तानि विप्र हरेर्दिने ॥८॥  
ब्रह्महत्यादिपापानां कथंचिन्निष्कृतिर्भवेत् ।  
एकादश्या तु यो भुङ्क्ते तस्य नैवास्ति निष्कृतिः ॥९॥  
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ।  
एकादश्या निराहारः स्थित्वा याति परा गतिम् ॥१०॥  
एकादशी महापुण्या विष्णो प्रियतमा तिथिः ।  
ससेव्या सर्वथा विप्रैः ससारच्छेदलिप्सुभिः ॥११॥  
दशम्या प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।  
स्नापयेद्विधिवद्विष्णु पूजयेत्प्रयतेन्द्रियः ॥१२॥  
एकादश्या निराहारो निगृहीतेन्द्रियो भवेत् ।  
शयीत सन्निधौ विष्णोर्नारायणपरायणः ॥१३॥  
एकादश्या तथा स्नात्वा सम्पूज्य च जनार्दनम् ।  
गन्धपुष्पादिभिः सम्यक् ततस्त्वेवमुदारयत् ॥१४॥

हे विप्रवर ! श्री हरि के दिन में ब्रह्म हत्या प्रभृति सम्पूर्ण पाप अन्न वा समाश्रय लेकर रहा करत हैं ॥ ८ ॥ ब्रह्महत्या आदि महापातकों से तो उपाय करने पर किसी प्रकार से छुटकारा प्राप्त हो भी सकता है किन्तु एकादशी के दिन अन्न का भोजन करने वाले को पापों से छुटकारा पाने का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं होता है । १६। चाहे कोई कितन ही महा पातक करन वाला हो उससे सभी पातक एकादशी का निराहार यत्न करन से नष्ट होजाया करत है और यह यत्न करन परमगति को प्राप्त होजाया करता है ॥१०॥ यह एकादशी भगवान की परम प्रिय महा पुण्यमयी तिथि है अतः जो सांसारिक बन्धन पाटना चाहत हैं उनको इस तिथि के दिन अवश्य ही या

कृत्वा चाहिए ॥११॥ दशमी के दिन प्रातः काल उठकर दांतुन करे और सब इन्द्रियो को अपने वश में करके भगवान् विष्णु को स्नान करवावे तथा स्वयं प्रथम स्नान करके फिर भगवान् का षोडशोपचार विधि में पूजन करना चाहिए ॥१२॥ एकादशी के दिन निराहार रह कर इन्द्रियजित रहे और भगवान् के चरणों में दृढ़ भक्ति रखता हुआ नारायण की प्रतिमा के समीप में ही शयन करना चाहिए ॥ १३ ॥ एकादशी तिथि के दिन स्वयं स्नान कर परम शुचि होकर जनार्दन भगवान् का गन्ध पुष्पादि से भक्ति की भावना से पूजन कर फिर भगवान् से निम्न रीति से प्रार्थना करनी चाहिए ॥१४॥

एकादश्या निराहार स्थित्वाद्याह परेऽहनि ।

मोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरण मे भवाच्युत ॥१५॥

इमं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिण ।

भक्तिभावेन तुष्टात्मा उपवास समर्पयेत् ॥१६॥

देवस्य पुरतः कुर्याज्जागर नियतो व्रती ।

गीतेर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणश्रवणादिभिः ॥१७॥

सतः प्रातः समुत्थाय द्वादशीदिवसे व्रती ।

स्नात्वा च विधिवद्विष्णुं पूजयेत्प्रयतेन्द्रिय ॥१८॥

पञ्चामृतेन सस्नाप्य एकादश्या जनार्दनम् ।

द्वादश्या पयसा विप्रं हरिसारूप्यमश्नुते ॥१९॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ।

प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥२०॥

एव विज्ञाप्य विप्रेन्द्र माधव सुसमाहित ।

ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्दे दक्षिणा तथा ॥२१॥

‘एकादश्या निराहार स्थित्वाद्याह परेऽहनि । मोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरण मे भवाच्युत’ अर्थात् हे पुण्डरीकाक्ष । मैं एकादशी के दिन निराहार रह कर फिर दूसरे दिन भोजन करूँगा । हे अच्युत !

आप मुझे अपनी शरण में लीजिये अर्थात् आप मुझे इस व्रत को पूर्ण करने की शक्ति प्रदान कीजिये ॥१५॥ इस मन्त्र का उच्चारण कर अपने हृदय में प्रसन्न होता हुआ चक्रधारी भगवान् देवदेवेश्वर की सेवा में भक्ति के साथ अपने उपवास को समर्पित कर देवे ॥१६॥ (व्रत-धारी पुरुष का कर्त्तव्य है कि अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर भगवान् के समक्ष में गायन, वाद्य और नृत्य करते हुए पुराण श्रवण करके रात्रि में जागरण करना चाहिये ॥१७॥) धृती पुरुष को द्वादशी के दिन प्रातःकाल में उठ कर स्नान करे और इन्द्रियों पर नियन्त्रण करते हुए विधि पूर्वक विष्णु का पूजन करे ॥१८॥ एकादशी में जनार्दन भगवान् को पञ्चामृत से स्नान करावे और द्वादशी में दुग्ध से स्नान करावे । इस तरह करने से मनुष्य को साक्षात् भुक्ति प्राप्त हुआ करती है ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर भगवान् से प्रार्थना करे—“अज्ञान तिमिरान्धस्य घतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञान इष्टि प्रदो-भव” अर्थात् हे केशव ! मैं अज्ञान के अन्धकार होने के कारण अन्धा हो रहा हूँ । मेरे इस व्रत के समाधरण से आप प्रसन्न भूख होकर कृपया मुझको ज्ञान की दृष्टि प्रदान कीजिए ॥२०॥ हे विप्रप्रवर ! इस रीति से बहुत ही सावधानता के साथ माधव भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए । इसके अनन्तर अपनी श्रद्धा एवं शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे और पुष्कल दक्षिणा समर्पित करे ॥२१॥

ततः स्वयन्धुर्भिः सार्द्धं नारायणपरायणः ।

कृतपञ्चमहायज्ञः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२२॥

एवं यः प्रयतः कुर्यात्पुण्यमेकादशीव्रतम् ।

स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२३॥

उपवासव्रतपरो धर्मकार्यपरायणः ।

चाण्डालान्पतितान्चैव नेदोदपि कदाचन ॥२४॥

नास्ति तान्निभन्नमर्यादान्निन्दकान्पिशुनारतया ।

उपवासव्रतपरो नालपेच्च कदाचन ॥२५॥  
 वृषलीसूतिपोष्टार वृषलीपतिमेव च ।  
 अयाज्ययाजक चैव नालपेत्सर्वदा व्रती ॥२६॥  
 कुण्डाशिनं गायक च तथा देवलकाशिनम् ।  
 भिषज काव्यकर्तार देवद्विजविरोधिनम् ॥२७॥  
 परान्नलोलुप चैव परस्त्रीनिरत तथा ।  
 व्रतोपवासनिरतो वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥२८॥

इसके उपरान्त भगवान् नारायण के ध्यान में तत्परता रख कर पञ्च यज्ञ करे तथा इसके पश्चात् अपने बन्धु-वर्धवों के साथ बैठ कर स्वयं भी भोजन करना चाहिए ॥२२॥ इस विधि से जो लोग सावधानी के साथ इस परम पवित्र एकादशी के महा व्रत को किया करते हैं वे सीधे विष्णु लोक को गमन किया करते हैं जहाँ से पुनः लौट कर वापिस भूलोक में नहीं आते हैं ॥२३॥ इस उपवास के परम धार्मिक कृत्य में सलग्न रहने वाले व्रतधारी पुरुष को चाहिए कि उसे चाढालो तथा पतितों को भी देखना नहीं चाहिए ॥ २४ ॥ उपवास करने वाले पुरुष को नास्तिकों से, मर्यादा के भङ्ग करने वालों से, धर्म की निन्दा करने वालों से और जो धुमसी किया करते हैं उन लोगों से कभी बात भी नहीं करनी चाहिए ॥२५॥ व्रती पुरुष को शूद्रा दाई के पति और वृषली पति यज्ञ न कराने के योग्य पात्र को यज्ञ कराने वाले पुरुष से भी बातें नहीं करनी चाहिये ॥२६॥ जो पति के जीवित रहने पर भी अन्य जार से समुत्पन्न पुत्र के घर में भोजन किया करता है। गायन करने वाले भाट, जो केवल द्रव्य के लिये ही देव पूजा करता है, उसके जो अन्न का सेवन करने वाला है, दया भाव से न करके केवल धन की कमाई के लिए बंध वृत्ति करता है, जो भाटों की वृत्ति किया करना है और जो देव और विप्रों से विरोध किया करता है, जिसका पराया अन्न खाने के लिये



लार टपका करती है और जो दूसरे की स्त्री से व्यभिचार करता है, इन सबके साथ उपवास करने वाले ब्राह्मारी पुरुष को वाणी मात्र से भी सत्कार नहीं करना चाहिए ॥२७॥२८॥

इत्येवमादिभि शुद्धो वशी सर्वंहिते रत ।

उपवासपरो भूत्वा प । सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२६

नास्ति गङ्गासम तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरु ।

नास्ति विष्णुसम दैव तपो नानशनात्परम् ॥३०

नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसम धनम् ।

नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसम पिता ॥३१

न विवेकसमो बन्धुर्नैकादृश्या पर व्रतम् ।

अतात्पुदाहरतीममितिहास पुरातनम् ॥३२

सवाद भद्रशीलस्य तत्पितुर्गालवस्य च ।

✓ पुरा हि गालवो नाम मुनि सत्यपरायण ॥३३

उवास नर्मदातीरे शान्तो दान्तस्तपोनिधि ।

बहुवृक्षसमाकीर्णो गजभल्लुनिपेविते ॥३४

सिद्धचारणगन्धर्वयक्षविद्याधरान्विते ।

कन्दमूलफलै पूर्णो मुनिवृन्दनियेविते ॥३५

गालवो नाम विप्रेन्द्रो निवासनकरोच्चिरम् ।

तस्याभवद्भद्रशील इति ख्यात सुतो वशी ॥३६

इस विधि से परम शुद्ध होकर तब इन्द्रियो को अपने वश में रखकर सब प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाला पुरुष एकादशी का उपवास करके परमोत्तम सिद्धि का भोग किया करता है ॥ २६ ॥ गङ्गा के समान तीर्थ, माता के समान गुरु, विष्णु भगवान के समान देवता और अनशन अर्थात् उपवास के समान तप कोई भी नहीं होता है ॥३०॥ माता व समान दामाशील अन्य कोई भी दामा करने वाला नहीं होता है, कीर्ति के तुल्य इस जगत में अन्य कोई भी धन

सर्वेषां जगतां स्वस्ति भूषादित्यवदादिदम् ॥४१॥

क्रीडाकाले मुहूर्तं वा मुहूर्ताद्विमयापि वा ।

एकादशीति सकल्य व्रतं यच्छति केशवे ॥४२॥

इस भद्रशील पुत्र को अपने पूर्व जन्म का हाल सब स्मरण था और महान भाग्य वाला बालक अर्हनिश भगवान् नारायण के ध्यान में ही तत्पर रहा करता था । महान मनु वाला भद्रशील बालक अपनी शैशवावस्था में ही बालोचित क्रीडा के समय में भी मिट्टी की विष्णु की प्रतिमा का निर्माण कर उसका पूजन किया करता था और अपने समस्त साथियों से भी यही बहा करता था कि मानवों को भगवान् विष्णु देवेश्वर की पूजा सर्वदा और अवश्य ही करनी चाहिये । ३७।३८। हे मुनिवर ! यह एकादशी का महान व्रत पण्डितों को भी अवश्य करना चाहिए । इस प्रकार से महत्व समझा २ कर छोटे २ बच्चों में भी ज्ञान का प्रसार कर दिया था ॥३९॥ इसका प्रभाव यह हुआ कि वे बालक भी विष्णु-भक्ति में मग्न होकर पृथक् २ करके या सब मिलकर मिट्टी की प्रतिमा बना कर सानन्द उसका अर्चन करने लगे थे ॥४०॥ भद्रमति सर्वत्र व्यापक भगवान् विष्णु का स्तवन करके कहा करता था । सर्व जगत् का कल्याण हो ॥४१॥ वह बालक अपने खेल के समय में ही एक या आधे मुहूर्त के लिए एकादशी व्रत का सकल्य करके फिर भगवान् के अर्पण करने का कर्म भी किया करता था ॥४२॥

एव सुचरितं दृष्ट्वा तनय गालवो मुनिः ।

अपृच्छद्विरययाविष्टं समालिख्य तपोनिधिः ॥४३॥

भद्रशील महाभाग भद्रशीलोऽसि सुव्रत ।

चरितं मगल यत्ते योगिनामपि दुर्लभम् ॥४४॥

हरिपूजापरो नित्यं सर्वभूतहिते रत ।

एकादशीव्रतपरो निषिद्धाचारवर्जितः ।

निद्वन्द्वो निर्मम शातो हरिध्यानपरायण ॥४५॥  
 एवमेतादृशी बुद्धि कथं जाताभक्तस्य ते ।  
 विनापि महता सेवा हरिभक्तिर्हि दुर्लभा ॥४६॥  
 स्वभावतो जनस्यास्य ह्यविद्याकामकर्मसु ।  
 प्रवर्तते मतिर्घट्स कथं तेऽलौकिकी वृत्ति ॥४७॥  
 सत्सङ्गेऽपि मनुष्याणां पूर्वपुण्यातिरेकतः ।  
 जायते भगवद्भक्तिस्तदहं विस्मय गत ॥४८॥  
 पृच्छामि प्रीतिमापन्नस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ।  
 भद्रशीलो मुनिश्चेष्ट पित्रैव सुविकल्पित ॥४९॥  
 जातिस्मरं सुकृतात्मा हृष्टप्रहसिताननः ।  
 स्वानुभूतं यथावृत्तं सर्वं पित्रे न्यवेदयत् ॥५०॥

तपोमूर्ति महर्षि गालव भी अपने छाटे से पुत्र के इस तरह के सुन्दर एवं सत् चरित्र को देख कर परम विस्मित होकर उसका प्रेम-  
 तिङ्गन कर उससे पूछने लगे थे ॥४३॥ श्री गालव महर्षि ने कहा—  
 हे सुव्रत महाभाग भद्रशील । तुझ जैसा अतिशय माङ्गलिक चरित्र  
 योगिराजो मे भी प्राप्त होना अति कठिन है ॥४४॥ हम देखते हैं कि तू  
 सर्वदा समस्त प्राणियों के हित में सलग्न रहकर भगवान् विष्णु की  
 पूजा करता है और एतादृशी का व्रत किया करता है तथा कभी भी  
 कोई निषिद्ध आचरण नहीं करता है । सासारिक ममता तथा द्वन्द्वा के  
 बन्धन से अलग रहता हुआ परम शान्त भाव से भगवान् का ध्यान  
 किया करता है ॥४५॥ छाटे बालक की अवस्था में ही तुझे ऐसी  
 पारमार्थिक बुद्धि कहाँ से कैसे उत्पन्न हो गई है ? बड़ा की सेवा विना  
 श्री हरि की भक्ति अत्यन्त दुर्लभ हुआ करती है ॥४६॥ साधारणतया  
 सत्संग में मनुष्या की बुद्धि तो स्वाभाविक रूप से अविद्या के कर्मों में  
 लगी रहती है किन्तु हम देखते हैं कि तेरी बुद्धि सदा सन्माग  
 की ओर ही जाया करती है—वह एक बहुत ही बड़ी अलौकिक बात

ही है ॥४७॥ सत्पुरुषो वा सग होने पर भी देखा जाता है कि पूर्व पुण्यो की अधिरता होने पर ही भानवो के हृदय में भगवद्भक्ति आ कर निवास किया करनी है अतएव मुझे आश्चर्य हो रहा है ॥४८॥ मैं अधिक प्रसन्न होकर ही तुझसे सब भेद की बात जानना चाहता हूँ । वेदा, तू मुझको यह सम्पूर्ण रहस्य खोलकर स्पष्ट बतला दे । मुनिश्रेष्ठ भद्रशील को तो अपने पूर्व जन्म का स्मरण बना ही था । अत अपने पिता की ये बातें सुन कर मुस्कराते हुये वह पुण्यात्मा अपना अनुभव किया हुआ सम्पूर्ण वृत्त कहने लगा था ॥४९॥

शृणु तात मुनिश्रेष्ठ ह्यनुभूत मया पुरा ।  
जातिस्मरत्वाज्जानामि यमेन परिभाषितम् ॥५१॥  
एतच्छ्रुत्वा महाभागो गालवो विष्मयान्वितः ।  
उवाच प्रीतिमापन्नो भद्रशील महामतिम् ॥५२॥  
करत्वं पूर्वं महाभाग किमुक्तं च यमेन ते ।  
कस्य वा केन वा हेतोस्तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥५३॥  
अहमास पुरा तात राजा सोमकुलोद्भवः ।  
धर्मकीर्तिरिति ख्यातो दत्तादगेयेणशासितः ॥५४॥  
नववर्षसहस्राणि मही कृत्स्नामपालयम् ।  
अधर्माश्च तथा धर्मा मया तु बहवः कृता ॥५५॥  
ततः श्रिया प्रमत्तोऽहं बहवधर्ममकारिणम् ।  
पापण्डजनससर्गात्पापण्डचरितोऽभवम् ॥५६॥

भद्रशील ने कहा—हे पिताजी, हे मुनिश्रेष्ठ । मैंने जो भी कुछ अनुभव किया है वह मेरे पूर्व जन्म में यमराज के दिये हुये भाषण का ज्ञान पहिले जन्म की स्मृति बने रहने के कारण खूब अच्छी तरह याद है आप सुनिए ॥५१॥ महाभाग महर्षि गालव यह बात सुनकर अत्यधिक विस्मित हो गये थे । परम प्रसन्न होकर महामति भद्रशील से कहने लगे ॥५२॥ अथ गालव मुनि ने कहा—हे महाभग ! तू पहिले

जन्म मे कौन था ? यमराज ने तुझसे क्या कहा था और किस कारण से कहा था ? तू पहिले किसका शिष्य था—ये सभी हमको सुनाओ ॥५३॥ भद्रशील ने उत्तर दिया कि हे तात । मैं अपने पूर्व जन्म मे धर्मकीर्ति नामक सोमवश मे समुत्पन्न एक राजा था और महा महर्षि श्री दत्तात्रेयजी मुझे उस जन्म मे उपदेश दिया करते थे ॥५४॥ उस जन्म मे मैंने इस सम्पूर्ण भूमण्डल का परिपासन नौ सहस्र वर्ष तक किया था । उस इतने लम्बे समय मे मुझसे बहुत से धर्म अधर्म बन गये थे ॥५५॥ मैं उस समय मैं अपने अतुल ऐश्वर्य के मद मे मत्त होकर नाना प्रकार के अधर्म कर्म करने पर उत रू हो गया था । बहुत से पाखण्डी मनुष्यों के सङ्ग-सम्पर्क से मेरा चरित्र भी महान् पाखण्ड पूर्ण हो गया था ॥५६॥

पुराजितानि पुण्यानि मया तु सुबहून्यपि ।  
पापण्डैर्वाधितोऽहं तु वेदमार्गं समत्यजम् ॥५७॥  
मखाश्च सर्वे विध्वस्ताः कूटयुक्तिविदा मया ।  
अधर्मनिरत मा तु दृष्ट्वा मददेशजा प्रजा ॥५८॥  
सदैव दुष्कृतं चक्रुः पृथाशस्तत्र मेऽभवत् ।  
एव पापसमाचारो व्यसनाभिरत सदा ॥५९॥  
मृगयाभिरतो भूत्वा ह्येकदा प्राविश वनम् ।  
ससंन्योऽहं वने तत्र हत्वा बहुविधान्मृगान् ॥६०॥  
क्षुत्तट्परिवृत आतो रेवातीरमुपागमम् ।  
रविनीध्नातपक्लातो रेवाया स्नानमाचरम् ॥६१॥  
अदृष्टसंन्य एकाकी पीडयमान क्षुधा भृशम् ॥६२॥  
समेतास्तत्र ये केचिद्रेवान्तीरनिवासिनः ।  
एकादशीव्रतपरा मया दृष्टा निशामुखे ॥६३॥

इसके पूर्व पहिले मैं बहुत सा पुण्य का सञ्चय किया था किन्तु फिर मैंने पाखण्डी पुरुषों की सङ्गति मे पडकर उनके द्वारा

वाधायें उपस्थित करने के कारण वेद मार्ग का सर्वथा परित्याग ही कर दिया था ॥५७॥ मैं बहुत सी कूटयुक्तियों का ज्ञाता था अतएव सभी प्रकार के यज्ञादि उत्तम कर्मों का त्याग कर दिया था । मेरी प्रजा ने जब मुझे अधमं परायण देखा था तो वह भी सर्वदा अधर्म में ही निरत हो गयी थी और उसका छठवाँ भाग भुग पर भी शास्त्र कथन के अनुसार पढ़ने लग गया था । इस रीति से पाप कर्मों में डूबा हुआ मैं बहुत से दुष्कर्मों में रति रखने लग गया था । एक समय मैं अपने सैनिकों के साथ भ्रमया करता हुआ एक परम गहन वन में प्रविष्ट हो गया था और बहुत से भृगो की शिकार की थी ॥५८-६०॥ इसके पश्चात् महान बुभुक्षित एवं तृप्ति होकर मैं गया हुआ रेवा नदी के तीर पर पहुँच गया था । उस समय मैं सूर्य के परम तीक्ष्ण आतप के ताप में सतप्त हुए मैंने रेवा नदी में अवगाहन किया था ॥६१॥ उस समय मैं बिल्कुल एकाकी ही था । मेरी सेना भी मुझे कहीं दिखाई नहीं दे रही थी । मैं क्षुधा से अत्यधिक बेचैन होकर तड़फड़ा रहा था ॥ ६२ ॥ मन्थरा के समग्र मे मैंने वहाँ एकादशी का व्रत करने वाले, रेवा नदी के तीर पर निवास करने वाले लोगों को एकत्रित हुए देखा था ॥६३॥

निराहारश्च तत्राहगेकाकी तज्जनै सह ।  
जागर कृतवाश्चापि सेनया रहितो निशि ॥६४॥  
अध्वश्चमपरिश्चात् क्षुत्पिपासाप्रपीडित ।  
तत्रैव जागरान्तेऽहं तात पचत्वमागत ॥६५॥  
ततो यमभटेर्बन्धो महादष्ट्राभयकरै ।  
दष्ट्राकरालवदनमपश्य समवर्तिनम् ॥६६॥  
अथ कालश्चित्तगुप्तमाहूयेदमभाषत ।  
अस्य शिक्षाविधानं च यथावद्वद पण्डित ॥६७॥  
एवमुक्तश्चित्तगुप्तो धर्मराजेन सत्तम ।

चिर विचारयामास पुनश्चेदमभापत ॥६८॥  
 अभी पापरतः सत्यं तथापि शृणु धर्मम् ।  
 एकादश्या निराहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६९॥  
 एष रेवातटे रम्ये निराहारो हरेदिने ।  
 जागरं चोपवासं च कृत्वा निष्पापता गतः ॥७०॥

उस समय मे मेरे समीप मे सैनिक लोग तो ये ही नही अत-  
 एव मैंने भी उन लोगो के साथ वहाँ पर अकेला रह जाने के कारण  
 विवश होकर रात्रि जागरण किया था ॥६४॥ मैं उस समय मे दिन  
 भर इधर उधर घन मे भटकते रहने के कारण अधिक थान्त हो गया  
 था और भूख-प्यास से भी अधिक पीडित था । अतएव हे तात । मैं  
 उस रात्रि जागरण के समाप्त होते ही वही पर मर गया था ॥६५॥  
 उस समय मे महान भीषण लम्बी २ दाढो वाले यमराज के दूतो ने  
 आकर मुझे पाशो मे बद्ध कर लिया था और अत्यन्त पीडा देने वाले  
 मार्ग मे होकर मुझे ले गये थे और यमराज के समीप मे पहुँचा दिया  
 था । वहाँ पर मैंने भयङ्कर मुखाकृति वाले परम विकराल यमराज को  
 देखा था ॥६६॥ उस समय मे उस काल पुरुष ने तुरन्त चित्रगुप्त को  
 बुलाकर उससे पूछा था-हे पण्डित । बतलाओ, इस दुष्ट को क्या  
 शिक्षा देनी चाहिए ॥६७॥ हे तात । धर्मराज के इस तरह से पूछने  
 पर वह चित्रगुप्त बहुत समय तक विचारो मे निमग्न होकर उनसे कहने  
 लगे थे ॥६८॥ हे धर्मराज । निस्सन्देह यद्यपि यह प्राणी पहले बहुत ही  
 अधिक पापो मे निरत रहता था नो भी यह घटना हुई कि जो भी  
 कोई कैसा भी क्यों न हो एकादशी के दिन निराहार रहता है वह सभी  
 पापो से छूट जाया करता है ॥६९॥ यह भी उस हरि के दिन मे  
 परम रमणीय एवं महान पावन रेवा के तट पर निराहार व्रत और  
 रात्रि जागरण करके अब तो बिल्कुल निष्पाप होगया है ॥७०॥  
 यानि कानि च पापानि कृतानि मुक्नुहि च ।

तानि सर्वाणि मष्टानि ह्युपवासप्रभावतः ॥७१॥  
 एवमुक्तो धर्मराजश्चित्रगुप्तेन धीमता ।  
 ननाम दडवद्भूमौ ममाग्रे सोऽनुकपितः ॥७२॥  
 पूजयामास मा तत्र भक्तिभावेन धर्मराट् ।  
 ततश्च स्वभटान्सर्वानाहूयेदमुवाच ह ॥७३॥  
 शृणुध्व मद्बचो दूता हित वक्ष्याम्यनुत्तमम् ।  
 धर्ममागस्तान्मर्त्यान्मानयध्व ममान्तकम् ॥७४॥  
 ये विष्णुपूजनरताः प्रयतः ।

कृतज्ञाश्चैकादशीव्रतपरा ।

नारायणाच्युत हरे शरणभवेति

शातावदन्ति सतत सरसात्यजध्वम् ॥७५॥

नारायणाच्युत जनार्दन कृष्ण विष्णो

पद्मेशः पद्मजपितः शिव शकरेति ।

नित्य वदत्यखिललोकहिताः प्रशान्ता

दूराद्भटास्त्यजत तान्तु ममैष शिक्षा ॥७६॥

नारायणार्पितकृतान्हरिभक्तिभाजः

स्वाचारमार्गनिरतान् गुरुसेवकाश्च ।

सत्पात्रवाननिरताश्च सुदीनपाला-

न्दूतास्त्यजध्वमनिश हरिनामसक्तान् ॥७७॥

इसने अपने पूरे जीवन-काल में जो भी महान् घोरतम पाप  
 किये थे वे सभी एक साथ एकादशी के प्रबल प्रभाव से नष्ट होगये हैं  
 और यह अत्र पूर्णतया विषुद्धात्मा हो गया है ॥७१॥ महान् मति-  
 मान चित्रगुप्त के द्वारा ऐसा बचन किय जाने पर धर्मराज ने परम  
 अनुकम्पित होकर भूमि में मेरे समक्ष में पात करके मुझे दण्डनत्प्रणाम  
 किया था ॥७२॥ इसके पश्चात् बहुत ही अधिक भक्ति की भावना से  
 धर्मराज ने मेरा सत्कार किया था और फिर उसने अपने दूतों को



बुलाकर यह आदेश दिया था कि हे दूतो ! अब तुम लोग अपने कान खोल कर भली भाँति मेरे हितप्रद वचनों का श्रवण कर लो । जो प्राणी किसी भी धर्म के मार्ग में चल रहे हो उनको कभी भूल कर भी मेरे पास मत लाया करो ॥७३॥७४॥ जो भगवान् विष्णु दैवेश्वर की अर्चना में निरत रहा करते हो—जो समय का पूर्ण पालन करते हो—जो किये हुए उपकार को मानते हो—जो एकादशी का व्रत किया करते हो—जो इन्द्रियो को अपने वश में रखते हो—जो परम शान्त भाव से अपने मुख से ऐसा कहा करते हैं—“हे नारायण । हे हरे । हे अच्युत । मुझे शरण प्रदान कीजिए” तुम्हारा यह उस समय पर आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिए कि ऐसे प्राणियों को नुरन्त ही छोड़ दो ॥७५॥ अरे दूतो । मैं तुमको तुम्हारे ही कल्याण के लिये यह शिक्षा देता हूँ कि जो भी कोई प्राणी सबका हित चाहते हुए परम शान्त भाव से एवाग्र होकर हे नारायण । हे जनार्दन । हे अच्युत । हे विष्णो । हे पद्मा के ईश । हे ब्रह्मा के जनक । हे शिव । हे शङ्कर । इस तरह में नित्य ही अपने मुख से उच्चारण किया करते हो उनसे तुमको बहुत दूर से बचकर रहना चाहिये ॥ ७६ ॥ अरे दूतो । आप अच्छी तरह समझ लो जिन प्राणियों ने अपने आपको भगवान् नारायण के चरणों में समर्पित कर दिया हो, जो विष्णु भक्ति में रत हैं, जो सदा सदाचरण का पालन किया करते हैं, जो अपन पूजनीय बड़ा का मवा सत्कार किया करते हैं, जो सत्पान पुरुषों को सर्वदा दान दिया करते हैं, जो दीन दुखियों का परिपालन किया करते हैं अथवा श्रीहरि नाम में ही परायण किया करते हैं उनका तुम लोग सदा ही छोड़ दिया करो ॥७७॥

पापडमद्गहिनान्द्रिजभक्तिनिष्ठान्म-

स्मगलोलुपरताश्च तथातिथेयान् ।

समौ हरो च सममुद्धिमतस्तथैव दूतास्त्य-

जध्वमुपकारपराञ्जनानाम् ॥७८॥

ये वर्जिता हरिकयामृतसेवनैश्च

नारायणस्मृतिपरायणमानसैश्च ।

विप्रैर्द्रपादजलसेचनतोऽप्रहृष्टास्ता-

न्यापिनो भम भटा गृहमानयध्वम् ॥७६॥

ये मातृतातपरिभर्त्सनशीलिनश्च

लोकद्विषो हितजनाहितकर्मणश्च ।

देवस्वलोभनिरताञ्जनाशर्तृननानयध्वमपराधपराश्च दूता ॥७७॥

एकादशीव्रतपराङ्मुखग्रशील लोकापवादनिरत परनिदक च ।

ग्रामस्यना शकरमुत्तमवैरयुक्त

दूता समानयत विप्रधनेषु लुब्धम् ॥७८॥

ये विष्णुभक्तिविमुखा प्रणमन्ति नैव

नारायण हि शरणागतपालक च ।

विष्णुवालय च नहि याति नरा सुमुख-

स्तानानयध्वमतिपापरतान्प्रसह्य ॥७९॥

एव श्रुत यदा तत्र यमेन परिभाषितम् ।

मयानुतापदग्धेन स्मृत तत्कर्म निदितम् ॥८०॥

असत्कर्मनुतापेन सद्धर्मश्रवणेन च ।

तत्रैव सर्वपापानि नि जेषाणि गतानि मे ॥८१॥

जो मनुष्य पाखण्डियो की सङ्गति से दूर रहा करते हो, जो विप्रों के परम भक्त हों, जो सत्यज्ञ के लिए पद लोलुप रहने वालों में हादिक प्रेम करते हों, जो सदा अतिथियों का सत्कार किया करते हों, जो भगवान विष्णु और शिव में अभेद्य बुद्धि रखते हो अथवा जो सवदा मानवा के उपकार करन में उद्यत रहत हो एम जीवों स तुमका बहुत दूर बचकर ही रहना चाहिए ॥७८॥ यमराज ने फिर यह कहा- हूँ दूतो । जो कभी भी श्री हरि की कथा रूपा अमृत का पान न किया करते हो, जो भगवान नारायण की स्मृति में अपने चित्त को लगान

## नारद पुराण ]

वानो से मदा दूर तथा बचकर रहा करते हो, ब्राह्मणों में अपने चरण धुनवाकर प्रसन्न हुआ करते हो तथा विप्रों के चरणों को धोने से जिनको अप्रसन्नता होती हो, उन महा पापात्मा लोगों को ही तुम पकड़ कर मेरी सभा में उपस्थित किया करो ॥७६॥ जिनका स्वभाव ही ऐसा बन गया हो जो सदा अपने माता-पिता का तिरस्कार ही किया करें, जो हितैषी लोगों का अहित कर्म किया करते हो, जो देव धन में भी लोभ रखते हो, जो बुरी २ बातें बताकर भोले-भाले लोगों को बिगाड़ते रहा करते हो, ऐसे महान् अपराध करने वालों को तुम लोग वर्गवश बद्ध करके मेरे सामने उपस्थित किया करो ॥ ८० ॥ जो मनुष्य एकादशों के व्रत में हटता हो, जो सदा ही मनुष्यों की निन्दा किया करते हो, जो बुरे कर्मों में ही सदा रति रखते हो, जो ग्राम को उजाड़ता हो, जो सबके साथ कठोर व्यवहार किया करते हो, जो सज्जनों से दुश्मनी रखा करते हो, ब्राह्मणों के धन पर लालच किया करते हो उन महापापियों को तुम्हारा कर्तव्य है कि हठात् पसीट कर मेरे पास लाया करो ॥८१॥ जो विष्णु भक्ति से विमुख हो, जो सदा शरणागतों के पालन नारायण प्रभु को प्रणाम न किया करते हो और कभी भी विष्णु मन्दिर में न शक्ति हो, ऐसे पाप परायण पुरुषों को जबर्दस्ती पकड़ कर मेरी सभा में ले आया करो ॥८२॥ उस समय में जब मैंने यमराज का इस प्रकार का विस्तृत भाषण सुना तो मैंने अपने महान् निन्दित दूत कर्मों का स्मरण किया और बड़ा भारी मुझको पश्चानाप हुआ था ॥८३॥ अपने किये हुए पाप कर्मों का पश्चात्ताप करने से और सद्गमों का श्रवण करने से मेरे समस्त पाप यही पर विनष्ट हो गये थे ॥८४॥

पापशेषाद्विनिर्मुक्त हरिसारूप्यता गतम् ।  
 सहस्रमूर्यसकाश प्रणनाम यमश्च तम् ॥८५॥  
 एव दृष्ट्वा विस्मितास्ते यमदूता भयोत्कटाः ।  
 विश्वास परम चक्रुर्मनः परिभाषिते ॥८६॥

ततः संपूज्य मा काली विमानशतसकुलम् ।  
 सद्यः संप्रेषयामास तद्विष्णोः परमपदम् ॥८७॥  
 विमानकोटिभिः सार्द्धं सर्वभोगसमन्वितं ।  
 कर्मणा तेन विप्रर्षे विष्णुलोके मयोपितम् ॥८८॥  
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।  
 स्थित्वा विष्णुपदं पश्चादिन्द्रलोकमुपागमम् ॥८९॥  
 तत्रापि सर्वभागाड्यं सर्वदेवनमस्कृतः ।  
 तावत्कालं दिवि स्थित्वा ततो भूमिमुपागतः ॥९०॥  
 अत्रापि विष्णुभवतानां जातोऽहं भवता कुले ।  
 जातिस्मरत्वाज्जानामि सर्वमेतन्मुनीश्वर ॥९१॥

उसी समय में समस्त पापों से विमुक्त हुए श्री हरि के समान  
 स्वल्प वाले और सहस्र सूर्यों के समान तेजस्वी मुझको यमराज ने  
 स्वयं प्रणाम किया था ॥८५॥ उस समय में यमदूतों ने भी विस्मय  
 और भय के साथ यमराज के भाषण पर विश्वास किया था ॥ ८६ ॥  
 उसी समय में यमराज ने मेरा सत्कार करके सैकड़ों विमानों से  
 भरे हुये भगवान् विष्णु के परम पद में मुझको भेज दिया था ॥ ८७ ॥  
 हे तात ! वहाँ पर सभी प्रकार के भोगों से परिपूर्ण करोड़ों विमानों के  
 मध्य में मैं विष्णु लोक में रहा था । यह सब कुछ उसी कर्म का  
 प्रभाव था ॥८८॥ मैं प्यारह अरब कल्पों तक निवास कर फिर इन्द्र  
 लोक में गया था । वहाँ पर भी समस्त देवगणों के द्वारा वन्द्यमान हो  
 कर सभी तरह के सुखोपभोगों का आनन्द पाकर उतने ही बाल पर्यन्त  
 मैंने निवास किया था । अब मैं इस भू-नाक में आकर समुत्पन्न हुआ  
 हूँ ॥८९॥ यहाँ पर भी हे भगवन् ! अब आप जैसे परम पवित्र  
 विष्णु के भक्तों के वग में उद्भूत हुआ हूँ । हे मुनीश्वर ! इन समस्त  
 रहस्यमयी बयानों में अपने पूर्व जन्मों के स्मरण बने रहने के कारण  
 हो जानता हूँ ॥९१॥

ारद पुराण ]

तस्माद्विष्णुवचनोद्योगं करोमि सह बालकैः ।  
 एकादशीव्रतमिदमिति न ज्ञातवान्पुरा ॥६२॥  
 जातिस्मृतिप्रभावेण तज्ज्ञात साप्रत मया ।  
 अत्र स्वेनापि यत्कर्म कृत तस्य फल त्विदम् ॥६३॥  
 एकादशीव्रत भक्त्या कुर्वता किमुत प्रभो ।  
 तस्मान्चरित्ये विप्रैर्द्र शुभमेकादशीव्रतम् ॥६४॥  
 विष्णुपूजा चाहरहः परमस्थानकाक्षया ।  
 एकादशीव्रत यत्तु कुर्वन्ति श्रद्धया नराः ॥६५॥  
 तेषां तु विष्णुभवन परमानन्ददायकम् ।  
 एव पुत्रवच्च श्रुत्वा सतुष्टो गालवो मुनि ॥६६॥  
 अवाप परमा तुष्टिं मनसा चातिहर्षितः ।  
 मज्जन्म सफलं जातं मद्गण पावनीकृतः ॥६७॥  
 यतस्त्व मद्गृहे जातो विष्णुभक्तिपरायणः ।  
 इति सतुष्टचित्तस्तु तस्य पुत्रस्य कर्मणा ॥६८॥  
 हरिपूजाविधानं च यथावत्समबोधयन्  
 इत्येतत्तो मुनिश्चेष्ट यथावत्कथितं मया ।  
 सकोचविस्तराभ्यां च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९॥

यही कारण है कि मैं बालकों को अपने माथ में लेकर भगवान् विष्णु की पूजा का उद्योग किया करता हूँ क्योंकि मुझको विष्णु पूजा की महिमा का पूर्ण ज्ञान यमराज की बहनृता से हो गया था । पूर्व जन्म में मुझको इसके महत्त्व का ज्ञान ही मिला हुआ था कि यही एकादशी का व्रत होना ॥६२॥ अब पूर्व जन्मों का स्मरण होने से ही मेरी भली भाँति समझ में आ गया है कि यद्यस्मान् विवशता से बन जाने वाले एकादशी के व्रत के कर्म का इनका अद्भुत प्रभाव एवं मुफ्त हुआ है तो फिर ज्ञान पूर्वक इसके करने में कितना महान फल होता होगा ॥६३॥ हे प्रभो ! जो भक्ति भाव के माथ हम एकादशी के महा

व्रत को किया करते हैं। उनको प्राप्त हुए फल के विषय का क्या वर्णन किया जा सकता है। अतः हे विप्रेन्द्र ! मैं परम शुभ एवं पावन इस एकादशी के व्रत को अवश्य ही करता रहूँगा ॥६४॥ परम पद को प्राप्त करने की अभिलाषा से मैं प्रति दिन भगवान् विष्णु की पूजा भी किया करूँगा। जो मनुष्य परम श्रद्धा के साथ एकादशी का व्रत किया करते हैं वे परम पद को प्राप्त होते हैं ॥६५॥ एकादशी के व्रत धारी पुरुष को विष्णु भवन परमानन्द दायक अवश्य ही मित्र करता है इसमें तनिक भी संशय नहीं है। पुत्र के मुख से इस पूर्व जन्म के अद्भुत आख्यान का श्रवण कर गालव मुनि को परम प्रसन्नता हुई थी ॥६६॥ गालव महर्षि परमाधिक मन में सन्तुष्ट होकर विचार करने लगे कि मेरा जन्म आज सफल हो गया है। इस पुत्र ने मेरे घर में जन्म धारण कर मेरा कुल ही पवित्र कर दिया है ॥६७॥ ऐसा वचन मे ही परम विष्णुभक्त परम धर्मनिष्ठ पुत्र मुझको प्राप्त हुआ है। पुत्र के परम सत्कर्म से इस तरह से सन्तुष्ट होकर उन्होंने भगवान् विष्णु के पूजन की यथार्थ विधि बतलाई थी। हे मुनीश्वर ! इस रीति से मैंने विस्तृत एवं सक्षिप्त रूप से यह सब वर्णन करके बतला दिया है। अब आगे आप क्या मुझसे श्रवण करना चाहते हैं ? ॥६८॥६९॥



## चारों वर्ग तथा स्त्रियों के सदाचार का वर्णन

एतन्निशम्य सनकोदितमप्रमेयं

पुण्य हरेदिनमयं निखिलोत्तमं च ।

पापीघणान्तिकरण व्रतमारमेव

ब्रह्मात्मजः पुनरभाषत हर्षयुक्तः ॥१॥

कथितं भवता सर्वं मुने तत्त्वायकोविदः ।

व्रताख्यानं महापुण्यं यथावद्वरिभक्तिदम् ॥२॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि वर्णाचारविधिं मुने ।  
 तथा सर्वाश्रमाचार प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥३॥  
 एतत्सर्वं महाभाग सर्वतत्त्वार्थकोविद ।  
 कृपया परया मह्य यथावद्वक्तुमर्हसि ॥४॥  
 शृणुष्व मुनिशादूलं यथा भक्तप्रियकर ।  
 वर्णाश्रमाचारपरं पूज्यते हरिरव्यय ॥५॥  
 मन्मार्द्यं रुदितं यच्च वर्णाश्रमनिबन्धनम् ।  
 तत्ते वक्ष्यामि विधिवद्भक्तोऽमत्स्यमघोक्षजे ॥६॥  
 ✓ ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चत्वार एवते ।  
 वर्णा इति समाख्याता एतेषु ब्राह्मणोऽधिक ॥७॥  
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या द्विजा प्रोक्तास्त्रयस्तथा ।  
 मातृतन्त्रोपनयनाद् द्विजत्वं प्राप्यते त्रिभिः ॥८॥

महामर्हण्य प्रवर श्री सूरजी ने कहा—समस्त पापों की शांति करने वाले व्रतोपव्रामों के सारभूत और परमोत्तम श्री हरि दिन से समुत्पन्न होने वाले और सनकाचार्य के द्वारा बताये हुए अपरिमित व्रत का वृत्तान्त श्रवण कर ब्रह्मा के आत्मज देवर्षि श्री नारदजी हर्षोल्लास में भरकर फिर कहने लगे थे ॥ १ ॥ श्री नारदजी ने कहा—हे मुने । आप तो तार्त्विक अर्थों के परम विद्वान् हैं । आपन हरिभक्ति देने वाले महान् पुण्यमय इस एकादशी के महाव्रत का यथार्थ वर्णन किया है । २ । हे महामुने । अब कृपा कर आप वर्णों की सदाचार पद्धति का श्रवण तथा समस्त आश्रमों के सदाचरण एवं प्रायश्चित्त पद्धति का श्रवण करने की उत्कट अभिनाया रखना हैं ॥ ३ ॥ हे सभी तत्त्वों के समझन में परम कुशल महाभाग । इन सबका यथार्थ वर्णन करके मुनादय । दगवे त्रिय आपका परम अनुग्रह मुझ पर हागा ॥ ४ ॥ श्री सनकाचार्य ने कहा—हे नारद ! हे मुनिशादूल ! अब आप वर्णाश्रम धर्मों का यथार्थ वास्तव भक्तों के परम प्रिय एवं अभीष्ट करने वाले विष्णु भगवान्

का जिस रीति से पूजन किया करते हैं उसको सुनिए ॥ ५ ॥ आप तो भगवान् अधोक्षज के परम भक्त हो । अतएव भगवान् मनु आदि महर्षियो ने वर्णों और आश्रमों के धर्म बतलाये हैं उनका सविधि वर्णन करता हूँ । आप सावधानता से उनको अब सुनिये ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये ही चार वर्ण धर्मशास्त्रों में बताये गये हैं । इनमें प्रथम तीनों का एक जन्म तो अपनी माता के उदर से हुआ करता है और दसरा जन्म उपनयन संस्कार के द्वारा हुआ करता है । इसीलिये इनको द्विज या द्विजाति कहा जाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

एतैर्वर्णैः सर्वधर्मा कार्या वर्णानुरूपतः ।  
 स्ववर्णधर्मत्यागेन पापं प्रोच्यते बुधैः ॥६॥  
 स्वगृह्यचोदितं कर्म द्विजः कुर्वन्कृती भवेत् ।  
 अन्यथा पतितो भूयात्सर्वधर्मवह्निभूतः ॥७॥  
 युगधर्मः परिग्राह्यो वर्णैरेतैर्यथोचितम् ।  
 देशाचारास्तथा ग्राह्या स्मृतिधर्माविरोधतः ॥८॥  
 कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्मं समाचरेत् ।  
 अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु ॥९॥  
 समुद्रयात्रास्वीकारः कमण्डलुविधारणम् ।  
 द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥१०॥  
 देवराजं सुतोत्पत्तिर्मधुपर्कं पशोर्वधः ।  
 मासादनं तथा श्राद्धं वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥११॥  
 दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं वराय च ।  
 नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं च नरमेधाश्वमेधकौ ॥१२॥  
 महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मयः ।  
 एतान्धर्मान्वलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥१३॥

इन सभी वर्णों को समस्त धर्म—धर्म अपने वर्ण के अनुसार ही



करने चाहिए । जो अपने वर्णाश्रमों के समुचित धर्म-कर्मों का त्याग कर दिया करता है उसको विद्वान् पुरुष पाखण्डी कहा करते हैं ॥ ६ ॥ द्विज अपने गृह्य सूत्र में वर्णित कर्मों के करने में ही कृतार्थ हो जाया करता है । इसके विपरीत अन्यथा आचरण में वह पतित हो जाया करता है फिर उसको किसी भी कर्म के करने का अधिकार नहीं रहा करता है ॥ १० ॥ इन सभी वर्णों के व्यक्तियों को अपने यथार्थ वर्ण-धर्म का ही पालन करना परमावश्यक होता है । जो स्मृति धर्म के अविरोधी देशाचार होता है उनका भी ग्रहण करना आवश्यक होता है ॥ ११ ॥ मन—कर्म और वचन से प्रयत्न पूर्वक धर्म का आचरण करना चाहिए । जो ऐसा कर्म है जिससे ( धर्म कार्य से ) स्वर्ग की प्राप्ति न होवे और जिमकी लोक में निन्दा होती हो उसको कभी भी नहीं करना चाहिये ॥ १२ ॥ समुद्र यात्रा की स्वीकृति—कमण्डलुका धारण ( सन्यास ग्रहण )—द्विजों का असवर्ण कन्याओं के साथ विवाह, देवर से सन्तान की उत्पत्ति, मधुपर्क में पशुवध, श्राद्ध में मांस भक्षण, वानप्रस्थाश्रम, वाणी मान से दी हुई अक्षता कन्या का वर को पुनर्दान नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, नरमेघ, अश्वमेघ, महाप्रस्थान, गोमेघ इन शास्त्रोक्त धर्मों को भी विद्वान् पुरुषों ने इस कलियुग में वर्जित बताया गया है ॥ १३—१६ ॥

✓ देशाचारा परिग्राह्यास्तत्तद्देशगतैर्नरे ।

अन्यथा पतितो ज्ञेय सर्वधर्मवहिष्कृत ॥१७॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशा शूद्राणा च द्विजोत्तम ।

क्रिया सामान्यतो वदये ताच्छृणुष्व समहित ॥१८॥

दान दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तथा यज्ञयज्ञेत्पुरान् ।

वृत्त्यर्थं याजनेच्चैव अन्यानध्य पयेत्तथा ॥१९॥

याजयेद्यजने योग्यान्विप्रो नित्योदकी भवेत् ।

कुर्याच्च वेदग्रहण तथामेश्च पश्चिम् ॥२०॥

ग्राह्ये द्रव्ये च पारक्ये समबुद्धिर्भवेत्तथा ।

सवलोकहित कुर्यान्मृदुवाक्यमुदीरयेत् ॥२१॥

जो पुरुष जिस देश में समुत्पन्न हुआ हो उसको उस देश के सदाचार का पालन अवश्य ही करना चाहिए अन्यथा करने से वह पुरुष सब धर्मों से बहिष्कृत एण पतित हो जाया करता है ॥ १७ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! अब मैं चारों वर्णों के साधारण कर्मों के विषय में वर्णन करता हूँ । उनको आप परम समाहित होकर श्रवण करिए ॥ १८ ॥ ब्राह्मण का सामान्य कर्म है कि वह ब्राह्मणों को दान देवे—यज्ञों के यजन के द्वारा देवों का अर्चन करे और अपनी जीविका के लिये यज्ञ करावे तथा दूसरों को अध्ययन करावे ॥ १९ ॥ जो पुरुष यजन और पूजन के पात्र हो उनके द्वारा ही यज्ञों का यजन कराना चाहिए । विप्र को चाहिए कि वह नित्योदकी रहे, वेदों का अध्ययन करे और प्रति दिन भग्नहोत करे ॥ २० ॥ अपने ग्रहण करने के योग्य जो द्रव्य हो अथवा दूसरे के द्वारा ग्रहण करने के योग्य हो—इन दोनों में समान बुद्धि ही रखनी चाहिए । समस्त प्राणियों के हितप्रद कार्य करने चाहिए । विप्र का कर्त्तव्य है कि वह सर्वदा अपने मुख से कोमल वचनों का ही उच्चारण किया करे और कभी भी कठोर वचन नहीं बहना चाहिये ॥२१॥

ऋतावभिगमः पत्न्या शस्यते ग्राह्यणस्य वै ।

न कस्याप्यहित ब्रूयाद्विष्णुपूजापरो भवेत् ॥२२॥

दद्याद्दानानि वित्रेभ्यः क्षात्रियोऽपि द्विजोत्तम ।

कुर्याच्च वेदग्रहण यज्ञैर्देवान्यजेत्तथा ॥२३॥

शस्त्रजीवी भवेच्चैव पालयेद्धर्मतो महीम् ।

दुष्टानां शासनं कुर्याच्छिष्टानां पालनं तथा ॥२४॥

पाशुपाल्य च वाणिज्यं कृषिश्च द्विजसत्तम ।

वेदस्याध्ययनं चैव वैश्यस्यापि प्रकीर्तनम् ॥२५॥

कुर्याच्च दारग्रहण धर्माश्चैव समाचरेत् ।  
 क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारुक्रियोद्भवैः ॥२६॥  
 दद्याद्दानानि शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेन्न च ।  
 ब्राह्मणक्षत्रियविशा शुश्रूषानिरतो भवेत् ॥२७॥  
 ऋतुकालाभिगामी च स्वदारेषु भवेत्तथा ।  
 सर्वलोकहितैषित्व मङ्गल प्रियवादिता ॥२८॥  
 अनायासो मनोहर्यस्तितिक्षा नातिमानिता ।  
 सामान्य सर्ववर्णानां मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥२९॥

ब्राह्मण को चाहिए कि वह केवल ऋतु के समय में ही अपनी पत्नी के साथ ममन करे— ऐसा करना ही प्रशंसित होता है । जिस बात के कथन से किसी का भी अहित होवे ऐसी बात कभी भी विप्र को नहीं कहनी चाहिये । ब्राह्मण का निरन्तर भगवान् विष्णु की पूजा में निरत रहना चाहिए ॥ २२ ॥ हे उत्तम द्विज । अब क्षत्रिय वर्ण का साधारण धर्म बतलाता हूँ—क्षत्रिय को ब्राह्मणों को दान देना चाहिए, वेदों का अध्ययन करे तथा यज्ञों के यजन के द्वारा देवों का अर्चन करे ॥ २३ ॥ शस्त्रों की वृत्ति से अपनी जीविका का अर्जन करे—धर्म के साथ पृथ्वी का परिपालन करे—दृष्टों को दण्ड देवे और साधु पुरुषों का सवताभाव से पालन एवं रक्षण करना चाहिए ॥ २४ ॥ वैश्य का सामान्य धर्म पशुओं का पालन, व्यापार, कृषिकर्म, वेदों का अध्ययन य वैश्य वर्ण के व्यवसायों के धर्म हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ अब शूद्र वर्ण के सामान्य धर्म बतलाये जाते हैं, शूद्र को भी विवाह करना चाहिए— सभी धर्मों का पालन करे—शिल्प के द्वारा प्राप्त वस्तुओं के विक्रय एवं क्रय में जो धन प्राप्त हो उसका दान देव किन्तु शूद्र को पाक यज्ञ करने का अधिकार शास्त्रों में नहीं बताया गया है । शूद्र का वर्तव्य है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों की सेवा में सतत रहना चाहिए ॥ २६ ॥ २७ ॥ ऋतुज्ञान में स्वोद्योग, सत्येति की

धर्मिय और वैश्य इन तीनों के लिये ही चार आश्रमों का विधान किया गया है और पाचवा आश्रम नहीं होता है। उन चारों आश्रमों के नाम ये होते हैं—ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और चौथा आश्रम संन्यास होता है ॥३२॥३३॥ इन्हीं चारों आश्रमों के द्वारा उत्तम धर्म की सिद्धि हुआ करती है। हे विप्रवर ! जो सदा कर्मयोग में तत्परता रखता है—परम निस्पृह होने के कारण जिसके मनमें पूरा शान्ति विराजमान रहा करती है—जो नित्य ही अपने समुचित धर्म कर्मों में सलग्नता रखता है उसीसे भगवान् विष्णु परम प्रसन्न रहा करते हैं और वह मर्यादा के पूर्ण रूप से परिपालन करने के कारण ऐसे उत्तम स्थान की अन्त समय में प्राप्ति किया करता है जहाँ से फिर वापिस लौटकर यहाँ ससार में नहीं आना होता है ॥३४॥३५॥



## ॥ स्मार्त धर्म वर्णन ॥

वर्णाश्रमाचारविधि प्रवक्ष्यामि विज्ञेयत ।

शृणुष्व तन्मुनिश्रेष्ठ सावधानेन चेतसा ॥१॥

✓यः स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत् ।

पापं स हि विज्ञेय सर्वधर्मबहिष्कृत ॥२॥

गर्भाधानादिसंस्कारा कार्या मन्त्रविधानतः ।

स्त्रीणाममन्त्रतः कार्या यथाशाल यथाविधि ॥३॥

सीमतकर्म प्रथमं चतुर्थं मासि शस्यते ।

पठे वा सप्तमे वापि अष्टमे वापि वारयेत् ॥४॥

जाते पुत्रे पिता स्नात्वा सचैव जातकर्म च ।

वृष्याच्च नादीश्राद्धं च स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥५॥

हम्ना वा रजतेनापि वृद्धिश्राद्धं प्राल्पयत् ।

अन्नेन वारयेद्यन्तु स चटालसमा भवेत् ॥६॥

कृत्वाभ्युदयिक श्राद्ध पिता पुत्रस्य वाग्यतः ।

कुर्वीत नामनिर्देशं सूतकाते यथाविधि ॥७॥

✓अस्पृष्टमर्थहीनं च ह्यातपूर्वक्षरान्वितम् ।

न दद्यान्नाम विप्रैर्द्रुतथा च विपमाक्षरम् ॥८॥

श्री सनकाचार्यं महं पि ने कहा—हे मुनियेष्ठ ! अब मैं सब वर्णों और आश्रमों के सदाचार की विधि का विशेष रूप से वर्णन करके समझाता हूँ । हे मुनिवर ! आप उसको विशेष सावधानी के साथ श्रवण करिये । जो मनुष्य अपने उचित धर्म का परित्याग करके दूसरों के धर्म का समाश्रय ग्रहण किया करता है उसको पाखण्डी ही समझना चाहिए चाहे वह कोई भी क्यों न हो । फिर उसका धर्माधिकार ही नष्ट होजाया करता है और किसी भी धर्म के करने का अधिकार नहीं रहा करता है ॥२॥ समुचित समय पर विधि के अनुसार गर्भाधान आदि संस्कार मन्त्रों का उच्चारण करके ही करने चाहिए । स्त्रियों के संस्कारों में मन्त्रों का पाठ नहीं करना चाहिए ॥३॥ सीमन्तोन्नयन संस्कार सर्व प्रथम गर्भाधान के चतुर्थ मास में परमश्रेष्ठ माना जाता है । यदि चौथे मास में किसी कारण वश इसको न कर सके तब फिर इस संस्कार को छठवें—सातवें या आठवें मास में अवश्य ही करना चाहिए ॥ ४ ॥ पुत्र की उत्पत्ति होने पर उसने पिता का वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए । फिर स्वस्ति वाचन के सहित नाम्दीमुख श्राद्ध और जातकर्म संस्कार करे ॥ ५ ॥ इस वृद्धि मूषक श्राद्ध को चांदी या सुवर्ण के साथ ही करे । जो नेत्रल अन्न के द्वारा ही इस वृद्धि श्राद्ध को किया करता है उसमें और चाण्डाल में फिर कौन सा भेद रह जाया करता है ? ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर पिता को अपनी वाणी का नियमन करते हुए पुत्र का आभ्युदयिक कर्म करना चाहिए । जातकाशोक व समाप्त हो जाने पर अन्न में विधि-विधान के अनुसार बालक का नामकरण करे । ह विप्रैर्द्रुतथा च विपमाक्षरम् । नाम ऐसा ही होना चाहिये जो परम स्पष्ट हो —

सायंक और स्वप्नाक्षरी चाला हो । इसके विपरीत नाम नहीं रखना चाहिये ॥७॥

✓ तृतीयवर्षे चील च पचमे षष्ठसम्मिमे ।

सप्तमे चाष्टमे वापि कुर्याद् गृह्योक्तमार्गतः ॥६॥

दैवयोगादविक्राते गर्भाधानादिवर्मणि ।

वर्तन्य पादवृच्छो वै चोत्ते त्वद्धं प्रकल्पयेत् ॥१०॥

✓ गर्भाष्टमेऽष्टमे वान्दे वदुकस्योपनायनम् ।

आषोडशान्दपयंत गौण कालमुशति च ॥११॥

गर्भैकादशमेऽन्दे तु राजन्यस्योपनायनम् ।

आढ्याविशान्दयंत कालमाहुर्विपश्चित् ॥१२॥

वैश्योपनयनं प्रोक्तं गर्भास्तु द्वादशे तथा ।

चतुर्विंशान्दपयंत गौणमाहुर्मनोपिण ॥१३॥

एतत्कालावधेयस्य द्विजस्यातिक्रमो भवेत् ।

सावित्रीपतितं विद्यात्सु तु नेयालपेरुदा ॥१४॥

गृह्यसूत्र धर्मप्रणय के अनुसार फिर बालक का चौस वर्य हीगरे पाँचवें, छठवें, भातवें तथा आठवें वर्ष में करे अर्थात् मुण्डन मस्कार करना चाहिए ॥ ६ ॥ यदि दैववशात् समुचित समय पर गर्भाधान आदि मस्कार न हो मने तो चतुर्थ भाग—वृच्छु वत वा प्रायश्चित्त व रूप में करना चाहिये और ब्रूहावर्म मस्कार समुचित समय पर नहीं किया जा मने तो आधा भाग वृच्छु वन वा करना चाहिए सभी शुद्धि होती है ॥१०॥ गर्भाधान के समय में आठवा वर्ष में बालक वा यज्ञोपवीत गम्हार कराना चाहिए । यदि इस उचित समय पर यह मस्कार नहीं किया जाना है तो फिर गामह वर्ष तथा इग उपनयन मस्कार का गौण वास माना गया है ॥ ११ ॥ गर्भाधान म ग्यागृह्य वर्ष में शनिप या यज्ञोपवीत मस्कार कराना चाहिये । विद्यान् पुरुष सत्रिय गौणवास आरित वर्ष तथा ब्रूहा वर्य हैं । गम न ग्यागृह्य वर्ष में औःम वा उप-

नयन कराना चाहिए । विद्वान् पुरुष चौबीस वर्ष तक धीश्वर के इस सस्कार का गोण बाल बहा करते है ॥ १२ । १३ ॥ जिस द्विज का मुख्य और गोण दोनों ही बाल व्यतीत हो जाने तो वह फिर सावित्री पतित माना जाया करता है और फिर उससे बात भी किसी को नहीं करनी चाहिए ॥ १४ ॥

द्विजोपनयने विप्र मुख्यकालव्यतिक्रमे ।

द्वादशाब्द चरेत्कुच्छ्र पश्चाच्चाद्रायण तथा ।

सातपनद्वयं चैव कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥ १५ ॥

अन्यथा पतित विद्यात्कर्त्तापि ब्रह्महा भवेत् ।

✓मौजी विप्रस्य विज्ञेया धनुर्ज्या क्षत्रियस्य तु ॥ १६ ॥

✓आवी वैश्यस्य विज्ञेया श्रूयतामजिन तथा ।

विप्रस्य चोक्तमैष्य रौरवं क्षत्रियस्य तु ॥ १७ ॥

आज वैश्यस्य विज्ञेय दडान्वक्ष्ये यथाक्रमम् ।

✓पालाश ब्राह्मणस्योक्त नृपस्यौदुम्बर तथा ॥ १८ ॥

चैत्र वैश्यस्य विज्ञेय तत्प्रमाणं शृणुष्व मे ।

विप्रस्य केशमानं स्यादाललाटं नृपस्य च ॥ १९ ॥

नासाग्रसमितं दण्डं वैश्यस्याहुर्विगश्चित ।

तथा वासांसि वक्ष्यामि विप्रादीनां यथाक्रमम् ॥ २० ॥

कपाय चैव माजिष्ठं हारिद्रं च प्रकीर्तितम् ।

उपनीतो द्विजो विप्र परिचर्यापरो गुरो ॥ २१ ॥

हे विप्रवर ! द्विज के उपनयन सस्कार का मुख्य काल व्यतीत होजावे तो फिर उसको बारह वर्ष तक कुछ व्रत प्रायश्चित्त के लिये करना चाहिए । इसके बाद दो चान्द्रायण व्रत और इसके पीछे दा सन्तापन व्रत करके ही कर्म करे ॥ १५ ॥ ऐसा न करने पर यह सर्वथा पतित समझा जाता है और उस दशा में वह कर्म करके भी ब्रह्म हत्यारा ही कहा जाया करता है । उपनयन सस्कार में ब्राह्मण की

नारद पुराण ]

मेखला मूत्र की होनी चाहिये । क्षत्रिय की मेखला घनुष की डोरी की, वैश्य की मेखला भेड़ के ऊन की होनी चाहिए । अब उनके चर्म धारण के विषय में भी श्रवण करिये । ब्राह्मण के लिये ऐण मृग का चर्म होना चाहिये । क्षत्रिय के लिये रुद्र मृग की होवे और वैश्य के लिये बकरे का चर्म होना चाहिये । इसी प्रकार से भिन्न-२ वर्णों के दण्ड भी भिन्न होते हैं । ब्राह्मण बटु के लिये ढाक का दण्ड होना चाहिए और क्षत्रिय वर्ण के बटु के लिये उपनयन संस्कार के समय में धारण करने के लिये गूलर वृक्ष का दण्ड होना चाहिये ॥ १७।१८ ॥ वैश्य वर्ण के लिये विल्व वृक्ष का दण्ड होना चाहिये । इन दण्डों की ऊँचाई भी भिन्न २ होती है । ब्राह्मण का दण्ड केशों तक ऊँचा होवे, क्षत्रिय का दण्ड सलाट तक ऊँचा होवे और विद्वान् पुरुष वैश्य का दण्ड नासिका तक ऊँचा कहा करते हैं । इसके अनन्तर ब्राह्मणादि के वस्त्रों का वर्णन किया जाता है ॥१९।२०॥ ब्राह्मण वर्ण के बालक के वस्त्रों का रङ्ग गेरुआ होना चाहिये, क्षत्रिय का भेंजीठ का रङ्ग और वैश्य के बालक का रङ्ग पीला होना चाहिए । हे विप्रेन्द्र ! उपवीत हुए द्विज को गुरु की सेवा करते हुए वेदों को ग्रहण करने के समय पर्यन्त गुरु के ही यहाँ रहना चाहिए ॥२१॥

वेदग्रहणपर्यन्त निवसेद्गुरुवेश्मनि ।  
 प्रातः स्नायी भवेद्वर्णी समित्कुशफलादिकान् ॥२२॥  
 गुर्वर्थमाहरेन्नित्यं कल्ये कल्ये मुनीश्वर ।  
 यज्ञोपवीतमजिनं दडं च मुनिसत्तम ॥२३॥  
 नष्टे भ्रष्टे नव मन्त्राद् धृत्वा भ्रष्टं जले क्षिपत् ।  
 वणिनो वर्तनं प्राहुर्भिक्षान्नेनैव केवलम् ॥२४॥  
 भिक्षा च श्रोत्रियागारादाहरेत्प्रयतेद्रिय ।  
 भवत्पूर्वं ब्राह्मणस्य भवन्मध्यं नृपस्य च ॥२५॥  
 भवदत्यं विशं प्रोक्तं भिक्षाहरणकं वच ।



सायंप्रातर्वह्निकार्यं यथाचारं जितेन्द्रिय ॥२६॥

कुर्यात्प्रतिदिनं वर्णं ब्रह्मयज्ञं च तर्पणम् ।

अग्निकार्यपरित्यागी पतितः प्रोच्यते बुधे ॥२७॥

ब्रह्मयज्ञविहीनश्च ब्रह्महा परिकीर्तितः ।

देवताभ्यर्चनं कुर्याच्छुश्रूषानुपदं गुरो ॥२८॥

गुरु के घर में ही निवास करने वाले ब्रह्मवादी को प्रातः काल में स्नान करना चाहिए । हे मुनीश्वर ! प्रातः काल में गुरुदेव के लिए नित्य पुष्प, समिधा, फल आदि आवश्यक वस्तुएं लाना चाहिये । यदि ब्रह्मचारी के चर्म, यज्ञोपवीत, दण्ड आदि नष्ट या भ्रष्ट होजावें तो मन्त्रों का वाचन कर पुनः नवीन धारण करे । जो भ्रष्ट हो जावे तो उसको किसी पवित्र जलाशय में छोड़ देना चाहिये । ब्रह्मचर्य की अवस्था में रहने वाले ब्रह्मचारी की जीविका केवल भिक्षा अन्न से ही होनी चाहिये ॥२२-२४॥ इन्द्रियो पर पूर्ण संयम रखते हुये केवल घेद पाटी ब्राह्मण के यहाँ से ही भिक्षा-अन्न प्राप्त करे जब भिक्षा याचना करे तो ब्राह्मण द्विज को भवत् शब्द का पूर्व में प्रयोग करना चाहिए । यथा—'भवति । भिक्षा देहिमात' अर्थात् आप हे माता भिक्षा दी । क्षत्रिय यदि भिक्षा की याचना करे तो उसका भवत् शब्द का प्रयोग मध्य में करना चाहिए । यथा—'भिक्षा भवति । देहिमात' । यदि वैश्य द्विजाति भिक्षा की याचना करे तो उसे अन्न में भवत् शब्द का प्रयोग करना चाहिए । यथा—'भिक्षा देहि भवति मात' । ब्रह्मचारी को प्रति दिन प्रातः और सायंकाल दाना वक्त अग्निहोत्र करना आवश्यक होता है और आचार के अनुसार यज्ञ यज्ञ तथा तर्पण भी करना चाहिए । विद्वान् पुरुष अग्निहोत्र का त्याग करने वाले पुरुष का गणित बताया करते हैं ॥२२-२७॥ जो ब्रह्म यज्ञ नहीं किया करता है उसको ब्रह्म हत्या करने वाला बताया गया है । ब्रह्मचारी का वर्तव्य है कि अपन ताचर्य गुरुदेव की सेवा करते हुये दैव पूजा भी प्रति दिन करना चाहिए ॥२८॥

भिक्षात् भोजनेन च नोत्तमान्नामी वदानम् ।  
 आचोयानिच्छति प्राणा वृद्धादिभिरा त्रिष्विधम् ॥२६॥  
 निवेद्य गुह्येऽर्चनायाद्व्याप्यमग्नानुजया ।  
 मधुमीमागवत्तन नान्दूत दाधायनम् ॥२७॥  
 उच्छिष्टभोजनं चैव दद्यान्प्राप च यत्रयेत् ।  
 श्रवणादुत्तमधाश्च तथा मांषानुत्पन्नम् ॥२८॥  
 ज्वरार्ते च नृपनोत्तराय तु परित्यजेत् ।  
 पत्न्याश्च चापनाप विप्रनाप न्याजनम् ॥२९॥  
 पापण्डजनसंयोगं शूद्रमग च वर्जयेत् ।  
 अभिषादनशीलं स्याद वृद्धेषु च ययाक्रमम् ॥३०॥  
 ज्ञानवृद्धाम्पयोवृद्धा ययोवृद्धा इति त्रयम् ।  
 आध्यात्मिकादिदुःखानि निवारयति यो गुरु ॥३१॥  
 वेदनाम्प्रापदेहेन ॥ पूर्वमभिषादयेत् ।  
 अमावहृमिति वृषाद् द्विजो वै त्रिभिषादने ॥३२॥

ब्रह्मचारी का नियम भिक्षा का साया हुआ ही अन्न खाना  
 चाहिए और एक ही अन्न नियम नहीं खाना चाहिए । ब्रह्मचारी का  
 द्वाविधयत्न होना परमावश्यक है । उमका अनिन्दित आत्मनो के यहाँ  
 मे ही भिक्षा मानी चाहिए और उन माकर सर्व प्रथम गुरु का सम्-  
 पत्ति करना चाहिए । गुरुद्वय का आदेश प्राप्त करने ही मोन होकर  
 भाजन करना चाहिए । ब्रह्मचारी का मधु, स्त्री, मांस, सवय, पान,  
 दांतुन, उच्छिष्ट भोजन और दिन में शयन का परित्याग कर दना  
 चाहिए । (ब्रह्मचारी को छाना, छहाऊँ, गन्ध मात्य, अनुलेपन, जल-  
 विहार, नृत्य-नान, वाद्य, निन्दा, उपनाप, ब्रह्मवाद और अञ्जन का  
 भी त्याग कर दना चाहिए ॥२६॥॥३०॥) ब्रह्मचारी का पापण्ड करने  
 वाले तथा शूद्रों का सङ्ग बन्धी नहीं करना चाहिए । जो भी अपन से  
 वृद्ध हा उनको क्रमशः प्रणाम करना चाहिए । वृद्ध भी तीन तरह के

बताये गये हैं—ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध और तपोवृद्ध ये तीन भेद वृद्धों के होते हैं। जो वेद और शास्त्र का उपदेश देकर आध्यात्मिक और आधिभौतिक आदि दुःखा का निवारण करने वाले हैं उनको सब प्रथम प्रणाम करना चाहिये। वृद्धा को अभिवादन करने के समय में द्विज को इस विधि से कहकर प्रणाम करना चाहिए कि प्रणाम ग्रहण करने वाले को उसका परिचय भी प्राप्त हो सके। मैं अमुक गोत्र में समुत्पन्न अमुक नाम वाला आपका प्रणाम करना चाहता हूँ ॥३१-३५॥

नाभिवाद्याश्च विप्रण क्षत्रियाद्या कथञ्चन ।  
 नास्तिक भिन्नमर्याद कृतघ्न ग्रामयाजकम् ॥३६॥  
 स्तेन च वित्तव चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् ।  
 पापण्ड पतित ब्राह्म्य तथा नक्षत्रजीविनम् ॥३७॥  
 तथा पातकिन चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् ।  
 उन्मत्ता च शठ धूर्त्त धावन्तमशुचि तथा ॥३८॥  
 अभ्यक्तशिरस चैव जपन्त नाभिवादयेत् ।  
 विवादशीलिन चड वमत जलमध्यगम् ॥३९॥  
 भिक्षान्नधारिण चैव शयान नाभिवादयेत् ।  
 भर्तृघ्नी पुष्पिणी जारा सूतिका गर्भपातिनीम् ॥४०॥  
 वृत्तघ्नी च तथा चाण्डी कदाचिन्नाभिवादयेत् ।  
 सभाया यज्ञज्ञाताया देवतायतनेऽपि ॥४१॥  
 प्रत्येव तु नमस्वारो हति पुण्य पुरावृतम् ।  
 श्राद्ध व्रत तथा दान देवताभ्यर्चन तथा ॥४२॥  
 यज्ञ च तपण चैव कुर्यत नाभिवादयेत् ।  
 वृत्तेऽभिवादने यस्तु न कुथा प्रतिवादनम् ॥४३॥

एक उक्त व्यक्ति का जो साहचरण, शत्रिय आदि किसी को भी प्रणाम न करे ईश्वर की मत्ता का जो न मानना हो, जो बंधी हुई स्त्रियाँ हो सोइ देव, जो किसी भी उत्सवार को भी न माने। चार,

जुआरी, ग्रामयाजक, पतित, पाखण्ड करने वाला, व्रात्य और जो नक्षत्र-जीवी हो, इनको भी प्रणाम ब्रह्मचारी को नहीं करना चाहिये ॥३६॥ ३७॥ महापातकी, उन्मत्त, शठ, घूर्त और जो भाग रहा हो अथवा अपवित्र हो उसको भी प्रणाम नहीं करना चाहिए ॥३८॥ जो शिर मलकर प्रक्षालन कर रहा हो, जो मन्त्र का जाप कर रहा हो । जो झगडा और कलह करने के स्वभाव से युक्त हो, क्रोधशील, जो वमन करने वाला हो और जो जस के मध्य में हो उसको कभी प्रणाम नहीं करना चाहिये ॥३९॥ जिसके पास में भिक्षा से प्राप्त अन्न हो और जो शय्या पर लोट लगा रहा हो उसको भी कभी भूत कर भी प्रणाम नहीं करना चाहिए । जो नारी अपने ही पति की ताड़ना किया करती है अथवा जो स्त्री ऋतुमती हो, सूतिका, गर्भ-पान कर देन वाली, कृन्धनी और क्रोध करने के स्वभाव वाली हो, उस नारी को भी अभिवादन करने का निषेध होता है । सभा, यज्ञ-शाला अथवा देवालय में उपस्थित प्रत्येक का अभिवादन करना भी उचित नहीं होता है क्योंकि ऐसा करने से पूर्ववृत्त समस्त पुण्य का विनाश करने वाला हुआ करता है । जो कोई पुरुष चाहे वह नमन करने के योग्य क्यों न हो यदि वह श्राद्ध, व्रत, दान, देवार्चन यज्ञों का यजन और तर्पण करने में मग्न हो तो उसको अभिवादन नहीं करना चाहिए और उसको कभी प्रणाम न करे और जो प्रणाम करने पर कुछ भी आशीर्वाद न देने के स्वभाव वाला हो ॥४०-४३॥

नाभिवाद्याश्च स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव स ।

प्रक्षाल्य पादावाचम्य गुरोरभिमुख सदा ॥४४॥

तस्य पादौ च सगृह्य अधीयीत विचक्षण ।

अष्टवासु चतुदश्या प्रतिपत्पर्वणोस्तथा ॥४५॥

महाभरण्या विप्रेन्द्र श्रवणद्वादशीदिने ।

भाद्रपदापरपक्षे द्वितीयाया तथैव च ॥४६॥

माघस्य शुक्लसप्तम्यां नवम्यामाश्विनस्य च ।  
 परिवेष गते सूर्ये श्रोत्रिये गृहमागते ॥४७॥  
 बधिते ब्राह्मणे चैव प्रवृद्धकलहे तथा ।  
 सध्याया गर्जिते मेवे ह्यकाले परिवर्षणे ॥४८॥  
 उल्काशनिप्रपाते च तथा विप्रेज्वमानिते ।  
 मन्वादिषु च देवर्षे युगादिषु चतुर्ष्वपि ॥४९॥  
 नाधोर्मीत द्विजः कश्चित्सर्वकर्मफलोरसुकः ।  
 तृतीया माधवे शुक्ला भाद्रे कृष्णा त्रयोदशी ॥५०॥  
 कार्तिके नवमी शुद्धा माघे पञ्चदशी तिथिः ।  
 एता युगाद्याः कथिता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥५१॥

ऐसे पुरुषों को अभिवादन करने का पात्र नहीं समझना, चाहिये  
 क्योंकि जैसा मूढ़ होता है वैसे ही ऐसे पुण्य भी हुआ करते हैं। बहुत  
 ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि अपने पैरों का प्रक्षालन कर आचमन करे  
 और इसके पीछे अपने गुरुदेव के समक्ष में जाकर उनके चरणों का  
 स्पर्श करे और फिर अध्ययन किया करे। कुछ दिन वेद शास्त्रों के  
 अनध्याय दिवस माने जाते हैं उन दिनों में कभी पढ़ना नहीं चाहिये।  
 जैसे—अष्टमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, पर्व तिथि, महा भरणी मद्यत्र, श्रवण  
 नक्षत्र से समुत्पन्न द्वादशी, भाद्रपद मास स्थित शुक्ल पक्ष की द्वितीया  
 तिथि, माघ शुक्ला सप्तमी, आश्विन मास की नवमी, सूर्य ग्रहण का  
 दिन अथवा वह दिन जिस दिन कोई श्रोत्रिय का घर में समागमन हो।  
 ये अनध्याय दिन बताये गये हैं ॥४४-४७॥ हे द्विजवर ! जो द्विज  
 सब कर्मों के पुण्य फल प्राप्त करने की उत्सुकता रखता है उसको  
 अश्रोत्रिखिन दिवसों में भी अध्ययन नहीं करना चाहिए—विमी  
 ब्राह्मण के शरावास होने वाले दिन, वनह की वृद्धि वाले दिन,  
 सन्ध्या समय मेघ गर्जन, असमायिक वर्षा वाले दिन, मन्वादि की  
 तथा युगादि की तिथियों में अध्ययन का निषेध बताया गया है।

वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया ( अक्षय तृतीया )—भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी, कार्तिक शुक्ला नवमी ( अक्षय नवमी ), माघ मास की पूर्णिमा में युग के आरम्भ होने वाली तिथियाँ हैं । इन तिथियों में दिया हुआ दान अक्षय हुआ करता है ॥४८-४९॥

मन्वादीश्च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मुसमाहित ।  
 अश्विपुष्यशुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी ।सता ॥५२  
 तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ।  
 आपादशुक्लदशमी सिता माघस्य सप्तमी ॥५३  
 श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथापाढी च पूर्णिमा ।  
 फाल्गुनस्य त्रयोमास्या पीपस्यैकादशी सिता ॥५४  
 कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठौ पञ्चदशी सिता ।  
 मन्वादय समाख्याता दत्तस्याक्षयकारिका ॥५५  
 द्विजं श्राद्धं च कर्त्तव्यं मन्वादिषु युगादिषु ।  
 श्राद्धे निमन्त्रितेचैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो ॥५६

अब मन्वादि तिथियों को बतलाया जाता है अब आप परम समाहित होकर सुनिये—आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की नवमी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, चैत्र मास की तृतीया, भाद्रपद की तृतीया, आपाद शुक्ला दशमी, माघ शुक्ला सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आपाद मास की पूर्णिमा, फाल्गुन की अमावस्या, पीप शुक्ला एकादशी । कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठ—इन मासों की पूर्णिमा तिथि—ये सब मनुओं के आरम्भ होने वाली आदि तिथियाँ वही जाती हैं । इन तिथियों को महा पुण्यमयी माना जाता है और इनमें दिये हुये दान वा अक्षय पुण्य हुआ करता है ॥५२-५५॥ द्विज का कर्त्तव्य है कि मन्वादि और युगादि तिथियों में श्राद्ध कर्म करे । श्राद्ध के निमन्त्रण वाले दिन में और चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण वाले दिन में अध्ययन नहीं करना चाहिए ॥५६

अयनद्वितये चैव तथा भूकंपने मुने ।

गलग्रहे दुर्दिदने च नाधीयीत कदाचन ॥५७॥

एवमादिषु सर्वेषु अनध्यायेषु नारद ।

अधीयता मुमूढाना प्रजा प्रज्ञा यशः श्रियम् ॥५८॥

आयुष्य वलमारोग्य निवृन्तति यमः स्वयम् ।

अनध्याये तु योऽधीते त विद्याद् ब्रह्मघातकम् ॥५९॥

न त सभाषयेद्विप्र न तेन सह सवसेत् ।

कु डगोलकयो. केचिज्जडादीना च नारद ॥६०॥

वदति चोपनयन तत्पुत्रादिषु केचन ।

अनधीत्य तु यो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥६१॥

शूद्रतुल्य. न विज्ञेयो नरकस्य प्रियोऽतिथि ।

अनधीतश्चुतिविप्र आचार प्रतिपद्यते ॥६२॥

नाचारफलमाप्नोति यथा शूद्रस्तेयैव सः ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम् ॥६३॥

अनधीतस्य विप्रस्य सर्वं भवति निष्फलम् ।

शब्दब्रह्ममयो विष्णुर्वेद. साक्षाद्वरि. स्मृतः ॥६४॥

वेदाध्यायी ततो विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६५॥

जिस दिन में उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ हो उसमें-  
भूस्मृति वाले दिन में आठ ( गर्गोक्त ) गलग्रह दिनों में तथा मेघा च्छन्न  
पुर्दिन में अध्ययन करना वर्जित होता है अतः यह नहीं करना चाहिये  
॥५७॥ हे नारद ! जो महामूढ़ इन दिनों में अर्थान् शास्त्रोक्त अना-  
ध्यायो के दिनों में भी अध्ययन किया करता है उमके आयु, वन और  
आरोग्य का छेदन स्वयं यमराज कर दिया करते हैं । जो उपपुंक्त  
अनाध्याय दिवसों में भी पढ़ता है उसको ब्रह्म हत्यारा ही समझना  
चाहिए ॥५८॥५९॥ हे विप्रवर ! ऐसे पुरुष के साथ भाषण और सङ्ग  
भी नहीं करना चाहिये । कोई २ विद्वान् पुण्ड और गोलगो का भी

उपनयन सस्कार या ऐसो के पुत्रो का सस्कार भी निन्दित बताया करते हैं यह अनुचित ही है । जो बिना वेदो के पढे ही स्वय ही पुस्तकें लेकर पढ़ने में श्रम करता है वह शूद्रवत् ही होता है ॥६०॥६१॥ ऐसे पुरुष को चाहे द्विज ही क्यों न हो शूद्र ही समझना चाहिये । ऐसा पुरुष तो नरको का परम प्रिय अतिथि हुआ करता है । हे विप्र ! बिना वेदो के अध्ययन के सदाचार का पालन भी निष्फल ही होता है ॥६२॥ इस प्रकार के सदाचरण का कोई भी फल नहीं प्राप्त हुआ करता है क्योंकि वह पुरुष विल्कुल शूद्र के ही समान माना जाया करता है । जो ब्राह्मण अनधीत है अर्थात् जिमने वेदो का अध्ययन नहीं किया है उसके नीतिक, नैमित्तिक और काम्य सभी प्रकार के कर्म तथा अन्य वैदिक कर्म सभी निष्फल हुआ करते हैं । विष्णु शब्द बृहन्मय है । वेद साक्षात् विष्णु भगवान ही हैं ॥६३॥६४॥ अतएव वेदो के अध्ययन करने वाले ब्राह्मण के सभी मनोरथ परिपूर्ण हुआ करते हैं ॥६५॥



## ॥ वेदध्ययनादि धर्म वर्णन ॥

- वेदग्रहणपर्यंत शुश्रूषानिमित्तो गुरोः ।  
 अनुज्ञातस्ततस्तेन कुर्यादिग्निपरिग्रहम् ॥१॥  
 वेदाश्च धर्मशास्त्राणि वेदाङ्गान्यपि च द्विज ।  
 अधीत्य गुरुवे दत्त्वा दक्षिणां सविशेद गृहम् ॥२॥  
 रूपलावण्यसपन्ना सगुणा सुकुलोद्भवाम् ।  
 द्विजं समुद्वहेत्कन्या सुशीला धर्मचारिणीम् ॥३॥  
 मातृत् पञ्चमी धीमान्पितृत् सप्तमी तथा ।  
 द्विजं समुद्वहेत्कन्यामन्यया गुरुनल्पग ॥४॥  
 रोगिणी चैव वृत्ताक्षा सारोगकुलसभवाम् ।  
 अतिकेशामकेशा च वाचाला नोद्वहेद् बुधः ॥५॥



कोपना वामना चैव दीघदेहा विरूपिणीम् ।

न्यूनाधिकाङ्गीमुन्मत्ता पिशुना नोद्वहेद् बुध ॥६॥

स्फूलगुल्फा दीर्घजघा तथैत पुरुषाकृतिम् ।

प्रमथ्य व्यजनसमुक्ता कुब्जा जीवोद्वहेन्न च ॥७॥

श्री सनकदेवाचार्य ने कहा—ब्रह्मचारी व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि अपने गुरु की सेवा करते हुये वेदों के अध्ययन को साङ्गोपाङ्ग समाप्त करके ही फिर अग्नि को धारण करे ॥१॥ ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य है कि वेद धर्मशान्त्र और वेदों के अङ्ग शास्त्रों को पढ़कर ही गुरुदेव को दक्षिणा अर्पित करके फिर गार्हस्थ्य में प्रवेश करे अर्थात् ब्रह्मचर्य से गृहस्थ बन जावे ॥२॥ उस गृहस्थाश्रमी होने की इच्छा वाले द्विज को ऐसी ही कन्या से विवाह करना चाहिये जो रूप साधव्य से युक्त, गुणवती, सत्कुल समुत्पन्न, शीलवती और धर्म का आचरण करने वाली हो, विद्वान् द्विज को, अपन मातृ कुल में पाँचवी पीढ़ी की और पितृ कुल में सातवी पीढ़ी की कन्या से विवाह करना चाहिए अर्थात् मौसी, मामी, भूआ आदि की कन्या से नहीं करे अन्यथा गुत्तल्पगामी महा पापी होता है ॥४॥ रोगिणी, कोल नेत्रों वाली, रोगी के कुल में समुत्पन्न, अधिन घन केशों वाली, गम्भी, अधिक झोलने वाली कन्या से विद्वान् की कभी विवाह नहीं करना चाहिए ॥५॥ विद्वान् को क्रोध करने के स्वभाव वाली, बहुत लम्बी, बौनी, विरूपा, अधिक अङ्गों वाली, विवलाङ्गी ( कानों या छत्रों ) कन्या के साथ कभी भी विवाह नहीं करना चाहिये । जो अमुन्मत्त अथवा चुगली करने के स्वभाव वाली कन्या हो उससे भी विवाह न करे ॥६॥ मोटे टखनों से युक्त शरीर वाली, मम्भी जाँघों वाली, पुरुष के समान आकृति वाली, दाढ़ी-मूछा वाली हा और जा मुश्की हो ऐसी कन्या में भी विवाह नहीं करना चाहिये ॥७॥

वृथाहाम्यमुखी जीव गदान्यऽह्वामिनीम् ।

विवादशीलां भ्रमिता निष्ठुरां नोद्वहेद् बुधः ॥८  
 वह्वशिनी स्थूलदता स्थूलोष्ठी धुर्बु रस्वनाम् ।  
 अतिकृष्णा रक्तवर्णां धूर्ता नैवोद्वहेद् बुधः ॥९  
 सदा रोदनशीला च पाण्डुराभा च कुत्सिताम् ।  
 कासश्वासादिसंयुक्ता निद्राशीला च नोद्वहेत् ॥१०  
 अनर्थभाषिणी चैव लोकद्वेषपरायणाम् ।  
 परापवादनिरता तस्करा नोद्वहेद् बुधः ॥११  
 दीर्घनासा च कितवा तनूरुहविभूषिताम् ।  
 गर्विता वक्त्रवृत्ति च सर्वथा नोद्वहेद् बुधः ॥१२  
 बालभात्रादविज्ञातस्वभावामुद्वहेद्यदि ।  
 प्रगल्भा वाग्गुणा ज्ञात्वा सर्वथा ता परित्यजेत् ॥१३  
 भर्तुं पुत्रेषु या नारी सर्वदा निष्ठुरा भवेत् ।  
 परानुकुलिनी या च सर्वथा ता परित्यजेत् ॥१४

बिना ही किसी कारण के व्यर्थ ही मे हँसने वाली, दूसरो के घर मे निवास करने की इच्छा या रुचि रखने वाली, झगडा करने के स्वभाव से संयुत भ्रम मे युक्त और अनि निष्ठुर स्वभाव की कन्या से भी विवाह नहीं करना चाहिये ॥८॥ विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह अधिक खाने वाली, बडे दाँतो वाली, धुर्बु र ह्वनि करने वाली, अत्यधिक काले वर्ण वाली, रक्त वर्ण से युक्त और जो धूर्ता हो ऐसी कन्या के साथ विवाह न करे ॥९॥ जो सदा ही रोते रहने के स्वभाव वाली हो, पाण्डुर वर्ण की आभा से युक्त कास और श्वास रोग वाली, कुत्सित, सदा शयन ही करने वाली कन्या के साथ भी विवाह नहीं करना चाहिये ॥१०॥ अनर्थक एव अमस्वस्थ बातें करने वाली, सभी से द्वेष भाव रखने वाली, दूसरो की निन्दा मे निरत रहने वाली, चारी करने वाली कन्या से भी विवाह नहीं करना चाहिये ॥११॥ जो लम्बी नाभिका से युक्त हो, दूत क्रीडा करने वाली हो, मर्वाङ्ग मे

लम्बे केशो वाली, अभिमान से भरी हुई, देखने में सीधी मगर मन से चालाक वन्धा में भी विवाह नहीं करना चाहिए । यदि बालभाव वश अथवा स्वभाव का ठीक ज्ञान न होने पर ऐसी वन्धा से विवाह भी हो जावे तो उसको अति प्रगल्भ और गुणहीन मानकर उसका त्याग कर देना चाहिए ॥१३॥ जा नारी सदा ही अपने स्वामी और पुत्रों से निष्ठुरता का व्यवहार किया करती हो अन्यो के अनुकूल रहा करती हो उसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥१४॥

विवाहाश्चाष्टधा ज्ञेया ब्रह्माद्या मुनिसत्तम ।  
 पूर्वं पूर्वो वरो जेय पूर्वाभावे पर पर ॥१५॥  
 ब्राह्मो देवस्तथैवापे प्राजापत्यस्तथासुर ।  
 गाधर्वोराक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो मत ॥१६॥  
 ब्राह्मेण च विवाहेन वैवाह्यो वै द्विजोत्तम ।  
 दैवेनाप्यथवा विप्र केचिदापि प्रचक्षते ॥१७॥  
 प्राजापत्यादयो विप्र विवाहा एव गहिता ।  
 अभावेपु तु पूर्वपा कुर्यादेव परान्बुध ॥१८॥  
 यज्ञोपवीतद्वितय सोत्तरीय च धारयेत् ।  
 सुवर्णकुण्डले चैव धौतवस्त्रद्वय तथा ॥१९॥  
 अनुलोपनलिप्ताग कृत्तकेशनख शुचि ।  
 धारयेद्वैणव दड सोमक च कमडलुम् ॥२०॥  
 उष्णीषममल छत्र पादुके चाप्युपानहौ ।  
 धारयेत्पुष्पमाल्ये च सुगन्ध प्रियदर्शन ॥२१॥

हे परमश्रेष्ठ मुने । विवाह भी ब्राह्मणादि आठ प्रकार के होते हैं । इन आठों में प्रथम विवाह ही श्रेष्ठ विवाह माना गया है । यदि प्रथम न बन सके तो इसके अभाव में दूसरा विवाह करे । इसी क्रम से एक दूसरे में निम्न श्रेणी के विवाह हैं जो अभाव में ही करने चाहिए अन्यथा न्यूनतम विवाह कभी न करे ॥१५॥ आठ तरह के विवाहों के

नाम ये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्य, प्रजापात्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच । ये आठ विवाह के भेद हुआ करते हैं ॥१६॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण को ब्राह्म विवाह ही करना चाहिये । हे विप्रवर ! कोई २ आचार्य दैव और आर्य विवाह करने की भी आज्ञा दिया करते हैं ॥१७॥ प्रजापत्य से लेकर अन्य जो पाँच प्रकार के विवाह होत हैं वे इन तीनों की समानता रखने वाले नहीं माने जाया करते हैं । यदि प्रथम श्रेष्ठ विवाह नहीं हो सके तो अगले दो विवाहों में जो भी बन सके विवाह विद्वान् पुरुष को करना अवश्य ही चाहिए ॥१८॥ ब्रह्मचर्य को त्याग कर गृहस्थ होम पर द्विज को दो यज्ञोपवीत, दो अङ्गो का, सुवर्ण के दो कुण्डल और धोती जोड़ा अवश्य ही अपने समीप में रखना चाहिए ॥१९॥ उसको फिर उबटना, तैल और चन्दनादि का प्रयोग भी अवश्य करना चाहिए । अपने वेश और नखों को कटवा कर परम पवित्र रहे तथा सदा अपने पास एक दाँस की यष्टि और जलसे परिपूर्ण कमण्डलु रखना चाहिए ॥२०॥ मस्तक पर स्वच्छ शिरोवेष्टन ( पगड़ी आदि ) छाता, खडाऊँ या पादत्राण (जूत) आदि पहिनना चाहिए । परम सुन्दर वस्तुओं को धारण किया करे । इस विधि से गृहस्थाश्रमी को परम प्रिय दर्शन होकर ही रहना चाहिये ॥२१॥

नित्य स्वाध्यायशील स्याद्यथाचार समाचरेत् ।  
 परान्न नैव भुञ्जीत परवाद च वर्जयेत् ॥२२॥  
 पादेन नाक्रमेत्पादमुच्छिष्ट नैव लघयेत् ।  
 न सहताभ्या हस्ताभ्या कडयेदात्मन शिर ॥२३॥  
 पूज्य देवालय चैव नापमव्य व्रजेद् द्विज ।  
 देवार्चाचमनस्नानव्रतश्राद्धक्रियादिषु ॥२४॥  
 न भवेन्मुक्तकेशश्च नैव मन्त्रधरस्तथा ।  
 नारोहेद् दुष्टयान च क्षुब्धवाद च वर्जयेत् ॥२५॥  
 अन्यस्त्रिय न गच्छेच्च पैशुन्य परिवर्जयेत् ।

नापसव्य ब्रजेद्विप्र गोश्वत्थानलपर्वतान् ॥२६॥

चतुष्पथ चैत्यवृक्ष देवखात नृप तथा ।

असूया मत्सरश्च दिवास्वाप च वर्जयेत् ॥२७॥

न वदेत्परपापानि स्वपुण्य न प्रकाशयेत् ।

स्वक नाम स्वनक्षत्र मान चैवातिगोपयेत् ॥२८॥

गृहस्थी को भी सदा स्वाध्याय करते रहना चाहिए और अपने वर्णाश्रम धर्म के ही अनुसार आचरण करे, भ्रसक दूसरो के अन्न का सेवन कर्न से बचता रहे और कभी भी अन्य लोगो की निन्दा न करे चाहे कोई बुरे से भी बुरा क्यों न हो ॥२२॥ अपने पैर से पैर को कभी नहीं दवाना चाहिए । उच्छिष्ट पदार्थ का उत्लघन न करे, दोनो हाथो को एक साथ मिलाकर अपना शिर कभी नहीं जुलाना चाहिए । ये सब बुरे लक्षण घातक हुआ करते हैं ॥२३॥ द्विज को चाहिए हमेशा पूज्य देवालय को दाई ओर करके ही गमन किया करे । देवाघन, स्नान, आचमन, व्रत और श्राद्धकर्मादि के करने के समय में अपनी शिखा और केशो को खुला हुआ नहीं रखे या एक ही वस्त्र भी पहिन कर नहीं रहना चाहिए । कभी भी बुरी सवारी पर आराहण न करे तथा व्यर्थ प्रयोजनशून्य विवाद भी न करे ॥२४॥२५॥ व्यभिचार, चुगली कभी भी नहीं करे । हमेशा इसका ध्यान रखे कि गमन के समय में यदि गो, पीपल का वृक्ष, अग्नि और पवत पडे तो इनको अपने वाम भाग में करके गमन नहीं करना चाहिए ॥२६॥ इसी विधि के अनुसार चौराह ( चतुष्पथ ) चैत्यवृक्ष और देव स्वाम को सदा अपने दक्षिण भाग में लेता हुआ ही गमन करना चाहिए । गृहस्थी को असूया, मत्सरता, दिवा शयन का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥२७॥ भूल वर भी दूमरे व द्वारा बिय हुए पाप कर्मों का अपने मुख से वणन नहीं करे और अपन द्वारा कृत पुण्य कर्मों का भी अपन मुह से प्रवट नहीं करना चाहिए । मर्वदा अपना नाम, नक्षत्र तथा धन बल का मान गुप्त रखना चाहिए ॥२८॥

न दुर्जनैः सह वसेन्नाशास्त्रं शृणुयात्तथा ।  
 आसवद्युतगीतेषु द्विजस्तु न रतिं चरेत् ॥२६॥  
 आर्द्रास्थि च तथोच्छिष्टं शूद्रं च पतितं तथा ।  
 सर्पं च भक्षणं स्पृष्ट्वा सचेलं स्नानमाचरेत् ॥२७॥  
 चित्तिं च चित्तिकाष्ठं च यूपं चाडालमेव च ।  
 स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सवासां जलमाविशेत् ॥२८॥  
 दीपखट्वातनुच्छायां केशवस्त्रकटोदकम् ।  
 भजामाजं निमाजरिणुर्देवं शुभं हरेत् ॥२९॥  
 शूर्पं वातश्रेतधूमं तथा शूद्रान्नभोजनम् ।  
 वृषलीपतिसङ्गं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥३०॥  
 असच्छास्त्रार्थमननं खादनं नखकेशयोः ।  
 तथैव नग्नशयनं मर्मदां परिवर्जयेत् ॥३१॥  
 शिरोभ्यगावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत् ।  
 ताम्बूलमनुचिं नाद्यात्तथा मुष्टं न बोधयेत् ॥३२॥

दुष्ट लोगों के पहीम में कभी निवास न करे । अशास्त्रीय बातें  
 हैं उन पर अपना कान श्रवण करने के नियम नहीं लगावे तथा द्विज  
 को आम्रव, द्यूत, मादक पदार्थ और गीतों में प्रेम कभी न करे ॥२६॥  
 आर्द्र अस्थि, उच्छिष्ट, शूद्र, पतित, सर्प, इवान् इनमें यदि स्पर्श होजावे  
 तो यन्त्रों के महित स्नान करना चाहिए ॥२७॥ चित्ता और चिन्ता की  
 सक्टी, यूप, चाण्डाल और देवमर्क का स्पर्श होने पर भी अवश्य ही  
 स्नान करना चाहिए ॥२८॥ दीपक और शरीर की छाया, केशवस्त्र वगैरह  
 वक्की, युष्मारी, विनाय के नीचे की धूमि में सभी पदार्थ प्राग्ध वगैरह  
 नाश करने वाले हुआ करते हैं । गुप्त हो रहा, प्रत वगैरह चिन्ता वगैरह  
 धूम, शूद्रान्न वगैरह आहार, शूद्र स्त्री व पति का मङ्गल इत्यादि दूर  
 ही हो कर देना चाहिए ॥२९॥ ३०॥ कुम्भिक द्रव्य का मनन, नग्नो  
 और केशों को दाँतों में बाटना, नग्न होकर शयन करना आदि कुल-

क्षणो वा भी अवश्य ही परित्याग कर देना चाहिए । इनके करने में धर्म नाश के साथ चुरा प्रभाव भी हुआ करता है ॥३४॥ शिर म डालन से अवशिष्ट तैल को शरीर पर कभी नहीं मलना चाहिए । अपवित्र ताम्बूल वा चण भी कभी न करे और कोई भी शयन कर रहा हो तो बिना किसी कारण के उस न जगावे ॥३५॥

नाशुद्धोऽग्निं पश्चिन्तेपूजयेद्गुरुदेवता ।

न वामहस्तेनैवेन पिवेद्वक्त्रेण वा जलम् ॥३६॥

न चाक्रमेद गुरोश्छाया तदाज्ञा च मुनीश्वर ।

न निदेशोगिनो विप्रान्प्रतिनोऽपि यतीस्तथा ॥३७॥

परस्परस्य मर्माणि न कदापि वदेद् द्विज ।

दर्शं च पूर्णिमास्या च याग कुर्याद्यथाविधि ॥३८॥

उपासनं च होतव्यं सायं प्रातर्द्विजातिभिः ।

उपासनपरित्यागो मुरापीत्युच्यते बुधैः ॥३९॥

अयने विषुवे चैव युगादिषु चतुर्वर्षे ।

दर्शं च प्रोतपक्षे च श्राद्धं कुर्याद् गृही द्विज ॥४०॥

मन्वादिषु मृताहे च अष्टकामु च नारद ।

नवधान्ये समायाते गृही श्राद्धं समाचरेत् ॥४१॥

श्रोत्रिये गृहमायाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

पुण्यक्षेत्रेषु तीर्थेषु गृही श्राद्धं समाचरेत् ॥४२॥

अपवित्र अथवा अशुद्ध अवस्था में रहकर कभी अग्नि सेवा गुरु और देवों का यजन नहीं करना चाहिए । अकेले अपने वाम कर से पशु के समान पात्र में मुख डाल कर मुख से जल का पान नहीं करना चाहिए ॥३६॥ हे मुनिवर । अपने गुरुदेव की छाया और उनकी आज्ञा का कभी भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए ॥३७॥ द्विज को चाहिए कि आपस के मर्मों का उद्घाटन न करे । अमावस्या और पूर्णिमा तिथियों में शास्त्रोक्त विधान से यज्ञ करे ॥३८॥ द्विजातियों को चाहिए कि नित्य ही नियम पूर्वक प्रातः व सायं दानों

नारद पुराण ]

कालो मे देवोपासना तथा हवन करना चाहिए । जो द्विज अपनी उचित उपामना का त्याग कर दिया करता है विद्वान लोग उसको मुरापी के समान ही समझा करते हैं ॥३६॥ गार्हस्थ्य आश्रम में रहने वाले द्विज को चाहिये कि वह दक्षिणायन और उत्तरायण के आरम्भ में विपुव काल में तुला तथा मेष की सक्रांति के अवसर पर चारों युगों की तिथियों में जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है—अमावस्या और पितृ पक्ष में श्राद्ध करे ॥४०॥ हे नारद । गृहस्थी द्विज को मन्वादि की तिथियों में, मृताह में, अष्टका तथा नूतन घान्य के आने पर श्राद्ध अवश्य ही करना चाहिये ॥४१॥ किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर में समागत होने पर चन्द्र-सूर्य की ग्रहण वेला में पवित्रतम क्षेत्रों तथा घासों और तीर्थ स्थलों में गृहस्थी को अवश्य ही श्राद्ध करना चाहिए ॥४२॥

यज्ञो दान तपो होम स्वाध्याय पितृतर्पणम् ।  
 वृथा भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥४३॥  
 उर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसी श्राद्धे नेच्छन्ति केचन ।  
 पराचार परित्याज्यस्तस्माच्छ्रेयोर्ऽर्थभिर्द्विजैः ॥४४॥  
 इत्येवमादयो धर्मा स्मृतिमार्गप्रचेदिता ।  
 कार्या द्विजातिभिः सम्यक्सर्वकर्मफलप्रदा ॥४५॥  
 सदाचारपरा ये तु तेषां विष्णु प्रसीदति ।  
 विष्णो प्रसन्नता याते विमसाध्य द्विजोत्तम ॥४६॥

द्विज का मस्तक बन्धी भी शून्य नहीं रहना चाहिए । तिलक करने को बहुत बड़ी महिमा है । वंष्णवों व मनानुसार शिना ऊर्ध्व-पुण्ड्र के यज्ञ, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितृ तर्पण सब व्यवसाय ही जाया करता है ॥४३॥ शैव, शाक्त आदि लोग ऊर्ध्व पुण्ड्र और तुलसी की श्राद्ध में बार्द आवश्यकता नहीं समझा करते हैं य लोग अपनी २ सम्प्रदाय व अनुसार त्रिपुण्ड्र धारण किया करते हैं । अतः



एव परमाधिक श्रेय के अभिलाषी द्विज को दूसरों के आचार को त्याग कर अपने ही कुल क्रमागत आचार का पालन करना चाहिए ॥४५॥ स्मृति ग्रन्थों में वर्णित इस सदाचरण के नियमों का पालन द्विजों को करना ही चाहिए । ये सदाचरण सभी कर्मों का फल दिया करते हैं ॥४५॥ जो द्विजगण सदा सदाचरणों का पालन किया करते हैं उन पर भगवान् विष्णु की अधिक प्रसन्नता हुआ करती है । जब भगवान् विष्णु प्रसन्न होजाया करते हैं तब फिर कोई भी कर्म असाध्य नहीं रहा करता है ॥४६



## ॥ गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी के धर्म ॥

गृहस्थस्य सदाचार वक्ष्यामि मुनिसत्तम ।  
 यद्वता सर्वपापानि नश्यत्येव न शशयः ॥१॥  
 ब्राह्मं मुहूर्ते चात्त्याय पुरुषार्थाविरोधिनीम् ।  
 वृत्तिं संचितयेद्विप्र कृतकेशप्रसाधन ॥२॥  
 दियासध्यासु कर्णस्थग्रहासूत्र उदङ् मुखः ।  
 कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुख ॥३॥  
 शिर प्रावृत्य वस्त्रेण ह्य तद्वीर्यं तृणमहीम् ।  
 वहन्काष्ठं करेणैकं तावन्मौनी भवेद् द्विज ॥४॥  
 पथि गौण्डे नदीतीरे तडागगृहसन्निधौ ।  
 तथा वृक्षस्य च्छायाया कातारे वह्नि सन्निधौ ॥५॥  
 देवालये तथोद्याने कृष्टभूमौ चतुष्पथे ।  
 ब्राह्मणानां समीपे च तथा गोपुत्रयोपिताम् ॥६॥  
 तुषागारकपालेषु जलमध्ये तथैव च ।  
 एवमादिषु देशेषु मलमूत्रं न कारयेत् ॥७॥

## नारद पुराण ]

श्री सनक महर्षि ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं गृहस्थ के सदाचरणों का विस्तृत वर्णन करता हूँ—इन सदाचारों का पालन करने वालों के समस्त पाप नष्ट हो जाया करते हैं ॥ १ ॥ हे विप्रवर ! गृहस्थी द्विज व्यक्ति को ब्राह्मण मुहूर्तों में ही शय्या से उठकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में बाधा पहुँचाने वाली आजीविका के विषय में विचार करना चाहिए । उसी समय में अपने केशों को भी सम्भाल लेवे ॥ २ ॥ दोनों समयों में मूत्र-पुरीषोत्सर्ग करने के समय में यज्ञोपवीत को कान पर चढ़ाकर उत्तर की ओर मुख करके ही करना चाहिए । रात्रि के समय में दक्षिण दिशा की ओर मुख करके ही मल मूत्र का त्याग करना चाहिए ॥ ३ ॥ मल मूत्र के त्याग करने के समय में शिर को समावृत रखे और भूमि पर तृण बिछाकर जिससे भूमि का साक्षात् मल का स्पर्श न आवे एक हाव से दण्ड को ग्रहण किया हुए ही मीन नल का त्याग कभी नहीं करे—मार्ग, गोठ, नदी तट, तालाब का तीर, वृक्षों की छाया, उपवन, अग्नि की मन्त्रिधि दवानय, जुती हुई भूमि, चतुष्पथ, ब्राह्मण, गौ, गुर और स्त्रिया के समीप में भुम, अङ्गार, ठीकरी का ढेर, जल का मध्य ये सभी स्थल मल त्याग के लिये वर्जित हैं ॥ ५-७ ॥

शौचे यत्न सदा कार्यं शौचमूलो द्विजः स्मृतः ।  
 शौचाचारविहीनस्य समस्तं कर्म निष्फलम् ॥ ८ ॥  
 शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।  
 मृज्जलाभ्या वहि शुद्धिर्भावशुद्धिस्तथातरम् ॥ ९ ॥  
 गृहीतशिशनश्चो याय शौचार्यं मृदमाहरेत् ।  
 न मूषकादिखनिता फालोन्कृष्टा तथैव च ॥ १० ॥  
 वापीनूपतडागेष्वपि नाहरेदपि मृत्तिकां ।  
 शौचं कुर्यात्प्रयत्नेन समादाय शुभा मृदम् ॥ ११ ॥  
 लिङ्गे मृदेका दातव्या तिस्रो वा हस्तयोर्द्वया ।

एतन्मूत्रसमुत्सर्गं शौचमाहुर्मनीषिणः ॥१२॥  
 एका लिगे गुदे पंच दश वामे तथोभयोः ।  
 सप्त तिस्रः प्रदातव्याः पादयोर्मृत्तिकाः पृथक् ॥१३॥  
 एतच्छौचं विदुत्सर्गं गन्धलेपापनुत्तये ।  
 एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥१४॥  
 त्रिगुणं तु वनस्थाना यतीना तच्चतुर्गुणम् ।  
 स्वस्थाने पूर्णशौचं स्यात्पथ्यद्धं मुनिसत्तम ॥१५॥

गृहाश्रमी को सदा परम पवित्र रहने का उद्योग एव प्रधान प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि द्विजत्व का मूल पवित्रता ही होती है । जो पवित्रता और सदाचरणों से शून्य रहता है उसके द्वारा विहित सभी कर्म निष्फल हो जाया करते हैं ॥ ८ ॥ यह पवित्रता बाह्य और आभ्यन्तर के भेदों से दो प्रकार की हुआ करती है । मिट्टी और जल से बाहिरी शुद्धता हुआ करती है तथा मानसिक भावों की शुद्धि से आन्तरिक पवित्रता हुआ करती है ॥ ६ ॥ फिर लिङ्ग को हाथ में धामे हुए उठकर शौच के लिये मिट्टी लेवे । जहाँ से मृत्तिका का ग्रहण करे उस स्थान को भी पहिले विचार कर देख लेना चाहिए—छूहो तथा अन्य प्राणियों के द्वारा खोदी हुई मिट्टी न लेवे—हलकी नोक से उखड़ी हुई मिट्टी, बावड़ी, कूप और तालाब की मिट्टी का भी इस कर्म के लिये कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए । अच्छी और शुद्ध मिट्टी लेकर ही प्रयत्नपूर्वक स्वच्छता का सम्पादन करे अर्थात् पवित्र होना चाहिये ॥ १० । ११ ॥ उपम्य मे एक वार—दोनों हाथों में दो वार मृत्तिका लगाकर ही मूत्र के उत्सर्ग करने पर विद्वान् पुरुष शुद्धता बतलाया करत है ॥ १२ ॥ मलोत्सर्ग करने पर दुर्गन्ध का निवारण करने के लिये एक वार लिङ्ग पर—पांच वार गुदा में—दश वार वाम वर में—दोनों हाथों में सप्त वार पैरों में तीन वार मृत्तिका लगानी चाहिये । यह शुचिता गृहस्थों की कही है । ब्रह्मचारी को शुचित इससे द्विगुनी मृत्तिका

ारद पुराण ]

लगाने से होती है—वानप्रस्थियों की तिगुनी क्रिया करने से ही शुद्धि हुआ करती है । हे मुनिवर । अपन स्थान पर पूर्ण शुचिता जैसी कि शास्त्र में बताई गयी है करनी चाहिए तथा मार्ग में इससे आधी करे ॥१३-१५॥

आतुरे नियमो नास्ति महापदि तथैव च ।  
गन्धलेपक्षयकर शौचं कुर्याद्विचक्षण ॥१६॥  
स्त्रीणामनुपनीतानां गन्धनेऽक्षयावधि ।  
व्रतस्थानां तु सर्वेषां यतिवच्छौचं भिष्यते ॥१७॥  
विधयानां च विप्रैर्द्रष्टृदेव निगद्यते ।  
एव शौचं तु निर्वृत्तं य पश्चाद्वै सुसमाहित ॥१८॥  
प्रागास्य उदगास्यो वाप्याचामेत्प्रयत्नेन्द्रिय ।  
त्तिश्चनुर्घां पिवेदापो गन्धकेनादिवर्जित ॥१९॥  
द्विर्माजयेत्कपोलं च तलेनोष्ठौ च सत्तम ।  
तर्जन्यगुष्ठयोगेन नासारध्मद्वयं स्पृशत् ॥२०॥  
अगुष्ठानामिकाध्यां च चक्षुःश्रोत्रे यथाक्रमम् ।  
कनिष्ठागुष्ठयोगेन नाभिदेशे स्पृशेद् द्विज ॥२१॥

रक्षावस्था में और परम धोर आपर्ति के समय में शुचिता जितनी भी बन पड़े करे वही पर कोई भी नियम नहीं बताया गया है । अनुरूप को दुर्गन्ध के निवारण करने तक शुद्धि अवश्य ही करनी चाहिये ॥१६॥ स्त्रियों का और ऐसे बालका का जिनका उपवीत नहीं हुआ हो इतनी ही शुचिता पर्याप्त है जिससे गन्ध का निवारण हो जावे । जो व्रत करे उनका सन्यामिया के तुल्य ही शुद्धि करनी चाहिए ॥ १७ ॥ हे विप्रवर । विधवा स्त्रिया की शुचिता के लिये यही नियम होते हैं । इस रीति से शुचिता करके परम समाहित होकर उत्तर अथवा पूर्व की ओर मुख करके गन्ध-रुन आदि से रहित विशुद्ध निमन जल को तीन बार बार पीकर आचमन करे ॥ १८, १९ ॥ हे मुनि सत्तम । इसके उपरान्त दो बार जल से कपालो को धोव तथा दो बार ही अपन होंठों का प्रक्षालन करे । पीछे तर्जनी अंगुलि और अंगूठे से नासिका के छिद्रों को साफ करे ॥२०॥ अंगुष्ठ और अनामिका अंगुलि की सहायता

से क्रम से नेत्रों और कानों का स्पर्श कर शुद्ध करे । इसके पश्चात् द्विज का कर्त्तव्य है कि कनिष्ठिका अँगुली और अँगूठे से नाभि देश का स्पर्श करना चाहिये ॥२१॥

तलेनोर स्थलं चैव अमुत्थग्रं शिरः स्पृशेत् ।

तलेन चाङ्गुलाग्रं वा स्पृशेदसौ विचक्षणः ॥२२॥

एवमाचम्य विप्रद्रुष्टिमाप्नोत्यमुत्तमाम् ।

दत्तकाष्ठं ततः खादेत्सत्त्वजं शस्तवृक्षजम् ॥२३॥

विल्वासनापामार्गाणां निम्बाम्नाकारादिशाखिनाम् ।

प्रक्षाल्य वापिणा चैव मन्त्रेणाप्यभिमन्त्रितम् ॥२४॥

आयुर्वलं यशो वर्चं प्रजां पशुवसूनि च ।

दत्तं प्रजां च मेघां च त्वन्नो धेहि वनस्पते ॥२५॥

कनिष्ठाग्रसमं स्थाल्ये विप्रः खादेद्दशांगुलम् ।

नद्यांगुलं क्षत्रियश्च वैश्यश्चाष्टाङ्गुलोन्मितम् ॥२६॥

शूद्रो वेदाङ्गुलमितं वनिता च मुनीश्वरः ।

अलाभे दन्तमाष्ठानां गृह्णेष्वनुसमितं ॥२७॥

मुखशुद्धिविधीयेत तृणपत्रसमन्वितं ।

करेणादाय वामेन सचर्वेद्वातदष्टया ॥२८॥

हाथ की हथेली से द्विज को अपने वक्षः स्थल का स्पर्श करना चाहिये—अँगुलियों के अग्रभाग से अपने शिर का स्पर्श करे फिर चतुर्द पुरुष को अपनी अँगुलियों के अग्रभाग से दोनों कंधों का स्पर्श करना चाहिए ॥२२॥ हे विप्रवर ! इस विधि से सम्पूर्ण भङ्गी का स्पर्श करके तथा आचमन करके श्रेष्ठ शुचिता हुआ करती है । इसके उपरान्त किसी श्रेष्ठ वृक्ष की छालदार दातुन करे । दन्त धावन करने के लिए देव, विजयसार, चिरविटा, नीम आम्ब और मदार की टहनियों को पहिले प्रक्षालित करे और फिर निम्न मन्त्र पढ़कर अभिमन्त्रित करे—  
'आयुर्वलं यशो वर्चं प्रजां पशु वसूनि च । ब्रह्म प्रजां च मेघां च त्वन्नो धेहि वनस्पते । अर्थ—हे वनस्पते ! तुम मुझको आयु, बल, वज्र, तेज सन्तति पशु धन, वेद ज्ञान, बुद्धि और मघा दो । इस से पढ़ करके अभिमन्त्रण करके फिर दातुन का ग्रहण करना चाहिए ॥२३—२५॥ ब्राह्मण को कनिष्ठिका के तुल्य स्थूल दश अंगुल

प्रणाम करे । फिर रविमण्डल से भगवान् का आवाहन करके गन्धादि से मण्डल की रचना करना हुआ जनार्दन भगवान् का स्मरण करके गङ्गा आदि तीर्थों के पावन शुभ नामों का समुच्चारण करते हुए स्नान करे ॥३१—३२॥ तीर्थों के स्मरण करने के मन्त्रों का निम्न रीति से ही पाठ करते हुए स्नान करने का विधान है । मन्त्र ये हैं— 'गङ्गा च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जले ऽस्मिन्मन्त्रिण कुह । पुष्कराद्यानि तीर्याणि गङ्गायाः सरितस्तथा । आगच्छन्तु महाभागाः स्नान काले सदा मम । अयोध्या मथुरा माया काशी-काञ्ची अवन्तिका । पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्ष दायिका ।' अर्थात् हे गङ्गा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी । आप सब इस जल में सन्निधान करिये और अपना पुण्य प्रभाव इसमें डालिये । मेरे इस स्नान-काल में गङ्गा प्रभृति समस्त पावन नदियाँ तथा पुष्कर आदि महाभाग समस्त तीर्थ सर्वेदा यहाँ पधारण करे । अयोध्या, मथुरा, माया ( हरिद्वार ), काशी, काञ्ची, अवन्तिका ( उज्जैन ) और द्वारका इन सातों पुरियों को मोक्ष देने वाली कहा गया है ॥३३—३५॥

ततोऽधमर्पणं जप्त्वा यतामुर्वारिसंस्तुत ।  
 स्नानाग तर्पणं कृत्वाचम्यार्घ्यं भानवेऽर्पयेत् ॥३६॥  
 ततो ध्यात्वा विवस्वत जलान्निर्गत्य नारद ।  
 परिधायाहत धीत द्वितीय परिवार्य च ॥३७॥  
 कुशासने समाविश्य सध्याकर्म समारभेत् ।  
 ईशानाभिमुखो विप्र गायत्र्याचम्य वै द्विज ॥३८॥  
 ऋतमित्यभिमन्याथ पुनरेवाचमेद् जुघ ।  
 ततस्तु वारिणात्मानं वेष्टयित्वा समुध्य च ॥३९॥  
 सकल्प्य प्रणवान्ते तु ऋपिच्छन्द सुरान्स्मरन् ।  
 भूरादिभिर्व्याहृतिभिः सप्तभिः प्रोक्ष्य मस्तकम् ॥४०॥

न्यास समाचरे-मन्त्री पुथगेव करागयो ।

विन्यस्य हृदये तार भू शिरस्यथ विन्यसेत् ॥४१॥

भुव शिखाया स्वश्चैव कवचे भूर्भुवोऽक्षिपु ।

भूर्भुव स्वस्तक्षात्रास्त्र दिक्षु तालत्रय न्यसेत् ॥४२॥

इसके अनन्तर अघमपण मन्त्र का जप करे—प्राणायाम करे

और जल से आर्द्र रहते हुये ही स्नानाङ्ग तर्पण करे । इसके उप-  
रान्त आचमन करके सूर्य देव को अर्घ्य देव ॥३६॥ हे नारद । जल से  
निकलकर सूर्य देव का ध्यान करके शांटी धारण करे और दूसरा वस्त्र  
भी समीप रखकर दर्भासन पर स्थित होकर मध्या कर्म करे । हे  
द्विजवय । ईशान कोण त्रिविधा की ओर मुँह करके आचमन न करे  
॥३७—३८॥ 'ऋत च सत्यम्' इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करके  
वेदान् पुरुष को पुन आचमन करना चाहिए । इसके पश्चात् अपन  
बाँव ओर जल से घेरा देवर ममुक्षण करे ॥ ३९ ॥ इसके पश्चात्  
सकल्य करे । प्रणव के अन्त में ऋषि छन्द और देवता का स्मरण  
करना हुआ भू—भुव—स्व—मह जन—तप—सत्यम्—इन सात  
महावाहृतियों से अपने शिर पर प्रोक्षण करना चाहिए ॥ ४० ॥  
इसके उपरान्त मन्त्रों के साथ वरन्यास और अङ्गन्यास करे । ओर के  
साथ—ॐ भू—ऐसा उच्चारण करता हुआ हृदय का हृदयाय नमः  
कहकर स्पर्श करे । ॐ भुव यह बोलता हुआ 'शिरस स्वाहा—  
कहकर शिर पर न्यास करे । 'ॐ स्व—देवायै वषट् कहकर शिखा  
का स्पर्श करे । 'ॐ भूर्भुव स्व' इसका उच्चारण करते हुए दाया  
भुजाओ का स्पर्श करना चाहिए । इसी रीति से ॐ भू भुव  
स्व कहकर दोनों नत्रा का स्पर्श करे और अन्त में 'ॐ अम्नाय फट्'  
यह कह कर दिशाओ में नीचे तानियाँ बजाव ॥४१॥४२॥

✓ तत आवाहयेत्सध्या प्रातः कोकनदस्थिताम् ।

आगच्छ वरदे देवि श्यमरे ब्रह्मवादिनि ॥४३॥

✓ गायत्री छन्दसां मातर्ब्रह्मायोने नमोऽस्तु ते ।  
 मध्याह्नेवृषभारूढा शुक्लाम्बरसमावृताम् ॥४४॥  
 सावित्री रुद्रयोनिं चावाहयेद्बुधवादिनीम् ।  
 सायं तु गरुडारूढा पीताम्बरसमावृताम् ॥४५॥  
 सरस्वती विष्णुयोनिमाहवयेद्विष्णुवादिनीम् ।  
 तारं च व्याहृतोः सप्तत्रिपदा च समुच्चरन् ॥४६॥  
 शिरः शिखा च संपूर्णं कुं भयित्वा विरेचयेत् ।  
 वाममध्यात्परैर्वायुं क्रमेण प्राणसयमे ॥४७॥  
 द्विराचामेत्ततः पश्चात्प्रातः सूर्यश्चमेति च ।  
 आप पुनन्तु मध्याह्ने सायमग्निश्चमेति च ॥४८॥  
 आपो हिष्ठेति तिसृधिमार्जिनं च ततश्चरेत् ।  
 सुमित्रिया न इत्युक्त्वा नासास्पृष्टजलेन च ॥४९॥  
 द्विपद्वर्गं समुत्सार्य द्रुपदा शिरसि क्षिपेत् ।  
 ऋतं च सत्यमेतेन कृत्वा चैवाधमर्पणम् ॥५०॥

इसके अनन्तर प्रातःकाल की सन्ध्या के अवसर पर रक्त वर्ण के कमल पर विराजमान श्री गायत्री माता या आवाहन निम्न लिखित मन्त्र को पढ़ते हुए करना चाहिये । 'आगच्छ वरदे देवि । व्यक्षरे ब्रह्मावादिनि । गायत्री छन्दसा मातर्ब्रह्म योते नमोऽस्तुते' अर्थात् हे गायत्री माता ! आपका समुत्पत्ति स्थान वेद है, आप समस्त छन्दों की जननी हैं तथा तीन अक्षरों वाली हैं और ब्रह्म आदि को भी वरदान प्रदान करने वाली हैं । ऐसी गायत्री देवी यहाँ पधारिये आपकी सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है । तीनों कामों में तीन ऋणों या पृथक् ध्यान होता है । मध्याह्न के समय में वृषभ पर चढ़ा हुई-शुक्ल वस्त्रों को धारण करने वाली-रुद्रयोनि-रुद्राहिनी तथा सावित्री के रूप वाली देवी या आवाहन करना चाहिए, सायंकाल के समय में गरुड पर समावृ-पीताम्बर धारण करने वाली-विष्णु योनि एवं दिगम्बु याहिनी



सरस्वती के स्वरूप वाली देवी को आवाहन करे । इसके उपरान्त उच्च स्वर में सात महाव्याहृतियों वाली त्रिपदा गायत्री का उच्चारण करते हुए शिर और शिखा पर्यन्त प्राणवायु को चढाकर विरेचन करे । प्राणायाम में वायु का पूरण—कुम्भन और विरेचन करना चाहिए । प्रातःकाल में 'सूर्यश्च या' इत्यादि मन्त्र को उच्चरित करते हुए आचमन करना चाहिए । मध्याह्न बेंला में 'आप. पुनन्तु' इत्यादि मन्त्र से दो बार आचमन करे तथा माया मन्थोपासना के अवसर पर 'आश्चश्चया' इत्यादि मन्त्र से आचमन करे ॥४३-४८॥ इसके पश्चात् 'आपोहिता' इत्यादि तीन ऋचाओं में मार्जन करे और पीछे 'सुमंत्रिया न आप' इत्यादि मन्त्र को पढ़ कर नाक से स्पर्श कर शङ्खु वर्ग का समुत्तारण करे । पीछे 'दुपदादिब' इत्यादि मन्त्र को पढ़ कर शिर पर जल के छीटे देवे । फिर 'ऋतं च सत्यम्' इत्यादि मन्त्र से अघमर्पण करे ॥४६॥५०॥

अन्तश्चरसि मैत्रेण सकृदेव पिबेदप ।

ततः सूर्यायविधिवदगधं पुष्पजलाजलिम् ॥५१॥

क्षिप्तोपतिष्ठेद्देवर्षे भास्करस्वस्तिकाजलि ।

ऊर्ध्वं वाहुरधोवाहुः क्रमात्कल्यादिके त्रिके ॥५२॥

उदुत्य चित्रं तच्चक्षुरित्येतत्त्रितयं जपेत् ।

तैजोऽसि गायत्र्यसीति प्राथयेत्सवितुर्मह ।

ततोऽङ्गानि त्रिरावृत्य ध्यायेच्छक्तीस्तदात्मिका ॥५४॥

ब्रह्माणी चतुराननाक्षयलया कुम्भं करं स्रुक्सयी

विभ्राणा त्वरणेदुकातिवदना ऋग्पिणी वालिका ।

हसारोहणेनिग्रण्यण्मणेविवाचिता भूषिता

गायत्री परिभाविता भवतु न मपत्समृद्धये सदा ॥५५॥

रद्राणी नवयौयना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्बरा

पट्वाग्निशिखाक्षमूत्रदलयाभीतिश्रियं चान्तु न ।

विद्युद्दामजटाकलापविलसद्वालेंदुमौलिमुंदा

सावित्री वृषवाहना सिततनुर्ध्वया यजुरुपिणी ॥५६॥

इसके अनन्तर 'अन्तश्चारसि'—इत्यादि मन्त्र को पढ़ करके आचमन करे और फिर विधि पूर्वक गन्ध-पुष्प से समन्वित जलाजलि सूर्य देव को देनी चाहिए । हे देवर्षे ! स्वस्तिकाजलि करके सूर्य का उपस्थान करना चाहिए । मध्याह्न के समय में ऊर्ध्वबाहु रहे और सायंकाल के समय में अधोबाहु रहे ॥५१॥५२॥ 'उद्भृत्यम्'—'वित्रम्'—'तच्चक्षुः' इत्यादि तीन ऋचाओं को जपता हुआ हे नारद । उस समय में सूर्य, शिव और विष्णु सम्प्रदायो के अन्य मन्त्रों का भी उच्चारण करना चाहिए ॥५३॥ फिर 'तेजोऽसि गायत्र्यसीति' इस मन्त्र को पढ़ कर सूर्य भगवान् के अपरिमित तेज का ध्यान करे । इसके पश्चात् ब्रह्म के अङ्गों का तीन नामोच्चारण करे और उसकी शक्तियों का ध्यान करना चाहिए ॥५४॥ ध्यान के मन्त्र ये हैं— 'ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलयो बुम्भ करे' श्रुक्श्रुवी विभ्राणा त्वर-णेन्दु कान्तिवदना ऋग्रूपिणी वालिका । हसारोहण केलि खण्डनमणे-विदाविता भूपिता । गायत्री परिभाविता भवतु नःसम्पत्समृद्धयै सदा'— अर्थात् चीमुखी रुद्राक्षों की माला की हाथ में धारण करने वाली, दोनों करों में श्रुक् और श्रुवा और बुम्भ की धारण करने वाली, अरुण चन्द्र के समान मुख कान्तिमती, ब्रह्मा के सुत्य रूप वाली वालिका—ऋग्रूपिणी, हंस पर गमारुद्ध, खनखनगहट करती हुई मणियों के प्रतिविम्ब से अचित ऐसी परम विभूषित गायत्री देवी ध्यान करने पर हमारी सम्पत्ति की समृद्धि करें ॥५५॥ अब मध्याह्नकालीन ध्यान बताया जाता है—'रुद्राणी नवयौयना त्रिनयना यषाघ्रनर्मा-मरा पट्वाङ्गविशिष्याशमूषकनयाऽभीतिश्रियो चास्तु नः । विद्युद्दा-मजटा कलाप विल सद्वालेंदुमौलिमुंदा सावित्रीवृषवाहना सिततनुर्ध्वया यजुरुपिणी ॥' अर्थात् रुद्र के सहस्र स्वरूप में समन्वित, नूतन यौवन

से भूषित, तीन नेत्र धारण करने वाली, व्याघ्र चर्म ( बाघम्बर ) को ओढ़े हुए, खाट का एक पाया, त्रिशूल बक्ष मूत्र अर्थात् रक्षाक्ष माला तथा वङ्गण धारण करने वाली, विद्वत् के समान कान्ति-मयी, अपनी जटाजूट में वल्ल चन्द्र को मस्तक पर सानन्द धारण करने वाली, बृषभ के बाहुन बानी, गौर वर्ण से युक्त, प्रभुर्बेद में वर्णित रूप वाली, ऐसी सावित्री देवी ध्यान में साने पर हमारी सम्पत्ति को बढ़ाने और अमीति हमकी प्रदान करे ॥५६॥

ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरासकृता

श्यामा श्यामतनुर्जरोपरिलसद् गानाचिता वैष्णवी ।

तार्क्ष्यस्थामणिनूपुरामदलसद्गं वेयभूषोज्ज्वला

हस्तालवृतगण्डचक्रमुगदा पद्मा धियै चास्तु न ॥५७॥

एव ध्यात्वा जपेत्तिष्ठन्प्रातर्मध्याह्नके तथा ।

सायकाले समासीनो भक्त्या तद्गतमानसः ॥५८॥

सहस्रपरमा देवी रतमध्या दशावराम् ।

निपदा प्रणवोपेता भूभुव स्वरूपक्रमाम् ॥५९॥

पट्टार सपुटो वापि व्रतिश्च यतेज्जप ।

गृहस्थस्य सतार म्याज्जप्य एवविधो मुने ॥६०॥

ततो जप्त्वा यथाशक्ति सवित्रे विनिवेद्य च ।

गायत्र्यै च सवित्रे च प्रक्षिपेदजलिद्वयम् ॥६१॥

ततो विमृज्य ता विप्र उत्तरे इति मन्त्रत ।

ग्रहगणेशेन हरिणानुजाता गच्छ सादरम् ॥६२॥

दिग्भ्यो दिग्देवताभ्यश्च नमस्कृत्य शृणाजनि ।

प्रातराद्रे पर कर्म कुर्यादपि विधानतः ॥६३॥

अथ गायत्रीमयीन ध्यान का वर्णन किया जाता है । भयाह्न के समय में गायत्री का ध्यान करना चाहिए । 'ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरासकृता, श्यामा श्यामतनुर्जरोपरिलसद् गानाचिता वैष्णवी तार्क्ष्यस्थामणिनूपुरामदलसद्गं वेयभूषोज्ज्वला हस्तालवृतगण्डचक्रमुगदा पद्मा धियै चास्तु न ॥५७॥

वैष्णवी । तादर्यम्यामणिन्पुराङ्गदलसद्ग्रैवेयभूपोज्ज्वल, हस्तालकृत  
 शख चक्र सुगदा पद्मा श्रियै चास्तुन.' । अर्थात् सन्ध्या समय भगवती  
 गायत्री देवी के स्वरूप का ध्यान विष्णु के समान रूपवती सरस्वती  
 के तुल्य जैसा ध्यान करना चाहिए । भगवती गायत्री देवी पीत वर्ण  
 के वस्त्रों को धारण करने वाली हैं । आप श्यामा हैं और श्याम ही  
 आपका स्वरूप है अर्थात् शरीर है, वृद्धता की आभा से गरुड पर  
 समाकूट हैं । मणियों से निर्मित नूपुर और बाजूबन्दों से देदीप्यमान  
 तथा हार के भूषण से समुज्ज्वल, हाथों में शख, चक्र, गदा और पद्म  
 धारण करने वाली ऐसी जगन्माता देवी हमारी सम्पत्ति के वर्धन के  
 लिये पधारें ॥५७॥ तीनों कालों में भिन्न रूपों का ध्यान करके गायत्री  
 में भक्ति युक्त होकर मन को लगा कर अपने आसन पर शान्त भाव से  
 बैठ कर जाप करना चाहिये ॥५८॥ हे भुनिवर ! गायत्री मन्त्र का  
 एक महत्त्व जाप उत्तम कहा जाता है । एक माला का जाप मध्यम  
 कोटि का जाप कहा जाया करता है तथा दश बार का जाप साधारण  
 होता है । इस तीन पदों वाली गायत्री को प्रणव (३५) 'ओ३म् भू-  
 भुव स्व' पहिले जोड़ कर जाप करना चाहिये । जो ब्रह्मचारी या  
 सन्यासी हो उनको आदि अन्त दोनों ओर उक्त प्रणव सहित व्याह-  
 तिया छोड़ कर जाप करना चाहिये । गृहस्थी द्विज उक्त रीति से  
 सम्पुटित न करके भी जाप कर सकता है ॥५९—६०॥ यथा शक्ति  
 जब करके भगवान् सूर्य देव की सेवा में समर्पित कर देवे । इसके  
 अनन्तर गायत्री देवी और सूर्य भगवान् को दा अञ्जलि देनी चाहिए  
 ॥६१॥ इसके पश्चात् 'उत्तरे शिखरे' इत्यादि मन्त्र के द्वारा गायत्री  
 का विसर्जन करे । उस समय में यह प्रार्थना करे कि अब तो आप  
 पधारें किन्तु त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु) में हमारे कर्म वर्धन कर उनसे अनुमत  
 होकर पुन पधारियेगा ॥६२॥ फिर इसके अनन्तर दिशा विदिशाओं  
 के लिए हाथ जोड़ नमः अर्थात् दिग्देवों को साञ्जति प्रणाम करना

चाहिए । इसके बाद में प्रातः काल में होने वाले अन्य कृत्यों का सम्पादन करना चाहिए ॥६३॥

प्रातर्मध्यदिने चैव गृहस्थ स्नानमाचरेत् ।  
 वानप्रस्थश्च देवर्षे स्नायात्त्रिपवणं यति ॥६४॥  
 आतुराणां तु रोगार्थं पाथानां च सकृन्मतम् ।  
 ब्रह्मयज्ञं ततः कुर्याददर्भपाणिर्मुनीश्वर ॥६५॥  
 दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि चेत् ।  
 शबरायां प्रथमे यागे तानि कुर्याद्यथाक्रमम् ॥६६॥  
 नोपास्ते यो द्विज मध्या घृतं बुद्धिरनापदि ।  
 पापं स हि विज्ञाप्य सर्वधर्मवह्निभूत ॥६७॥  
 यस्तु सध्यादिवर्माणि कूटयुक्तिविशारदः ।  
 परित्यजति तं विद्यान्महापातमिना वरम् ॥६८॥  
 ये द्विजा अभिभाषन्ते त्यक्तसध्यादिकमणः ।  
 ते याति नरकान्घोराभ्यावन्चन्द्रार्कतारकम् ॥६९॥  
 देवाचनं ततः कुर्याद्वैश्वदेवं यथाविधि ।  
 तत्रत्यमतिथिं सम्यग्गन्तास्तेष्वप्रयुजयेत् ॥७०॥

हे देवर्षे ! गृहस्थी और वानप्रस्थी का प्रातः मध्य ह्न दो बार नित्य स्नान करना चाहिए किन्तु मन्थारी को तीनों उपासना के योग्य कारणों में अवश्य ही नित्य स्नान करना चाहिए ॥६४॥ जो शगादि में पीड़ित हो और यात्रा में हो तो उनका एक ही बार स्नान करने का सिद्धान्त है । हे मुनिर ! इनके उपरान्त द्वाय में दर्भ ग्रहण करके ब्रह्म यज्ञ करना चाहिए ॥६५॥ यदि बाद कम ऐसा है जिसका दिन वही समय में पूर्ण करने का आवश्यक है और किसी कारण से उक्त दिन में पूरा नहीं किया जा सके हो तो उपरान्त त्याग न करके रात्रि में ही प्रथम याग में करवाना चाहिए ॥६६॥ बिना किसी विशेष आपदा के सम्भावित हुए भूलाना के अथवा प्रवाद के यशोभन प्राप्त करने

सन्ध्यापासना नहीं किया करता है तो उस व्यक्ति को महान् पाखंडी और धर्म के बर्भों का अनाधिवारी ही जान लेना चाहिए ॥६७॥ जो अपने मनम अनेक कूटयुक्तियों का विचार कर सन्ध्यादि परमावश्यक नित्य के कर्तव्यों का त्याग कर दिया करता है उसको महान् घोर पापात्मा पुरुष ही समझ लेना चाहिए ॥६८॥ जो ऐसे धूर्त लोग स जिन्का कि सन्ध्यावन्दन जैसे अवश्यकरणीय बर्भों का भी त्याग कर दिया करते हैं, भाषण भी करते हैं तो वे भी सूर्य चन्द्र के रहने तक घोर नरकों में निवास किया करते हैं ॥६९॥ इस सन्ध्यापासना कम के करने के पश्चात् देवार्चन और वैश्वदेव करे । उसी समय में कोई अतिथि का समाममन हो जावे तो उसका भी अन्नादि समर्पण के द्वारा स्वागत-सत्कार सविधि करना चाहिय ॥७०॥

वक्तव्या मधुरा वाणी तेष्वप्यभ्यागतेषु तु ।  
 जलान्नकन्दमूलैर्वा गृहदानेन चाचयेत् ॥७१॥  
 अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।  
 स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥७२॥  
 अशातगोक्षनामानमन्यग्रामादुपागतम् ।  
 विपश्चितोऽतिथिं प्राहुर्विष्णुवत्ता प्रपूजयेत् ॥७३॥  
 स्वग्रामवासिन त्वेक श्रोत्रिय विष्णुतत्परम् ।  
 अन्नाद्यं प्रत्यहं विप्रं पितृनुद्दिश्य तर्पयेत् ॥७४॥  
 पचयज्ञपरित्यागी ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः ।  
 कुयादिहरहस्तस्मात्पचयज्ञान्प्रयत्नतः ॥७५॥  
 दवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयस्तथैव च ।  
 नृयज्ञो ब्रह्मयज्ञश्च पचयज्ञान्प्रचक्षते । ७६॥  
 भूत्यमित्रादिसयुक्तं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।  
 द्विजानाभोज्यमश्नीयात्पात्रं नैव परित्यजेत् ॥७७॥

जो महा पुण्य अभ्यागत स्वरूप में समागत द्वये हा उनस

अत्यधिक मधुर और विनयान्वित वाणी से भाषण करना चाहिए और समय पर अनुपस्थित अन्न, जल, वन्द फलादि के द्वारा शक्ति के अनुसार उनका सत्कार करके ठहरने के लिये स्थानादि की व्यवस्था कर देने चाहिए ॥७१॥ जिस गृहस्थी के घर पर से कोई भी आशा रहित होकर योही निराश वापिस चला जाया करता है तो वह अपना सम्पूर्ण उमे देकर उसके सम्पूर्ण सञ्चित पुण्य को लेकर चला जाया करता है ॥७२॥ भारतीय मस्कृति में अतिथि सत्कार की विशेष महिमा पाई गई है । जो किसी अन्य ग्राम या नगर से आया हो और जिसके गोत्र तथा नाम का भी ज्ञान न हो उसको ही विद्वज्जन अतिथि कहा करते हैं । अतिथि का सत्कार एव समर्पन भगवान् साक्षात् विष्णु के ही तुल्य करना चाहिये ॥७३॥ हे विप्र ! अपने ही ग्राम में निवास करने वाले किसी एक भगवान् के परम भक्त श्रोत्रिय का पितरों की तृप्ति के निमित्त मे प्रतिदिन अन्नादि के दान द्वारा मत्कार करना चाहिये ॥७४॥ विद्वान् लोग पञ्च यज्ञों का त्याग कर देने वाले ब्राह्मण को शब्द ब्रह्म की हत्या करने वाला कहा करते हैं । अतएव प्रयत्न पूर्वक पञ्च यज्ञ अवश्य ही करने चाहिए ॥७५॥ देव यज्ञ, भूत यज्ञ, पितृ यज्ञ, स्रष्टा यज्ञ और नृपज्ञ—इनको ही यज्ञायज्ञी के नाम से कहा जाया करता है ॥७६॥ इन समस्त कर्मों के करने के पश्चात् मौन होकर मित्र एव भृत्य आदि सबको साथ लेकर स्वयं आहार को ग्रहण करे । किसी भी भोजन के पात्र का त्याग न करे उसको अवश्य ही भोजन देना चाहिये ॥७७॥

सत्थाप्य स्वासने पादौ वस्त्राद्धं पङ्घिघाय च ।  
 मुखेन वमित भुक्त्वा मुरापीत्युच्यते वृधे ॥७८॥  
 खादिताद्धं पुन खादेन्मोदवाक्च फला न च  
 प्रत्यक्षं लवणं चैव गोमासाशीति गद्यते ॥७९॥  
 अपाशाने वाचमने अद्यद्रव्येषु च द्विज ।

शब्द न कारयेद्विप्रस्त कुर्वन्नारकी भवेत् ॥८०॥  
 पथ्यमन्नं प्रभुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।  
 अमृतोपस्तरणमसि अपोशान भुजे पुर ॥८१॥  
 अमृतापिधानमसि भोज्यान्तेऽप्य सकृत्पिबेत् ।  
 प्राणाद्या आहुतीदंत्वाचम्य भोजनमाचरेत् ॥८२॥  
 ततश्चाचम्य विप्रैर्द्र शास्त्रचितापरो भवेत् ।  
 रात्रावपि यथाशक्ति शयनासनभोजनं ॥८३॥  
 एव गृही सदाचार कुर्यात्प्रतिदिन मुने ।  
 यदाऽऽचारपरिरयागी प्रायश्चित्ती तदा भवेत् ॥८४॥

भोजन करने के समय में जो आसन पर पैरों को फैला कर बैठता है और आधा वस्त्र धारण करके भोजन करता है तथा मुख से उगले हुये को खाता है उसको विद्वान् लोग मद्यपी कहा करते हैं ॥७८॥ जो एक बार आधा खाकर छोड़े हुए मोदक एवं फल को तथा लवण को पुन खाया करता है उसको गोमास भक्षी ही कहा जाया करता है ॥७९॥ द्विज को चुल्लू भर के आचमन करने में तथा भक्ष्य पदार्थों के खाने में शब्द नहीं करना चाहिए । ऐसा करने से वह नरक-गामी हुआ करता है ॥८०॥ भोजन करने के समय में मौन रह कर ही अन्नादि का आहार करना चाहिए । ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है । भोजन में जो भी अन्न प्राप्त हो उसकी निन्दा न करने हुये सदा पथ्यान्न का ही सेवन करे । भोजन करनेके पूर्व 'अमृतोपस्तरणमसि'— यह कहकर एक चुल्लू भर जल छिड़के ॥ ८१॥ भोजन की समाप्ति होन पर ही 'अमृतापिधानमसि'—यह उच्चारण कर एक बार जल का पान करना चाहिए । प्राणाय स्वाहा' आदि आहुतियाँ देकर आचमन करने के पश्चात् भोजन का समारम्भ करना चाहिए । रात्रि के समय में भी इसी भाँति शयन, भोजन एवं आसन आदि के द्वारा अतिथि का समादर सत्कार करे ॥८३॥ हे मुनिवर ! इसी रीति से गृह-



म्याश्रमी को पुत्र्य को प्रतिदिन सदाचरण का प्रतिपादन करना चाहिए । गृहस्थी यदि इस तरह के सदाचरण का त्याग कर देता है तो उसको प्रापश्चित्त करना बहुत ही आवश्यक हो जाया करता है ॥८५॥

दूषितां स्वतनुं दृष्ट्वा पतिनायैश्च सत्तम ।

पुत्रेषु भार्या निःक्षिप्य वन गच्छेत्सहेव वा ॥८५॥

भवेत्त्रिपवणस्नायी नखश्मश्रुजटाधरः ।

अथ शायी ब्रह्मचारी पञ्चयज्ञपरायणः ॥८६॥

फलमूलाशनो नित्य स्वाभ्यासनिरतस्तथा ।

दयम्बान्सर्वभूतेषु नारायणपरायणः ॥८७॥

वज्रयेद् ग्रामजातानि पुष्पाणि च फलानि च ।

अष्टौ प्रासाश्च भुञ्जीत न कुर्याद्वातिभोजनम् ॥८८॥

अत्यन्त वर्जयेत्तैल वानप्रस्थसमाश्रमी ।

व्यवाय वर्जयेच्चैव निद्रालम्ब्ये तर्ध्व च ॥८९॥

दाखचक्रयदापाणि नित्य नारायण स्मरेत् ।

वानप्रस्थ प्रकुर्वीत तपश्चाद्रायणादिकम् ॥९०॥

सहेत भीततापादिर्वह्निं परिचरेत्सदा ।

यदा मनसि वैराग्य जात सर्वेषु वस्तुषु ॥९१॥

तदैव सन्यसेद्विप्रपतितस्त्वन्यथा भवेत् ।

चेदात्माभ्यासनिरत शातो दातो जितेन्द्रियः ॥९२॥

निर्द्वन्द्वो निरहंकारी निर्ममः सर्वदा भवेत् ।

शमादिगुणसयुक्तः कामक्रोधविवर्जितः ॥९३॥

हे मञ्जन महानुभाव! जब गृहस्थी पुत्र्य अपने शरीरमे क्षुरियाँ आदि चिह्नो को देखे तो उसका कर्तव्य है कि वह अपनी भार्या को पुत्रो के मुपुर्द करके या अपने ही साथ लेके वन पे चला जावे अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण कर लेना चाहिये ॥८५॥ वन में

तीनों वालों में स्नान करे तथा दाढ़ी, नख और जटायें धारण करके नियम से रहे । भूमि शयन, ब्रह्मचर्य पालन करके यज्ञ महायज्ञों को वहाँ पर भी अवश्य किया करे ॥८६॥ सदा फल-मूलों का आहार करे तथा निरन्तर स्वाध्याय में परायण रहना चाहिये । सब प्राणियों पर परिपूर्ण दया का भाव बनाये रख कर भगवद्भक्ति में ही तत्पर रहना चाहिए ॥८७॥ उस अवस्था में ग्राम के अन्दर निपजे हुए फल पुष्पों का उपयोग नहीं करना चाहिए । केवल वन्य फल-पुष्पों को काम में लावे । केवल आठ ग्रास भोजन करे और वह भी रात्रि के समय में नहीं करना चाहिए ॥८८॥ जो वानप्रस्थ आश्रम में रहे उसको तैल का अधिक उपयोग नहीं करना चाहिये । उस दिशा में निन्दा, मैनुन, और आलस्य नहीं करना चाहिये ॥८९॥ वानप्रस्थ आश्रम में जाकर तो सदा शख, चक्र धारण करने वाले भगवान् नारायण का ही नित्य स्मरण करना चाहिये तथा चान्द्रायण महाव्रत आदि की तपश्चर्या अवश्य ही करनी चाहिये ॥९०॥ शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहन करने का अभ्यास करता रहे । अग्नि की सेवा निरन्तर करता रहे । जिस समय में सभी पदार्थों के सेवन में निर्गोद की भावना जाग्रत होने लगे तो उसी समय में सन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये अन्यथा सन्यास ग्रहण न करने पर वह पतित हो जाया करता है । सन्यास होने पर परम शान्त, दयनशील और जितेन्द्रिय रहकर वेदागत शास्त्र के अभ्यास में निरन्तर परायण रहना चाहिये ॥९१॥९२॥ सन्याश्रम में प्रवेश करके सर्वदा द्वन्द्व, अहङ्कार और ममता से रहित होकर ही शमादि गुणों से मयुक्त होकर काम, क्रोध आदि का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए ॥९३॥

नग्नो वा जीर्णकोपीनो भवेन्मुण्डो यतिद्विजः ।

सम सत्रो च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥९४॥

एकरात्र वसेद् ग्रामे त्रिरात्र नगरे तथा ।

भक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्यतिः ॥६५॥

अनिदितद्विजगृहे व्यगारे भुक्तिर्वर्जिते ।

विवादरहिते चैव भिक्षार्थं पर्यटेद्यतिः ॥६६॥

भवेत्त्रिपवणस्नायी नारायणपरायणः ।

जपेच्च प्रणव नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः ॥६७॥

जो द्विज सन्यासी होजावे उसको जग्न रहना चाहिये या फटे, पुराने वस्त्र की एक लँगोटी लगा कर रहे । सन्यासी का शिर झुण्डित रहना चाहिये । सन्यासी को सदा शत्रु, मित्र और मानापमान में सदा समान भावना रखनी चाहिये ॥६४॥ सन्यासी के लिये शास्त्राश्रय नियम है कि उने किसी ग्राम में एक राशि तथा नगर में तीन रात निवास करना चाहिये । सदा भिक्षा में निर्वाह चलावे । सन्यासी को सर्वदा एक में जग्न का सेवन नहीं करना चाहिये ॥६५॥ सन्यासियों के लिये भिक्षा करने के भी नियम हैं । ऐसे जो द्विज निन्दित न हो उन्ही के घर से भिक्षा लेनी चाहिये । जिस समय में अग्नि बुझ गई हो और भोजन का समय व्यतीत हो तभी विवाद रहित समय में सन्यासी को भिक्षा के लिये भ्रमण करना चाहिये ॥ ६६ ॥ सन्यासी तीनों कालों में स्नान किया करे । सदा भगवान् नारायण के ध्यान में निमग्न रहे । चित्ता एव सब इन्द्रियों को बन्ध में रखकर प्रणव (ॐ) का जाप निरन्तर ही सन्यासी को करते रहना चाहिये ॥६७॥ जो सन्यास धारण करके भी सम्पट रहकर किसी एक ही गृहस्थी के अन्न का सेवन किया करता है वह अपने आश्रम के नियमों को भङ्ग किया करता है उसकी शुद्धि दम महस प्रायश्चित्तों के करने पर भी कभी नहीं हो सकती है ॥६७॥

एकान्नादी भवेद्यस्तु कदाचिल्लपटो यतिः ।

न तस्य निष्कृतिर्ह्येष्टाप्रायश्चित्तायुतोरपि ॥६८॥

लोभाद्यदि यतिर्विप्र तनुपोपपरो भवेत् ।

स चङ्गालममो ज्ञेयो वर्णाश्रमविगर्हितः ॥६९॥

आत्मानं चितयेद्देवं नारायणमनामयम् ।  
 निर्द्वन्द्वं निमग्नं शांतं मायातीतममत्सम् ॥१००॥  
 अव्ययं परिपूर्णं च सदानन्दैकविग्रहम् ।  
 ज्ञानस्वरूपममलं परं ज्योतिः सनातनम् ॥१०१॥  
 अविकारमनाद्यन्तं जगच्चेतन्यकारणम् ।  
 निर्गुणं परमं ध्यायेदात्मानं परतः परम् ॥१०२॥  
 पठेदुपनिषद्वाक्यं वेदातार्याश्च चितयेत् ।  
 सहस्रशीर्षं देवं च सदा ध्यायेज्जितेन्द्रियः ॥१०३॥  
 एव ध्यानपरो यस्तु यतिर्विगतमत्सरः ।  
 स याति परमानन्दं परं ज्योतिः सनातनम् ॥१०४॥  
 इत्येवमाश्रमाचारान्यं करोति द्विजः क्रमात् ।  
 स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥१०५॥  
 वर्णाश्रमाचाररताः सर्वंगापविर्जिताः ।  
 नारायणपरा याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१०६॥

हे विप्र ! यदि कोई भी सन्यासी होकर लोभ के बशीभूत हो  
 कर अपने इस विनाशशील अनिष्ट शरीर के पोषण में लग जाया करता  
 है तो वह वर्णाश्रम से महान निन्दित होकर एक—चाण्डाल के ही  
 समान हो जाता करता है ॥ ८६ ॥ सन्यासी का कर्तव्य है  
 कि आत्मा का अनामय नारायण देव, निर्द्वन्द्व, निमग्न, मायातीत,  
 ज्ञान, अजय, अमत्सर, सच्चिदानन्द स्वरूप, परिपूर्ण, निमल, ज्ञानरूप  
 परम ज्योति, सनातन विचार तथा ज्ञान से रहित, जगत् के चेतन्य  
 कारण, निर्गुण परम ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहे ॥१००—१०२॥  
 सन्यासी को सदा उपनिषद् के वाक्यों का पाठ करना चाहिए । उसे  
 सर्वदा वेदान्त के अर्थों का गहन विचार करना चाहिये । अपनी  
 इन्द्रियों को नियन्त्रित रखते हुए सत्य पत्नों से युक्त शेष भगवान् का  
 ध्यान करना चाहिए ॥१०३॥ जो यति मातृगर्भ दोष से रहित होकर

इस विधि से भगवान का ध्यान किया करता है वह परम ज्योतिस्वरूप, परमानन्दमय, सनातन ब्रह्म भ तीन हो जाया करता है ॥१०४॥ जो दिन इस उपयुक्त विधि व क्रम से आश्रमाने धर्मों का परिपालन किया करता है वह ऐश परम पद को प्राप्त करता है जहाँ पर पहुँच कर कोई भी शोक नहीं करना पड़ना है ॥१०५॥ जो व्यक्ति वर्णाश्रम के धर्मों का यथावत् पालन किया करते हैं व समस्त पापों से मुक्त हो कर नारायण भगवान् के परम पद की प्राप्ति किया करते हैं जहाँ पर सदैव भगवन् की चरणा में ही मग्न रहने हैं ॥१०६॥



## ॥ श्राद्ध कृत्य विवरण ॥

गृणुष्व मुनिशार्दूल श्राद्धस्य विधिमुत्तमम् ।  
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशय ॥१॥  
क्षयाहपूर्वदिवसे स्नात्वा चंकाशनो भवेत् ।  
अथ शायी ब्रह्मचारी निषि विप्रान्निमन्त्रयेत् ॥२॥  
दन्नधावनताम्बूने तैलाभ्यग तथैव च ।  
रत्नोपधिपरान्तानि श्राद्धवर्त्ता विवर्जयेत् ॥३॥  
अध्वान वयह क्रोध व्यवाय च घुर तथा ।  
श्राद्धवर्त्ता च भोक्ता च दिवाम्बाप च वजयेत् ॥४॥  
श्राद्धे निमग्नितो यस्तु व्यवाय कुम्भे यदि ।  
ग्रहहत्यामवाप्नोति नरकं चापि गच्छति ॥५॥  
श्रद्धे त्रिपञ्चयेद्विधं ध्यात्रिय विष्णुतत्परम् ।  
यथाम्बाचारनिरत प्रशान्त मन्युनादभवम् ॥६॥  
रागद्वेषविहीन च पुराणार्थविनारदम् ।  
त्रिमधुत्रिमुषर्णं सर्वभूतदयापरम् ॥७॥

श्री सनकाचार्यजी ने कहा—हे मुनि शार्दूल । अब आप श्राद्ध करने की परम श्रेष्ठ विधि का थवण कीजिए । इसके सुनने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाया करता है । फिर इसमें कोई भी पाप का निवास नहीं रहता है ॥१॥ जिस दिन पितृ गण का श्राद्ध करना है उसके पूर्व दिन में स्नानादि करके केवल एक ही बार भोजन करना चाहिए । भूमि शयन और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए रहना चाहिए । प्रथम दिन में ही ब्राह्मण को श्राद्ध के लिए निमन्त्रित कर देवे ॥२॥ श्राद्ध के करने वाले पुरुष को दांतुन, तैल मदन, ताम्बूल, तर्पण, रति, औषध और पराये अन्न से बचाव रखना परम आवश्यक है ॥ ३ ॥ श्राद्ध के करने वाले और श्राद्ध में भोजन करने वाले दोनों के लिए नियमों का पालन करना अत्यावश्यक है । इनको कलह, क्रोध, मधुन और बोल का त्याग कर देना चाहिए ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण श्राद्ध का निमन्त्रण स्वीकार करके भी रति क्रिया करता है वह भी ब्रह्महत्या का पाप में लिप्त होकर नरकगामी हुआ करता है । ॥५॥ श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मण में विशेष गुणों का होना अत्यावश्यक है । वह विष्णु का भक्त, श्रोत्रिय, स्वधर्म पालक, सम युक्त, राग द्वेष विहीन, सत्कुल समुत्पन्न, पुराणार्थ ज्ञाता, त्रिमधु और त्रिमुपण के जानने वाला और समस्त प्राणियों पर दयालु होना चाहिए ॥६॥७॥

देवपूजारत चैव स्मृतितत्त्वविशारदम् ।

वेदान्ततत्त्वसम्पन्न सर्वलोकहिते रतम् ॥८॥

कृतज्ञ गुणसम्पन्न गुरुशुश्रूषणे रतम् ।

परोपदेशनिरत सच्छास्त्रकथनैस्तथा ॥९॥

एते नियोजितव्या वै श्राद्धे विप्रा मुनीश्वर ।

श्राद्धे वर्ज्यान्प्रवक्ष्यामि शृणु तान्मुसमाहितः ॥१०॥

न्यूनागश्चाधिकागश्चकदर्यो रोगितस्तथा ।

कुप्री च कुनखी चैव लवकर्ण क्षतव्रतः ॥११॥

क्षत्रपाठजीवो च तथा च शवदाहक ।

कुवादी परिवेत्ता च तथा देवलक खल ॥१२

निदक्रोऽमपणो धूर्तस्तथैव ग्रामवाजक ।

असच्छास्त्राभिनिरत पगन्ननिरतस्तथा ॥१३

वृषलीसूतिपोष्टा च नृषलीपतिरेव च ।

कुण्डश्च गोलकश्चैव ह्ययाज्याना च याजक ॥१४

श्राद्ध भोजी ब्राह्मण में देवार्चन की तत्परता, स्मृतियों के गूढार्थ का ज्ञान, वेदान्त के तात्त्विक ज्ञान में युक्त, मन्त्रों के हित साधन में परायण, कुतोपकार का ज्ञाता, गुणगण समन्वित, गुरु सेवा निरत और सदृशात्मनो का दूसरे का सदुपदेश प्रदान, ये गुण अवश्य होना चाहिये । ऐसे ही ब्राह्मण को खोज कर श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिए ॥८॥६॥ हे मुनिवर । जिस प्रकार के ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रण दिया जावे यह बतलाने के पश्चात् अब यह बतलाता हूँ कि किन २ ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रित नहीं करना चाहिये । आप परम समाहित होकर मुनिय । श्राद्ध के योग्य ब्राह्मण बिरले ही मिला करते हैं । केवल ब्राह्मण वर्ण से इस कर्म में कार्य नहीं चला करता है ॥१०॥ जिसका अङ्ग श्रित हो अर्थात् अधिक या म्यून हो वह श्राद्ध के योग्य नहीं होता है । कायर, रोगी, काढ़ी, बुरे नप्यो वाला, लम्बे कानों वाला, भ्रष्टवर्ती, नक्षत्र पाठ जीवी, द्रव्य ग्रहण कर शव दाह करने वाला, कुत्सित वचनो का वक्ता, परिवेत्ता दबनक, निन्दक, घन, असहिष्णु धूर्त, ग्राम याजक, अगत शास्त्र पढ़ने वाला परान्न भोजी, वृषली एवं भूतिका के अन्न से पुष्ट शूद्रा मंत्री का पति, कुण्ड, गोलक और यज्ञों का यजन करने का अयोग्य व्यक्तियों का यजन करने वाले ब्राह्मण को कभी भूल कर भी श्राद्ध में निमन्त्रित नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध में भागन करने का पात्र नहीं हुआ करते हैं ॥११—१४॥

दभाचारो वृथामुण्डी ह्यन्यस्त्रीधनतत्पर ।

विष्णुभक्ति विहीनश्च शिवभक्तिपराङ्मुख ॥१५॥

वेदविक्रयिणश्चैव व्रतविक्रयिणस्तथा ।

स्मृतिविक्रयिणश्चैव मत्तविक्रयिणस्तथा ॥१६॥

✓ गायका काव्यकर्तारो भिषक्छास्त्रोपजीविन ।

वेदनिंदापरश्चैव ग्रामारण्यप्रदाहक ॥१७॥

तथातिकामुकश्चैव रसविक्रयकारक ।

कूटयुक्तिरतश्चैव श्राद्धे वज्र्या प्रयत्नत ॥१८॥

निमनयीत पूर्वद्युस्नस्मिन्नेव दिनेऽथवा ।

निमन्त्रितो भवेद्विप्रो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय ॥१९॥

श्राद्धे क्षणस्तु कर्त्तव्य प्रसादश्चेति सत्तम ।

निमन्त्रयेद् द्विज प्राज्ञ दर्भपाणिजितेन्द्रिय ॥२०॥

तत प्रातः समुत्थाय प्रातः कृत्य समाप्य च ।

श्राद्ध समाचरेद्विद्वान्काले कृतवसज्जिते ॥२१॥

जो सबदा दम्भाचरण करने वाला हो वह भी अयोग्य होता है । निष्प्रयोजन शिर को मुण्डित कराने वाला, पराई स्त्री और धन को तकने वाला, विष्णु और शिव की भक्ति में रहित, वेद, स्मृति और ग्रन्थ का विक्रय करने वाला, भांड और भाट जैसी वृत्ति रखने वाला, चीर फाड़ के कर्म को करने वाला, वेद का निन्दक, ग्राम में अग्नि लगाने वाला अत्यधिक काम कामना वाला, रस्सों को बेचने का कर्म करने वाला तथा कूटयुक्तियों के करने वाले ब्राह्मण को बन्धी भी आमन्त्रित नहीं करना चाहिये क्योंकि ये परम निषिद्ध बताया गए हैं ॥१५—१८॥ श्राद्ध के पूर्व दिन में अथवा प्रायः उमी दिन ब्राह्मण को निमन्त्रण देना चाहिए । निमन्त्रित विप्र भी जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य पालक होकर रहे ॥१९॥ हे श्रेष्ठ मुनिवर । श्राद्ध में विशेष उत्साह और पूर्ण प्रसन्नता के साथ ही रहकर इसको करे ।



श्राद्धवर्त्ता इन्द्रियो को वश में रखकर हाथ में डाभ लेकर ब्राह्मण को निमन्त्रण देने के लिए उसी घर पर जावे ॥२०॥ श्राद्ध के दिन प्रातः काल में उठकर प्रातः काल के समस्त दैनिक कृत्यों से छुटकारा पाकर विद्वान् पुरुष को श्राद्ध के मनुविन सनन में उमहा आरम्भ करना चाहिये ॥२१

दिवसस्थाष्टमे काले यदा मदायते रवि ।

स कालं कुनपस्त्रत्र पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥२२

अपराह्णं पितॄणां तु दत्तं कालं स्वयम्भुवा ।

तत्कालं एव दातव्यं कव्यं तस्माद् द्विजोत्तमै ॥२३

यत्नव्यं दीयते द्रव्यैरवाले नृनिसत्तम ।

राक्षसं तद्धि विज्ञेयं पितॄणां नांपतिष्ठति ॥२४

कव्यं प्रदातुं सायाह्नं राक्षसं तदभयेदपि ।

दाता नरकमानोति भोक्ता च नरकं गच्छेत् ॥२५

क्षयाहस्यं तिथेर्विप्रं यदि ददमिति भवेत् ।

विद्धापराहिणं वार्यां तु श्राद्धं वार्यं विज्ञानता ॥२६

क्षयाहस्यं तिथियों तु ह्यपराह्णद्वयं यदि ।

पूर्वो क्षये तु पक्षं व्या वृद्धौ वार्यां तथात्तरा ॥२७

मुहूर्त्तद्वितयं पूर्वदिने स्यादपरेऽहनि ।

तिथिं सायाह्नया यत्र वरा वध्यम्य विश्रुता ॥२८

दिन में वे आठवें भाग में अर्थात् चारह बजने के पश्चात् जित

मिलकर राक्षसों को ही प्राप्त हुआ करता है ॥२४॥ जो कव्य साय-  
 ङ्गाल के समय में दिया जाता है वह भी राक्षसों का ही भाग हो  
 जाया करता है । इससे दाता और भोक्ता दोनों नरकों में जाया  
 करते हैं ॥२५॥ हे विप्र ! यदि श्राद्ध की तिथि एक ही दण्ड-भर  
 हो तो श्राद्ध के कर्त्ता को अपराह्नविद्धा तिथि का ही ग्रहण करना  
 चाहिए ॥२६॥ यदि क्षय दिन की तिथि दोनों ही अपराह्नों में हों  
 तो पहिली को क्षय कर्म में प्रयुक्त करे और दूसरी को वृद्धि कर्म में  
 प्रयुक्त करना चाहिए ॥२७॥ यदि वह तिथि प्रथम दिन ४ घड़ी होवे  
 और शेष दूसरे दिन में होवे तो सायाह्न व्यापिनी अगली तिथि को ही  
 कव्य के लिए काम में लेनी चाहिए ऐसा ही प्रसिद्ध विधान है ॥२८॥

किञ्चित्पूर्वदिने प्राहुर्भुं मूर्त्तिद्वितये सति ।

नैतन्मत्त हि सर्वेषां कव्यदाने मुनीश्वर ॥२९॥

निमन्त्रितेषु विप्रेषु मिलितेषु द्विजोत्तम ।

प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञा समाहरेत् ॥३०॥

श्राद्धार्थं समनुज्ञातो विप्रान् भूयो मिमन्त्रयेत् ।

उभौ च विश्वेदेवार्थं पितृभ्यश्च त्रीन यथाविधि ॥३१॥

देवतार्थं च पितृभ्यश्च मंकेकं वा निमन्त्रयेत् ।

श्राद्धार्थं समनुज्ञातः कारयेन्मण्डलद्वयम् ॥३२॥

चतुर्मुखं ग्राह्यं त्रिकोणं क्षत्रियस्य वै ।

वैश्यस्य वतुंलं ज्ञेयं शूद्रस्याभ्युक्षणं भवेत् ॥३३॥

ग्राह्येणानामभावे तु भ्रातरं पुत्रमेव च ।

आत्मानं वा नियुञ्जीत न विप्रः वेदवर्जितम् ॥३४॥

प्रक्षाल्य विप्रपादाश्च ह्याचान्तानुपवेश्य च ।

यथावदर्चनं कुर्यात् स्मरन् नारायणं प्रभुम् ॥३५॥

कुछ विद्वानों का मत है कि यदि प्रथम दिन मध्याह्न में चार  
 घड़ी तिथि हो तो प्रथम दिन ही श्राद्ध में ग्रहण करना चाहिए किन्तु

यह मत सर्व सम्मत नहीं है ॥२६॥ हे द्विजोत्तम । निमन्त्रित किए जाने के योग्य ब्राह्मणों के मिल जाने पर प्रायश्चित्तों के द्वारा शुद्ध आत्मा वाले यजमान के सर्व प्रथम उन विप्रों से श्राद्ध कम को करने की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए ॥३०॥ जब वे आज्ञा दे दें तभी उन विप्रों को सविधि निमन्त्रण देना चाहिए । विधि यही है कि विश्वेदेवाओं के लिए दो ब्राह्मणों को निमन्त्रण देवे और तीन विप्रों को पितरों के निमित्त मे निमन्त्रित करना चाहिए ॥३१॥ अथवा देवों और पितरों के लिए एक २ को ही निमन्त्रित करे । श्राद्ध करने की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर दो मण्डल बनाने चाहिये ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण के मण्डल चौकोर, क्षत्रिय का त्रिकोण, वैश्य की गोल मण्डप बनावे । शूद्र का मण्डल जल के छिड़क देने मात्र से ही मान लिया जाता है ॥३३॥ यदि पूर्व में यतमायें हुये युक्त ब्राह्मण श्राद्ध के लिए न प्राप्त हों तो भाई, पुत्र अपन ही लोगों को श्राद्ध के योग्य ब्राह्मण समझ लेना चाहिये किन्तु वेद विहीन ब्राह्मण को भूल कर भी कभी निमन्त्रित नहीं करना चाहिये । इससे विधि का विनाश होता है । सर्व प्रथम ब्राह्मण के चरणों का प्रक्षालन करे और जिस समय भव भामनो पर समुपस्थित होजावें और आचमन कर लें तब भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए उनका समुचित सत्कार करना चाहिए ॥३५॥

ब्राह्मणाना तु मध्ये च द्वारदेशे तथैव च ।

अपहृता इत्यृचा वै कर्ता तु विकिर्गत्तिलाम् ॥३६॥

यवैर्दूर्भैश्च विश्वेपा देवानामिदमासवम् ।

दत्वेति भूयी दद्याच्च देवे क्षणप्रतीक्षणम् ॥३७॥

अक्षय्यामनयो पशौ द्वितीयावाहने स्मृता ।

अन्नदाने चतुर्थो म्याच्छेपा मनुद्धच स्मृता ॥३८॥

आमास पात्रद्विनय दर्भशाखासमन्वितम् ।

तत्पाने सेचयेत्तोय शन्नो देवीत्यृचा तत ॥३६॥  
 यवोऽसीति यवान् क्षिप्त्वा गन्धपुष्पे च वाग्यत ।  
 आवाहयेत्ततो देवान् विश्वे देवा स इत्यृचा ॥४०॥  
 या दिव्या इति मन्त्रेणा दद्यादर्घ्यं समाहित ।  
 गन्धैश्च पत्रपुष्पैश्च घूर्पदीपैर्यजेत्तत ॥४१॥  
 देवैश्च समनुज्ञातो यजेत् पितृगणास्तथा ।  
 तिलसयुक्तदर्क्षैश्च दद्यात्तेषा मदासनम् ॥४२॥

श्राद्ध करने वाले पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह ब्राह्मणों को अपने मध्य म तथा द्वार की देहली पर 'अपहृता' इत्यादि ऋचा का पाठ करते हुए तिनो को बखेर देवे ॥३६॥ यवो और कुशा को विश्वे देवाओं को सम्मुख रखकर उनसे प्रार्थना करे कि यह आपके लिए अन्न है । आसन समर्पित करने के पश्चात् यवो का अर्पण कर इन विश्वेदेवाओं के समागमन के लिए क्षण भर प्रतीक्षा करे ॥ ३७ ॥ 'शिवा आप सन्तु इत्यादि पढ़े तथा अक्षय और आसन के सङ्कल्प में पृष्ठी विभक्ति का 'अमुक्' गोत्रस्य अमुक् नाम्न 'प्रयोग करना चाहिए तथा आवाहन में द्वितीया विभक्ति का ही प्रयोग अमुक् गोत्रमुक् नामानम्' करना चाहिए तथा अन्न दान के समय म चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग 'अमुक् गोत्रायाममुक्' नाम्न करना चाहिए । शप सर्वत्र सम्बुद्धि का प्रयोग करें । जैसे—अमुक् गोत्र, अमुक् नाम आदि ॥३८॥ इसमें अन्न-नर दो पात्रों को रखकर उनमें डाम प्रक्षिप्त करके 'शन्नो देवी०' इत्यादि मन्त्र के द्वारा उन पात्रों में अन्न भर देवे ॥३९॥ फिर 'यवोऽसि' इत्यादि मन्त्र को उच्चारण करत हुए जो दान कर मोन होत हुए गन्ध और पुष्प चढ़ाव । इस पश्चात् 'विश्वे देवा इत्यादि ऋचा में विश्व देवाओं का आवाहन करना चाहिए ॥४०॥ या दिव्या इत्यादि मन्त्र व साथ साथैयानी के साथ अर्घ्य दना चाहिए फिर 'या दिव्या' इम मन्त्र में साथैयानी में अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, घूर्प, दीप आदि में विश्व

देवाओं का अर्चन करना चाहिए ॥४१॥ इसके पश्चात् विश्वेदेवाओं से सम्मति प्राप्त करके अपने पितृगणों का पूजन करे । पितरों को सर्वदा तिल और कुशा का आसन ही समर्पित करना चाहिए ॥४२॥

पात्राण्यासावन्दयेत् त्रीणि ह्यर्घार्थपूर्ववद् द्विजः ।  
 शन्नो देव्या जल क्षिप्त्वा तिलोज्जीतिक्षिपेत्तलता ॥४३॥  
 उशान्त इत्यर्चावाह्य पितृन् विप्रः समाहितः ।  
 या दिव्या इति मन्त्रेण दद्यादर्घ्यं च पूर्ववत् ॥४४॥  
 गन्धश्च पत्रपुष्पैश्च घूपैर्दोषैश्च सत्तम ।  
 वासोभिर्भूषणैश्चैव यथाविभवमर्चयेत् ॥४५॥  
 ततोऽन्नाद्य समादाय घृतयुक्तं विचक्षण ।  
 अग्नौ करिष्य इत्युक्त्वा तेभ्योऽनुज्ञा समाहरेत् ॥४६॥  
 करवै करवाणोति चापृष्टा ग्राह्यणा मुने ।  
 कुरुष्व क्रियता वेति कुर्विति ब्रूयुरेव च ॥४७॥  
 उपामनाग्निमाधाय स्वगृह्योक्तविधानतः ।  
 सोमाय च पितृमते स्वधा नम इतीरयेत् ॥४८॥  
 अग्नये कथ्यवाहनाय स्वधा नम इतीह वा ।  
 स्वाहान्तेनापि वा प्राज्ञो जुहुयात् पितृयज्ञवत् ॥४९॥

इसके अनन्तर ब्राह्मणों को पूर्व के ही समान अर्घ के लिए तीन पात्र रखने चाहिये और 'शन्नो देवी' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण कर पात्रोंमें जल भर देवे और 'तिलोज्जीति' इत्यादि मन्त्र में तिलों का प्रक्षेप करे ॥४३॥ इसके अनन्तर बहून ही मावधानना में 'उशान्त' इत्यादि ऋचा में अपने पितृगणों का आवाहन करना चाहिए तथा 'या दिव्या' इत्यादि मन्त्रों में पूर्ववत् अर्घ का समर्पण करे ॥४४॥ हे मन्त्रज ! इसके उपरान्त अपने घन विषय की इति अनुगार ही गन्ध, घूप, दीप, यज्ञ, मृगण और द्रव्य में पितृगणों का भरी भोजि अर्चन करना चाहिए ॥४५॥ इसके अनन्तर अज्ञान पुत्र का हृत् में अर्घ के

प्राप्त को ग्रहण कर इसकी मैं अग्नि में आहुति दूँगा 'अग्नी करिष्ये' इत्यादि मन्त्र से आज्ञा प्राप्त करे । ब्राह्मणों को इसके उत्तर में कहना चाहिए कि—हाँ, करिये अर्थात् अग्नि में आहुति दीजिए ॥४७॥ फिर अपने गृह्य सूत्र के विधान के अनुसार उपासना कर अग्नि की स्थापना करके 'सोमाय पितृमते स्वधानम्' इसका उच्चारण करके 'इस पितृयज्ञ की दो समान आहुतियाँ देनी चाहिए अथवा विद्वान् व्यक्ति को अन्त में 'स्वाहा' यह कहकर ही आहुति देनी चाहिए ॥४८—४९॥

आभ्यामेवाहुतिभ्या तु पितृणा तृप्तिरक्षया ।

अभ्यभावे तु विप्रस्य पाणौ होमो विधीयते ॥५०॥

यथाचार प्रकुर्वीत पाणावग्नी च वा द्विज ।

न ह्यग्निर्दूरग कार्यं पार्वणे समुपस्थिते ॥५१॥

सधायान्नि तत कार्यं कृत्वा त विसृजेत् ।

कृती यद्यग्निर्दूरगो विप्र पार्वणे समुपस्थिते ॥५२॥

भ्रातृभि कारयेच्छाद्ध साग्निर्वैविधिवद् द्विज ।

क्षयाहे चैव साप्राप्ते स्वस्याग्निर्दूरगो यदि ॥५३॥

तथैव भ्रातरस्तत्र लोकिकाग्नावपि स्थिता ।

उपासनाग्नी दूरस्थे समापे भ्रातरि स्थिते ॥५४॥

यद्यग्नीजुहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी ।

उपामताग्नी दूरस्थे केचिदिच्छन्ति चै द्विजा ॥५५॥

तच्छेष विप्रपात्रेषु विकिरेत् सस्मरन् हरिम् ।

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च लेह्यैश्च स्वाद्यैर्विप्रान्प्रपूजयेत् ॥५६॥

इन आहुतियों के देने में पितृगण की अथवा तृप्ति हुआ करती है । यदि यजमान अग्नि होत्र करने वाला न होवे और वहाँ पर उम समय में अग्नि का अभाव हो तो उम समय ब्राह्मण के हाथ में ही अर्पण करना रूपी ही होम करना पर्याप्त होता है । हे द्विज ! आचार के अनुरूप ही कर या अग्नि में आहुतियाँ देनी चाहिये । पार्वण भ्रातृ के समय में अग्नि को दूर नहीं रखा चाहिए ॥५१॥ पार्वण के समय

मे यदि अग्नि दूर हो ' अर्थात् पत्नी अपनी माता के यहाँ ( मायके मे ) चली गयी हो तो कुशल पुरुष को नूतन अग्नि की स्थापना करनी चाहिये और उसमे ही आहुतियाँ देवे । श्राद्ध के समाप्त होने पर उस नवीन सस्यापित अग्नि को विसर्जित कर देना चाहिये ॥५२॥ यदि श्राद्ध के समय की तिथि उपस्थित होजावे और अग्नि दूर हो तो अग्निहोत्र करने वाले अपने जो दूसरे भाई हो उनमे श्राद्ध करवाना चाहिए ॥५३॥ यदि अपनी अग्नि जो उपासना करने की हुआ धरती है कही दूर देश मे हो और समीप मे ही कोई लौकिक अग्नि वाले भाई विद्यमान हो तो उस दिशा मे नवीन अग्नि की स्थापना करना या श्राद्ध के कर मे ही आहुति का समर्पण करना बहुत ही अनुचित है क्योंकि ऐसा करने पर वह पानशी होजाया करता है ॥ ५४॥५५ ॥ इस विधि मे आहुति अर्पण कर जो जेप अन्न खव जाये उसको भगवान् का स्मरण करना हुआ ब्राह्मणो के रक्षक हुये पात्रो मे परिवेषण कर देवे । इसके पश्चात् परम स्वादिष्ट भक्ष्य-भोग्य, लेह्य आदि पदार्थो मे ब्राह्मणो को भोजन करावे ॥५६॥

अन्नत्याग ततः कुर्यादुभयत्र ममाहित ।  
आगच्छन्तु महाभागा विश्वे देवा महाबलाः ॥५७॥  
ये यत्र विहिताः श्राद्धे मावधाना भवन्तु ते ।  
इति सप्रार्थयेद्देवान्ये देवास श्रुत्वा नु वै ॥५८॥  
'तथा सप्रार्थयेद्विप्रान्ये च हेति श्रुत्वा पितॄन् ।  
अमूर्तानां च मूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् ॥५९॥  
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिना योगनशुभाम् ।  
एव पितॄन्मममृत्यु नारायणपरायण ॥६०॥  
दत्ता हविश्च तत्कर्म विष्णवे विनिवेदेयम् ।  
तन्मते ब्राह्मणा सर्वे भुञ्जोरन्नाग्न्याद्विजाः ॥६१॥  
हमने यश्चे कोऽपि राक्षस तद्भवेद्विधिः ।  
यथायत्र प्रदेशे च मधुमामादिक तथा ॥६२॥  
पातादि न प्रजमेरन् वाग्यता धूनभाजनाः ।

यदि पात्रं त्यजेत्कोऽपि ब्राह्मणः श्राद्धयोजितः ॥६३॥

श्राद्धहता स विज्ञेयो नरकायोपपद्यते ।

भुञ्जानेषु च विप्रेषु ह्यन्योन्यं सस्पृशेद्यदि ॥६४॥

इसके अनन्तर दोनों स्थानों पर अर्थात् विश्वेदेवा और पितृ-  
गण के स्थानों पर अन्न के स्वादिष्ट पदार्थों का परिवेक्षण कर साव-  
धान हो प्रार्थना करे । हे महाबलवान् हे महाभाग विश्वेदेवाओ ! इस  
श्राद्ध में जिनका आवाहन किया गया है वे आप अब सावधान  
होजावे । 'येदेवासः०' इत्यादि ऋचा से विश्वेदेवाओ की, प्रार्थना  
करे तथा 'मया चेह' ऋचा से पितरों और तत्स्थानीय ब्राह्मणों  
की प्रार्थना करे और यह कहे कि—जो इस समय में यहाँ पर गुप्त  
अथवा प्रकट रूप से प्रकाशवान् तेजस्वी पितर विद्यमान हैं उन योग  
दृष्टि वाले ध्यान में स्थित पितृगणों की सेवा में मैं प्रणाम करता हूँ ।  
इस विधि से पितरों का अभिवादन कर भगवान् नारायण के ध्यान में  
तत्पर होजाना चाहिए ॥५७—६०॥ इस अर्पित हवि, कर्म को विष्णु  
भगवान् की सेवा में समर्पित कर देना चाहिए । इसके पश्चात् वे सभी  
ब्राह्मण मौन होकर भोजन करें ॥६१॥ उस समय किसी की भी  
हँसी और बातचीत नहीं करनी चाहिए । यदि ऐसा उस समय में  
किया जाता है तो वे सभी हवि राक्षस हो जाया करते हैं । फिर  
देशाचार के अनुकूल मधु मास का परिवेक्षण करे । पत्तलों पर बैठे  
हुये ब्राह्मणों को एक दम मौन रहना चाहिये और पाक आदि की  
प्रशंसा नहीं करनी चाहिये । यदि श्राद्ध में समागत ब्राह्मण पत्तल का  
स्पर्श कर उठ जाना है तो उसको श्राद्ध का हनन करने वाला ही सम-  
झना चाहिए वह निश्चय ही नरकगामी होता है । भोजन करते दृष्ट  
ब्राह्मण परस्पर में एक दूसरे का स्पर्श नहीं करे ॥६२—६४॥

तदन्नमत्यजन्भुक्वा गाय-यष्टशत जपेत् ।

भुज्यमानेषु विप्रेषु वर्त्ता श्रद्धापरायणः ॥६५॥

स्मरेन्नारायण देवमनन्तमपराजितम् ।

रक्षोघ्नान्व्येष्णवाश्चैव पैतृकाश्च विशेषतः ॥६६॥



जपेच्च पीरुष सूक्तं नाचिकेतश्रयं तथा ।

शिमधु त्रिमुपर्णं च पावमान यजू पि च ॥६७॥

सामान्यपि तथोक्तानि वदेत्पुण्यप्रदास्तथा ।

इतिहामपुराणानि धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥६८॥

भञ्जीरन्ग्राहणा यावत्तायदेनाञ्जपेद् द्विज ।

ग्राह्येषु च मुक्तेषु विकिर विक्षिपेत्तथा ॥६९॥

शेषमन्नं वदेच्चैव मधुसूक्तं च यं जपेत् ।

स्वयं च पादौ प्रक्षाल्य मन्त्रगात्रम्य नारद ॥७०॥

उस अन्न को न छोड़े तो इनको आठवीं गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए । तभी उनको बि द्वि हुआ करती है । जिस समय में ब्राह्मण भोजन कर रहा हो उस समय में परम श्रद्धालु श्राद्धवर्त्ता का वर्त्तव्य है कि वह अन्न, अपराजिन श्री नारायण देव का मस्मरण करे और उस समय में गायत्री के नाशक मन्त्रों का, विष्णु के स्तोत्रों का और पितृ मन्त्रों का भी पाठ करना चाहिए ॥६४—६६॥ इसके साथ २ पुण्य सूक्त और यजुर्वेद के मन्त्रों का जाप करना चाहिये ॥६७॥ पुण्य प्रदान करने वाले गाय वेद के मन्त्रों का तथा इतिहाम, पुराण और धर्म शास्त्र का भी पाठ करे ॥६८॥ जिस समय तक ब्राह्मण भोजन करते रहें तभी तक इन उपर्युक्त मन्त्रादिको निरन्तर पढ़ते रहना चाहिए । जब ब्राह्मण भोजन समाप्त कर चुके तब पुण्य को पृथक् करके शेष अन्न खाने का विशेष मे बबुरोध करे 'मधुवाता श्रुतायते' मधु सूक्त का जाप करना चाहिये । इसके अनन्तर अपने आप पैरों को धोकर भनी भोजि आचमन करना चाहिये ॥६९-७०॥

आचानेपु च विपेषु पिण्ड निर्वापयेत्तन ।

स्वस्तिवाचनकं कुर्यादशम्योदन्मेव च ॥७१॥

दत्त्वा गमाहितं कुर्यात्तथा विप्राभिवादनम् ।

अन्नान्नयित्वा पात्रं तु स्वस्तिं कुर्वन्ति ये द्विजा ॥७२॥

वत्सरं निरग्नेया भक्त्युच्छिष्टभोजिनः ।

दानारो नोऽभिषदनामित्याद्यं स्मृतिभाषिणः ॥७३॥

आजीर्षानां तमेतोम्यां नमन्तार चरेत्तन ।

दद्याच्च दक्षिणा शक्त्या तावूल गन्धसयुतम् ॥७४

न्युब्जपात्रमथानीय स्वधाकारमुदीयेत् ।

वाजेवाजे इति श्रद्धा पितृन्देवान्विसर्जयेत् ॥७५

भोक्ता च श्राद्धकृत्तस्या रजन्या मैथुन त्यजेत् ।

तथा स्वाध्यायमध्वान प्रयत्नेन परित्यजेत् ॥७६

अध्वगश्चातुरश्चैव विहीनश्च धनेस्तथा ।

आमश्राद्ध प्रकुर्वीत हेम्ना वासृश्रभार्यक ॥७७

ब्राह्मणों के द्वारा आचमन किये जाने पर पिण्ड दान करे । स्वस्तिवाचन बोने और अटूट जल धारा ( अक्षय्योदक ) करे । इस विधि से बहुत ही सावधानी के साथ श्राद्ध समर्पित करके ब्राह्मणों का अभिवादन करना चाहिए । जो विप्र पानों का परिचालन किये ही बिना तात्पर्य यह है कि पात्रों को सीधान करके ही स्वस्ति करते हैं उनके एक वष तक उच्छिष्ट भोजी रहा करते हैं । इसके पश्चात्— 'दातारो नाऽभिवधन्तान्' इत्यादि स्मृति के वचनों के द्वारा आशीर्वाद ग्रहण करे । पुन ब्राह्मणों को प्रणाम करके दक्षिणा देवे और सुगन्धित ताम्बूल अर्पित करना चाहिए ॥७९-७४॥ इसके पश्चात् औघे पात्र लाकर स्वधा कहे और 'वाजे वाजे' इत्यादि के द्वारा पितृजनों का विसर्जन कर देवे ॥७५॥ श्राद्ध कर्त्ता और श्राद्ध भोक्ता को कभी भी मैथुन नहीं करना चाहिए तथा उस दिन भर्ता से गमन और स्वाध्याय भी नहीं करे ॥७६॥ जा कोई यात्रा में हो, राग युक्त हो, धनहीन हो वह कच्चा साधा देकर ही श्राद्ध कर देवे जिसकी पत्नी रजस्वला हो गई हो उसे सुवर्ण के द्वारा श्राद्ध कर देना चाहिए ॥७७

द्रव्याभावे द्विजाभावे ह्यन्नमात्रं च पाचयेत् ।

पतुर्वेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षण ॥७८

अत्यन्तद्रव्यशून्यश्चेत्तद्वशक्त्या तु नृगं गवाम् ।

स्नात्वा च विधिवद्विप्रं कुर्याद्वा तिलतपणम् ॥७९

अथवा रोदनं कुर्यादित्युच्यते विजने वने ।

दरिद्रोऽहं महापापी वदन्निति विचक्षण ॥८०

परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितॄन् ।  
 तत्कुलं नाशमायाति ब्रह्महत्या च विदति ॥८१॥  
 श्राद्धं कुर्वन्ति ये मर्त्याः श्रद्धावन्तो मुनीश्वर ।  
 न तेषां सतृप्तिच्छेदः सम्पनास्ते भवन्ति च ॥८२॥  
 पितॄन् यजति ये श्राद्धे तंस्तु विष्णुं प्रपूजित ।  
 तस्मिंस्तुष्टे जगन्नाथे सर्वास्तुष्यति देवता ॥८३॥  
 पितरो देवताश्चैव गन्धर्वास्तथा ।  
 यक्षाश्च सिद्धा मनुजा हरिरेव सनातन ॥८४॥

यदि द्रव्य का अभाव हो अथवा श्राद्धाचित द्विजों का अभाव हो तो श्राद्ध करने वाले को केवल अन्न का दान करके पितृ-गण की दृष्टि के उद्देश्य से अग्नि में होम करना चाहिए ॥८५॥ हे विप्रवर ! यदि बहुत ही अधिक द्रव्य का अभाव हो तो अपनी शक्ति के अनुसार गाधों को घास डलवा देनी चाहिए अथवा स्नान करके विधि पूर्वक तर्पण कर देवे ॥८६॥ कुशल पुरुष को चाहिये कि निर्जन वन में जाकर उच्च स्वर से, मैं महाम् गापात्मा हूँ और बहुत ही दरिद्र हूँ यह कहकर उच्च स्वर से गे देना चाहिए ॥८७॥ यदि श्राद्ध करने वाला अगल दिन में पितृ तर्पण नहीं किया करता है तो उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगता है और अन्त में उसका बुरा ही नष्ट हो जाया करता है ॥८८॥ हे मुनिवर ! जो परम श्रद्धा से समन्वित होकर श्राद्ध दिया करता है ॥८९॥ जो श्राद्ध में अपने पितृगणों का अर्चन किया करता है वे मानी साक्षात् धनवान् विष्णु का पूजन कर लिया करते हैं और भगवान् जगत् के स्वामी विष्णु के परम मन्तुष्ट होन पर सभी देवता मन्तुष्ट होजाया करते हैं ॥९०॥ पितृगण, देववृन्द, गन्धर्वगण, यक्ष-समूह, अम्बरा वृन्द मित्र और मनुष्य इन सबमें सनातन प्रभु श्री हरि हरि भगवान् ही व्याप्त रहा करते हैं ॥९१॥

येन दमस्त्रिजानं जगत्स्यावरजगमम् ।

तस्माद्दाता च भोक्ता च सर्वं विष्णुं मनानत ॥९२॥

यदस्ति त्रिप्र यन्नास्ति दृश्यं चादृश्यमेव च ।

गर्वं विष्णुमयं ज्ञेयं तस्मादभ्यन्तं विद्यते ॥९३॥

आधारभूतो विश्वस्य सर्वभूतात्मकोऽव्यय ।  
 अनौपम्यस्वभावश्च भगवान्हव्यकव्यभुक् ॥८७॥  
 परब्रह्माभिधेयो य एक एव जनार्दन ।  
 कर्ता कारयिता चैव सर्वं विष्णु सनातन ॥८८॥  
 इत्येव ते मुनिश्रेष्ठ आदधस्य विधिरुत्तम ।  
 कथितं कुवतामेव पाप सद्यो विलीयते ॥८९॥  
 य इदं पठते भक्त्या आदधकाले द्विजोत्तम ।  
 पितरस्तस्य तुप्यति सततिश्चैव वर्धते ॥९०॥

वही भगवान् विष्णु से यह सब स्थावर और जङ्गम तत्त्व प्रकट हुआ है अतः दाता और भोक्ता सबमे वही सनातन विष्णु विराजमान रहा करते हैं ॥८५॥ हे विप्रवर ! इस विश्व में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है तथा जो नहीं दिखाई देता है अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सत् असत् जड़ चेतन सबको विष्णुमय ही समझना चाहिये क्योंकि विष्णु से परे कुछ भी नहीं होता है ॥ ८६ ॥ भगवान् विष्णु ही इस सम्पूर्ण विश्व के आधार स्वरूप हैं सब प्राणी उनके ही रूप हुआ करते हैं और यह भगवान् अपने कर्तृत्व रूप से कभी भी वे ज्युत नहीं हुआ करते हैं भगवान् का स्वभाव ऐसा अद्भुत है कि उनकी किसी से भी उपमा नहीं दी जा सकती है और वे ही हव्य-व्यय सबके भोक्ता हुआ करते हैं ॥८७॥ जिनका परम ब्रह्म नाम है वही एक जनार्दन हैं । वे ही कर्ता और कराने वाले हैं । यह प्रपञ्च विष्णु का ही स्वरूप है ॥८८॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! इस रीति से आपके समक्ष मैं यह आदध का पूरा विधान वर्णित कर दिया है जो कि अत्युत्तम है । जो इस आदध को किया करते हैं उनके समस्त पापों का समूह तुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है ॥८९॥ हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य आदध करने का समय में इस आदध विधान के अध्याय का भक्तिसहित पाठ किया करता है उसका पितृगण परम से तुष्ट होजाया करता है और उसकी सम्पत्ति भी वृद्धि हुआ करती है ॥९०॥

॥ नारद पुराण ( प्रथम खंड ) समाप्त ॥